"भारतीय राजनीति में राज्यपालों की भूमिका नेहरू के पश्चात, मध्यप्रदेश के विशेष सन्दर्भ में"

इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी. फिल. उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध

प्रस्तुतकर्त्ता

(कु. सुस्मिता बनर्जी)
अनुसधान अध्येता
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद

***

पर्यवेक्षक

(श्री डी पी. घोष)
राजनीति विज्ञान विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इल.हाबाद

राजनीति विज्ञान विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
अप्रैल - 1997

"भारतीय राजनीति में राज्यपालों की भूमिका नेहरु के पश्चात, मध्यप्रदेश के विशेष सन्दर्भ में"

इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी. फिल. उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध

अप्रैल - 1997

पर्यवेक्षक
(डा. डी पी. घोष)
राजनीति विज्ञान विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद
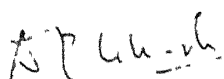
प्रस्तुतकर्त्ता
(कु. सुस्मिता बनर्जी)
अनुसंधान अध्येता
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद

प्रमाण पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि **कु. सुस्मिता बनर्जी** पुत्री श्री एच. सी. बनर्जी नवम्बर 1994 से इलाहाबाद विश्वविद्यालय के राजनीति विज्ञान विभाग में मेरे निर्देशन में शोध छात्रा के रूप में पंजीकृत हैं । इनके शोध का विषय है "भारतीय राजनीति में राज्यपालों की भूमिका नेहरु के पश्चात्, मध्य प्रदेश के विशेष सन्दर्भ में" इनका शोध कार्य पूर्ण हो चुका है तथा इनके शोध-प्रबन्ध का अवलोकन मेरे द्वारा कर लिया गया है । अतः इन्हें शोध प्रबन्ध प्रस्तुत करने की अनुमति प्रदान की जाती है ।

पर्यवेक्षक :

(श्री डी. पी. घोष)
राजनीति विज्ञान विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद

आभार

सर्वप्रथम मै अपने पर्यवेक्षक श्रद्धेय डॉ. डी. पी. घोष का हृदय से आभारी हूँ जिनकी प्रेरणा, वरदहस्त एवं आशीर्वाद के बिना यह श्रम साध्य कार्य सम्भव नही था । इलाहाबाद विश्वविद्यालय के राजनीति विज्ञान विभाग के अध्यक्ष प्रो. उमाकान्त तिवारी जी का भी मै ऋणी हूँ जिनका अपार स्नेह तथासहयोग मुझे प्राप्त होता रहा है। मै श्री सलील गांगुली, कार्यालय अधीक्षक, इलाहाबाद विश्वविद्यालय तथा श्री दिलीप लाहिड़ी, इलाहाबाद विश्वविद्यालय का भी अत्यन्त आभारी हूँ जिनकी प्रेरणा एवं प्रोत्साहन हमेशा मुझे मिलता रहा है ।

आदरणीय प्रो. डॉ. डी. आर. पटेल, विभागाध्यक्ष, शासकीय महाविद्यालय, कोरबा का मै हृदय से आभारी हूँ जिनकी प्रेरणा एवं मार्गदर्शन के परिणामस्वरूप ही मेरा यह कार्य सम्पन्न हो सका है । शासकीय महाविद्यालय, कोरबा की पुस्तकाध्यक्षा श्रीमती दीप्ती पटनायक के प्रति मै अपनी कृतज्ञता प्रकट करती हूँ । मै डा. नुसरुत बानु रुही जी (भोपाल), डॉ. सुजय मिश्र (अम्बिकापुर) के प्रति भी अपना आभार व्यक्त करती हूँ । विभिन्न पुस्तकालयाध्यक्षों तथा कर्मचारियों के स्नेह को भी मै इस कार्य मे सहयोगी मानती हूँ तथा उनके प्रति धन्यवाद ज्ञापित करती हूँ ।

मेरे पूज्य पिताजी श्री एच. सी. बनर्जी, मेरी पूज्यनीया माता श्रीमती विजया बनर्जी, मेरे परम पूज्य चाचा जी श्री प्रोनब कुमार बनर्जी के प्रति अपना स्नेहायुक्त सम्मान प्रकट करती हूँ जिनका आर्शीवाद एवं प्रेरणा मेरे सम्पूर्ण अध्ययन में सहायक सिद्ध हुई है । मेरे मामाजी श्री सुजीत कुमार चक्रवर्ती के प्रति अपना आभार प्रकट करती हूँ जिन्होंने मेरे इस शोध प्रबन्ध को छपवाने में मदद की। मेरी दीदी, भाई-बहिन ने भी इस कार्य को करने में मुझे काफी उत्साह एवं सम्बल प्रदान किया है, जो मेरे लिए अत्यंत सुख का विषय है ।

अन्ततः मैं श्री बच्चन नायक जी (विधायक) प्रतिपक्ष नेता मध्य प्रदेश विधानसभा, कामरेड आनन्द प्रकाश पाण्डेय (भोपाल), कामरेड तिवारी जी (जबलपुर) का भी अत्यन्त आभारी हूँ । उन तमाम लोगों का नामोल्लेख मै नहीं कर पा रही हूँ जिनका सहयोग समय-समय पर मुझे मिलता रहा है ।

पुनश्चः इस शोध प्रबन्ध को व्यवस्थित ढग से टंकित करने वाले टाईपिस्ट नरेन्द्र कुमार चौधरी C/o मीनाक्षी सॉफ्टवेयर कन्सल्टेन्ट्स, अल्लापुर के प्रति भी आभार व्यक्त करती हूँ, जिन्होने इस शोध प्रबन्ध को बड़े ही तल्लीनता एवं सुव्यवस्थित ढंग से टंकित किया है ।

(कु. सुस्मिता बनर्जी)
अनुसंधान अध्येता
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद

अनुक्रमणिका

अध्याय — 1

प्राक्कथन - प्रस्तावित शोध विषय का महत्व

भारतीय संविधानिक और राजनैतिक व्यवस्था में राज्यपाल का पद अत्यधिक महत्वपूर्ण रहा है। प्रारम्भ में ईस्ट इंडिया कम्पनी ने अपने आर्थिक वाणिज्यिक लाभ की अभिवृद्धि के लिये इस पद की स्थापना की थी। तीन प्रेसीडेंसी प्रान्तों - बंगाल, मद्रास, बम्बई में गवर्नरों की नियुक्ति की गई थी। ईस्ट इण्डिया कम्पनी एक लुटेरी संस्था थी। गवर्नरों ने ईस्ट इंडिया कम्पनी के भौगोलिक क्षेत्र की वृद्धि में महत्वपूर्ण योगदान दिया था। 1858 मे ईस्ट इंडिया कम्पनी का शासन समाप्त हो गया। ब्रिटिश सरकार ने भारत का शासन अपने हाथ में लिया था गवर्नर सीधे ब्रिटिश राजमुकुट द्वारा नियुक्त किये जाते थे। धीरे-धीरे देश मे राष्ट्रीय आन्दोलन के गति पकड़ने से प्रान्तों में स्वायत्त शासन की मॉग बढ़ने लगी। गवर्नरों के निरंकुश अधिकारों में कटौती होती गयी। 1861, 1892, 1909, 1919, 1935 के अधिनियमो में भारत में क्रमशः उत्तरदायी शासन लागू किया गया। यद्यपि 1935 तक अधिकांश अधिकार गवर्नरो में ही केंद्रित रहे। 1946 में स्वतंत्र भारत के संविधान निर्माण के लिये संविधान सभा की स्थापना हुई। 15 अगस्त 1947 को भारत स्वतंत्र हुआ।

संविधान सभा में काफी वाद विवाद के बाद राज्यपाल के पद को अन्तिम रूप दिया गया। देश में संघ व्यवस्था तो लागू की गई किन्तु केन्द्रीय सरकारों को राज्यों के क्षेत्र में इतने अधिक अधिकार दिये गये कि राज्यों की स्वायत्तता बहुत कम हो गयी है। राज्यपाल को उस क्षेत्र में अधिकांश अवसरों पर मुख्य मंत्री के परामर्श को मानना पड़ेगा किन्तु कुछ क्षेत्रों में उसके स्वविवेकी अधिकार भी है और इन स्वविवेकी अधिकारों के क्षेत्र में मुख्य मंत्री या मंत्रिपरिषद को कोई परामर्श देने का अधिकार नहीं है। अधिकांश अवसरों पर राज्यपाल राष्ट्रपति (केंद्र सरकार) के एजेंट के रूप मे कार्य करता है। राष्ट्रपति के एजेट के रूप में वह संघ और राज्यों के बीच में कड़ी के रूप में कार्य करता है।

राज्यपालों का अध्ययन एक महत्वपूर्ण अध्ययन है। संघ राज्यों के पारस्परिक सम्बन्धों पर जब हम विचार करते है तो यह स्वाभाविक ही है कि हम राज्यपाल के पद पर विचार करें क्योंकि अधिकांश स्थितियों में राष्ट्रपति (केंद्र सरकार) राज्यपालों के माध्यम से राज्यों में हस्तक्षेप करते हैं। भारत में ब्रिटिश माडेल की संसदीय प्रणाली विफल हो रही है और संविद का दौरा चलने लगा है। राज्य अपने अधिकारो अपनी स्वायत्तता के लिये बहुत अधिक संवेदनशील हैं, इन सब विवादों का केंद्र बिन्दु राज्यपाल ही है। केरल मे प्रथम साम्यवादी दल की सरकार को पूर्ण बहुमत होने के बावजूद जिस प्रकार पंडित नेहरु की सरकार ने भंग कर दिया, उसके बाद से ही राज्य सरकारों में भीतर ही भीतर असंतोष फैलने लगा था। पश्चिमी बंगाल में धरमवीर धावन, मध्यप्रदेश में के० सी० रेड्डी, राजस्थान में सुखाड़िया, तमिलनाडु में चान्ना रेड्डी आदि राज्यपालों का कार्यकाल

अत्यधिक तूफानी था। धर्मवीर को पश्चिम बंगाल में काफी अपमानित होना पड़ा। अजय मुकर्जी की सरकार ने उनको एक ऐसे भाषण को पढ़ने के लिये कहा गया जिसमें राज्यपाल और केंद्रीय सरकार की आलोचना की गयी थी। धरमवीर इस भाषण को बिना पढ़े ही सभा भवन छोड़कर चले गये। उनकी विदाई के समय भी रेलवे स्टेशन पर सरकार का कोई नहीं पहुँचा। ज्योति बसु ने धावन को कहा कि आप कोई दल सरकार गठन कर सकते हैं या नहीं या कोई सरकार बहुमत में है या नहीं इसका निर्णय राजभवन में नहीं "You cannot decide the Majority or the fate of a government in your drawing room,"

इसी प्रकार मध्यप्रदेश के राज्यपाल के० सी० रेड्डी बहुत अधिक विवादास्पद रहे, संविद सरकार के दौरान उन्होंने निरंकुश प्रवृत्ति का परिचय दिया। मोहनलाल सुखाड़िया ने विधान सभा में अपने भाषण के दौरान गड़बड़ी करने वाले विरोधी दल के कुछ सदस्यों को निलम्बित कर दिया जो एक असंवैधनिक कदम था।

कुछ राज्यपालों पर भ्रष्टाचार का दोष लगा। मध्यप्रदेश के राज्यपाल सत्यनारायण सिन्हा पर इस प्रकार का आरोप लगा। मोती लाल वोरा (राज्यपाल उत्तर प्रदेश), अर्जुन सिंह (राज्यपाल पंजाब) और पी० शिवसंकर (राज्यपाल केरल) हावाला कांड में फंसे हुए है।

इस प्रकार भविष्य में जब भी भारतीय संविधान में, संसदीय प्रणाली में, संघ-राज्य सम्बन्धों में विचार किया जायगा तो राज्यपालों के पद पर भी विचार किया जायेगा। भूतकाल में सरकारिया आयोग ने भी राज्यपालों के सम्बन्ध में सुझाव दिये हैं। अनुच्छेद 356 का किस प्रकार से प्रयोग किया जाय इस पर भी सुझाव पेश किये गये है।

इन सब परिवर्तनों पर विचार करते हुए राज्यपाल के पद पर विचार करना ही होगा। इस तरह राज्यपाल का पद मात्र संविधानिक प्रधान, रबर स्टाम्प, या नाममात्र की कार्यपालिका और राष्ट्रपति के एजेंट का ही पद नही है वरन यह सम्पूर्ण भारतीय संविधानिक और शासन व्यवस्था की एक महत्वपूर्ण कड़ी है।

इन्ही सब कारणों से मैंने इस विषय को अपने शोध प्रबंध के लिये चुना है।

शोध प्रबंध में अपनायी जाने वाली शोध प्रणाली- द्वितीय स्रोतों पर आधारित
(Research Methodelogy adopted - Secondary Sources)

इस शोध प्रणाली में अपनायी जाने वाली प्रणाली द्वितीय स्रोतों पर आधारित है। विषय पर सामग्री (Data) एकत्रित करने के लिये पुस्तकों, लेखों, समाचार पत्रों और सरकारी प्रकाशनों का सहारा लिया गया है।

डाटा संग्रहण के लिये प्राथमिक स्रोंतों (Primary Source) का प्रयोग नहीं किया जा सका। मैंने एक प्रश्नावली (Questionnare) अवश्य तैयार की थी जिसकी एक संक्षिप्त रूपरेखा यहाँ प्रस्तुत की जा रही है।

इस प्रश्नावली की प्रतियाँ राज्यपालों को भेजी गई थी। कहीं से उत्तर नहीं आया। मै भोपाल में 15 दिन रुकी भी। उस समय मैं विधानसभा पुस्तकालय में अध्ययन कर रही थी। राजभवन मे मैंने राज्यपाल के सचिव को प्रश्नावली दिया भी और राज्यपाल मोहम्मद शफी कुरैशी से साक्षात्कार दिलाने की प्रार्थना भी की। उनके कहे अनुसार मैं दो तीन बार राजभवन गई भी। आखिरकार राज्यपाल मुहम्मद शफी कुरैशी जी से साक्षात्कार लेने का अवसर दिया गया। राज्यपाल मुहम्मद शफी कुरैशी जी ने कहा कि प्रश्नावली का उत्तर घर के पत्ते पर भेज दिए जायेंगे जो आज तक नहीं भेजे गये। निराश होकर मैंने कुछ विधायकों से ही साक्षात्कार (Interview) लिया। जिसका अति संक्षिप्त विश्लेषण नीचे प्रस्तुत किया जा रहा है। कुछ सांसदों, राजनीतिज्ञों, राजनीति शास्त्र के प्राध्यापकों से भी साक्षात्कार लिया गया।

इस प्रकार मेरा यह शोध प्रबंध देश के दो बड़े ग्रंथगारों में बैठकर लिखा गया है - राष्ट्रीय ग्रंथालय, कलकत्ता और इंडिया काउन्सिल आफ वर्ल्ड अफेयर्स सप्रू हाउस नई दिल्ली। इसके अतिरिक्त मध्यप्रदेश के विधान सभा पुस्तकालय में मैने गवर्नरों पर परिचयालक अध्याय के लिये कुछ सामग्री एकत्रित की है। यह सब सामग्री इस प्रकार है -

(i) पुस्तकों और लेखों की सूची (Bibliography)

(ii) सरकारी प्रकाशन, सरकारिया आयोग की रिपोर्ट

(iii) संसद के वाद-विवाद

(iv) समाचार पत्र

इस विषय पर ग्रंथलायों में अब तक मुझे दो पुस्तकें मिली दोनों पी० एच० डी० शोध प्रबंध हैं -

डॉ० आर० एन० मित्रा - गवर्नर्स इन दि इंडियन कान्स्टीटयूशन, रायपुर, रविशंकर विश्वविद्यालय, 1972

डॉ० पुरूषोत्तम सिह - गवर्नर्स आफिस इन इंडिपेंडेट इंडिया, बैधनाथ देवधर नवयुग साहित्य मंदिर, 1968

ये दोनों 1970 तक की घटनाओं पर लिखी गयी। कुछ गवर्नरों ने भी पुस्तकें लिखी हैं, उनका क्षेत्र अत्यधिक सीमित है और अधिकांश पुस्तकें 1980 के पूर्व में लिखी गयी हैं। मेरा शोध प्रबंध 1980 के बाद पर विशेष रूप से प्रकाश डाला है। साथ ही मेरे शोध प्रबंध में मध्यप्रदेश के राज्यपालों की भूमिका पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है जो किसी भी शोध प्रबंध में नहीं मिलेगा। सभी पुस्तकें या शोध प्रबंध अखिल भारतीय स्तर पर राष्ट्रीय राजनीति के संदर्भ में लिखी गयी है।

मध्यप्रदेश से सम्बन्धित होने के कारण मैं रायपुर और बिलासपुर (मध्यप्रदेश) के समाचार पत्रों का उपयोग किया है। अखिल भारतीय स्तर पर राजनीति का विश्लेषण करने में मैंने नई दिल्ली से प्रकाशित होने वाले दो आंग्ल दैनिकों का प्रयोग किया है - हिंदुस्तान टाइम्स, टाइम्स आफ इंडिया।

प्रश्नावली (संक्षिप्त रूप) उत्तरों का विश्लेषण

चूँकि राज्यपालों से कोई उत्तर नहीं मिल सका, इसलिए विधायकों से ही प्रश्न पूछे गये। इसके अतिरिक्त थोड़े प्रमुख राजनीतिज्ञों, राजनीतिशास्त्र के प्राध्यापकों से प्रश्न पूछे गये। मेरा यह शोध प्रबंध व्यवहार वादी शोध प्रबंध (Behavioural thesis) नहीं बन सका क्योंकि किसी राज्यपाल से उत्तर नहीं मिल सका और मुझे अधिकांश में पुस्तकों, लेखों, सरकारी प्रकाशनों और संसद के वाद-विवाद पर निर्भर करना पड़ा।

कुल साक्षात्कार लिये गये	80
मध्यप्रदेश के बिलासपुर, रायपुर के सांसद .	4
विधायक - बिलासपुर, रायपुर के	25
कॉंग्रेस के नेता	10
भाजपा . ..	5
अन्य दलो के	5
राजनीतिक शास्त्रों के प्रध्यापक ...	35

प्रश्न 1. क्या आपके मत में राज्यपालों का पद रखना अनिवार्य ही है?

हॉ .	50
नहीं ...	10
कह नहीं सकते .	20

प्रश्न 2. यदि यह पद समाप्त कर दिया जाय तो इसका क्या प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा?

हाँ	30
नहीं .	15
कह नहीं सकते ..	35

काँग्रेस के लगभग सभी ने इस पद का समर्थन किया। 1990-92 के पूर्व अवश्य ही इन्होंने राज्यपाल कुँअर मेहमूद अली खॉ की आलोचना की थी, किन्तु 1992 में भाजपा सरकार भंग हो गई और काँग्रेस पुनः सत्ता में आ गई। अतएव इन्होंने राज्यपाल के पद को पुनः समर्थन देना आरम्भ कर दिया।

भाजपा के अधिकांश लोगों ने समर्थन नही दिया। उनका कहना था कि राज्यपाल केन्द्र सरकार का एजेंट या जासूस है और राज्यपाल के रहते राज्यों की स्वायत्ता बहुत अधिक प्रभावित होती है। साम्यवादी दल और अन्य दलों के नेताओं का भी यही विचार रहा है।

राजनीतिशास्त्र के पुराने प्राध्यापकों ने इस पद का समर्थन किया। नये प्राध्यापकों ने कहा कि राज्यपाल ऐशों आराम की जिदगी व्यतीत करते हैं और बारंबार दिल्ली की दौड़ लगाते हैं - इसलिये इस पद को समाप्त कर देना चाहिए।

प्रश्न 3. अनुच्छेद 356 के विषय में आपका क्या विचार है? क्या इसको हटा देना चाहिए ?

हॉ . . 35

नही . 20

कह नहीं सकते 25

कॉग्रेस के विधायको, राजनीतिज्ञों ने इस अनुच्छेद का समर्थन किया है। भाजपा के विधायकों और राजनीतिज्ञों ने इस अनुच्छेद का विरोध किया है। शेष ने इस धारा को या तो समझा नहीं या अपना मत व्यक्त नहीं किया। राजनीति शास्त्र के प्राध्यापकों में से अधिकांश ने इसका समर्थन नहीं किया उनका कहना था कि इससे केन्द्र के तानाशाही अधिकारों में वृद्धि होती है और राज्यों की स्वायत्ता प्रभावित होती है। किन्तु कुछ ने इसका समर्थन करते हुए कहा कि इस अनुच्छेद की आवश्यकता है। भारत की एकता को सुरक्षित रखने के लिये, राज्य में विच्छेदकारी प्रवृत्तियों पर अंकुश लगाने के लिये यह अनुच्छेद आवश्यक है।

प्रश्न 4 क्या राज्यपालों के लिये ऊँची तनख्वाह, भत्ता, सुख सुविधाएँ और राजभवन जैसा प्रासाद रखा जाना चाहिए ?

हाँ . .20

नहीं 50

कह नही सकते . .. 10

कॉंग्रेस के कुछ सदस्यों ने इस वेतन, भत्ता, सुख सुविधाओं और विशाल राजप्रासाद जैसे राजभवन का समर्थन किया क्योंकि राज्यपाल राज्य का प्रतीक है और राज्य के प्रतीक का सुख सुविधाऍं मिलनी ही चाहिए। किन्तु जब उनसे पूछा गया कि इतनी सुख सुविधाएँ विलासिता पूर्ण जीवन व्यतीत करना, हवाई जहाज में, वातानुकूलित ट्रेनों और कारों में घूमते है, आलीशान होटलों में खाते है तो फिर वे क्यों गॉधीवादी हुए। इस पर किसी विधायक, सांसद और कॉंग्रेस के नेता ने कोई उत्तर नही दिया।

भाजपा के सदस्यों ने ऐसी भोग विलासिता का विरोध किया किन्तु उनसे पूछा गया कि यदि आपकी पार्टी केन्द्र में आयी तो क्या वह इन ऊँची तनख्वाह, सुख सुविधाओं और राजभवनों का उपयोग नहीं करेंगे

क्योंकि तब भाजपा के ही राज्यपाल नियुक्त होंगे, तो कुछ विधायक सांसद, नेता हिचकिचाए और कहने लगे कि अभी तो हमने कुल 15 दिन ही केन्द्र में सरकार चलायी है, भविष्य में यदि हम सत्ता में आते है तो इस पर विचार करेंगे। किन्तु भाजपा और काँग्रेस के कुछ नेताओं ने अवश्य ही इन सुख-सुविधाओं का विरोध किया। राजनीतिशास्त्र के प्राध्यापकों में से पुराने प्राध्यापकों ने कहा यह भौतिकता का प्रदर्शन उचित नहीं है और राज्यपालों को व्यवहार में गॉधीवाद का त्याग नहीं करना चाहिए। नये प्राध्यापकों ने कहा कि रज्यपाल का पद संविधानिक पद है, और आज गाँधीवाद की सार्थकता भी नहीं रह गई है, भौतिकवादी युग है और ऐसे युग में राज्यपालों को ऊँचा वेतन, सुख सुविधाओं आदि मिलनी ही चाहिए।

प्रश्न 5 क्या सामान्य स्थितियों में राज्यपाल मुख्य मंत्री के परामर्श की अवहेलना कर सकता है?

हॉ 5

नहीं . .. 75

लगभग सभी ने यह स्वीकार किया कि सामान्य स्थितियों में राज्यपाल मुख्य मंत्री के परामर्श की अवहेलना नही कर सकता उसे मुख्य मंत्री के परामर्श को मानना ही पड़ेगा।

प्रश्न 6 क्या कतिपय स्थितियों में राज्यपाल मुख्यमंत्री के परामर्श की अवहेलना कर सकता है?

कई स्थितियों का विधायकों, सासंदों, नेताओं और राजनीति शास्त्र के प्राध्यापकों ने उल्लेख किया। कुछ ने कहा कि जब सरकार का बहुमत समाप्त हो गया हो, कुछ ने कहा कि जब विधान सभा में अस्पष्ट हो और किसी दल का स्पष्ट बहुमत न हो; कुछ ने कहा कि राष्ट्रपति (केन्द्र सरकार) के आदेश पर वह ऐसा कर सकता है।

प्रश्न 7. राज्यपाल की स्वविवेकी शक्तियॉ (Discretionary Powers) है क्या?

हाँ 65

नहीं 5

कह नही सकते 10

सभी ने स्वीकार किया कि राज्यपाल की स्वविवेकी शक्तियॉ है। यद्यपि कुछ नेताओं के अनुसार राज्यपाल कुछ भी कर सकता है और मंत्रिमंडल के परामर्शों की जब चाहें तब अवहेलना कर सकता है, तथा कुछ ने इस प्रश्न को नही समझा। वैसे उत्तरदाताओं को पूर्व में ही स्पष्ट कर दिया गया था कि इसका अर्थ है राज्यपाल किसी आदेश जारी करने के पूर्व, कोई कार्य करने के पूर्व किसी निर्णय पर पहुँचने के पूर्व मुख्यमंत्री से परामर्श नहीं करता। कुछ ने कहा कि सदस्यों को शपथ दिलाने के लिये, कुछ ने कहा कि मंत्रिमंडल और विधान सभा भंग करने के लिये, कुछ ने कहा कि विधेयकों पर हस्ताक्षर करने के लिये, कुछ ने कहा कि बजट पर हस्ताक्षर करने के लिये, कुछ ने कहा कि राष्ट्रपति को रिपोर्ट देने के लिये। अधिकांश ने स्वीकार किया कि जब विधान

सभा में किसी दल का स्पष्ट बहुमत नहीं होता तो राज्यपाल के स्वाविवेकी अधिकार बहुत अधिक बढ़ जाते है।

प्रश्न 8 जब विधान सभा में किसी दल का बहुमत नहीं रहता तो राज्यपाल क्या करें ?

कुछ ने कहा कि उसे विधान सभा भंग करके नया निर्वाचन कराने का आदेश दे, कुछ ने कहा कि उसे यह पहले सबसे अधिक मत प्राप्त करने वाले दल को सरकार बनाने के लिये आमंत्रित करना चाहिए, यदि वह ऐसा करने से इंकार करें तभी विधान सभा भंग कर नये निर्वाचन का आदेश देना चाहिए।

प्रश्न 9 राज्यपाल को विरोधी दलो ने केन्द्र का एजेंट तो कहा ही है, साथ ही उसे केन्द्र का "जासूस" भी कहा है? क्या राज्यपाल पद पर यह आक्षेप सही है?

हॉ 30

नही 40

नही समझ सके या नहीं कह सकते 10

भाजपा और अन्य विरोधी दलों के नेताओं का यह कहना है कि राज्यपाल राज्य का प्रधान या राज्य का प्रतीक अवश्य है किन्तु वास्तव में वह राष्ट्रपति (केंद्र सरकार) के एजेंट के रूप में तो कार्य करता ही है साथ ही वह प्रति पखवाड़े राष्ट्रपति को जो रिपोर्ट भेजता है वह सही नही होती और केन्द्र के तुष्टीकरण के लिये तैयार की जाती है। इन उत्तरों से यह स्पष्ट हुआ कि राज्यपाल के रिपोर्ट में वास्तव में सारे केन्द्र विरोधी आन्दोलनों और बातों की रिपोटिंग राज्यपाल करता है। इसलिये इन नेताओं के अनुसार उसे केन्द्र का जासूस मानना चाहिए।

प्रश्न 10 ज्योति बसु ने कुछ वर्षों पूर्व कहा था कि "विधान सभा में किस दल का बहुमत है इसका निर्णय विधान सभा में ही किया जाना चाहिए न कि राज्यपाल के राजभवन में" "The majority should be decided in the Assembly and not in the drawing room of the Governor "

हाँ . . 70

नही X

कह नही सकते 10

लगभग सभी ने कहा कि राज्यपाल को विधान सभा आमंत्रित कर ही बहुमत का निर्णय करना चाहिए। उन्होंने इस बात पर आपत्ति की कि गवर्नर जब विधान सभा में दलों की स्थिति डावाडोल रहती है, तो नेताओं को अपने राजभवन में आमंत्रित करते हैं, या अपने-अपने सदस्यों की सूची लेकर हाजिर होने पर उनकी इंटरव्यू लेते हैं और उसके बाद सीधे दिल्ली की दौड़ लगाते हैं। होना यह चाहिए कि जब विधानसभा का अधिवेशन हो रहा हो तो विधान सभा में बहुमत का निर्णय किया जाना चाहिए । यदि विधान सभा का अधिवेशन न हो

रहा हो तो विशेष अधिवेशन आमंत्रित करना चाहिए और उस विशेष अधिवेशन में ही बहुमत का निर्णय होना चाहिए।

प्रश्न 11 राज्यपाल क्या विश्वविद्यालयों के क्षेत्र में कुलाधिपति (Chancellor) रूप में सर्वे सर्वा होता है?

हॉ . . . 70

नहीं . . .5

कह नही सकते 5

अधिकांश सदस्यों ने कहा कि राज्यपाल इस क्षेत्र में अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हैं और वे शिक्षा मंत्री या मुख्यमंत्री के परामर्शों की अवहेलना करते हैं। सदस्यों ने कहा कि यदि मुख्यमंत्री या शिक्षा मंत्री किसी व्यक्ति का कुलपति, कुलसचिव आदि पदो पर नियुक्त करने में रुचि रखते तभी राज्यपाल उनकी सुन सकता है। वैसे लगभग सभी सदस्यों ने जोर देकर कहा कि राज्यपाल को विश्वविद्यालयों की गिरती स्थिति को देखकर बहुत अधिक सक्रिय भूमिका अदा करनी चाहिए जो वे नहीं अदा कर रहे हैं। नकल रुकवाने में, परीक्षाएँ समय पर लेने में, परीक्षाओं के नतीजो और गलत सूची निकालने में विद्यार्थियों के जायजों आन्दोनल की सूनवायी करने में कुलाधिपतियों को सख्त आदेश निकालना चाहिए।

प्रश्न 12 राज्यपालों को राष्ट्रपति (केन्द्र सरकार) जब चाहे नियुक्त करे, जब चाहे हटा दे, क्या यह स्थिति उचित है?

लगभग सभी सदस्यों ने कहा कि ऐसी स्थिति उचित नहीं है, इससे राज्यपाल के संविधानिक पद का अवमूल्यन होता है।

कुछ सदस्यों ने कहा कि ऐसी स्थिति को उत्पन्न करने में राज्यपाल स्वयं उत्तरदायी हैं। यदि वे इस तरह अपमानित किये जाने के पूर्व स्वयं ही इस्तीफा दे दें तो राष्ट्रपति को ऐसे हल्के कदम उठाने के पूर्व दो बार सोचना पड़ेगा।

प्रश्न 13 श्री रामकृष्ण हेगड़े ने हाल में कहा था कि, "तमिलनाडु के राज्यपाल चेन्ना रेड्डी को वापस बुला लेना चाहिए?" क्या भारतीय संविधान में राज्यपालों को वापस बुला लेने का प्रावधान है?

हाँ x

नहीं 70

समझ नहीं सके .. . 10

लगभग सभी ने कहा कि संविधान में ऐसा कोई प्रावधान नहीं है।

प्रश्न 14 मध्य प्रदेश के भूतपूर्व मुख्य मंत्री सुन्दरलाल पटवा ने कहा था कि राज्यपाल की राष्ट्रपति शासन के दौरान कोई नीतिगत निर्णय लेने का अधिकार नहीं है? क्या आप इस कथन से सहमत है?

हाँ . 30

नहीं . . . 45

कह नहीं सकते . .5

भाजपा के सदस्यों ने उस समय घोर विरोध किया था जब मध्यप्रदेश के राज्यपाल कुँअर महमूद अली खान राष्ट्रपति शासन के दौरान बहुत से निर्णय लेते जा रहे थे और दिल्ली की दौड़ भी लगाते जा रहे थे। सुन्दर लाल पटवा ने तो यह भी टिप्पणी की कि राज्यपाल सचिवालय में गये और वहाँ मुख्य मंत्री की कुर्सी पर बैठ गये जो उनके अनुसार एक अशोभनीय कृत्य था। उनको दैनांकित शासन चलाने से मतलब था, नीति निर्धारण और पिछली सरकार की नीतियों को बदलने का कोई अधिकार नहीं था।

कॉग्रेस के सदस्योंने कहा कि राज्यपाल को एसे निर्णय लेने का अधिकार है बशर्ते कि वह इन निर्णयों के लिये राष्ट्रपति (केन्द्रीय सरकार) से स्वीकृति ले ले।

राजनीतिशास्त्र के अधिकांश प्राध्यापकों ने कहा कि राज्यपाल को ऐसे निर्णय नहीं लेना चाहिए। नीतिगत निर्णय लेने का अधिकार जनता द्वारा चुनी सरकार को ही होना चाहिए।

प्रश्न 15 मध्यप्रदेश की भाजपा सरकार 1992 में बहुमत में थी; क्या उसे भंग करना उचित था?

हाँ . .40

नहीं . 30

कह नही सकते . 10

काँग्रेस के विधायकों, सासंदों, नेताओं ने कहा कि ऐसा उचित ही था, वरन बाबरी मस्जिद तोड़े जाने के एक दो माह पूर्व ही इन चारों राज्यों को जहाँ भाजपा का शासन था उसे भंग कर देना उचित था। इन राज्यों में शासन और व्यवस्था के मूल आधार ध्वस्त हो चुके थे। भाजपा साम्प्रदायिक दंगे भड़काने पर अमादा थे। साम्प्रदायिक तनाव बहुत बढ़ चुका था आर० एस० एस० का प्रचार और सैनिक कवायद चल रहा था, कार सेवकों के जत्थे गाँव-गाँव और नगरो से अयोध्या की ओर कूच कर रहे थे। इन सबके कारण साम्प्रदायिक तनाव दिन ब दिन बढ़ता जा रहा था। अतएव भाजपा सरकारों को भंग करना जरूरी था।

दूसरी ओर भाजपा के सांसदों, विधायकों, नेताओं ने तर्क दिया कि भाजपा की सरकार बहुमत में थी। उसकी सरकार ठीक से चल रही थी। मध्यप्रदेश से कई गुना अधिक दंगे तो बम्बई में हुए और महाराष्ट्र सरकार उसको दबाने में विफल रही। किन्तु महाराष्ट्र सरकार को भंग नहीं किया गया। इन भाजपा नेताओं के अनुसार संविधान का स्पष्ट निर्देश है कि बहुमत वाली सरकारों को भंग नहीं किया जा सकता।

प्रश्न 16 सरकारिया आयोग की सिफारिशों को लागू करने से क्या राज्यों में स्थिति सुधरेगी?

लगभग सभी ने स्वीकार किया कि इन सिफारिशों को लागू किया जाना चाहिए।

प्रश्न 17 क्या राज्यपाल को राज्य के मंत्रिपरिषद और राष्ट्रपति (केन्द्र सरकार) के आदेशों का निर्विरोध पालन करना चाहिए? क्या राज्यपाल राज्य सरकार और केन्द्र सरकार का एक रबर स्टाम्प है या उसे कुछ स्वविवेकी अधिकार भी है?

हॉ 60

नही . 15

कह नहीं सकते 5

अधिकांश ने कहा कि राज्यपालों के कोई स्वविवेकी अधिकार नहीं है। उसे या तो अपने मंत्रिपरिषद् या राष्ट्रपति के आदेशों, निर्देशों, और परामर्शों का पालन करना पड़ता है।

किन्तु कहा कि राज्यपालों को कई स्वविवेकी अधिकार भी हैं -

(i) जब किसी दल का विधान सभा में बहुमत न हो

(ii) किसी दल का विधान सभा में बहुमत तो हो किन्तु उसका कोई मान्य नेता न हो।

एक दो सदस्यों ने यह विचार भी व्यक्त किये कि राज्यपाल को अपना आत्म सम्मान कायम रखना चाहिए और परामर्श के लिये बार-बार दिल्ली नहीं दौड़ना चाहिए। इससे राज्यपाल के सांविधानिक पद का अवमूल्यन होता है।

प्रश्न 18 क्या राज्यपाल के पद पर राजनैतिक दलों के सदस्यों को ही नियुक्त किया जाना चाहिए?

हाँ . . 50

नही 20

कह नही सकते . 10

अधिकांश उत्तरदाताओं का यह मत था कि राजनीतिज्ञों को ही इन पदों पर नियुक्त करना चाहिए। राज्यपाल को अधिकांश निर्णय राजनैतिक ही लेने पड़ते है। फिर राज्य के अधिकांश आन्दोलन राजनैतिक होते हैं। राज्यपाल को राज्य की राजनैतिक स्थिति पर राष्ट्रपति को रिपोर्टिंग देनी होती है। यदि वह स्वयं राजनीतिज्ञ नही है तो इन राजनैतिक घटनाओं की उचित रिपोर्टिंग नहीं कर सकता। एक कुशल डाक्टर, इंजीनियर, व्यापारी, शिक्षक राज्यपाल के पद पर विफल ही होगा।

कुछ लोगों ने कहा कि राज्यपाल को विशेषज्ञ होना चाहिए - यदि वह कुशल इंजीनियर , डाक्टर, शिक्षक, व्यापारी रहा है तो वह इन क्षेत्रों में विशेष योगदान दे सकेगा।

प्रश्न 19 क्या राज्यपाल को राज्य के बाहर से नियुक्त किया जाना चाहिये ?

हॉ 65

नही . . . 10

कह नहीं सकते . . 5

अधिकांश का यही मत है कि राज्यपालों को राज्य के बाहर से ही होना चाहिए। इससे वे उस राज्य की शक्ति की राजनीति में नहीं पड़ेगे, और अधिकांश मामलों पर तटस्थ दृष्टिकोण अपना सकेगे।

किन्तु कुछ लोगों ने कहा कि राज्यपाल को उसी राज्य से होने से उसे राज्य की राजनीति का विशेष अनुभव होगा और इस अनुभव के आधार पर वह अपनी भूमिका ठीक से निभा सकेगा।

शोध विषय की संक्षिप्त रूप रेखा

यह शोध प्रबंध निम्न अध्यायों और परिशिष्ट में विभक्त है -

अध्याय 1 प्राक्कथन प्रस्तावित शोध विषय का महत्व ।

अध्याय 2 राज्यपाल के पद का विकास-ब्रिटिश शासन काल से नेहरु तक।

अध्याय 3 भारतीय संविधान मे राज्यपाल का पद।

अध्याय 4 राज्यपाल का पद- नियुक्ति,वेतन, विशेषाधिकार आदि।

अध्याय 5 मध्यप्रदेश में 1962 से 1984 के बीच राज्यपालों की भूमिका।

आध्याय 6 मध्यप्रदेश में 1985 से 1996 के बीच राज्यपालों की भूमिका।

अध्याय 7 राज्यों में संविधान का आपात अनुच्छेद 356 और मध्यप्रदेश के राज्यपालों की भूमिका।

अध्याय 8. समापन, निष्कर्ष, सुझाव।

परिशिष्ट - (i) संदर्भ ग्रन्थ लेखों की सूची ।

(ii) 1996 मे गुजरात और उत्तरप्रदेश में राष्ट्रपति शासन।

भारतीय राजनीति का स्वरूप राज्यपालों के संदर्भ में

अगले अध्यायों में राज्यपालों के साथ राजनीति का भी उल्लेख किया गया है। यहॉ हम 1950-96 के बीच प्रमुख राजनैतिक घटनाओं की एक संक्षिप्त रूप रेखा प्रस्तुत करेगें।

पंडित नेहरू के काल तक 1947-63 देश में कॉंग्रेस दल केन्द्र में तो सत्तारूढ़ थी ही, अधिकांश राज्यों में भी कॉंग्रेस की ही सरकार थी। कुछ राज्यों में अन्य दलीय सरकारें भी बनी - जैसे केरल में साम्यवादी दल (द्वितीय निर्वाचन के बाद)। इस काल में राज्यपालों के लिये विशेष कुछ करना नहीं था । राष्ट्रपति के आदेशो, निर्देशों और मुख्य मंत्रियों के परामर्श को मानना।

चतुर्थ निर्वाचन के बाद स्थिति काफी बदल चुकी थी। केन्द्र में तो कॉंग्रेस की सरकार थी किन्तु बहुत से राज्यों में गैर कॉंग्रेसी सरकारें स्थापित हुई। सविद सरकारों की उत्पत्ति हुई, राज्यपाल की भूमिका बहुत बढ़ गया। राजभवन राजनैतिक गतिविधियों के केन्द्र बनने लगे। राजभवन में विविध दल आकर अपने दावे प्रतिदावे पेश करने लगे। विधान सभाओं की बैठके तूफानी हो गई। दल बदल का दौर बहुत अधिक बढ़ गया। 'आया राम, गया राम'' का युग आ गया। राज्यपालों ने मंत्रिमंडल गठन में विधान सभा आमंत्रित, स्थगित और भंग करने में बड़े विवादास्पद निर्णय लिये गये। इससे राज्यों की राजनीति में एक अस्थिरता का दौर उत्पन्न हो गया। 1967-69 के काल में राज्यपाल के. सी. रेड्डी के दबंग नेतृत्व के बावजूद उनको बड़ी विषम परिस्थितियों का सामना करना पड़ा। हरियाणा मे विधायकों की खरीद फरोख्त चालू हो गया; राज्यपाल

चक्रवर्ती ने सदस्यों की नैतिकता के पतन का जिक्र करते हुए कहा कि यह युग "आया राम, गया राम" का युग है। पश्चिमी बंगाल में राज्यपाल धरमवीर को बहुत अधिक अपमानित होना पड़ा।

1970-75 के बीच लगभग यही स्थिति किसी तरह चलती रही। 1975 में आपात काल लागू कर दिया गया। केन्द्र सरकार ने विरोधी दलों के प्रमुख नेताओं को जेल में डाल दिया। संसद और विधानसभाओं की कार्यवाहियों सेंसर की जाने लगी। अखबारों पर, सभा संगठनों पर सेंसर लागू किया गया। इस काल में राज्यपालो का विरोध करने का किसी ने साहस नही किया, साथ ही राज्यपाल केन्द्र सरकार की कठपुतली के रूप में कार्य करते रहे। मुख्यमंत्री न तो राज्यपाल को अप्रसन्न करना चाहते थे और न केन्द्र सरकार को।

1977 में आपात काल हटा लिया गया। देश मे चुनाव हुए जिसमें कॉग्रेस केन्द्र और राज्य दोनों मे पराजित हुआ। जय प्रकाश नारायण ने जनता पार्टी गठित की। उन्होंने पूरे देश का दौरा किया और कॉग्रेस के विरुद्ध प्रचार किया। केन्द्र में 1977 में मोरारजी देसाई की जनता पार्टी की सरकार गठित हुई। मोरारजी देसाई राष्ट्रपति नीलम संजीव रेड्डी के पास पहुँचे और उनको सभी कॉग्रेस सरकारों को बर्खास्त करके नया निर्वाचन कराने के लिये कहा क्योंकि लोकसभा चुनावो मे इन राज्यों मे जनता ने कॉग्रेस के विरूद्ध मतदान किया था। राष्ट्रपति नीलम संजीव रेड्डी ने इन कॉग्रेस सरकारो की बर्खास्तगी के आदेश पर तत्काल हस्ताक्षर नहीं किये। उन्होने दो दिन का समय लिया और मोरारजी को रुकने को कहा। काफी विचार मंथन के बाद ही उन्होने इस बर्खास्ती आदेश पर हस्ताक्षर किये।

इस तरह भारतीय शासन के इतिहास मे यह दूसरी बार केन्द्र सरकार का गलत कदम था जिसे असंवैधानिक आचरण कहा जा सकता है। पहली बार 1959 में केरल की पूर्ण बहुमत प्राप्त साम्यवादी सरकार थी। कॉग्रेस अध्यक्ष यू० एन० ढेबर, श्रीमती इंदिरा गाँधी ने इस सरकार के विरूद्ध आंदोलन छेड़ दिया और इस आन्दोलन के माध्यम से यह सिद्ध करने का प्रयास किया कि साम्यवादी सरकार जनता का बहुमत खो चुकी है। केन्द्र के दबाव में आकर राज्यपाल श्रीमन नारायण अग्रवाल ने जो रिपोर्ट दी, उसके आधार पर बहुमत वाली साम्यवादी सरकार को भंग कर दिया गया।

मोरारजी देसाई की सरकार ने कॉंग्रेस राज्यों के सारे राज्यपालो को बदलकर अपने राज्यपाल नियुक्त किये। यह "थोक में" (Whole Sate) राज्यपालो की नियुक्ति और बर्खास्तगी थी।

1980 के चुनावो में श्रीमती इंदिरा गॉधी पुनः विजयी हुई। उन्होंने भी जनता शासन काल के सभी राज्यों और राज्यपालों को बर्खास्त कर पुन. चुनाव कराये (यद्यपि ये सभी राज्य बहुमत दल द्वारा शासित थे, यद्यपि उनमें कॉंग्रेस विरोधी अन्य दलों की सरकारें थीं)। इन राज्यों में काग्रेस पुनः सत्तारूढ़ हुई। मध्यप्रदेश में सुन्दर लाल पटवाकी सरकार थी जिसे बर्खास्त कर दिया गया।

1980-84 तक इंदिरा गॉधी सत्तारूढ़ रही। मध्यप्रदेश मे इस समय भगवत दयाल शर्मा राज्यपाल थे और अर्जुन सिह मुख्यमंत्री। 1985 में राजीव गाँधी केन्द्र में सत्ता रूढ़ हुए। कुछ समय तक अर्जुन सिंह मुख्य मंत्री रहे, उसके बाद मोतीलाल वोरा मुख्य मंत्री रहे और 1989 में श्यामाचरण शुक्ला पुनः मुख्यमंत्री हुए। इस अवधि मे दो राज्यपाल हुए श्री के० एस० चाण्डी और श्रीमती सरला ग्रेवाल।

1989 में जो चुनाव हुए उसमें केन्द्र में विश्वनाथ प्रताप सिह की सरकार सत्तारूढ़ हुई। उन्होंने 9 राज्यों में चल रहीं कॉग्रेस की बहुमत वाली सरकारों को भंग कर दिया और इन राज्यों के राज्यपालो को थोक में हटाकर नये राज्यपाल नियुक्त किए। कुअर मेहमूद अली खॉ को मध्यप्रदेश का राज्यपाल नियुक्त किया गया। 1990 के चुनावो में भारतीय जनता पार्टी सत्तारूढ़ हुई। 1992 तक भारतीय जनता पार्टी चारों राज्यों में - मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश, हिमाचल और राजस्थान बहुमत में थी। इस बीच केन्द्र में नरसिहा राव की कॉग्रेस सरकार सत्तारूढ़ हो चुकी थी। बाबरी मस्जिद तोड़े जाने के बाद पूरे राष्ट्र में काफी हो हल्ला मचा और अन्तत. नरसिहाराव की काग्रेस सरकार को बाध्य होकर इन राज्य सरकारो को भंग कर इनमे राष्ट्रपति शासन लागू करना पड़ा।

राष्ट्रपति शासन के दौरान राज्यपाल कुँअर मेहमूद अली खान ने राष्ट्रपति के एजेंट के रूप में कार्य किया। भाजपा ने उनकी तीखी आलोचना की।

1993 में मुहम्मद शफी कुरैशी मध्यप्रदेश के राज्यपाल नियुक्त हुए। इस समय श्री दिगिवजयसिह मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री है।

राज्यपाल की भूमिका का अवधारणात्मक विश्लेषण

सविधान सभा ने राज्यपाल के पद की स्थापना दो उद्देश्यों से की थी-

(1) राज्यपाल राष्ट्रपति के एजेंट के रूप में कार्य करेगा ।

(2) वह राज्यों में संविधानिक प्रधान होगा जिसे कतिपय स्थितियों में स्वविवेकी अधिकार प्रदान किये जायेंगे।

वास्तव में राज्यपाल का प्राथमिक कर्तत्व राष्ट्रपति या केन्द्रीय सरकार के प्रति है। भारतीय संविधान निर्माताओं ने अमेरिकी संघ प्रणाली को नही अपनाया। अमेरिका में राज्यपाल या गवर्नर निर्वाचित होता है। वह राष्ट्रपति का एजेंट नहीं होता। चूँकि वहाँ राज्यो में मंत्रिपरिषद नहीं होती अतएव वहाँ के राज्यों के गवर्नर राज्य सूची, समवर्ती सूची और अवशिष्ट सूची के क्षेत्र में स्वतंत्र कार्यपालिका के रूप मे कार्य करते हैं। इन क्षेत्रो में राष्ट्रपति उन पर कोई दबाव नहीं डाल सकता । किन्तु भारत में राज्यों की स्वायत्ता बहुत अधिक सीमित कर दी गई है। वे कई मामलों में केन्द्र के आदेशो और निर्देशों का पालन करने के लिये बाध्य है।

केन्द्र राज्यों पर अधिकांश अवसरो पर हावी हो जाता है। राज्यपाल केन्द्र का एजेंट हैं - उसे हर पखवाड़े केन्द्र को उस राज्य की राजनीति के बारे में रिपोर्ट देनी होती है। इस रिर्पोट में वह विधान सभा, राजनैतिक दल, दबाव समूह और सारे आंदोलनों की जानकारी देता है। राज्यपालों की इन रिपोर्टों का सूक्ष्म अध्ययन और विश्लेषण करके केन्द्रीय केबिनेट की बैठक में रखना गृहमंत्री का कार्य है। इससे केंन्द्र सरकार राज्य की गितविधियों को सूक्ष्म जानकारी लेती रहती है और राज्यपाल इन जानकारी को इकट्ठा करके देते रहते है। यह उनका एजेंसी कार्य है।

राज्यपालों का दूसरा महत्वपूर्ण कार्य राज्य के संविधानिक प्रधान के रूप में कार्य करना है -

(i) विधियों, अध्यादेशों पर हस्ताक्षर करना ।

(ii) मंत्रियो के प्रशासन सम्बन्धी आदेशों पर हस्ताक्षर करना ।

(iii) बजट पर हस्ताक्षर करना ।

(iv) विधान सभा की बैठक आमंत्रित करना, स्थगित करना, भंग करना ।

(v) विधान सभा को सम्बोधित करना ।

(vi) विधायकों और मंत्रियों को शपथ दिलवाना ।

इन शक्तियों का उपयोग राज्यपाल मंत्रिपरिषद के परामर्श से करता है, अर्थात् वह एक नाममात्र की कार्यपालिका (Nominal Executive) या सील मुहर (Rubber Stamp) के रूप में इन कार्यों को करता है।

किन्तु कतिपय अन्य स्थितियों में वह एक वास्तविक कार्यपालिका (Real Executive) के रूप में कार्य करता है। इन अवसरों पर उसे स्वविवेकी शक्तियाँ (Discretionary Powers) प्राप्त होती है। स्वविवेकी शक्तियों के अन्तर्गत वह मंत्रिमण्डल या मुख्यमंत्री से परामर्श नहीं लेता -

(i) सरकार का गठन और मुख्य मंत्री की नियुक्ति।

(ii) जब विधान सभा में बहुमत वाला दल तो है किन्तु उसका कोई मान्य नेता नहीं है, उस समय नेता चुनने में विरोधी दावों के बीच अपने स्वविवेक का प्रयोग करना।

(iii) जब किसी दल का बहुमत न हो तो जिस दल को वह सरकार चलाने लायक समझे, उसे सरकार बनाने के लिये आमंत्रित करता है।

(iv) जब विधान सभा में दलीय स्थिति अनिश्चित हो, या सरकार का बहुमत अनिश्चित हो तो वह विधान सभा की बैठक आमंत्रित करके शक्ति परीक्षण करवा सकता है।

(v) सरकार यदि विधान सभा मे पराजित हो जाय तो वह चुनाव आयोग को चुनाव कराने के लिये सूचना दे सकता है।

(vi) राष्ट्रपति शासन लागू करने के पूर्व वह विस्तार से एक रिपोर्ट राष्ट्रपति को देता है और राष्ट्रपति शासन की सिफारिश करता है।

(vii) प्रति पखवाड़े वह राष्ट्रपति को रिपोर्ट देता है - यह उसका स्वविवेकी अधिकार है और राज्य के मंत्री उससे यह नहीं पूछ सकते कि उसने क्या रिपोर्ट दी।

संविधान निर्माताओं के सामने राज्यपाल की जो अवधारणा थी उसमें ब्रिटिश माडेल की संसदीय प्रणाली पर आधारित थी। संविद सरकारों का दौर तो राज्यों में 1967 के बाद से ही आरम्भ हो चुका था। अब काँग्रेस दल के तेजी से विघटन के संदर्भ में केन्द्र में भी संविदों का दौर चल सकता है। उस समय राज्यपाल पर राष्ट्रपति या केन्द्र सरकार का नियंत्रण ढीला हो जायगा क्योंकि किसी एक दल का नियंत्रण सर्वोच्च नहीं होगा। एक दल यदि राज्यपाल को रखना चाहेगा तो दूसरा दल उसे हटाना भी चाह सकता है।

संविद सरकारों के दौर में राज्यपाल फिर केन्द्र में किस दल को ध्यान में रखकर रिपोर्ट करेगा। किसी राज्य में फिर संविधानिक तत्र विफल हुआ या नहीं इसकी रिपोर्टिंग करने में भी राज्यपालों को कठिनाई होगी क्योंकि हो सकता है कि राज्य में जो घटक सत्ता मे हो वही केन्द्र में भी हो सकता है। अब तक अधिकांश स्थितियो में काँग्रेस ही सत्तारूढ़ दल रही है और राज्यपालों को गैर काँग्रेसी दलों के विरूद्ध रिपोर्ट करने में कोई कठिनाई या असमंजस या दुविधा की स्थिति का सामना नहीं करना पड़ा । किन्तु अब राज्यों में जो दल सत्ता में हो वहीं घटक के रूप मे यदि केन्द्र में न हो तो राज्यपाल का काम उतना सहज नहीं रह जायेगा ।

इस प्रकार देश में तेजी से बदलती हुई परिस्थितियों के कारण शासन व्यवस्था और संविधान आज चौराहे पर खड़ी हुई है और उसके साथ ही साथ राज्यपाल का पद भी अनिश्चितता के दौर से गुजर रहा है। अब राज्यपालों को हटाने और उनका तबादला करने या उनकी नियुक्ति का कार्य भी उतना सहज नहीं रह जायेगा क्योंकि केन्द्र में सत्तारूढ़ दल का प्रत्येक घटक अपना अपना दबाव डालेगा।

मध्यप्रदेश का सामान्य परिचय - पुराना मध्यप्रदेश (Central Provinces) और नया मध्यप्रदेश (M.P.)

काँग्रेस के भूतपूर्व राजनेता पंडित द्वारका प्रसाद ने अपने संस्मरणों में ऐसे विचार व्यक्त किये हैं कि हैदाराबाद के खिलाफ पुलिस कार्यवाही पूरी होने के कुछ दिनों बाद उन्होने सरदार पटेल से कहा कि, ''हैदराबाद के खिलाफ पुलिस कार्यवाही पूरी होने के कुछ दिनों बाद मैं सरदार पटेल से मिला। मैंने उनसे कहा की आपने रियासतों का स्वतंत्र भारत में विलय करके भारत के नक्शे को बदल दिया है। बहेतर होगा कि आप लगे हाथ

भाषावार प्रान्तों के गठन का काम भी उठा लें ताकि स्वतंत्र भारत को अंतिम रूप देने का श्रेय भी आपको मिले। आपसे ज्यादा अच्छी तरह यह काम कोई भी नही कर सकता।" 1

किन्तु सरदार पटेल उस वक्त कोई भाषावार प्रान्तों के निर्माण के लिये सही नहीं समझते थे। दरअसल गाँधीजी की मृत्यु के एक हफ्ता पहले ही महात्मा की मौजूदगी में काँग्रेस कार्यकारिणी ने भाषावार प्रान्तों के निर्माण के प्रश्न पर चर्चा की थी । सरदार पटेल जो उस समय देश में सिर उठा रही विघटनकारी प्रवृत्तियों से चिंतित थे, इसके विरोध में मत व्यक्त किया जिससे फिलहाल मामला वहीं ठंडा हो गया।

किन्तु 1952 में आँध्र प्रदेश के निर्माण के बाद पंडित नेहरू को अक्टूबर 1953 में राज्य पुनर्गठन आयोग की स्थापना करनी पड़ी इसके अध्यक्ष थे श्री फजल अली और सदस्य थे श्री के० एम० पणिक्कर और एच० एन० कुंजरू। इस आयोग का काम था भाषा वार प्रान्तों की सीमाओं के बारे में जानकारी देना। इसने पूरे भारत का दौरा किया। मध्यप्रदेश में आकर इसने मध्यप्रदेश के कई लोगो से राय ली जिनमें पंडित द्वारका प्रसाद मिश्र भी एक थे।

उस समय विदर्भ का मराठी भाषी क्षेत्र सी० पी० से अलग होना चाहता था। दूसरी ओर मालवा, बुंदेलखड, बघेलखड (रीवा) के रियासती क्षेत्रों का भी प्रश्न था। मराठी भाषियो की शिकायत थी कि सी० पी० (सेन्ट्रल प्राविन्सेस) के हिन्दी भाषी लोग उनका शोषण कर रहे है।

श्री द्वारका प्रसाद मिश्र की राय थी कि यदि मराठी भाषा हिन्दी बाहुल्य क्षेत्र से अलग रहना चाहते है तो उनको अलग रहने दिया जाय और महाकौशल, मध्यभारत, भोपाल और विध्यप्रदेश को मिलाकर एक बड़े हिन्दी प्रान्त की माँग करनी चाहिए। वास्तव मे द्वारका प्रसाद मिश्र, रविशंकर शुक्ल, घनश्याम सिंह गुप्त आदि सभी लोग एक बड़े हिन्दी प्रान्त के पक्ष में थे। ये सभी देश के नक्शे में बिहार, उत्तर प्रदेश, राजस्थान के अतिरिक्त एक और बड़ा हिन्दी प्रदेश जोड़ना चाहते थे। इनको विश्वास था कि यह बहुत बड़ा हिन्दी राज्य भारत की अखण्डता का एक और स्तम्भ होगा। केवल मद्रास के अँग्रेजी पत्र "हिन्दू" ने नये मध्य प्रदेश के इस महत्व को समझा (हालाकि श्री मिश्र के नजरिये से अलग) जब उसने टिप्पणी की कि एक और हाहादूती हिन्दी प्रदेश का निर्माण हो गया है। पंडित रविशंकर शुक्ल और सेठ गोविन्द दास भी इस राय के थे हालांकि सेठ गोविन्द दास की दिलचस्पी इस बात में थी कि जबलपुर नये मध्यप्रदेश की राजधानी हो चाहे नया मध्यप्रदेश कैसा भी हो।

जब आयोग ने अपनी सिफारिशें पेश की तो पंडित जवाहरलाल नेहरू को बड़ी आश्चर्य हुई जिसे वे छिपा न सके और सार्वजनिक रूप से मध्यप्रदेश के आकार के बारे में टिप्पणी करते हुए उन्होंने कहा कि यह तो गजब का है। उनकी इस टिप्पणी से मध्य भारत और विन्ध्य प्रदेश के वे नेता जो एक बड़े मध्यप्रदेश मे उनके राज्यों के विलीन हो जाने की सम्भावना से यह सोचकर विचलित थे कि उनकी नेतागिरी खत्म हो जायेगी,

उत्साहित हो उठे। मध्य भारत के एक नेता ने वक्तव्य दिया कि मध्यभारत के लोग घाटे में रहेंगे क्योंकि महाकौशल वित्तीय दृष्टि से घाटे का प्रदेश है। इसका उत्तर पंडित रविशंकर शुक्ल ने दिया। उन्होंने कहा कि बजाय मध्यप्रदेश के मध्य भारत घाटे का प्रदेश है। विवाद के इस माहौल को बढ़ाने में 'सी क्लास' के राज्य भोपाल ने भी अपना योगदान दिया। इसके नेता पहले से ज्यादा सोर मचाने लगे कि भोपाल की नये मध्यप्रदेश की राजधानी बनाया जाय। जब सेठ गोविद दास ने देखा कि मौलाना आजाद की कृपा से जबलपुर के राजधानी बनने के आसार कम हो रहे है और भोपाल के बढ़ रहे हैं तो उन्होने भी बड़े मध्यप्रदेश से मुँह मोड़ लिया और एक छोटे पृथक महाकौशल राज्य की माँग शुरू कर दी। विध्यप्रदेश के लोग उत्तर प्रदेश में मिलना चाहते थे।

आयोग की सिफारिशों के आधार पर नवम्बर 1956 को नया मध्य प्रदेश (M P) बना। इसमें महाकौशल, मध्यभारत, विंध्यप्रदेश, मालवा, के क्षेत्र मिलाये गये। महाकौशल पुराना सेन्ट्रल प्राविसेस का अंग था शेष क्षेत्र देशी रियासतें थी। पडित जवाहर लाल नेहरू ने 7 जून, 1957 को मांडू की एक सार्वजनिक सभा मे कहा था - "हमारा देश बहुत बड़ा है। आप शायद यह बात जानते भी न हो अभी थोड़े दिन हुए उसमे कुछ नये नये प्रदेश बने है, नये नये राज्य बने हैं। आपका यह जो राज्य बना है, अब इसमे आसपास के और प्रदेश जोड़कर मध्यप्रदेश में मिला दिया गया है और इस तरह यह मध्यप्रदेश एक बड़ा भारी प्रदेश बन गया है। भारत मे सबसे बड़ा प्रदेश हो गया है, और मुझे इस बात का विश्वास है कि यह प्रदेश बहुत तरक्की करेगा। यहाँ तरक्की का बहुत अच्छा सामान है। मै चाहता हूँ कि यहाँ की जनता आगे बढ़े। लेकिन आप याद रखे कि आगे तो हम अपने काम से बढ़ते हैं। आपस में मिलकर, प्रेम से रहकर, आप अपना अच्छी तरह काम करें और नये नये काम सीखे। इसी से आपकी, आपके पड़ोसियों की और गाँव की और सबकी भलाई होगी, और देश को भी लाभ होगा, क्योंकि हम तो चाहते हैं कि देश के सब लोगों की उन्नति हो।" [2]

1 नवम्बर, 1956 को नये मध्यप्रदेश का उद्घाटन करते हुए राज्यपाल डॉ० बी० पट्टाभी सीतारमैया का यह संदेश था नया मध्यप्रदेश का स्वरूप भूतपूर्व मध्यप्रदेश से बहुत विस्तृत होगा। इसी प्रकार जनसंख्या एवं आमदनी की दृष्टि से भी नया मध्य प्रदेश बहुत बड़ा होगा। श्री सीतारमैया ने कहा कि नया मध्यप्रदेश भारत की सभी विशेषताओं से युक्त है। यहाँ पर ऐतिहासिक एवं स्थापत्य सम्बन्धी सम्पत्ति अत्यधिक प्रचुर मात्रा मे उपलब्ध है जैसे - ग्वालियर में प्राचीन बैद्धकालीन अवशेष, जैसे - साँची और विदिशा में दसवीं तथा ग्यारहवीं सदी के प्राचीन मंदिर, जैसे खुजराहों में जहाँ चंदेलों की मध्ययुगीन राजधानी थी; मांडू तथा मांधाता जैसे प्राकृतिक सौन्दर्य युक्त स्थान, चचाई तथा भेड़ाघाट जैसै भव्य नयनाभिराम स्थल और सातवीं सदी की सिरपुर की खुदाई आदि सभी इसी प्रदेश में है। [3] बस्तर का दण्डकारण्य तो प्राकृतिक सौन्दर्य के लिये विख्यात है ही। श्री पट्टा भी ने कहा कि मध्यप्रदेश प्रचुर खनिज संसाधनों का भी प्रदेश है।

पंडित रविशंकर शुक्ल, मध्यप्रदेश के भूतपूर्व प्रथम मुख्य मंत्री ने भी इस अवसर पर कहा-नया मध्यप्रदेश का निर्माण देश के इतिहास में एक नयी घटना है। भारत के एकीकरण का यह चरम उत्कर्ष है। क्षेत्रफल में

नया मध्यप्रदेश देश का दूसरे नम्बर का प्रदेश है। देश के मध्य में स्थित यह उसके हृदय के समान है। प्रकृति की कृपा इस प्रदेश पर भरपूर है। चम्बल, बेतवा, केन, नर्मदा, ताप्ती, महानदी और इन्द्रावती जैसी विशाल नदियाँ इसे प्लावित करती है। वन सम्प्रदा अपार है। ऊपर लहलहाते खेत है और नीचे भूमि रत्नाप्रभा है। पत्थर, हीरा, कोयला, लोहा, टिन मैगनीज आदि सब प्रकार के खनिज यहाँ उपलब्ध है । एक विशाल, सुखी और गौरवशाली प्रान्त के लिये यहाँ सब कुछ है। भिलाई, कोरबा जैसे विशाल कारखाने खुलते जा रहे है।

मध्यप्रदेश बनने के अवसर पर यहाँ की आबादी 2करोड़ 61 लाख थी जो अब बढ़कर 6 करोड़ हो गई है। इस आबादी मे अनुसूचित जातियाँ, जनजातियाँ, पिछड़ी जातियों की कुल जनसंख्या लगभग 80 प्रतिशत है।

यह प्रदेश साम्प्रदायिक दंगों से लगभग मुक्त रहा है। थोड़े से साम्प्रदायिक दंगे भूतकाल में जबलपुर, सागर, भोपाल, इंदौर क्षेत्र में हुए। प्रदेश के शेष क्षेत्रों में एक भी साम्प्रदायिक दंगे नहीं हुए।

वर्तमान में प्रदेश औद्योगिक दृष्टि से भारत एक अन्य प्रदेशों से काफी पिछड़ा हुआ है। किन्तु अन्य प्रदेशों की तुलना मे यहाँ विकास की अपार सम्भावनाएँ है। इस राज्य में विद्युत और आवागमन के साधनों की कमी है। कृषि का भी आधुनिकीकरण किया जाना है।

फुट नोट्स

1 मिश्र, पंडित द्वारका प्रसाद - कैसे बना मध्यप्रदेश, मध्यप्रदेश संदेश, भोपाल, प्रकाशन शाखा, सूचना तथा प्रकाशन संचालनालय, 1नवम्बर, 1986, पृ० 16-21.

2 मध्यप्रदेश सदेश, 1 नवम्बर, 1986, पृ० 1

3 मध्यप्रदेश संदेश, 1 नवम्बर, 1986, पृ०2.

अध्याय — 2

राज्यपाल के पद का विकास - ब्रिटिश शासन काल से नेहरु तक

अँग्रेजी शासन काल में गवर्नरों का पद (1600-1947)

यह पद ब्रिटिश शासन की विरासत (legacy) के रूप में चला आ रहा है। श्री प्रकाश का यह कहना है कि अँग्रेजी शासन काल में सर्वोच्च कार्यकारी पदों के जो नाम दिये गये थे उनको अब पूर्ण रुपेण बदल दिया गया है, केवल एक ही नाम को ज्यो का त्यों रखा गया वह है "गवर्नर"[1]। यद्यपि डॉ० राजेन्द्र प्रसाद ने भारतीय संविधान का अनुवाद करते समय इस नाम के लिये "राज्यपाल" शब्द का उपयोग किया है।[2]

16 वीं शताब्दी में ईस्ट इंडिया कम्पनी भारत में स्थापित हुई, धीरे-धीरे उसने भारत में एक विशाल साम्राज्य की स्थापना की, साथ ही उसने अपने व्यापार को भी बहुत अधिक आगे बढ़ाया। गर्वनरों का पद ईस्ट इंडिया कम्पनी के आर्थिक और राजनितिक हितों की देखभाल के लिये स्थापित किया गया था। ईस्ट इंडिया कम्पनी एक घूस खोरों की संस्था थी और गवर्नर भी इस भ्रष्टाचार के आरोप से नहीं बच सके। 1773 के पूर्व ईस्ट इंडिया कम्पनी का प्रदेश तीन प्रेसीडेंसियों मे बंटा हुआ था - बंगाल, बम्बई और मद्रास। प्रत्येक प्रेसीडेंसी का शासन एक गवर्नर को सौंप दिया गया था। ये गवर्नर सीधे इंग्लैड स्थित "कोर्ट आफ डायरेक्टर्स" को उत्तरदायी होते थे। गवर्नर को परामर्श देने के लिये एक छोटी सी परामर्शदात्री परिषद होती थी। प्रत्येक गवर्नर अपने प्रेसीडेंसी में स्वतत्र रूप से शासन करता था। दूसरा कोई गवर्नर उसके क्षेत्र में हस्तक्षेप नही कर सकता था। चार्टर अधिनियमों मे गवर्नर के पद का उल्लेख था। प्रथम गवर्नर की नियुक्ति साम्राज्ञी एलिजाबेथ द्वारा की गयी थी - बाद में गवर्नरों को "कोर्ट आफ डायरेक्टर्स" की वार्षिक बैठकों में निर्वाचित किया जाता था। यदि गवर्नर का शासन संतोषजनक नहीं होता, तो कम्पनी उसे पदच्युत कर सकती थी। गवर्नर की सहायता के लिये एक ड्यूटी गवर्नर और 24 सदस्यों की एक कमेटी होती थी। इनको प्रति वर्ष "कोर्ट आफ डायरेक्टर्स" के द्वारा निर्वाचित किया जाता था। इनको अपने-अपने प्रेसीडेंसी के लिए कानून, अध्यादेश बनाने और आदेश और नियम जारी करने के अधिकार थे। किन्तु इन कानूनों, अध्यादेशों, आदेशों और नियमों को देश और उसकी जनता के रीति रिवाजों के विरुद्ध नही होना था।[3] गवर्नरों को बारम्बार परामर्श लेने के लिये इंग्लैण्ड जाना पड़ता था; वहाँ वे "कोर्ट आफ डायरेक्टर्स" से राजनैतिक, प्रशासनिक, वाणिज्यिक मामलों पर परामर्श लेते थे और विचार विमर्श करते थे। प्रत्येक गवर्नर को अपने प्रेसीडेंसी और ईस्ट इण्डिया के आर्थिक, राजनैतिक, वाणिज्यिक हितों का ध्यान रखना पड़ता था।

1773 में रेग्यूलेटिग एक्ट ने इस सारी तस्वीर को ही बदल दिया। बंगाल के गवर्नर को गवर्नर जनरल बनाया गया। उसे बंगाल, मद्रास और बम्बई प्रेसीडेंसियों पर नियंत्रण करने के लिये गवर्नर जनरल बनाया गया। उसको मद्रास और बम्बई के प्रेसीडेंसियों और गवर्नरों पर नियंत्रण के व्यापक अधिकार दिये गये। इन दोनों प्रेसीडेंसियों के गवर्नरों को अपने द्वारा बनाये गये सारे कानूनो, अध्यादेशों, नियमो, आदेशों को गवर्नर जनरल के पास स्वीकृति के लिये भेजना पड़ता था। यदि वे ऐसा नहीं करते तो उनको गवर्नर जनरल पद से बर्खास्त कर सकता था।[4] किन्तु वुंडरफ ने इसके विपरीत विचार व्यक्त किया है। उसके अनुसार व्यवहार मे गवर्नर जनरल को गवर्नरों की तुलना में कोई विशेष अधिकार नही दिये गये थे वह "सामान अधिकार वालों में प्रथम" (First among equals) था।[5]

रेग्यूलेटिग कम्पनी ने पहली बार ईस्ट इंडिया कम्पनी के शासन पर ब्रिटेन से नियंत्रण स्थापित किया था। 1774 के पिट्स इंडिया एक्ट में इस नियंत्रण को और अधिक बढ़ा दिया गया था। गवर्नर की नियुक्ति यद्यपि "कोर्ट आफ डायरेक्टर्स" के द्वारा की जाती थी, उसे राजमुकुट पदच्युत कर सकता था या वापस बुला सकता था। युद्ध, शान्ति और प्रशासन से सम्बन्धित मामलों में गवर्नर जनरल को गवर्नरों पर नियंत्रण के अधिकार दिये गये थे।

कम्पनी की हालत दिन ब दिन बिगड़ती गयी। कम्पनी की हालत मे सुधार के लिये प्रति 20 वर्ष 1793, 1813, 1833, 1853 पर चार्टर एक्टस पास किये गये। इनसे गवर्नरों को कुछ अधिकार दिये गये तो कुछ अधिकार छीन लिये गये। गवर्नरों की नियुक्ति में "कोर्ट आफ डायरेक्टर्स" को राजमुकुट से स्वीकृति लेनी होती थी। 1833 के अधिनियम में विधायी प्रक्रिया में आमूल परिवर्तन किया गया और कानून पास करने का अधिकार गवर्नर जनरल को दे दिया गया। यह विधायी केन्द्रीकरण था। गवर्नरों को गवर्नर जनरल को विधेयकों की रूप रेखा तैयार करने मात्र का ही अधिकार दिया गया था, वे इन विधेयकों को गवर्नर जनरल को भेज दिया करते थे। इन विधेयको पर गवर्नर जनरल अपनी परिषद् में विचार करता था। 1833 के चार्टर एक्ट में प्रेसीडेंसी सरकारों को पूर्णतया गवर्नर जनरलों के अधीन कर दिया गया। इस विधायी एकीकरण का उद्देश्य सम्पूर्ण ब्रिटिश भारत के लिये एक से कानून बनाने थे।[6]

1853 का चार्टर एक्ट ईस्ट इंडिया कम्पनी का अंतिम अधिनियम था। बंगाल के लिये एक अलग गवर्नर की नियुक्ति की गयी और गवर्नर जनरल के पद को गवर्नर के पद से अलग कर दिया गया। जान स्ट्रेची के अनुसार एक ही व्यक्ति के लिये यह सम्भव नही था कि वह इन दोनों पदों के कार्यों और कर्त्तव्यो का ठीक से संचालन कर सके। यही कारण है कि मद्रास और बम्बई प्रेसीडेंसियों की तुलना में बंगाल प्रेसीडेंसी के शासन मे काफी गिरावट आ चुकी थी। बंगाल के लिये एक लेफ्टिनेन्ट गवर्नर की नियुक्ति की गयी उसको मद्रास और बम्बई प्रेसीडेंसियों के गवर्नरों की तुलना में कुछ कम अधिकार दिये गये थे।[7]

1857 के स्वतंत्रता संग्राम ने ईस्ट इंडिया कम्पनी के शासन को समाप्त कर दिया और ब्रिटिश राजमुकुट ने भारत का शासन अपने हाथों में ले लिया। 1858 के अधिनियम के द्वारा भारत पर ब्रिटिश राजमुकुट का अधिपत्य स्थापित हुआ, इस समय से गवर्नरो की नियुक्ति राजमुकुट द्वारा की जाने लगी। गवर्नर के कार्यपालिका सदस्य भी राजमुकुट के द्वारा नियुक्त किये जाने थे। इनका कार्य गवर्नरों को प्रशासन चलाने में सहायता प्रदान करना था। इन दो कार्यकारिणी के सदस्यों की राय के विरूद्ध भी कोई निर्णय ले सकता था। अब गवर्नरों का "सेक्रेटरी आफ स्टेट फार इंडिया" से सीधे सम्बन्ध स्थापित हो गया। राजमुकुट (Crown) इन गवर्नरों की नियुक्ति "सेक्रेटरी आफ स्टेट" के परामर्श से करता था।

1861 के अधिनियम से गवर्नरो को अधिक अधिकार दिये गये और गवर्नरों के कार्यों में भी वृद्धि की गयी। प्रान्तों को यह शिकायत थी कि उनको स्वायत्तता नही दी गई है और उन्हें गवर्नर जनरल की अधीनता में कार्य करना पड़ता है। गवर्नरों ने अधिक स्वायत्तता की माँग की जिससे वे प्रान्तीय सरकारों को अधिक गति प्रदान कर सके। बम्बई और मद्रास की प्रेसीडेंसियो को अपना अधिनियम पास करने का अधिकार दिया गया। किन्तु गवर्नर जनरल की स्वीकृति की भी आवश्यकता होती थी। कई मामलों में गवर्नरों को बिना गवर्नर जनरल की स्वीकृति के निम्न मामलों मे कानून बनाने का अधिकार नही था - भारत का लोक ऋण, मुद्रा, राजपत्र और संदेश भेजना, भारत की दंड संहिता (पेनल कोड 1860), धार्मिक मामले, सेना, पेंटेट कापीराइट, देशी रियासतें। गवर्नर को अपने परिषद् में 4 से 8 सदस्यो को मनोनीत करने का अधिकार था। वह अपने प्रेसीडेंसी के लिये महाधिवक्ता (एडवोकेट जनरल) नियुक्त करता था। दो नये प्रान्तों-संयुक्त प्रान्त और पंजाब के लिये भी यही प्राविधान लागू किये गये।[8] इतना होते हुए भी गवर्नर को अधिक अधिकार नहीं प्राप्त थे और प्रान्तों को अभी स्वायत्त शासन नही प्रदान किया गया था। गवर्नर जनरल किसी प्रान्तीय विधेयक को रद्‌द (Veto) कर सकता था, और जहाँ किसी प्रान्तीय विधेयक को गवर्नर जनरल की स्वीकृति मिल भी जाती, वहाँ राजमुकुट ऐसे विधेयको को वीटो कर सकता था। इस तरह गवर्नर केवल केंद्रीय सरकार के एजेंट मात्र थे।[9] कीथ का यह विचार है कि प्रान्तो का शासन गवर्नर चलाते थे, गवर्नर जनरल को केवल ऊपरी तौर पर नियंत्रण करने का अधिकार था। केन्द्र सराकर प्रान्तीय सरकारों को केवल निर्देश दे देती थी, जिसके अनुसार वे शासन चलाते थे।[10]

किन्तु गवर्नरों ने कई अवसरों पर केन्द्र सरकार के हस्तक्षेप को स्वीकार नही किया। उदाहरण के लिये जब लार्ड रिपन गवर्नर जनरल थे तो उन्होने यह परामर्श दिया था कि प्रान्तो में स्थानीय सरकारों की स्थापना की जाय किन्तु गवर्नरो ने इस सुझाव को अस्वीकृत कर दिया। बम्बई के गवर्नर ने कहा कि गवर्नर जनरल स्थानीय स्वायत्त शासन के प्रति बहुत उदार दृष्टिकोण प्रस्तुत कर रहे हैं। किन्तु लार्ड रिपन ने बम्बई के अधिकारियो से परामर्श लेकर गवर्नरो की इस आपत्ति का अनदेखा करते हुए प्रान्तो में स्वशासन लागू किया गया।[11]

1885 के बाद भारत में राष्ट्रीय आन्दोलन फैलने लगा और लोगों ने प्रान्तीय स्वराज्य की माँग की, प्रान्तीय सरकार मे सुधार की माँग की जाने लगी। गवर्नर भी इस बात से असन्तुष्ट थे कि उनके क्षेत्र में केन्द्रीय सरकार के द्वारा अनावश्यक हस्तक्षेप किया जा रहा है। 1888 में गवर्नरों ने सेक्रेटरी आफ स्टेट को एक रिपोर्ट भेजी जिसमे उन्होंने यह विचार व्यक्त किया था कि 1861 का अधिनियम ठीक से लोगों की इच्छाओं आकांक्षो के नुसार कार्य नहीं कर पा रहा है। इन सब कारणो से 1892 का अधिनियम पारित किया गया। इस अधिनियम में गवर्नरों और राष्ट्रीय काँग्रेस के विचारों के समन्वय का प्रयास किया गया। गवर्नरों को यह अधिकार दिया गया कि वे अपनी परिषद मे कम से कम 8 और अधिक से अधिक 20 सदस्य मनोनीत कर सकते हैं। इन नियुक्तियों के लिये गवर्नर जनरल को नियम प्रक्रिया निर्धारित करने का अधिकार था। इन पर सेक्रेटरी आफ स्टेट की अंतिम स्वीकृति प्राप्त की जानी थी। गवर्नर अपने परिषद् में बचट पर वाद विवाद करवा सकता था। सदस्यों को प्रश्न पूछने का भी अधिकार दिया गया था। सेक्रेटरी आफ स्टेट को इन सब पर नियंत्रण का अधिकार दिया गया था।

राष्ट्रीय आंदोलन के नेताओं ने इन सुधारो की कड़ी आलोचना की। उन्होने प्रान्तीय व्यवस्थापिकाओं को अधिक विस्तृत करने की माँग की। तिलक, विपिन चन्द्र पाल आदि उग्रवादी नेताओं ने इस अधिनियम की आलोचना की। इस अधिनियम को वे आधा अधूरा मानते थे।[12] यह कहा गया कि ब्रिटिश राजनितिज्ञ ''देश को विभाजित करके शासन करना चाहते थे'' (The Policy of divide & rule) मुसलमानों की पृथक प्रतिनिधित्व देने के लिये गवर्नरों को आदेश दिये गये।

मुसलमानों को प्रान्तीय व्यवस्थापिकाओं मे पृथक प्रतिनिधित्व देने के लिये 1909 का अधिनियम पारित किया गया जिसे मार्ले मिटो रिफार्म कहा जाता है। भारत सरकार अधिनियम 1909 ने गवर्नरों को व्यवस्थापिका में सदस्य मनोनीत करने के व्यापक अधिकार दिये गये। ये मनोनीत सदस्य दो प्रकार के हैं सरकारी और गैर सरकारी। सरकार ने व्यवस्थापिकाओं मे अपनी राय पेश करने के लिये इन मनोनीत सदस्यों का बड़े व्यापक पैमाने पर उपयोग किया। साथ ही गवर्नरों को यह भी देखना था कि गैर सरकारी सदस्यों में निम्न हितों का प्रतिनिधित्व करने वाले लोग हो जो जनमत को ठीक से अभिव्यक्त कर सके - नगरपालिकाएँ और अन्य स्थानीय संस्थाएँ, विश्वविद्यालय, चैम्बर आफ कामर्स व्यावसायिक समितियाँ, जमींदार, चाय बागान और विविध क्षेत्रों में विशेषज्ञ व्यक्ति। गवर्नरों को अपने कार्यकारी परिषदों में अधिकतम 4 सदस्य मनोनीत करने का अधिकार था। गवर्नरो को इन परिषदो मे उपसभापति मनोनीत करने का अधिकार था। उसे यह देखना था कि इन 4 सदस्यों में कम से कम 22 सदस्यों को ऐसा होना था जिन्हें सरकारी कामकाज का 12 वर्षों का अनुभव हो।[12]

1909 के अधिनियम के अनुसार प्रान्तीय बजट की जाँच का अधिकार केन्द्रीय सरकार को दिया गया था। वह इस बजट मे परिवर्तन भी कर सकती थी। कूपलैड के अनुसार देश में प्रतिनिधि शासन स्थापित करने का प्रयास सर्वप्रथम 1861 मे आरम्भ किया गया था। इसे 1909 के अधिनियम में एक कदम और आगे

बढ़ाय गया।[13] फिर भारतीय राष्ट्रीय कॉंग्रेस के नेता विशेषकर उग्रवादी नेता इस अधिनियम से सन्तुष्ट नही हुए, वे इस अधिनियम और अधिक संशोधन की माँग कर रहे थे। 1916 के कॉंग्रेस लीग स्कीम (लखनऊ पैक्ट) मे इसीलिये यह माँग की गयी कि प्रान्तीय व्यवस्थापिका के 4/5 सदस्य जनता द्वारा निर्वाचित हो और मताधिकार को और अधिक व्यापक बनाया जाय और शेष 1/5 सदस्य गवर्नर द्वारा मनोनीत किये जाय। गवर्नर को प्रान्तीय विधान सभा की अध्यक्षता नही करनी चाहिए। गवर्नर को प्रान्तीय प्रशासन के क्षेत्र में पूर्णा अधिकार प्रदान किये जाय। प्रान्तीय विधानसभा द्वारा पारित किसी विधेयक को गवर्नर को पहली बार वीटो करने का अधिकार है किन्तु यदि दूसरी बार फिर से प्रान्तीय विधान सभा इसे पास कर दे तो गवर्नर को उस विधेयक पर हस्ताक्षर करना ही होगा। प्रत्येक प्रान्तीय विधेयक पर गवर्नर को अनिवार्य रूप से हस्ताक्षर करना था किन्तु गवर्नर जनरल इनको अस्वीकृत कर सकता था। किन्तु इन सुझावो को ब्रिटिश सरकार ने अमान्य कर दिया क्योंकि इससे गवर्नर कई प्रकार के बंधनो मे बंध जाता था।[14]

भारत में गवर्नरों और गवर्नर जनरलों की आलोचना होने के बावजूद भी ब्रिटिश सरकार का यह मत था कि भारत मे एक लोकप्रिय सरकार की स्थापना की गई है।[15] गवर्नरों को ब्रिटेन के अभिजात घरानो से नियुक्त किया जाता था और इस प्रथा को ब्रिटिश सरकार अत्यधिक संतोष जनक मानती थी। कभी-कभी यह पद वशगत भी हो जाता था बेटा या सम्बन्धी गवर्नरों के पद पर नियुक्त कर दिये जाते थे। 1854-59 में लार्ड हैरिस मद्रास के गवर्नर जनरल थे, उनका बेटा मद्रास के गवर्नर के पद पर 1890-95 मे नियुक्त हुआ। दो लार्डस होबार्ट 1794-98 और 1872-75 मे मद्रास के गवर्नर थे, वे एक ही परिवार से थे। लार्ड कोनेमारा 1886-90 में मद्रास के गवर्नर थे, वे वायसराय लार्ड मेयो के भाई थे। दो भाई लार्ड वेनलाक ए० और ए० लबाई 1891-96 और 1906-11 मे मद्रास के गवर्नर थे। इस प्रकार इंग्लैंड के अभिजात कुलीन धरानों से गवर्नरों की नियुक्ति को लार्ड कर्जन सहित कई गवर्नर जनरलों ने उचित ठहराया है।[16]

द्वैधतंत्र में गवर्नरों की स्थिति

1919 के अधिनियम में द्वैधतंत्र की स्थापना की गयी थी। इस प्रान्तीय शासन दो भागों में बँटा था- हस्तान्तरित (Transferred) और सुरक्षित (Reserved)।राष्ट्रीय आन्दोलन के दबाव से यह अधिनियम पारित हुआ था। प्रथम महायुद्ध में अँग्रेजों को यूरोप और विश्व के अन्य क्षेत्रों में युद्ध चलाने के लिये भारत की सेना और धन जन की सहायता की आवश्यकता थी। अतएव ब्रिटिश सरकार ने सभी वर्गों से सहायता की मांग की थी। ब्रिटिश सरकार ने वादा किया था कि युद्ध की समाप्ति के बाद भारत को स्वायत्त शासन से सम्बन्धित व्यापक सुधार दिये जायेंगे। किन्तु युद्ध की समाप्ति के बाद ब्रिटिश सरकार अपने वादे से मुकर गयी। उसने द्वैधतंत्र के नाम से प्रान्तीय सरकारों मे जो सुधार किये वे प्रान्तों मे स्वायत्त शासन लागू करने से कोसों दूर थे। अप्पादराय के अनुसार द्वैधतंत्र मे गवर्नर की स्थिति ऐसी थी कि वह कुछ स्थितियो में वास्तविक कार्यपालिका

के रूप मे कार्य करता था और कुछ स्थितियों में नाम मात्र की कार्यपालिका के रूप में।[17] इसी प्रकार से पन्निकर (केरलपुत्र) के अनुसार अधिनियम की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि उसके अनुसार गवर्नर की स्थिति को बड़ा उलझन पूर्ण बना दिया था।[18] जिस प्रकार के द्वैधतंत्र की स्थापना की गयी थी उसमें राज्यपाल की निजी भूमिका पर ही सब कुछ निर्भर करता था। उसकी सफलता और विफलता गवर्नर की भूमिक पर निर्भर थी। अप्पादराय के अनुसार इस व्यवस्था का संचालक और निर्देशक गवर्नर ही था। गवर्नर को विशिष्ट भूमिका अदा करने का पर्याप्त अवसर प्राप्त थे, उसकी स्थिति अत्यधिक जटिल थी किन्तु उसे महत्वपूर्ण भूमिका अदा करने के पर्याप्त अवसर प्राप्त थे। वही द्वैधतंत्र को नियंत्रित और निर्देशित करता, और उसी पर द्वैधतंत्र की सफलता या विफलता निर्भर करती थी।[19]

इस अधिनियम के अन्तर्गत गवर्नर को 4 प्रकार के कार्यों को करना था -

(I) वह सुरक्षित विषयों को अपने परिषद की सहायता से चलाने के लिये सीधे उत्तरदायी था; इस क्षेत्र में वह गवर्नर जनरल और गवर्नर जनरल के माध्यम से सीधे सेक्रेटरी आफ स्टेट को उत्तरदायी था।

(II) वह हस्तान्तरित विभागो के शासन के लिये भी उत्तरदायी था। वह इन विभागों का शासन मंत्रिपरिषद की सहायता से चलाता था।

(III) वह सुरक्षित और हस्तान्तरित विभागों के बीच समन्वय स्थापित करता था और कार्यपालिका के इन दोनों विभागों के बीच मतभेदो को दूर करता था।

(IV) जब हस्तान्तरित विभागो को चलाने की मशीनरी विफल हो जाती थी तो गवर्नर इन विभागों के प्रशासन को अपने हाथों में ले लेता था।

सुरक्षित विभाग गवर्नर अपने परिषद् (काउन्सिल) की सहायता से चलाता था। बंगाल, मद्रास, बम्बई प्रेसीडेंसियों मे इनकी संख्या 4 थी, अन्य 6 प्रान्तो में इनकी संख्या 3 थी। इनकी नियुक्ति राजमुकुट द्वारा की जाती थी। इन परिषदों की अध्यक्षता गवर्नर करता था, परिषद् मे मतभिन्नता होने पर मामला बहुमत से निर्णीत होता था। उसे निर्णायक (कांस्टिंग) मत देने का अधिकार था। निम्न मामलो मे उसे परिषद् के बहुमत को रद्द कर देने का अधिकार था जहाँ उसके मत मे किसी प्रान्त की शान्ति, सुरक्षा और हित को प्रतिकूल रूप से प्रभावित होने की आशंका हो। ऐसे अवसरो पर गवर्नर और अन्य सदस्यों के विरोधी विचारों का रेकार्ड किया जाता था।[20]

गवर्नर की नियुक्ति सम्राट (क्राउन) द्वारा गवर्नर जनरल के परामर्श से की जाती थी।[21] अपने परिषद के किसी सदस्य को उप अध्यक्ष नियुक्त कर सकता था।[22] लोक सेवाओं से सम्बन्धिच नियमो और सुविधाओं में संशोधन के लिये गवर्नर जनरल अधिकृत था, परन्तु उसे उस राज्य के गवर्नर की राय भी लेनी

पड़ती थी।[23] गवर्नर को नियुक्ति और अन्य क्षेत्रों में व्यापग अधिकार प्राप्त होने के कारण वह परिषद के अन्य सदस्यों की तुलना में अधिक शक्तिशाली था।

धारा 50 (2) मे आपात काल की स्थिति में राज्यपाल को व्यापक अधिकार प्रदान किये गये थे। जब प्रान्त की सुरक्षा, शान्ति और हितो पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की गुंजाइश हो तो राज्यपाल आपातकाल की स्थिति की घोषणा करके परिषद के बहुमत को अमान्य कर संकता था।

जायंट रिपोर्ट में मंत्रिपरिषद के बाहर के सदस्यों को भी गवर्नर द्वारा नियुक्त करने की सिफारिश की गई थी। किन्तु भारतीय जनमत ऐसी व्यवस्था का विरोधी था, उसने माँग की थी कि केवल जनता के प्रतिनिधियों को ही गवर्नर व्यवस्थापिका में मंत्री नियुक्त करे। ऐसी व्यवस्था की गयी थी कि मंत्रीगण गवर्नर के द्वारा नियुक्त किये जाये और वे गवर्नर की प्रसन्नता पर्यन्त अपने पदों पररहें। इन कार्यकारी परिषदों और मंत्रिपरिषदों की सहायता के लिये गवर्नर को अपने स्वविवेक में काउन्सिल सेक्रेटरियों की नियुक्ति का अधिकार था। ये अपने पद पर गवर्नर की प्रसन्नता पर्यन्त बने रहते थे।[24]

अधिनियम का आशय यह था कि मत्रीगण गवर्नर से सतत परामर्श करते रहें और उसके साथ बैठके लेते रहे। गवर्नरो को भी इसी परम्परा को आगे बढ़ाना था। गवर्नर को अधिनियम के इस उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए मंत्रिपरिषदों की बैठकों का सभापतित्व करना चाहिए। इन हस्तान्तरित विभागों के सारे आदेश गवर्नर के आदेश के रूप में जारी किये जाने चाहिए। भारतीय और अँग्रेज दोनों प्रकार के प्रतिनिधियों ने इस बात पर बल दिया कि मंत्रि विभाग सामूहिक उत्तरदायित्व के सिद्धान्तो का पालन करें। अँग्रेज प्रतिनिधियों सर विलियम मेयर्स और लियोनेल कर्टिस ने इस सामूहिक उत्तरदायित्व के तौर तरीकों के अपनाये जाने पर बहुत अधिक बल दिया। जायंट सलेक्ट कमेटी ने भी 1919 के बिल पर विचार करते हुए इन सुझावों को मान्य किया।

डॉ० अप्पादराय के अनुसार अधिनियम के निर्माताओं का यह मत था कि जो निर्देशक सिद्धान्त (Instruments of instructions) गवर्नरो को जारी किये गये थे उनका भी यही आशय था कि गवर्नर किसी मंत्री विशेष से नहीं वरन सम्पूर्ण मंत्रिपरिषद् को एक इकाई मानकर बातचीत करे। मंत्रियों का उत्तरदायित्व व्यक्तिगत नही किन्तु सामूहिक या संयुक्त (Collective or Corporate responsibility) सुधार समिति (Reforms Enquiry Committee) के सामने कुछ ऐसी शिकायतें की गई थी कि कई गवर्नर स्वयं संयुक्त उत्तरदायित्व के सिद्धान्त के खिलाफ थे और प्रत्येक मंत्री से अलग-अलग बात करना चाहते थे। एक गवर्नर ने यह विचार व्यक्त किया कि यदि इस सामूहिक उत्तरदायित्व के सिद्धान्त को हस्तान्तरित विभागों मे लागू किया जाय तो इससे बहुमत का निर्णय गवर्नर को मान्य करना होगा। एक दूसरे राज्यपाल ने प्रारम्भ से ही इस सिद्धान्त का विरोध किया और उन्हें इसकी आवश्यकता तभी महसूस हुई जब मंत्रियों ने गवर्नर का जबर्दस्त

विरोध आरम्भ कर दिया। एक अन्य गवर्नर ने इस अधिनियम के इन प्रावधानों का यह अर्थ लगाया कि प्रत्येक मंत्री अपने विभाग केलिये अलग से उत्तरदायी है और उसका दूसरे मंत्री से कोई सम्बन्ध नही है।[25]

उन दिनों संपूर्ण मंत्री परिषद् की बैठक विरले ही बुलायी जाती थी। बम्बई के गवर्नर ने केवल एक ही बैठक आमंत्रित की थी और उत्तरप्रदेश के गवर्नर ने कुछ बैठके आमंत्रित की थी।[26] इस सम्बन्ध में वास्तविक दोष भारत सरकार का था। भारत सरकार ने यह विचार व्यक्त किया था कि जो आदर्श नियम (माडेल रूल्स) भारत सरकार की ओर से गवर्नरों के बीच संचारित किये गये थे उनमें सामूहिक उत्तरदायित्व जैसे किसी नियम का उल्लेख नही था और गवर्नर इस सामूहिक उत्तरदायित्व के अनुसार आचरण करने या न करने के लिये स्वतंत्र थे। भारत सरकार को यह मत था कि राज्यपाल प्रत्येक मंत्री से अलग-अलग बातचीत करेगा न कि सामूहिक रूप से। एक प्रान्त में मंत्रियों ने यह प्रयास किया कि गवर्नर उनसे सामूहिक रूप से ही मिले किन्तु एक दूसरे प्रान्त में गवर्नरों ने नियमों को इस तरह तोड़ मरोड़कर लागू किया कि सामूहिक उत्तरदायित्व के सिद्धान्त को व्यवहार में लागू किया ही नही जा सका।

रिफाम्स इन्क्वायरी कमेटी ने यह सिफारिश की कार्यकारी बैठको की नियमें इस तरह से बनाई जाय कि मंत्रियों को राज्यपाल को सिफीरिश करने का अधिकार हो। इसके बाद ही मामला सम्पूर्ण मंत्रिपरिषद के सामने लाया जाये। किन्तु भारत सरकार ने यह निर्णय लिया कि स्टेचुटरी कमीशन ही इस पर कोई अन्तिम निर्णय ले सकती है और तब तक के लिये इस माममले पर कोई विचार न किया जाय।[27]

गवर्नर और मंत्रियों के बीच कैसा सम्बन्ध हो इस पर इस काल में खासा विवाद उत्पन्न हो चुका था। क्या धारा 52(1), (2), (3) गवर्नर को ब्रिटेन के राजा के सदृश्य सविधान प्रधान बना देते है - यह धारा हस्तांतरित विभागों से सम्बन्धित है। यदि ऐसा ही है तो मंत्री लोग हस्तान्तरित विभागों का शासन चलाने के लिये स्वतंत्र हैं और गवर्नरों का इस क्षेत्र में हस्तक्षेप का कोई अधिकार नही है। मंत्री इन विभागों में स्वविवेक से कार्य करेंगे (In their individual judgement) और वे केवल व्यवस्थापिका (लेजिस्लेटिव काउन्सिल) के ही उत्तरदायी रहेंगे।[28]

इसके विपरीत यदि गवर्नर को इन हस्तान्तरित विभागों में मात्र संविधानिक प्रधान का दर्जा प्रदान करना नहीं है, तो मंत्री गवर्नर के मात्र सलाहकार बनकर रह जायेंगे। वास्तव में यही स्थिति थी। अधिनियम ने मंत्रियों को गवर्नर का मात्र सलाहकार बनाकर रख दिया था। मंत्री जो सलाह देते थे उसको मानने या न मानने के लिये गवर्नर स्वतंत्र था। मंत्री एक जुट होकर गवर्नर के सामने कोई बात नही रख सकते थे। दूसरी ओर गवर्नर के काउन्सिलर्स (परिषद) के सदस्य बेहतर स्थिति मे थे। काउन्सिल में बहुमत से किसी बात का निर्णय होता था, और गवर्नर को आपात स्थितियो को छोड़कर इन काउन्सिलर्स के निर्णय को वीटो करने का अधिकार नहीं था। काउन्सिलर्स को गवर्नर जब चाहे तब पद से नही हटा सकता था, वे 4 वर्षों तक अपने पद पर बने

रहते थे किन्तु मंत्रियो को गवर्नर जब चाहे तब हटा सकता था, वे उसकी प्रसन्नता पर्यन्त पद पर बने रहते थे।[29] काउन्सिलर काउन्सिल के बहुमत के विरुद्ध अपना विरोध दर्ज कर सकता था किन्तु मंत्री गवर्नर के विरुद्ध कोई मत दर्ज नहीं कर सकते थे। काउनसिलर्स कोई निर्णय बहुमत में करते थे। किन्तु गवर्नर प्रत्येक मंत्री के साथ अलग-अलग बैठकर निर्णय करता था, मंत्रियो की कोई सामूहिक बैठक नहीं होती थी। वे सामूहिक रूप से गवर्नर के विरूद्ध कोई निर्णय नही ले सकते थे। संक्षेप में गवर्नर मंत्रियों से अलग मिलता था और मंत्रिमंडल की सामूहिक बैठक बुलाने का उसका कोई दायित्व नही था।[30]

यही विचार माण्टेस्क्यू चैम्सफोर्ड रिपोर्ट के लेखकों द्वारा पेश किया गया था।[31] उन्होंने कहा कि चूँकि गवर्नर ही अंतिम रूप में प्रान्तीय शासन के लिये उत्तरदायी होगा, अतएव यह गवर्नर पर ही निर्भर करेगा कि वह इन मंत्रियों के परामर्श को स्वीकार करे या न करे। चूँकि गवर्नर को ही शासन चलाना है अतएव अंतिम निर्णय की शक्ति गवर्नर मे निहित होनी चाहिए। जायंट सिलेक्ट कमेटी ने कहा कि वह यह चाहती है कि गवर्नर हस्तान्तरित मामलों में मंत्रियो के परामर्श को स्वीकार करे और उनके परामर्शों पर कम से कम वीटो करे, साथ ही मंत्रियों को गवर्नर के परामर्शों का मानना चाहिए क्योकि गवर्नर एक अनुभवी प्रशासक होता है। रिपोर्ट में कहा गया कि गवर्नर को मंत्रियों के परामर्शों के प्रति आदर व्यक्त करना चाहिए, उसे मंत्रियों को उनके निर्णयों और परामर्शों की जिम्मेवारी लेने देना चाहिए। बाद में भले ही गवर्नर को मंत्री की राय को उचित आधार पर वीटो करने का अधिकार है।[32]

इन सब बातों का निर्देश पत्र (Instrument of Instruction) मे समाहित किया गया था। मंत्री के परामर्श पर विचार करते हुए गवर्नर को यह देखना चाहिए की मत्री का व्यवस्थापिका में क्या स्थान है और जनता की इच्छाओं का वह कहॉ तक प्रतिनिधित्व कर रहा है। द्वैधतंत्र एक प्रशिक्षण केन्द्र था जहॉ मंत्रियों को उत्तरदायी शासन में प्रशिक्षण प्राप्त करना था और मंत्रियों को इस बात का प्रशिक्षण मिलना चाहिए कि वे व्यवस्थापिका में उत्तरदायी ढंग से कार्य करें।[33] मंत्री लोग अपने क्षेत्र मे नये थे। उनको इस क्षेत्र में बहुत कुछ सीखना था।

राज्यपाल को दो वर्गों के हितों का संरक्षण करना था - (i) लोक सेवक (ii) अल्प संख्यक वर्ग और विविध हित - धर्म, जाति, धन, सामाजिक स्थिति के आधार पर विविध हितों के लोगों का संरक्षण।[34] ब्रिटेन की हाउस आफ कामन्स में इस विषय पर जो वाद-विवाद हुआ था उसमे कहा गया कि गवर्नर को ये सब हितों के संरक्षण के अधिकार और कार्य नही मिलना चाहिए। यदि द्वैधतंत्र को उत्तरदायी शासन का एक प्रशिक्षण स्थल बनाना था तो फिर गवर्नर को इतने व्यापक अधिकार देने का कोई अर्थ नही है; गवर्नर के इन व्यापक अधिकारों के चलते मंत्री लोग कभी भी उत्तरदायी ढंग से कार्य नहीं करेंगे। सदस्यों ने यह विचार व्यक्त किया कि गवर्नर को इन हस्तान्तरित विभागों से दूर रहना चाहिये और इन विभागों के मंत्रियों को अपने-अपने विभागों की पूर्ण जिम्मेदारी सौंपी जानी चाहिए। ये मंत्री गलती करेंगे किन्तु गलती करते हुए भी सीखेंगे। इसलिये

गवर्नर के नियंत्रण से मंत्रियों को पूर्ण स्वतंत्रता दे देनी चाहिए जिससे वे प्रारम्भ से ही स्वायत्त शासन का पाठ पढ़ना आरम्भ करे।

जब पहले पहल आदेश पत्र या नीति के निर्देशक तत्वों (Instruments of Instructions) को जारी किया गया तो इनको जारी करने का यह आशय था कि वे ब्रिटेन के अलिखित रीति रिवाजों, प्रथाओं, परम्पराओं का स्थान ले लेगे। ब्रिटेन में इन रीति-रिवाजों, प्रथाओं, परम्पराओं (Usages, Customs Conventions) ने राजमुकुट और राजाओं के पूर्वकालिक अधिकारों और शक्तियों को पूर्णतया प्रभावित किया है। आज राज्य के पास कोई व्यक्तिगत संविधानिक शक्तियॉ नही हैं। सभी अधिकार या शक्तियॉ मंत्रियो और पार्लियामेंट को हस्तान्तरित हो चुकी है। अतएव भारत में द्वैधतंत्र के अन्तर्गत गवर्नरों को भी राजमुकुट के समान अपनी स्थिति समझ मंत्रियों को हस्तान्तरित विषयों में स्वतंत्रता पूर्वक शासन चलाने देना चाहिए और तभी वे प्रशासन में प्रशिक्षण प्राप्त कर सकेंगे। यदि गवर्नर उनके क्षेत्र में हस्तक्षेप करे, उनको आदेश दे कि वे ऐसा कार्य करें या ऐसा कार्य न करें तो फिर मंत्री प्रशासन चलाना कैसे सीखेगे।[35]

"इंस्ट्रूमेंट आफ इन्सट्रक्शनस" गवर्नर को स्वयं मे कोई अधिकार या शक्तियॉ प्रदान नही करते। ये गवर्नर को दिशा निर्देश देने के लिये है, ये गवर्नर के दायित्व या कर्त्तव्य निश्चित करते है। इन नीति के निर्देशक तत्वों के आधार पर गवर्नर को बाध्य करने के लिये कोई मामला दायर नही किया जा सकता। राजमुकुट (ब्रिटिश सरकार) को ही यह शक्ति प्राप्त है कि वह देखे कि इन इन्स्ट्रूमेन्ट्स का उल्लंघन न हो, और यदि इनका पालन नहीं हो रहा है तो राजमुकुट गवर्नर को समुचित आदेश निर्देश दे सकता है। ये इंस्ट्रूमेंटस "आदेशात्मक" (Mandatory) हैं। राजमुकुट (ब्रिटिश सरकार) को यह देखना है कि प्रान्तो का प्रशासन कुछ विशेष उद्देश्यों, लक्ष्यों, आदर्शों को प्राप्त करने की दिशा में चलाया जाय। यदि गवर्नर इनकी अवहेलना करे तो राजमुकुट उसे पद से हटा सकती है।[36]

यदि मंत्री का व्यवस्थापिका में बहुमत है तो वह गवर्नर के आदेशो की अवहेलना कर सकता था और इसके लिये उसे व्यवस्थापिका का पूर्ण समर्थन प्राप्त होता। ऐसे मत्री के निर्णयो और परामर्शों को अमान्य करना गवर्नर के लिये अत्यधिक कठिन होता। जब तक गवर्नर के पास कोई मजबूत आधार न हो तब तक ऐसे मंत्री के निर्णयों और परामर्शों की अवहेलना नही कर सकता था। मंत्री यदि गवर्नर से विरोध होने के कारण पद सेइस्तीफा देता है, भले ही उसका व्यवस्थापिका में बहुमत न हो, एक अत्यधिक गम्भीर बात होती। और कोई गवर्नर विरले ही ऐसी स्थिति उत्पन्न होने देना चाहेगा। श्री चितामणि मद्रास के मंत्री कहते है कि वे अपने स्तीफे की धमकी देकर गवर्नर से बहुत सी बातें मनवा लेते थे।[37]

द्वैधतंत्र का व्यावहारिक पहलू सैद्धान्तिक पहलू से भिन्न था। गवर्नर तानाशाही और निरंकुश प्रवृत्ति वाले थे। वे मंत्रियों को नीतिगत निर्णय लेने देते थे, किन्तु जब मंत्री इन नीतियों को क्रियान्वित करते थे तो

उनके मार्ग में गवर्नर तरह-तरह की बाधाएँ अड़चनें पेश करते थे। बदनामी मंत्री की होती थी कि इतनी लम्बी चौड़ी घोषणाएँ करके भी वे उनको क्रियान्वित नही कर रहे है। गवर्नरों से मंत्री उतनी आसानी से नहीं मिल पाते थे किन्तु नौकरशाह सचिव, अधिकारी आदि आसानी से मिल पाते थे। अधिकारियों और कर्मचारियों के तबादले करने का एकाधिकार गवर्नर को प्राप्त था। अन्य कई मामलो में जैसे सम्मान पदवियॉ, वितरित करने मे मंत्रियो को गवर्नर विश्वास में नही लेते थे और स्वयं इन कार्यों को करते थे।[38]

इतना होते हुए भी मंत्रियों और गवर्नर के सम्बन्ध अच्छे थे। इसका प्रमुख कारण यह था कि ये मंत्री गवर्नर के कहे अनुसार चलते थे और गवर्नर का कोई विरोध नही करते थे।[39]

इस सम्बन्ध में गवर्नरों और मंत्रियों ने विरोधी विचार व्यक्त किये। मंत्रियों को कहना था कि हमारा कार्य अत्यधिक कठिन था और गवर्नर से हम अक्सर उलझा करते थे। अंत मे गवर्नर को हमारी राय माननी पड़ती थी। गवर्नर का कहना था कि सत परामर्श देते थे किन्तु मंत्री अति उत्साह से भरे होने के कारण उनके उपदेशों की अवहेलना किया करते थे। एक गवर्नर "सर जान केर" ने कहा कि लोगों को अधिक जानकारी देने के लिये बेहतर यह होता कि वे आकर मुझसे इस सम्बन्ध मे विविध फाइलों को देख ले तभी उनकी गलत फहमी दूर होगी।

दूसरी ओर यह भी ठीक है कि गवर्नर अच्छे काम का श्रेय तो खुद ले लेते थे, वे "वाहवाही" लूटा करते थे किन्तु बुरे कामकी जिम्मेवारी मंत्री को उठानी पड़ती थी।[40]

गवर्नर और मंत्री विचार विमर्श के बाद ही कोई निर्णय लेते थे। किन्तु गवर्नर मंत्री की राय को बदल देता था। नगरपालिकाओं, डिस्ट्रिक्ट काउन्सिल (जिला पंचायत) जैसे छोटे-छोटे मामलों में भी गवर्नर हस्तक्षेप किया करते थे। वैसे गवर्नर अधिक अनुभवी और सम्मानित होने के कारण गलत निर्णयों का भी सही क्रियान्वयन करा लेते थे। इसलिये मंत्री भी गवर्नर से ज्यादा नही उलझते थे और जैसा गवर्नर कहता था उसे मान लेते थे।[41]

प्रोफेसर अप्पादराय के अनुसार निम्न कारणों से मंत्रियो की तुलना मे गवर्नर की स्थिति मजबूत हो जाती थी -

(i) 1919 के अधिनियम का यह आशय नहीं था कि गवर्नर एक नाममात्र की कार्यपालिका हो; अधिनियम का यह आशय नहीं था कि गवर्नर एक नाममात्र की कार्यपालिका हो अधिनियम ने उसे बहुत ही व्यापक शक्तियाँ दी थी।

(ii) इन्स्ट्रूमेंट आफ इन्स्ट्रक्शनस ने गवर्नर को व्यापक अधिकार प्रदान किये थे।

(iii) गवर्नरों को मंत्रियों से सम्बन्ध स्थापित करने के लिये बड़े व्यापक अधिकार दिये गये थे और गवर्नरों ने इन अधिकारों का बहुत अधिक उपयोग करते हुए अपने को मंत्रियों की तुलना में बहुत अधिक शक्तिशाली बना लिया। किसी आदेश को जारी करने के पूर्व मत्रियों को सारे कागजात गवर्नर के सामने पेश करने होते थे। इस प्रकार बिना गवर्नर की सहमति के मंत्री कोई महत्वपूर्ण निर्णय नहीं ले सकते थे। ये मामले इतने अधिक थे कि गवर्नर सम्पूर्ण प्रान्तीय प्रशासन पर हावी हो जाता था।

(iv) गवर्नर इंस्ट्रूमेंट आफ इंस्ट्रक्शन्स का फायदा उठाकर प्रत्येक विभाग के सचिवों को सीधे बुलाना आरम्भ कर दिया। अन्तर्विभागीय मामलों का निपटारा गवर्नर ही करता था और मंत्रियों को केवल परामर्श देने का अधिकार था। जहाँ मंत्रियों और काउन्सिलर्स में मतभेद उत्पन्न होता था वहॉ मामले का निपटारा गवर्नर ही करता था। सुरक्षित और हस्तान्तरित विषयों में विभाजन के लिये नियम (Devolution Rules) बने हुए थे। ये नियम इस प्रकार के बने थे कि सुरक्षित और हस्तान्तरित विभाग एक दूसरे के क्षेत्राधिकार में प्रवेश करने लगते थे। इनसे जो विवाद उपत्पन्न होता था उसका निपटारा गवर्नर करता था। अप्पादराय ने इस प्रकार की विचित्र स्थिति का उल्लेख किया है जिससे मंत्रियों की स्थिति दयनीय हो जाती थी और वे कुछ नहीं कर सकते थे उद्योगों के प्रभारी मंत्री को कारखानों और बिजली विभाग नही दिये गये थे, कृषि मंत्री को सिंचाई विभाग नही दिया गया था, विकास विभाग के मंत्री को वन विभाग नही दिया गया था। मंत्री की इससे बड़ी विचित्र और उलझनपूर्ण स्थिति हो जाती थी, और गवर्नर ही उसे इस स्थिति से उबारता था।

(v) इंडियन सिविल सर्विस के अधिकारियों को हस्तान्तरित विभागों से सम्बन्धित कुछ दायित्व सौपे गये थे। एक आबकारी मामले में एक जिलाधिकारी ने अपील सुनने से इंकार कर दिया काउन्सिल के सदस्य ने मंत्री का विरोध करते हुए जिलाधिकारी का समर्थन किया। अंत में गवर्नर को इस मामले में हस्तक्षेप करके मंत्री का समर्थन करना पड़ा।

(vi) भारत सचिव (सेक्रेटरी आफ स्टेट) गवर्नर जनरल के आदेश संदेश आदि गवर्नर के माध्यम से ही मंत्रियों तक पहुँचते थे।

(viii) गवर्नर वास्तविक कार्यपालिका था। किन्तु प्रान्तीय व्यवस्थापिका में गवर्नर से प्रश्न नही पूछे जा सकते और न गवर्नर की आलोचना ही की जा सकती थी।

(viii) अल्पसंख्यक वर्गों के हितों की रक्षा के लिये गवर्नर किसी भी हस्तान्तरित विभाग पर अपना नियंत्रण स्थापित कर सकता था।

(ix) स्वयं मंत्री अपनी कारगुजारियों से अपनी स्थिति हीन बना लेते थे और वे कई अवसरो पर गवर्नर की चापलूसी करने लगते थे। जब यह अधिनियम लागू किया गया तो मंत्री लोग अधिकारियो और कर्मचारियों के दैनन्दिन मामलो में हस्तक्षेप किया करते थे। कलेक्टर कमिश्नर के छोटे-मोटे आदेशों में भी मंत्री हस्तक्षेप किया करते थे। इसलिये गवर्नर को अल्पसंख्यकों और लोकसेवको के हितों की रक्षा

के लिये इन मामलों में हस्तक्षेप करना पड़ता था। उसे कई बार भ्रष्टाचार बंद करने के लिये भी हस्तक्षेप करना पड़ता था।

(x) मंत्री लोगों ने एक साथ कार्य करने और अपनी शक्ति को एकत्रित करने का प्रयास नहीं किया। इस तरह सामूहिक उत्तरदायित्व के सिद्धान्त का विकास नही हो सका। मंत्रियों को अधिकांश अवसरों पर व्यवस्थापिका में कोई समर्थन नहीं मिल सका।

(xi) मंत्री अपने पद पर ऐन-केन प्रकारेण बने रहना चाहते थे और उस पद पर बने रहकर आर्थिक और अन्य लाभों को प्राप्त करना चाहते थे। रिफार्म्स इन्क्वायरी कमेटी के सामने मद्रास व्यवस्थापिका के एक सदस्य ने इसी आशय का साक्ष्य दिया था। वे गवर्नर, काउन्सिलर और सचिवों द्वारा अपमानित किये जाने पर भी अपने पद पर बने रहना चाहते थे।[42]

(xii) कई मंत्रियों को गवर्नर अपने काउन्सिल में नियुक्त कर लिया करता था। मंत्री काउन्सिलर के स्थायी और लाभदायक पद की आकांक्षा भी रखते थे और इस प्रकार वे अपनी स्वतंत्रता खोकर गवर्नर के दास बन जाया करते थे। गवर्नर की स्थिति मजबूत हो जाया करती थी।

(xiii) कुछ प्रान्तों में स्वराज्य पार्टी ने जो अड़ंगेबाजी की नीति अपनायी उसके चलते मंत्रियों ने गवर्नरों से सहायता माँगी और गवर्नर का समर्थन करके ही मंत्रीगण व्यवस्थापिका के सरकारी सदस्यों और कई गैर सरकारी सदस्यों का समर्थन प्राप्त कर सकते थे।

(xiv) अंत में लोकसेवाएँ गवर्नक के नियंत्रण में थी। बिना गवर्नर की स्वीकृति के किसी अधिकारी या कर्मचारी के वेतन या सेवा सम्बन्धी शर्तों और सुविधाओं में कटौती नही की जा सकती थी। इन अधिकारियों के द्वारा जारी किये गये आदेशों में मंत्री तभी संशोधन करवा सकता था जब गवर्नर इसकी अनुमति दे। किसी सचिव या अधिकारी के आदेश को निरस्त करने के पूर्व गवर्नर मंत्री और इन अधिकारियों को सारे कागजात पेश करने के लिये कहता था।

केरलपुत्र (के० एम० पन्निकर) के अनुसार 1919 के अधिनियम का यह आशय था कि गवर्नर संविधानिक प्रधान के रूप में कार्य करे। किन्तु कुछ वर्षों के भीतर ही गवर्नरों ने सारे अधिकार हथिया लिये और वे निरंकुश तानाशाह बन गये। केरल पुत्र के अनुसार गवर्नर निम्न कारणों से मंत्रियों की तुलना में सर्वोच्च स्थान पर स्थित थे।[43]

(i) अधिनियम की धारा 49 (2) के अनुसार गवर्नर को ठीक से शासन चलाने के लिये नियम बनाने और आदेश जारी करने के अधिकार दिये गये थे।

(ii) गवर्नर मंत्रियों को व्यक्तिगत रूप से बुलाकर परामर्श लेते थे और अधिकांश अवसरों पर उनके परामर्शों को अमान्य कर देते ते। किन्तु अधिनियम यह कहता है कि गवर्नर को हस्तान्तरित मामलों में मंत्रियों के परामर्शों के अनुसार चलना चाहिए। मंत्री से बहुत अधिक मौलिक मतभेद होने पर ही वह इनके परामर्शों को अमान्य कर सकता था। श्री चितामणि, जो उत्तरप्रदेश के प्रथम शिक्षा मंत्री थे, ने "मड्डीमैन

समिति" के सामने साक्ष्य देते हुए कहा था कि एक पुस्तकालय समिति मे वे किसी व्यक्ति को नियुक्त करना चाहते थे किन्तु गवर्नर ने इस बहुत छोटी सी बात को भी अमान्य कर दिया।

(iii) कई गवर्नरों ने यह विचार व्यक्त किया कि मंत्री तो उनके परामर्शदाता मात्र हैं।

(iv) गवर्नरों को जो निर्देश पत्र जारी किये गये थे उसमें उनको नौकरशाहों के हितों की रक्षा के लिये समुचित कदम उठाने के निर्देश दिये गेये थे।

(v) यदि सुरक्षित और हस्तान्तिरत विभागों में किसी प्रकार का विवाद होता है, तो इस विवाद को अंतिम रूप में सुलझाने का अधिकार गवर्नर का होगा। गवर्नर को काउन्सिल के सदस्यों और मंत्रियों की एक संयुक्त बैठक बुलानी थी। इमसें गवर्नर को इनके बीच विवाद के हल के लिये व्यक्तिगत रुचि नहीं लेनी चाहिए थी और विवाद के हल के लिये प्रमुख भूमिका अदा करनी थी। मामले का हल वाद विवाद के द्वारा होना था। मतदान के द्वारा मामले का हल नही किया जा सकता था। यदि इस विचार विमर्श और वैद विवाद के बाद भी मामले का हूल नही होता तो गवर्नर ही अंतिम निर्णय करता था और उसके निर्णय को चुनौती नही दी जा सकती थी।

यदि गवर्नर को सुरक्षित विभाग से सम्बन्धित कोई निर्णय लेना होता तो उसे काउन्सिल की सहमति लेनी होती थी। यदि ऐसा मामला अत्यधिक महत्व का होता तो उसे काउन्सिल के बहुमत को निरस्त कर निर्णय लेने का अधिकार होता था। यदि मामला हस्तान्तरित विभाग से सम्बन्धित होता तो गवर्नर को मंत्री को निर्णय को मानने का आदेश देना होता था। यदि मंत्री गवर्नर के आदेश को मानने से इंकार करता तो उसे पद से इस्तीफा देना होता था और गवर्नर उसकी जगह दूसरे मंत्री को नियुक्त करता।

कोई विषय सुरक्षित है या हस्तान्तरित इस पर यदि विवाद होता तो गवर्नर सुरक्षित और हस्तान्तरित सभी विभागों की बैठक बुलाता । इस प्रकार ऐसे विवादास्पद मामलो का निर्णय सम्पूर्ण शासन-सुरक्षित और हस्तान्तरित विभगों की बैठक में तय किया जाता था। गवर्नर को निर्देश पत्र में यह आदेश किया गया था कि सामान्यता वह सुरक्षित और हस्तान्तरित विभागों के सामूहिक बैठकों की परम्परा स्थापित करे। ऐसी बैठकों में काउन्सिल के सदस्य अपने दीर्घकालिक प्रशासनिक अनुभवों का लाभ मंत्रियों को प्रदान कर सकें और मंत्री जनता की इच्छाओं को गवर्नर और काउन्सिलर्स के समाने पेश कर सकें।[44] विकेन्द्रीकरण के नियमों (Devolution Rules) के अनुसार कि शासन के सारे महत्वपूर्ण मामले विशेषकर राजस्व सम्बन्धी मामले सुरक्षित और हस्तान्तरित विभागों की सम्मिलित बैठकों में रखी जाय। इसी प्रकार सुरक्षित और हस्तान्तरित विभागों के बीच राजस्व का बंटवारा किस प्रकार से हो इसका निर्णय सभी विभागों की संयुक्त बैठक में होना चाहिए।

गवर्नरों ने लगभग सभी महत्वपूर्ण विषयों मे संयुक्त बैठक बुलाकर निर्णय करने का प्रयत्न किया। मध्यप्रदेश, आसाम, पंजाब, बम्बई आदि प्रान्तो में सम्पूर्ण सरकार की संयुक्त बैठकों में मामलों का निर्णय किया

जाता था। कार्यकारी परिषद् की पृथक बैठके बहुत कम होती थी। मद्रास, बंगाल, उत्तरप्रदेश, बिहार में द्वैधतंत्र की व्यवस्था का अनुसरण करते हुए शासन के दोनो अंगों की अलग-अलग बैठकें हुई।

नियम के अनुसार राजस्व का बंटवारा शासन के दोनों अंग मिलकर करेगें। विवाद होने पर गवर्नर का निर्णय अंतिम माना जाता था।वित्त प्रभारी सदस्य सभी वित्तीय मामलों को एकीकृत ढंग से रखकर उन पर विचार करते थे। इस अवसर पर वे निम्न बातों पर विचार करते थे- क्या कोई आय व्यय का प्रस्ताव शासन की नीति के अनुकूल है, क्या वैकल्पिक योजनाएँ सम्भव है, और क्या प्रान्त के उपलब्ध संसाधनों का और अधिक अच्छे ढंग से उपयोग नही हो सकता । मंत्री लोगों में भारी असंतोष फैला हुआ था क्योंकि वे अपने विभागों के लिये जितनी राशि चाहते थे उतनी उनको नही मिल पाती थी गवर्नर तभी उनकी सुनते थे जब मंत्री पदत्याग की धमकी देते थे। वित्त विभाग सुरक्षित विभाग था और वित्त सदस्य हस्तान्तरित विभागों के मंत्रियों से सौतेला व्यवहार करता था। इसी बात को मंत्रियों ने रिफार्म्स इन्कायरी कमेटी के सामने रखा था।

द्वैधतंत्र के अंतर्गत गवर्नरों को व्यापक विधायी अधिकार दिये गये थे। 1919 के अधिनियम में संसदीय प्रणाली को बड़े सीमित ढंग से लागू किया गया था। केरल पुत्र के अनुसार व्यवस्थापिका का नेता सुरक्षित विभाग का सदस्य होता था। अतएव प्रान्तीय व्यवस्थापिका मे उसके विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव पास नहीं किया जाता था। गवर्नर काउन्सिल के किसी सदस्य को,नकि मंत्री को, जानबूझकर व्यवस्थापिका के नेता पद पर नियुक्त करते थे जिससे गवर्नर की व्यवस्थापिका पर पकड़ बनी रहे । इससे द्वैधतंत्र उत्तरादीय शासन के विकास मे बाधक ही बना रहा। मंत्री के विरुद्ध व्यवस्थापिका अविश्वास का प्रस्ताव पास कर सकती थी, किन्तु मंत्री को कोई अधिकार नहीं थे।[45]

इस अधिनियम के एक अनुच्छेद में कहा गया है कि गवर्नर को प्रान्तीय व्यवस्थापिका को सम्बोधित करने का अधिकार (Right to address) था। इस अधिकार के तहत वह व्यवस्थापिका की बैठक आमंत्रित कर सकता था। मध्यप्रदेश (Central Provinces = C P) और आसाम के गवर्नर को व्यवस्थापिका में कुछ सदस्य मनोनीत करने के अधिकार दिये गये थे। गवर्नर को व्यवस्थापिका को भंग करने का अधिकार दिया गया था - वह व्यवस्थापिका को उसकी अवधि 3 वर्ष के पहले भंग कर सकता था, या वह व्यवस्थापिका की अवधि को 3 वर्ष के बाद और 1 वर्ष के लिये बढ़ा सकता था। गवर्नर को व्यवस्थापिका की बैठक आमंत्रित करने के लिये तिथि निर्धारित करते समय यह ध्यान रखना पड़ता था कि दो बैठकों के बीच 6 माह से अधिक का अंतराल न हो। यदि सक्रेटरी आफ स्टेट (भारत सचिव) अनुमति देता तो यह अतंराल 9 महीने तक बढ़ाया जा सकता था। इन बातों का ध्यान रखते हुए गवर्नर व्यवस्थापिका की बैठकों की तिथि और स्थान का निर्धारण अपनी इच्छा से कर सकता था। वह एक अधिसूचना के द्वारा व्यवस्थापिका की बैठक स्थगित कर सकता था।[46]

प्रथम बार व्यवस्थापिका का अध्यक्ष गवर्नर द्वारा नियुक्त किया जाना था इसके बाद व्यवस्थापिका को अपने अध्यक्ष का निर्वाचन करना था। इसमें गवर्नर की सहमति लेना अनिवार्य था।[47] गवर्नर की अनुमति के बिना व्यवस्थापिका में वित्तीय प्रस्ताव पेश नहीं किये जा सकते थे।[48]

गवर्नर को विधेयकों पर अपनी स्वीकृति देने का अधिकार था (Rigght to assent to bills), वह विधेयकों पर अपनी स्वीकृति को रोक सकता था (Right to withhold assent) । यदि गवर्नर विधेयक परअपनी स्वीकृति रोक लेता तो वह विधेयक विधि नहीं बन सकता था।[49]

जब गवर्नर किसी विधेयक पर अपनी स्वीकृति देता था तो ऐसा विधेयक गवर्नर जनरल को भेज दिया जाता था। गवर्नर जनरल यदि अपनी स्वीकृति दे देता तो ऐसा विधेयक विधि बन जाता था। किन्तु वह ऐसे विधेयकों को अस्वीकृत भी कर सकता था और ऐसा करने के लिये वह गवर्नर को कारण बतला देता था।[50]

गवर्नर विधेयकों को व्यवस्थापिका को वापस कर सकता था (Return bills to the legislature) वह विधेयकों को सम्पूर्ण या आंशिक रूप में वापस कर सकता था।[51] गवर्नर जनरल को प्रान्तीय विधेयकों को स्वीकृत करने, अस्वीकृत करने या उनमें संशोधन करने का सुझाव देने का अधिकार था।[52]

भारत सरकार अधिनियम - 1935 प्रान्तीय स्वराज्य (Government of India Act 1935 Provincial Autonoy)

भारत में प्रान्तों में द्वैधतंत्र पूरी तरह विफल रहा। भारतीय राष्ट्रीय कॉग्रेस ने पूर्ण स्वराज्य की माँग की। यदि अँग्रेज इसे नहीं देना चाहें तो भारत को "औपनिवेशिक स्वराज्य" (Dominion Status) प्रदान किया जाय। इन सब पर विचार करने के लिये तीन गोल मेज सम्मेलन (Round Table Conferences) हुए और 1934 में ब्रिटिश सरकार ने एक श्वेत पत्र (White Paper) प्रकाशित किया। राष्ट्रीय कॉग्रेस, मुस्लिम लीग और अन्य दलों के निरंतर पड़ते दबावो के संदर्भ में ब्रिटिश सरकारने 1935 का अधिनियम पारित किया। इस अधिनियम के द्वारा द्वैधतंत्र को समाप्त कर दिया गया और उसके स्थान पर प्रान्तों में प्रान्तीय स्वराज्य की स्थापना की गई।

गवर्नरों की नियुक्ति अब ब्रिटिश राजमुकट द्वारा की जानी थी।[53] 1935 के अधिनियम के तृतीय सूची में गवर्नरों के वेतन, भत्ते का उल्लेख था जिससे कि गवर्नर अपने पद के कर्त्तव्यों को सम्मान जनक ढंग से पूरा कर सके।[54] मद्रास, बम्बई और बंगाल के गवर्नरो को सबसे अधिक वेतन और भत्ता मिलता था ($5\frac{1}{2}$ लाख रु० वार्षिक) और मध्यप्रदेश, सिध, उड़ीसा और उत्तर पश्चिमी सीमाप्रान्त के गवर्नरों को 1 लाख रु० वार्षिक वेतन और भत्ता मिलता था।[55]

इन गवर्नरों को 5 वर्षों के लिये नियुक्त किया जाता था। इनको अपने सम्पूर्ण कार्यकाल मे 4 महीने की छुट्टी मिलती थी। इन गवर्नरों को राजमुकुट भारत सचिव के परामर्श से नियुक्त करता था। इन गवर्नरों को दो वर्गों के व्यक्तियों से नियुक्त किया जाता था -

(1) ब्रिटेन के सार्वजनिक जीवन मे कार्य वाले लोगों से।

(2) भारतीय सिविल सर्विस से ।

ब्रिटेन के सम्भ्रान्त जनों और संसद के सेवानिवृत्त राजनीतिज्ञों का सामान्यतया इन पदों पर नियुक्त किया जाता था। बंगाल, बम्बई और मद्रास के प्रेसिडेंसियों में ब्रिटेन से गवर्नरों की नियुक्त की जाती थी। शेष प्रान्तों में भारतीय सिविल सेवा के तपे हुए अनुभवी लोगों को इन पदो पर नियुक्त किया जाता था। भारतीय सेना के चोटी के अधिकारियों को भी इन पदों पर नियुक्त किया जाता था। किन्तु भारत में जन साधारण में यह धारणा बन चुकी थी कि गवर्नर के पद पर ऐसे व्यक्ति आसीन थे जिनका इस देश से कोई लगाव नहीं था, वे विदेशी थे, या उनका झुकाव भारत के प्रति न होकर ब्रिटेन के प्रति था।[56]

1935 के अधिनियम में प्रान्तों पर ब्रिटिश पार्लियामेंट और केबिनेट के नियंत्रण को लगभग हटा लिया गया था। जायंट सलेक्ट कमेटी रिपोर्ट में भी केन्द्र सरकार के प्रान्तीय शासन पर नियंत्रण के अधिकार को बहुत कम कर दिया गया था। यह आशा व्यक्त की गयी थी। इसका यह आशय था कि प्रान्तीय मंत्रिमंडल और व्यवस्थापिकाएँ अपने क्षेत्र म्में स्वायत्त होकर कार्य करें और उन पर ब्रिटिश सरकार और केन्द्रीय सरकार का नियंत्रण न्यूनतम रखा जाय। प्रान्तों पर सेक्रेटरी आफ स्टेट और गवर्नर जनरल के नियंत्रण को न्यूनतम कर दिया गया था। फिर भी गवर्नर के गवर्नर जनरल और सेक्रेटरी आफ स्टेट के प्रति व्यक्तिगत उत्तरदायित्व पूर्ववत् बने रहे। इन दोनों पदाधिकारियों के माध्यम से गवर्नर ब्रिटिश सरकार और पार्लियामेन्ट को पूर्ववत उत्तरदायी रहा। ऐसा इसलिये जरूरी सोचा गया कि भारत मे औपनिवेशिक स्वराज्य या डोमिनियन स्टेटस की स्थापना नहीं की गई थी। डोमिनियनों मे (केनाडा, आस्ट्रेलिया, दक्षिण आफ्रिका) पूर्ण उत्तरदायी शासन की स्थापना की गई थी और गवर्नरों को उन राज्यो के प्रधान मंत्रियो के परामर्श से ब्रिटिश राजमुकुट द्वारा नियुक्त किया जाता था। भारत में प्रान्तों के गवर्नरों को राजमुकुट भारत सचिव के परामर्श से नियुक्त करता था।

श्री शाह ने कहा कि अधिनियम की यह आशा थी कि गवर्नरों को प्रान्तीय राजनीति और प्रान्त के सामाजिक जीवन में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करना था। गवर्नर की संविधानिक स्थिति का उल्लेख 1935 के अधिनियम की दो धाराओं के अंतर्गत किया गया है- 49 and 50

गवर्नर की शक्तियाँ दो प्रकार की हैं - गवर्नर जब वह अपने "स्वविवेक" से कार्य करता है (Governor acting in his discretion) और जब गवर्नर अपने "व्यक्तिगत निर्णय" से कार्य करता है (Governer acting in his individual Judgment) । जब गवर्नर अपने स्वविवेक से कार्य करता है तो उसके लिये

यह जरूरी नही है कि वह अपने मंत्रिपरिषद से परामर्श ले ही, वह परामर्श ले भी सकता है और नही भी ले सकता। गवर्नरों के लिये यह ऐच्छिक था कि वे अपने मंत्रिपरिषद से परामर्श ले या न ले। यदि वे मंत्रियों से परामर्श लेते भी थे तो उनके लिये मंत्रियों के परामर्श को मानना बाध्यकारी नहीं था।[57]

जब गवर्नर अपने व्यक्तिगत निर्णय से कोई कार्य करता था तो उसके लिये यह बाध्यकारी था कि वह मंत्रियों से परामर्श ले। किन्तु ऐसी स्थिति में वह मंत्रियों के परामर्श को मानने के लिये बाध्य नही था।

कौन सा विषय गवर्नर के स्वविवेक के अन्तर्गत आता है और कौन सा विषय गवर्नर के व्यक्तिगत निर्णय के अन्तर्गत आता है इस पर गवर्नर को ही निर्णय लेना था, उसी का निर्णय अन्तिम माना जाता । जायंट सलेक्ट कमेटी का मत था कि गवर्नर के विशेष उत्तरदायित्वों को 1935 के अधिनियम में स्पष्ट रूप से लिख दिया जाना चाहिए, उन्हें इन्स्ट्रूमेंट आफ इन्स्ट्रक्शन्स के माध्यम से अभिव्यक्त नही किया जाना चाहिए।[58]

इस तरह इस अधिनियम में गवर्नर के तीन प्रकार की शक्तियो का उल्लेख किया गया है -

(1) कुछ मामलों में गवर्नर अपने मंत्रिमंडल के परामर्श से कार्य करेगा।

(2) कुछ मामलों में गवर्नर अपने स्वविवेक से कार्य करेगा।

(3) कुछ मामलों में गवर्नर अपने व्यक्तिगत निर्णय से कार्य करेगा।

धारा 59 के अंतर्गत गवर्नर के एक चौथे प्रकार के कार्यों का उल्लेख किया गया है- वह मंत्रियों से परामर्श लेकर अपने स्वविवेक से कार्य करेगा। निम्न मामलों मे वह ऐसा कर सकता था -

(1) मंत्रियों के बीच कार्य का विभाजन करने के लिये नियम वनाना ।

(2) आदेशों पर हस्ताक्षर करना ।

(3) मंत्रियों के लिये इस बात को बाध्यकारी करना कि वे सारी सूचनाएँ गवर्नर को दें- विशेषकर जब गवर्नर का इसमें कोई विशेष उत्तरदायित्व निहित हो ।

(4) व्यवस्थापिका के प्रक्रिया के नियमों का निर्माण करते समय गवर्नर व्यवस्थापिका के अध्यक्ष या सभापति से परामर्श लेगा।

प्रान्तीय व्यवस्थापिका को प्रान्तीय और समवर्ती सूची में आने वाले विषयों पर स्वायत्ता प्रदान की गई थी। यहाँ भी गवर्नर की शक्तियों को सीमित नहीं किया गया। गवर्नर को प्रान्तीय सूची और समवर्ती सूची के विषयों में भी निम्न मामलो मे हस्क्षेप का अधिकार दिया गया। है इन मामलों में गवर्नर गवर्नर जनरल के अधिन होगा -

(1) व्यवस्थापिका में कुछ प्रकार के विधेयको को प्रस्तावित न करने देना या करने देना ।

(2) कुछ विधेयकों को प्रस्तावित करने के लिये व्यवस्थापिका को सिफारिश करना (Recommend) करना ।

(iii) अध्यादेश या अधिनियम जारी करना ।

(iv) प्रान्तीय व्यवस्थापिका द्वारा पारित विधेयक को वीटो करना ।

(v) किसी विधेयक को राजमुकुट के विचारार्थ सुरक्षित रखना।

इन प्रावधानों पर टिप्पणी करते हुए के० टी० शाह कहते हैं कि मंत्रियो को 1935 के अधिनियम में जो स्वायत्ता प्रदान की गयी थी, वह गवर्नर की प्रत्यक्ष और परोक्ष शक्तियों के कारण काफी सीमित हो गयी थी। इससे प्रान्तों का राजनैतिक और आर्थिक विकास अवरुद्ध हो गाय था।[59]

श्री शाह ने 32 स्थितियाँ बतलायी है जब गवर्नर को अपने स्वविवेक में कार्य करना था। [60]

(i) धारा 50 के अन्तर्गत वह मंत्रिमंडल की बैठकों का सभापित्व कर सकता था;

(ii) उसे यह निर्णय करना था कि किस मामले में वह अपने स्वविवेक में कार्य करेगा और किस मामले में वह अपने व्यक्तिगत निर्णय से कार्य करेगा।

(iii) धारा 51 (5) के अंतर्गत वह अपने मंत्रियों को चुन सकता था (Choose) उनको सरकार बनाने के लिये आमंत्रित कर सकता है (Summon) और जब तक प्रान्तकी व्यवस्थापिका इन मंत्रियों को वेतन निश्चित नहीं कर देती है, तब तक इन मंत्रियों के वेतन को निश्चित करना।

(iv) यदि सरकार को उलटने का प्रयास किया जाय तो गवर्नर कई क्षेत्रों में अपने स्वविवेकी शक्तियों का प्रयोग कर सकता है। ऐसी स्थिति में वह किसी भी अधिकारी को व्यवस्थापिका की बैठकों में भाग लेने का आदेश दे सकता है।

(v) धारा 56 के अन्तर्गत दंड मामलों के कागजातों को गुप्त रखा जायेगा।

(vi) धारा 59 (1) में गवर्नर के कार्यपालिका शक्तियों पर प्रकाश डाला गया है जिन्हे वह अपने स्वविवेक में प्रयोग करेगा। किसी प्रान्त के सरकार की सारी कार्यवाहियॅा और आदेश गवर्नर के नाम पर जारी होंगे। धारा 59 (2'): और (3) में उस प्रक्रिया का उल्लेख किया गया है जिसके अन्तर्गत गवर्नर को आदेश जारी करने और नियम बनाने का अधिकार था। इस नियम के तहत प्राधिकृत (Authenticated) आदेशों और नियमों को किसी व्यक्ति द्वारा या न्यायालय मे चुनौती नही दी जा सकेगी। प्रान्तीय सरकार के कार्यों का समुचित रूप से सम्पादन करने के लिये और मंत्रियों के बीच विभागों का बंटवारा करने के लिये गवर्नर नियम बना सकेगा और आदेश जारी कर सकेगा। धारा 59 (4) में कहा गया है कि मत्री और सचिव गवर्नर को सारी सूचनाएँ देगे और गवर्नर उन्हे ऐसी सूचनाऍ देने के लिये बाध्य कर सकेगा। जिन मामलों में गवर्नर को विशेष उत्तरदायित्व है उसमें सचिव को मंत्रियों को और मंत्रियों और सचिव का गवर्नर को सारी सूचनाएँ देने का दायित्व है।

(vii) धारा 62(1) गवर्नर को व्यवस्थापिका आमंत्रित करने (Summon) स्थगित करने (Prorogue) और भंग करने (dissolive) का अधिकार है। व्यवस्थापिका के सदनो की वर्ष मे एक बैठक अवश्य

होनी चाहिए। दो अधिवेशनों के बीच 12 माह से अधिक का अंतराल नहीं होना चाहिए धारा। 62(2) के अन्तर्गत इस प्रावधान का पालन करते हुए गवर्नर व्यवस्थापिका आमंत्रित, स्थगित और भंग कर सकेगा।

(viii) धारा 63 (1) के अनुसार गवर्नर को प्रान्तीय व्यवस्थापिका के सदन या सदनों को संबोधित करने और इनको संदेश भेजने का अधिकार है। इसके लिये वह सदस्यों की उपस्थिति चाह सकते हैं।

(ix) अनुच्छेद 63 (2) के अनुसार गवर्नर व्यवस्थापिका में प्रस्तावित किसी विधेयक या अन्य किसी मामले पर संदेश भेज सकता है; व्यवस्थापिका को फिर ऐसे संदेश पर विचार करना होगा।

(x) धारा 69 सदस्यो की निर्योग्यता से सम्बन्धित है; गवर्नर किसी सदस्य को, जिसे निर्योग्य ठहराया गया हो कुछ अवधि बीत जाने के बाद सदस्य यदि पुनः योग्यता प्राप्त कर लेता है तो उसे वह सदन में बैठने का आदेश दे सकता है।

(xi) अनुच्छेद 74 (2) में किसी विधेयक को पारित करने की प्रक्रिया और तत्सम्बन्ध में गवर्नर की शक्तियों और भूमिका का उल्लेख करता था।

(xii) धारा 75 में गवर्नर द्वारा विधेयको पर अपनी स्वीकृति (Assent) देने की प्रक्रिया का उल्लेख किया गया है। गवर्नर व्यवस्थापिका द्वारा पारित किसी विधेयक को अपनी स्वीकृति दे सकता है, विधेयक को रोककर रख सकता है, या विधेयक को गवर्नर जनरल के विचार के लिये सुरक्षित रख सकता है।

(xiii) धारा 78, 79 (3), 80 (1), 80(1)(b) में गवर्नर के बजट सम्बन्धी अधिकारों का उल्लेख किया गया है। गवर्नर की सिफारिश के बगैर अनुदान की कोई मॉग (Demand for a grant) व्यवस्थापिका में पेश नही की जा सकती। गवर्नर आय-व्यय को अपने हस्ताक्षर द्वारा प्राधिकृत कर सकता है। गवर्नर को यह अधिकार है कि वह व्यवस्थापिका द्वारा बजट में की गई कटौतियो को पूरा कर सके।

(xiv) प्रान्तीय व्यवस्थापिका के प्रक्रिया सम्बन्धी नियमों के सम्बन्ध में धारा 84 गवर्नर को कुछ अधिकार प्रदान करता है - (अ) गवर्नर निम्न से सम्बनधित व्यवस्थापिका मे किसी प्रकार का प्रश्न पूछे जाने या वाद-विवाद करने को रोक सकता है - राजमुकुट, गवर्नर जनरल, राष्ट्र या देशी रियासतों के शासक (ब) अध्यक्ष से परामर्श करके व्यवस्थापिका की प्रक्रिया के सम्बन्ध में नियम बना सकता है।

(xv) धारा 66 (1) गवर्नर को यह अधिकार देता है कि वह व्यवस्थापिका में किसी विधेयक पर चल रहे वाद विवाद को रोक सकता है यदि वह जैसा सोचता है कि इस प्रकार का वाद विवाद उसके विशेष उत्तरदायित्वों को प्रभावित करेगा या ऐसा वाद विवाद प्रान्त की शान्ति व्यवस्था को भंग करेगा।

(xvi) धारा 88 और 89 में गवर्नर के अध्यादेशों से सम्बन्धित है। जब राज्य की व्यवस्थापिका का अधिवेशन न हो रहा है तो गवर्नर को ऐसे अध्यदेश (Ordinance) जारी करने का अधिकार है। जब व्यवस्थापिका का अधिवेशन न हो रहा है, किन्तु गवर्नर को लगे कि राज्य में ऐसी परिस्तितियॉं विद्यमान हैं जिनसे

तत्काल निपटने के लिये किसी विधि की आवश्यकता है, तो वह अध्यादेश जारी कर सकता है। ऐसे अध्यादेशों को राजमुकुट रद्द कर सकता है, या गवर्नर इनको वापस ले सकता है।

(xvii) अनुच्छेद 90 (1) में गवर्नर के अधिनियम (Governor Act) का उल्लेख है। यदि गवर्नर ऐसा सोचता है कि किसी विषय पर कानून बनाना उसके स्वविवेकी या व्यक्तिगत निर्णय के अन्तर्गत आने वाले दायित्वों को पूर्ण करने के लिये आवश्यक है, तो वह इस सम्बन्ध में व्यवस्थापिका को एक संदेश भेज सकता है या इस संदेश के साथ विधेयक का प्रारूप भी भेज सकता है। इस प्रकार गवर्नर व्यवस्थापिका को "गवर्नर्स एक्ट" पारित करने का संदेश भेज सकता है।यदि एक माह के भीतर व्यवस्थापिका कोई कार्यवाही न करे तो संदेश के अनुसार गवर्नर अधिनियम पारित कर देगा। किन्तु यदि व्यवस्थापिका इसमें कुछ संशोधन करना चाहे तो गवर्नर को गवर्नर्स एक्ट पारित करने में इन संशोधनों और सुझावों पर विचार करना होगा। गवर्नस एक्ट का वही प्रभाव होगा जो व्यवस्थापिका के किसी विधि का होता है।

(xviii) धारा 92 (1) (2) (3) गवर्नर को पृथक और आंशिक रूप से पृथक क्षेत्रों (Excluded and Partially excluded areas) के प्रशासन की शक्तियॉ देता है। प्रान्त या संधीय व्यवस्थापिका का कोई कानून इन क्षेत्रो मे लागू नहीं होगा जब तक कि गवर्नर इस सम्बन्ध में सार्वजनिक सूचना द्वारा आदेश न दे। ऐसे क्षेत्रों के प्रशासन के लिये गवर्नर नियम, कानून आदि बनायेगा।

(xix) धारा 93 में प्रान्तीय शासन की संविधानिक मशीनरी की विफलता या टूट जाने की सम्भावना का सामना करने के लिये गवर्नर को अधिकार दिये गये हैं। यदि किसी समय राज्यपाल को यह विश्वास हो जाय कि प्रान्त का शासन संविधान के अनुसार नहीं चलाया जा सकता तो गवर्नर एक घोषणा द्वारा प्रान्तीय संविधान के विफल हो जाने की घोषणा करके व्यवस्थापिका और मंत्रिमंडल को भंग करके प्रान्त का शासन अपने हाथ में ले सकता है। ऐसी स्थिति में प्रान्तीय व्यवस्थापिका की कानून निर्माण की सारी शक्तियॉ और मंत्रिपरिषद की कार्यकारी शक्तियों को अपने हाथ में ले लेगा।

(xx) धारा 108 में कहा गया है कि निम्न विषयों में प्रान्तीय व्यवस्थापिका मे किसी विधेयक या प्रस्ताव के पेश करने के पूर्व गवर्नर की स्वीकृति लेनी होगी - संसदीय कानून, गवर्नर जनरल की विधायी शक्तियॉ, गवर्नर के अध्यादेश, गवर्नर जनरल की स्वविवेकी शक्तियाँ।

(xxi) धारा 111 में गवर्नर को यह शक्ति दी गई है कि वह देखेगा कि प्रान्त में ब्रिटिश नागरिको के प्रति किसी प्रकार का भेदभाव न बरता जाय।

(xxii) धारा 119 में कहा गया है कि गवर्नर की पूर्व स्वीकृति के वगैर व्यवस्थापिका व्यापार, रोजगार, इत्यादि के क्षेत्र में किसी प्रकार का व्यावसायिक या तकनीकी योग्यता निर्धारित नही कर सकेगी।

(xxiiii) धारा 123 (1) में संघ राज्य सम्बन्धों का उल्लेख है। गवर्नर जनरल किसी प्रान्त के गवर्नर को आदेश दे सकेगा कि गवर्नर उसके एंजेंट के रूप में कि आदिवासी क्षेत्र (Tribal area) में कुछ कार्यों को करेगा। गवर्नर जनरल अपने एजेंट के रूप में गवर्नर को आदेश दे सकता है कि वह धर्म, विदेश सम्बन्ध, सुरक्षा आदि के क्षेत्र मे उसके आदेशों का पालन करेगा।

(xxiv) धारा 226 कहा गया है कि हाई कोर्ट को राजस्व मामलों में प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार नहीं होगा, यदि प्रान्तीय व्यवस्थापिका इस सम्बन्ध में कोई संशोधन करना चाहती है तो उसे गवर्नर की स्वीकृति लेनी होगी।

(xxv) गवर्नर को यह देखना है कि हाइकोर्ट के अधिकारियों और कर्मचारियों की नियुक्ति प्रान्तीय लोक सेवा आयोग के द्वारा ही की जाय (धारा 242) ।

(xxvi) धारा 265 के अनुसार प्रान्तीय लोकसेवा आयोग के अध्यक्ष और अन्य सदस्यों की नियुक्ति गवर्नर अपने स्वविवेक से करेगा।

(xxvii) धारा 266 के अनुसार गवर्नर प्रान्तीय सेवा में विविध पदों की नियुक्ति के लिये लोक सेवा आयोग से परामर्श लेगा।

(xxviii) प्रान्तीय लोक सेवा आयोग के कार्यों में वृद्धि या परिवर्तन के लिये कोई विधेयक प्रान्तीय व्यवस्थापिका में तब तक पेश नही किया जायेगा जब तक इस सम्बन्ध में गवर्नर की पूर्व स्वीकृति न प्राप्त कर ली जाय (धारा 267)

(xxix) धारा 270 में कहा गया है कि पिछले कार्यों के लिये वर्तमान में उत्तरादायी ठहराये जाने सम्बन्धी कोई विधेयक गवर्नर की स्वीकृति के वगैर व्यवस्थापिका में प्रस्तावित नहीं किया जायेगा।

(xxx) धारा 270 मे कहा गया है कि राजमुकुट की सेवा में रत कतिपय कर्मचारियों और अधिकारियों पर दांडिक या व्यवहार कार्यवाही तभी की जा सकेगी जब गवर्नर इसके लिये अनुमति दे दे।

(xxxi) धारा 305 में कहा गया है कि गवर्नर का खुद का सचिवालयीन स्टाफ होगा; इनकी नियुक्ति गवर्नर द्वारा की जायेगी।

(xxxii) धारा 308 में कतिपय कानूनों और परिषद् आज्ञाओं (Orders in Council) में संशोधन करने के सारे प्रस्तावों को गवर्नर को सेक्रेटरी आफ स्टेट को भेजना होगा। साथ ही इस सम्बन्ध मे उसे अपने विचारों को भी संलग्न करना होगा।[61]

के० टी० शाह के अनुसार 1935 के अधिनियम ने गवर्नर को इतने व्यापक अधिकार देकर मंत्रिपरिषद और व्यवस्थापिका को यदि शक्तिहीन नही, तो कम से कम अत्यधिक निर्बल बना दिया है। प्रान्तीय स्वराज्य की अवधारणा को गवर्नरों के इन व्यापक अधिकारों ने निष्प्रभावी और दुर्बल बना दिया है। ऊपर उल्लिखित धाराओं का विश्लेषण करने पर यह कहा जा सकता है कि गवर्नर को अधिनियम ने कार्यपालिका और व्यवस्थापिका के क्षेत्र में अत्यधिक व्यापक शक्तियॉ देकर प्रान्तीय स्वराज्य को विफल बना दिया है-

(i) गवर्नर को विधायी और कार्यकारी क्षेत्र में स्वविवेक या व्यक्तिगत निर्णय के आधार पर व्यापक कदम उठाने के अधिकार दिये गये है। इससे न तो मंत्रि परिषद और न व्यवस्थापिका किसी प्रकार की भूमिका अदा कर सकती है।

(ii) गवर्नर को मंत्रिपरिषद और व्यवस्थापिका के विरूद्ध कई प्रकार के संरक्षण प्रदान किये गये है।

(iii) विधायी क्षेत्र मे गवर्नर किसी भी विधेयक को अपनी स्वीकृति दे या अस्वीकृति दे सकती है और कुछ विधेयकों को वह गवर्नर जनरल और सेक्रेटरी आफ स्टेट के विचारार्थ सुरक्षित रख सकता है।

(iv) मंत्रिपरिषद नहीं, गवर्नर ही व्यवस्थापिका का वास्तविक नेता बन बैठा है। उसे स्वविवेक पर व्यवस्थापिका आमंत्रित करने, स्थगित करने या भंग करने के अधिकार दिये गये हैं, इससे उसकी इच्छा पर्यत व्यवस्थापिका कार्य करती है या भंग कर दी जाती है।

(v) वह व्यवस्थापिका में विधेयक पेश करवा सकता है, वह व्यवस्थापिका को विधेयकों के सम्बन्ध में आदेश निर्देश दे सकता है। ये सारे कार्य वास्तव में मंत्रिपरिषद् के कार्य हैं।

(vi) वह व्यवस्थापिका की प्रक्रिया के नियम बनाता है — यह कार्य वास्तव में अध्यक्ष और व्यवस्थापिका का है।

(vii) कोई भी अधिनियम गवर्नर के हस्ताक्षर के वगैर कानून नहीं बन सकता। किन्तु गवर्नर्स एक्ट पर यह बंधन लागू नहीं होता।

इस प्रकार गवर्नर एक नाममात्र की कार्यपालिका नहीं है, वह सासन पर पूर्ण नियंत्रण रखने वाली कार्यपालिका है; वह शासन का प्रधान है।[62]

इस अधिनियम में मंत्री के अधीनस्थ सचिव और विभागीय अध्यक्ष सीधे गवर्नर से मिल सकते थे। गवर्नर इनको सीधे सारी सूचनाएँ देती, गवर्नर इनसे विभागीय सूचनाओं को सीधे मंगवाता था। मंत्री लोग गवर्नर से इन सूचनाओं को प्राप्त करने के अधिकारी नहीं थे। इस तरह ये अधिकारी और कर्मचारी गवर्नर के अधीन थे, वे गवर्नरों के आदेशों का पालन करते थे। इससे वे मंत्रियों की अवहेलना करते थे। मंत्रियों का इन पर नियंत्रण नहीं था। इस प्रकार ये अधिकारी और कर्मचारी मंत्रियों से अपने को स्वतंत्र समझने लगे। इन पर किसी प्रकार का अंकुश नहीं था। ये किसी अनुशासन में बंधे हुए नहीं थे। ये अधिकारी और कर्मचारी मंत्रियों के विरुद्ध सीधे गवर्नर को अपील कर सकते थे। इन परिस्थितियों में अधिनियम मे जिस स्वायत्त शासन या प्रान्तीय स्वराज्य का उल्लेख किया गया है, उसमें किसी प्रकार की वास्तविकता नही है। गवर्नर को सारे निरंकुश अधिकार दिये गये है।

निम्न मामलों में गवर्नर अपने "व्यक्तिगत निर्णय" से कार्य करता है, अर्थात् वह मंत्रियों से परामर्श तो लेता है किन्तु वह उनके परामर्शों को मानने के लिये बाध्य नहीं है; धारा[52] में इनका उल्लेख किया गया है-

(1) अपने कार्यों और दायित्वों को पूरा करने में गवर्नर के निम्न विशेष उत्तरदायित्व (Special responsibilities) होंगे-

(अ) प्रान्त या उसके किसी भाग में शान्ति और व्यवस्था को भारी संकट हो;

(ब) अल्पसंख्यक वर्गों के हितों का संरक्षण;

(स) लोक सेवकों और उनके परिवार के सदस्यों के वैधानिक अधिकारों और दायित्वों को संरक्षण प्रदान करना ;

(द) इस अधिनियम के अध्याय (III), भाग V के प्रावधानों को लागू करना।

(इ) पृथक क्षेत्रों में शान्ति व्यवस्था स्थापित करना;

(ई) देशी रियासतों और उनके शासकों के अधिकारों और हितों की रक्षा करना ।

(क) अधिनियम के भाग VI के अन्तर्गत गवर्नर जनरल द्वारा दिये गये सभी आदेशों को क्रियान्वित करना।

(2) मध्यप्रदेश (सी० पी० एंड बरार) के गवर्नर का यह एक विशेष दायित्व होगा कि वह यह देखे कि प्रदेश के राजस्व का एक बड़ा हिस्सा बरार पर खर्च हो। पृथक क्षेत्रों के हितों की देखभाल करना भी गवर्नर का विशेष उत्तरदायित्व है। गवर्नर जनरल के एजेंट के रूप में गवर्नरों को कई कार्य सम्पन्न करने हैं।

इन विशेष उत्तरदायित्वों के परिपालन में गवर्नर को अपने व्यक्तिगत निर्णय का प्रयोग करना है।

इसके अतिरिक्त गवर्नर निम्न मामलों में अपने व्यक्तिगत निर्णय के अनुसार कार्य करता है- जैसे धारा 56, 68(2), 88(1), 119(3), 151(1), 246 (2), 271(3), 300 (1), 258(1),(2)

विशेष उत्तरदायित्वों का सिद्धान्त (The doctrine of special Responsibilites) ब्रिटिश साम्राज्यवाद द्वारा भारतीय प्रान्तों में जाति, धर्म, भाषा, आदिम जाति क्षेत्र अँग्रेज निवासी आदि के विविध हितों को संरक्षण प्रदान करने के लिये प्रतिपादित किया गया था। इन उत्तरदायित्वों का वहन करते हुए गवर्नर मंत्रियों से परामर्श लेता था उस परामर्श को मानने के लिये वह बाध्य नहीं था। इस तरह यह सिद्धान्त उत्तरदायी शासन के सिद्धान्तों के विरुद्ध था। मंत्री जनता के सेवक न होकर गवर्नर के सेवक हो गये थे। इन विशेष उत्तरदायित्वों के क्षेत्र की कोई सीमा नहीं थी इससे वे सम्पूर्ण प्रान्तीय शासन के क्षेत्र को अपने में समेटे हुए थे। उदाहरण के लिये किन्हें अल्पसंख्यक वर्ग माना जाय इसे ठीक से परिभाषित नहीं किया था। इसी प्रकार "अल्पसंख्यकों" के जायज हित "(Legitimate interestsof minorties) कौन से हैं इसकी ठीक से व्याख्या नहीं की गयी थी। गवर्नर इन हितों की रक्षा करने का बहाना करते हुए वास्तव में साम्प्रदायिक और निहित हितों को संरक्षण देकर देश को सामाजिक सुधार और आर्थिक पुनरचना के मार्ग से हटाकर साम्प्रदायिकता को प्रोत्साहन दे सकता था।[63]

ब्रिटिश संसद में जायंट सलेक्ट कमेटी ने कहा कि "अल्पसंख्यक वर्गों" और उचित हितो(Minorities and special interests) की कोई सुस्पष्ट और निश्चित परिभाषा नहीं दी जा सकती। किन्तु पाँच छः विशेष अल्प संख्यक वर्ग है जो सभी को . मालूम है और जिनके हितों की रक्षा की जानी चाहिए। इनके अतिरिक्त भी गवर्नर कुछ अन्य वर्गों को अल्प संख्यक वर्ग मान सकता है और उनके विशेष हितों को संरक्षण दे सकता है। समिति ने यह स्पष्ट किया कि गवर्नर दिशा निर्देशों (Instruments of Instructions)) का पालन करेगा और राष्ट्र के सामाजिक और आर्थिक विकास में बाधक नहीं बनेगा।

इसी तरह से गवर्नर को अधिकार दिये गये हैं कि वह प्रान्त के किसी भाग में शान्ति और व्यवस्था के भंग होने के संकट के आधार पर सम्पूर्ण प्रान्तीय शासन को अपने हाथों में ले सकता है। किन्तु यह स्पष्ट नहीं किया गया है कि शान्ति और व्यवस्था के भंग होने का क्या आशय है। उस समय यह आपत्ति व्यक्त की गई कि राष्ट्रीय आन्दोलन के उग्र होने पर इस आन्दोलन का दमन करने के लिये गवर्नर इस तरह की घोषणा करके प्रान्त के मंत्रिमंडल और व्यवस्थापिका को भंग करके प्रान्तीय शासन को अपने हाथों में ले सकता है।

इन विशेष दायित्वों के कारण मंत्रियों में कोई सामुहिक उत्तरदायित्व की भावना का विकास नही हो सका। मंत्री गवर्नर को किसी प्रकार का परामर्श देने के भी अनिच्छुक थे क्योंकि उनको यह मालूम था कि गवर्नर उनके परामर्शों की अवहेलना करके उन की बेइज्जती कर सकता था। इसलिये कि वे परामर्श देते ही नहीं थे ये लड़ने लड़ाने को तैयार हो जाते थे। सबसे बुरी बात यह थी कि मंत्री के अधीन सचिव और अधिकारी सीधे गवर्नर तक पहुँचते थे और सारी सूचनाएँ गवर्नर को देते थे। वे इन सूचनाओं को मंत्री को देने के लिये बाध्य नहीं थे। इस प्रकार मंत्रियों की कोई स्थिति नही थी, उनका सचिवों और अधिकारियों पर कोई नियंत्रण नहीं था इससे प्रशासन पर मंत्रियों की कोई पकड़ नहीं रही। जब तक मंत्री विभागीय प्रशासन को अपने नियंत्रण में न कर सकें तब तक किसी प्रकार के उत्तरदायी शासन की कल्पना ही नहीं की जा सकती।

यहाँतक कि मंत्रिमंडल के गठन का अधिकार गवर्नर को ही था। किस मंत्री को क्या विभाग मिले इसका निर्णय गवर्नर करता था। किस इन्स्ट्रूमेट आफ इन्स्ट्रक्शन्स के अनुसार गवर्नर को यह देखना था कि सभी महत्वपूर्ण अल्पसंख्यक वर्गों को मंत्रिमण्डल में प्रतिनिधित्व दिया जाय। इसलिये यदि अल्पसंख्यक वर्गों को मंत्रिमण्डल में प्रतिनिधित्व नहीं दिया गया है तो गवर्नर उनको प्रतिनिधित्व देगा। गवर्नर मंत्रियों के बीच विभागों का वितरण करेगा। गवर्नर मंत्रिमण्डल की बैठक आमंत्रित करेगा, वह मंत्रिमंडल की बैठकों का सभापतित्व करेगा। गवर्नर मंत्रियों को अलग रखकर सीधे अधिकारियों और सचिवों से सूचना प्राप्त करता था। इन सूचनाओं की वह मंत्रियों को नहीं देता था वरन इन्हें गुप्त रखता था। इन सब कारणों से मंत्रियों के बीच किसी प्रकार के सामूहिक उत्तरदायित्व का विकास नहीं हो सका।

गवर्नर को व्यापक वित्तीय और कानूनी अधिकार मिले हुए थे। गवर्नर की पूर्व अनुमति के वगैर कुछ विशेष प्रकार का विधेयक प्रान्त की विधान सभा में पेश नहीं किये जा सकते थे। वह कुछ विशेष प्रकार के विधेयकों को व्यवस्थापिका में पेश करने की सिफारिश कर सकता था। इसे किसी विधेयक को स्वीकृत करने या उनको गवर्नर जनरल या राजमुकुट के लिये सुरक्षित रखने का अधिकार था। गवर्नर को यह देखने का अधिकार था कि बजट में व्यवस्थापिका द्वारा कोई ऐसी कटौती न की जाय जिससे उसके विशेष उत्तरदायित्व प्रभावित होते हैं।

जायंट पार्लियामेटरी कमेटी के अनुसार गवर्नरों ने भूतकाल में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। उसे 1955 के अधिनियम के अन्तर्गत भी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करना है।

मंत्रिपरिषद का गठन भारत सरकार अधिनियम 1935 की धारा 50, 51 (1), (2), (3), (4), (5) के अनुसार होना चाहिए। इसमे दिशा निर्देशों (Instruments of Instructions) का भी अनुसरण किया जाना है। गवर्नर किसी मंत्रिमंडल मे अल्पसंख्यक वर्गों के कुछ ऐसे सदस्यों को नियुक्त कर सकता है जो भिन्न दल या विचारधारा के हो। इससे मंत्रिपरिषद् कभी भी सामूहिक उत्तरदायित्व के सिद्धान्त का पालन नहीं कर सकती थी।

धारा 51(4) में सामूहिक उत्तरदायित्व का उल्लेख नहीं किया गया है। मंत्री लोग गवर्नर से अलग-अलग मिल सकते हैं। धारा 59 में इसी बात की ओर इंगित किया गया था। गवर्नर मंत्रियों को अलग-अलग बुलाकर परामर्श ले सकता था। गवर्नर इस सम्बन्ध में प्रक्रिया के नियम भी बना सकता था। ऐसा वह अपने स्वविवेकी अधिकारों के अन्तर्गत कर सकता था। छोटे-मोटे मामलों में मंत्री लोग स्वयं निर्णय ले लेते थे और गवर्नर कोई हस्तक्षेप नहीं करता था। इससे भी सामुहिक उत्तरदायित्व के सिद्धान्त का पालन नहीं हो पाता था। मंत्री लोग अलग-अलग जाकर गवर्नर को परामर्श देते थे। इससे भी संयुक्त उत्तरदायित्व के सिद्धान्त का पालन नहीं हो पाता था।

धारा 50 (2) के अनुसार गवर्नर मंत्रिमंडल की बैठकों का सभापतित्व करता था। ऐसा वह अपने स्वविवेक से कर सकता था-किन्तु ऐसा करना उसके लिये संविधानिक बाध्यता नही थी। वह चाहता तो मंत्रिमंडल की बैठकों का अन्य कोई मंत्री सभापतित्व कर सकता था। इसके साथ ही वह सीधे सचिवों और अधिकारियों से सूचना प्राप्त कर सकता था। इससे मुख्यमंत्री के पद की परम्पराएँ नहीं बन सकीं और गवर्नर ही वास्तव में मुख्यमंत्री के रूप में कार्य करने लगा।

सामान्यतया मंत्रियों को प्रशासन के दो क्षेत्र ही प्राप्त थे -

(i) वे विषय जिन पर प्रान्तीय व्यवस्थापिका को कानून बनाने का अधिकार है।

(ii) गवर्नर अपने नियम बनाने के अधिकार के अन्तर्गत मंत्रियों को अन्य विषय सौंप सकता था।

इस प्रकार मंत्रियों को किसी भी क्षेत्र में कोई विशेष अधिकार नहीं मिले हुये थे।[64]

वे अधिकार भी जो गवर्नर मंत्रियों को प्रदान करता था वह ऐसी व्यवस्था कर सकता था कि उनका व्यवहार में उपयोग सचिव और अधिकारी ही करें और मंत्रियों को ये अधिकार न मिल पायें।

इस व्यवस्था के चलते और गवर्नरों के व्यापक स्वविवेकी और व्यक्तिगत निर्णय के अधिकारों को देखते हुए मंत्रियों के लिये कुछ भी नहीं बचता था सारी शक्तियाँ गवर्नर में ही केन्द्रित कर दी गयी थीं। गवर्नर ही बजट पर नियंत्रण करता था और मनमाने खर्च करता था किन्तु मंत्रियों को जायज खर्चों के लिये भी राशि नहीं मिल पाती थी।

धारा 60(1) में प्रान्तीय व्यवस्थापिकाओं की अवधि का उल्लेख किया गया है। गवर्नर अपने स्वविवेक से व्यवस्थापिका विघटित कर सकता था। इसलिये मंत्रियों को गवर्नर को व्यवस्थापिका विघटित करने के लिये परामर्श देने का कोई अधिकार नही था(धारा 62, (2), (C))इससे प्रान्तीय स्वराज्य और उत्तरदायी प्रशासन का कोई अर्थ ही नहीं रह जाता।

धारा 45 और 102 राष्ट्रीय आपात से सम्बन्धित है, यदि प्रान्तों का शासन संविधान के अनुसार नही चल रहा है, तो गवर्नर,गवर्नर जनरल को इस सम्बन्ध में रिपोर्ट दे सकता है और गवर्नर जनरल प्रान्तीय संविधान के विफल होने की घोषणा कर सकता है। ऐसी स्थिति में प्रान्तीय व्यवस्थापिका और मंत्रिमंडल भंग कर दी जायेगी और प्रान्त का शासन गवर्नर चलायेगा।

धारा 108, 226, 267, 271 के अनुसार कुछ विधेयकों को प्रान्तीय व्यवस्थापिका में पेश करने के पूर्व गवर्नर जनरल या गवर्नर की अनुमति चाहिए। गवर्नर किसी विधेयक पर पुनर्विचार के लिये उसे प्रान्तिय व्यवस्थापिका को वापस भेज सकता था। वे विधेयक जो प्रान्तीय व्यवस्थापिका में तो पास हो जाते थे किन्तु जिन्हें गवर्नर जनरल या राजमुकुट के विचार के लिये पेश किया जाता था ये प्रान्तीय व्यवस्थापिका के क्षेत्राधिकार से बाहर हो जाते थे। गवर्नर जनरल और भारत सचिव (राजमुकुट) पर प्रान्तीय व्यवस्थापिका को कोई नियंत्रण नहीं था। अतएव प्रान्तीय स्वराज्य एक छलावा मात्र था।

भारत सचिव (राजमुकुट), गवर्नर जनरल और गवर्नर किसी भी विधेयक पर पुनर्विचार के लिये उसे प्रान्तीय व्यवस्थापिका को भेज सकते थे। इससे भी मंत्रियों और प्रान्तीय व्यवस्थापिकाओं की शक्ति में कटौती होती थी।

यदि व्यवस्थापिका में किसी विधेयक पर वाद-विवाद हो रहा है, और राज्यपाल ऐसा सोचता है कि यह विधेयक उसके विशेष उत्तरदायित्वों को प्रभावित करेगा तो गवर्नर ऐसे विधेयक पर वाद-विवाद को रुकवा सकता है।

वित्त के क्षेत्र में भी गवर्नर को निरंकुश शक्तियॉ प्रदान की गयी है।कई मदों को अमतदेय कर दिया गया है। जिससे राज्य की व्यवस्थापिका इनमें कोई कटौती नहीं कर सकती है (धारा 78, 79 और इंस्ट्रूमेंटस आफ इन्सट्रक्शन्स, अनुच्छेद XIIi)। धारा 80 के तहत उसे बहुत ही व्यापक वित्तिय अधिकार दिये गये हैं। पूरक बजट पर भी रोक लगाने के गवर्नर को व्यापक अधिकार दिये गये है (धारा 81)। गवर्नर को प्रान्तीय व्यवस्थापिका में कोई वित्तीय प्रस्ताव, करारोपण या व्यय के प्रस्ताव पेश करने के अधिकार दिये गये हैं (धारा 82)। इस प्रकार गवर्नर को निरंकुश बनाकर, मनमाने अधिकार देकर प्रान्तीय व्यवस्थापिका को गवर्नर के अधीन कर दिया गया है।

1935 के अधिनियम के अन्तर्गत गवर्नरों को (Instruments of Instruction) या ब्रिटिश सरकार प्रदत्त दिशा निर्देशों के अंतर्गत कार्य करना है। ये दिशा निर्देश भारतीय संविधान के नीति के निर्देशक तत्वों से मिलते जुलते है। इन दिशा निर्देशकों की प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार हैं।

(1) राज्यपाल प्रदेश के उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश के सम्मुख पद ग्रहण करने के पूर्व निम्न आशय की शपथ लेगा- वह अधिनियम के परिपालनकी, अपने पद पर निष्पक्ष रूप से कार्य करने की शपथ लेगा।

(2) प्रान्त की कार्यपालिका के सम्बन्ध में कतिपय बहुमूल्य सुझाव दिये गये थे- मंत्रिमंडल का गठन करते हुए गवर्नर को मंत्रियों के चुनाव में निम्न बातों का ध्यान रखना होगा। वह ऐसे व्यक्ति को मुख्यमंत्री के पद पर नियुक्त करेगा जो मंत्रिमंडल का नेतृत्व कर सके और ऐसे मंत्रियों को नियुक्त करेगा जिनका उस प्रान्त की व्यवस्थापिका में बहुमत हो, जिससे मंत्रीगण सामूहिक रूप से व्यवस्थापिका को उत्तरदायी रह सकें।[65]

(3) अपने स्वविवेकी क्षेत्राधिकार के बाहर गवर्नर इस प्रकार से कार्य करेगा कि वह अपने मंत्रियों से परामर्श लेता चले, बशर्ते कि इससे गवर्नर के व्यक्तिगत निर्णय का अधिकार और विशेष उत्तरदायित्व प्रभावित न हो। किन्तु गवर्नर को यह देखना चाहिए कि मंत्रिगण गवर्नर के इन अधिकारों की आड़ में व्यवस्थापिका के प्रति अपने दायित्वों की अवहेलना न करने लगे।[66]

(4) गवर्नर को जातीय और धार्मिक अल्पसंख्यकों के हितों की रक्षा करनी चाहिए। नौकरी में इस प्रकार के संरक्षण का विशेष ध्यान रखा जाये।[67]

(5) लोक सेवाओं के जायज हितों की रक्षा करना गवर्नर का कार्य है।[68]

(6) गवर्नर को यह देखना है कि देशी रियासतों के शासकों से जो संधियाँ और समझौते किये गये हैं उनको पूर्ण संरक्षण और सम्मान प्रदान किया जाये। गवर्नर को बरार के हितों को पूर्ण संरक्षण प्रदान करना चाहिए और यह देखना चाहिए कि सेंट्रल प्रविन्सेस (C P वर्तमान मध्यप्रदेश) के राजस्व का एक बड़ा हिस्सा बरार पर खर्च किया जावे।

(7) गवर्नर को यह देखना चाहिए कि प्रान्तीय सरकार के कामकाज से सम्बन्धित नियमों का पालन किया जाय और वित्तीय मामले में वित्त मंत्रालय से अनिवार्य रूप से परामर्श लिया जाय। वित्त मंत्रालय और अन्य मंत्रालय के बीच के मतभेद को दूर करने कि लिये सम्पूर्ण मंत्रिमंडल की बैठक बुलाई जाय।[69]

(8) अपने प्रान्त की सिचाई के स्थिति के बारे में गवर्नर को भारत सचिव को सूचित करना चाहिए।[70]

(9) गवर्नर को पृथक क्षेत्रों और आंशिक रूप से पृथक क्षेत्रों के कल्याण की देखभाल के लिए एक विशेष प्राधिकारी की नियुक्ति करनी चाहिए।[71]

(10) गवर्नर को उत्तर पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त (अब पाकिस्तान में) शान्ति व्यवस्था स्थापित करने का निरंतर ध्यान रखना चाहिए।[72]

(11) कतिपय ऐसे निर्देश भी जारी किय गये था जिनका उद्देश्य गवर्नर और व्यवस्थापिका के बीच समुचित सम्बन्ध स्थापित करना था।

(i) उन विधेयकों को अपनी स्वकृति प्रदान करना जो उसके विशेष दायित्वों को प्रभावित करते है।

(ii) कुछ विधेयकों को वह गवर्नर जनरल के पुन विचारार्थ सुरक्षित कर रखता था।

(iii) उस विधेयक को गवर्नर जनरल के पुनर्विचारार्थ रोककर रखना जो अध्याय III भाग V या धारा 299 को प्रतिकूल रूप से प्रभावित करें। कोई ऐसा विधेयक जो स्थायी बन्दोबस्त की प्रथा मे परिवर्तन के लिये व्यवस्थापिका में पेश किया गया है गवर्नर के द्वारा गवर्नर जनरल के विचारार्थ सुरक्षित रखा जायेगा।[73]

(12) गवर्नर को अपने विधायी शक्तियों का इस प्रकार से प्रयोग नहीं करना चाहिए कि जिससे प्रान्त की शान्ति और व्यवस्था खतरे में पड़ जाय।[74]

(13) गवर्नरों को प्रान्त में उत्तम शासन प्रबंध के लिये पूरा-पूरा प्रयास करना चाहिए। उसे उन सब साधनों को अपनाना चाहिए जिससे नैतिक, सामाजिक और आर्थिक कल्याण के कार्यक्रमों को आगे बढ़ाया जाय। उसे यह देखना चाहिए कि प्रान्त के सार्वजनिक जीवन में सभी धर्मों, जातियों के बीच सदाभाव बना रहे ।[75]

(14) गवर्नर को इन सब दिशा निर्देशो की सूचना अपने मंत्रियों को देना चहिए और उन्हें समुचित ढ़ंग से प्रकाशित करना चाहिए।[76]

इन निर्देशों का यह उद्देश्य था कि गवर्नर उन दायित्वों को पूरा करने का भरसक प्रयत्न करे जो 1935 के अधिनियम के अन्तर्गत उत्पन्न होते हैं।

प्रान्तीय स्वराज्य विफल

1937 में प्रान्तो की व्यवस्तापिकाओं के लिये जो निर्वाचन हुए उनमें 6 प्रान्तों में क्राँग्रेस को पूर्ण बहुमत मिला। अन्य प्रान्तों में कांग्रेस ने अन्य दलों से मिलकर साझा सरकार बनाया या वह विरोधी दल के रूप में बैठी।

इन 6 प्रान्तों में कॉंग्रेस की सरकार बनी। इन मंत्रिमंडलों ने गवर्नरों से यह आश्वासन चाहा कि जब तक मंत्रिमंडल संविधान के अनुसार प्रशासन चला रहे है तब तक गवर्नर अपने विशेषाधिकारों का प्रयोग नहीं करेंगे। गवर्नरों ने इस प्रकार का आश्वासन देने से इंकार कर दिया। इस पर इन मंत्रिमंडलों ने इस्तीफा दे दिया।

गवर्नरों ने 1935 के अधिनियम के धारा 93 के अनुसार अपने-अपने प्रान्तों में सांविधानिक मशीनरी के विफल होने की घोषणा करते हुए प्रान्त के शासन को अपने हाथों में ले लिया।

1947 का अधिनियम

इस अधिनियम में भारत में औपनिवेशिक स्वराज्य की स्थापना करते हुए भारत को पूर्ण स्वतंत्रता प्रदान की गई।

प्रान्तों में उत्तरदायी शासन की स्थापना की गयी और गवर्नरों के सारे असाधारण अधिकारों को समाप्त कर दिया गया।

समापन

प्रारम्भ में गवर्नरों की संस्था ईस्ट इंडिया कम्पनी के व्यापारिक हितों को संरक्षण प्रदान करने के लिये स्थापित की गयी थी। 1857 की क्रान्ति के बाद ईस्ट इंडिया कम्पनी को समाप्त कर दिया गया और ब्रिटिश सरकार ने भारत का शासन अपने हाथों मे ले लिया।

ब्रिटिश सरकार ने भारत में क्रमशः उत्तरदायी शासन की स्थापना (Gradual Intruduction of responsible governments) की नीति की घोषणा की। 1861, 1892, 1909, 1919 और 1935 की अधिनियमों मे धीरे-धीरे उत्तरदायी शासन की स्थापना का प्रयास किया भी गया। भारत में आन्दोलनकारी पूर्ण स्वराज्य चाहते थे। अंग्रेज पूर्ण स्वराज्य देना नही चाहते थे। गवर्नरों के अधिकार कम होते गये फिर भी वे निरंकुश बने रहे। उनमें और जन निर्वाचित मत्रियो और व्यवस्थापिकाओं मे संघर्ष होते रहे। इस संघर्ष के परिणाम स्वरूप कॉंग्रेसी मंत्रिमंडलो ने इस्तीफा दे दिया। गवर्नरों ने सारी शक्तियॉ अपने हाथों में ले ली। 1939-45 के बीच स्वराज्य पर वार्ता चलती रही। 1946 में संविधान सभा की स्थापना हुई। गवर्नरों को क्या अधिकार दिये जाये और किन अधिकारों को समाप्त कर दिया जाय इस पर संविधान सभा में विस्तार से चर्चा हुई।

फुट नोट्स

1 श्री प्रकाश- स्टेट गवर्नस इन इंडिया, दिल्ली, मीनाक्षी प्रकाशन, 1966 पृ० 1

2 प्रसाद डॉ०..राजेन्द्र-भारत का संविधान, दिल्ली, संविधान सभा, 1950 (राज्यपालों का अध्याय)

3 मुकर्जी, पी०-इंडियन कान्स्टीटयूशर्नल डाकूमेंटस, भाग I बम्बई, थेकर स्पिंक एंड कम्पनी 1918 द्वितीय संस्करण, पृ० 3

4 वही, 1773 का रेग्यूलिटिग एक्ट, धारा 9

5 वुड्रफ्र, फिलिप-दि मैन हू रुल्ड इंडिया, भाग 1, लंदन, जोनाथन कैप, 1954 पृ० 74

6 एक्ट आफ 1773, धारा 9

एक्ट आफ 1784, धारा 23

चार्टर एक्ट आफ 1793, धारा 47

चार्टर एक्ट आफ 1813, धारा 59, 68

हार्न बी० ए०-दि पोलिटिकल सिस्टम आफ ब्रिटिश इंडिया, आक्सफोर्ड, क्लेरेडन, प्रेस, 1922, पृ० 7

7 स्ट्रेची, सर जान इंडिया, इट्स एडमिनिस्ट्रेशन एंड प्राग्रेस, लंदन, मेकमिलन एंड कम्पनी लिमिटेड, तृतीय संस्करण 1903, पृ० 46 सर चार्ल्स वुड का भाषण-ए० सी० बेनर्जी, इंडियन कान्स्टीट्यूशनल डाकूमेंटस मे उद्धृत, पृ० 245

8. दि इंडिया काउन्सिल एक्ट, 1861, धारा 41, 43

9. कीथ, ए० बी०-ए० कान्स्टीटयूशनल हिस्ट्री आफ इडिया, इलाहाबाद, सेंट्रल बुक डिपो, 1937, द्वितीय संस्करण, पृ० 29, Thus the councils were useful instruments for carrying out a centralised policy controlled from home.

मुकर्जी, पू० उ०, पृ० 224

10 वही, पृ० 184

11 मर्ने, सेसिल-दि डेवलपमेंट आफ सेल्स गवर्नमेंट इन इंडिया, शिकेगो, दि युनिवर्सिटी आफ शिकेगो, 1922, पृ 10

12 दि इंडियन काउन्सिल्स एक्ट आफ 1892, धारा 1-4

दि गवर्नमेंट आफ इंडिया एक्ट, 1909

13 कूपलैड आर०-दि इंडियन प्राबलेम 1833-1935, लंदन आक्सफोर्ड युनिवर्सिटी, 1943, पृ० 140

14 बनर्जी, ए० सी०-दि कॉंग्रेस लीग स्कीम, पृ० 289-92

15 स्ट्रेची, सर जान-इंडिया, इट्स एडमिनिस्ट्रेशन एंड प्रोग्रेस, मेकमिलन, 1903, तृतीय संस्करण, पृ० 282-92

16 वही, "A great many people will frankly acknowledge that it has proved to be a very successful practice "

17 अप्पादराय, ए०-डायर्की इन प्रेक्टिस, लंदन लांगमेन्स ग्रीन एंडकम्पनी लिमिटेड 1937, अध्याय IV, पृ० 107 -"The position of the Governer in the dyarchic system was unique, he combined in himself the powers of a real and a nominal excutive "

18 पन्निकर के० एम०-दि वर्किंग आफ डायार्की इन इंडिया, 1919-1928, पृ० 18

19 अप्पादराय, पृ० 107

20 धारा 49

21 धारा 47 (2)

22 धारा 48

23 अप्पादराय, अध्याय IV, पृ० 109

24 वही, धारा 52 (1)

25 वही, अध्याय VII, पृ० 216

26 वही।

27. वही, पृ० 225, मेमोरेडा गवर्नमेंट आफ इंडिया

28. अम्बेडकर इन रिपोर्टस आफ प्राविन्शियल कमेटीज एंड सीतलवाड इन आर० इ० सी० आर० (ए० अप्पादराय में उद्धृत अध्याय VII, 228)

29 धारा 50 (1), (2), (3) ,(4)

30 धारा 52 (1), (2), (3)

31 अप्पादराय, पृ० 228

32 वहीं, पृ० 229

33 वही, पृ० 230

34 वही

35 हाउस आफ कामन्स डिबेट 55, 2387, 1918 (अप्पादराय, ए० में उद्धृत, पृ० 229)

36 अप्पादराय, ए०-पृ० 229-30 "The Instrument of Instructions does not itself create rights, it neither defines nor creates rights and obligations, the courts cannot take cognizance of it It is mandatory in the sense that the Governer in charged by his magerty to do certain things and to take care that certain things are done in a certain manner, he is accountable to the crown not to the courts for any breach of instructions, an accountability which could be enforced in the last resorts by his removal fromoffice the place of instrucments, Then in the scheme of dyanchy was to give the Governer some guidance in the comparatively delicate matter of his relation with ministers "

37 आर० इ० सी० आर० (अप्पादराय मे उद्धृत)

38 अप्पदराय, पृ० 231

39 सलेक्शन्स फ्राम मेमोरेंडा, पार्ट II, पृ० 10-11

40 एक पेम्फलेट "पंजाबी " में पंजाब के एक मंत्री सर फजल इ- हुसैन (दि हिन्दू, मद्रास, जुलाई 10, 1936) ने लिखा है।

"The minstry has been a scape goat for all that happened It was either the muslim minister or the sikh who did it but as a matter of fact no one could have done anything that was unpalatable to the Governer "

41 दि हिन्दू, जुलाई 10, 1936

अप्पादराय, पृ० 233.

42. रिफार्म्स एन्कायरी कमेटी के सामने साक्ष्य देते हुए इस सदस्य ने कहा था - " Our ministers have tried every remedy except the constitutional one of resignation'

43. केरल पुत्र, पृ० 31-32

44 अप्पादराय पृ० 235, "The Governer was directed to encourage the habit of joint deliberation in order that the experience of adviser may be at the disposal of ministers and the knowledge of ministers as to the wishes of the people may be at the disposal of the councillors."

45 केरल पुत्र, पृ० 33-35

1919 का अधिनियम, धारा 72 D(1), (2), (3), (4).

46 1919 का अधिनियम

धारा 72 (A) (i).

धारा 72 (2), (b), (c)

धारा 72 (B), (a)

धारा 72 (B), (b)

धारा 72 (B), (c)

धारा 72 (B), (2)

47 धारा 72 (C), (1)

48 धारा 80 C

49 धारा 81 (1), (2)

50 धारा 81 (3), (4)

51. धारा 81 (A), (1)

52 धारा 81 A(2), (a), (b), (c), (i), (ii)

53 भारत सरकार अधिनियम 1935, धारा 48 (1)

54. धारा 48 (2)

55 तृतीय सूची (Third Schedule) धारा 7-48

56 शाह, के० टी०-प्रावंशियल अटानामी, बम्बई, वोरा एंड कं०, 1937, अध्याय 3 पृ० 60

57. धारा 50 (3)

58 जायंट सलेक्ट कमेटी रिपोर्ट, पैरा 75 (के० टी० शाह में उद्‌धृत पृ० 77)

59 शाह, पृ० 82

60 वही, पृ० 85

61 गवर्नर के इन शक्तियों कार्यों के सम्बन्ध मे भारत सरकार 1935 के अधिनियम की निम्न धाराओं को मैंने यहाँ संक्षेप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है-

धारा 50, 51, 58, 59, 62, 63, 69, 74, 75, 78, 84, 86, 88, 89, 90, 92, 93, 108, 111, 119, 123, 226, 242, 265, 266, 267, 270, 271, 305, 308.

62 शाह, पृ० 86-87 "The Governer is thus not merely the ornamental chief of the government, he is also its effective controlling and dominating head "

63 वही, पृ० 104 "The Governer may under the pretext of these powers protect the communal and vested interests and thus may hinder the overdue social reforms or economic reconstruction "

64 वही, पृ० 105- "In neither group is there any substance of real power, authority or influence left to them "

65 इंस्ट्रूमैंटस आफ इंस्ट्रक्शन B (VII)

66 वही B (VIII)

67 वही B (IX)

68 वही B(X)

69 वही B (XI), (XII), (XIII)

70 वही B (XIV)

71 वही B (XV)

72 वही B (XVI)

73 वही C (VIII).

74 वही C(XIX)

75 वही D(XX)

76 वही D(XXI)

अध्याय — 3

भारतीय संविधान में राज्यपाल का पद

संविधान सभा में वाद विवाद - प्रारम्भिक

भारत के संविधान सभा मे संविधानिक परामर्शदाता (Constitutional Advisor) डा० बी० एन० राव ने 13 मई, 1947 को प्रान्तीय संविधान की रूपरेखा के सम्बन्ध में एक स्मृति पत्र (Memorandum on the Principal of a Provincial Constitution) प्रस्तुत किया। उस समय अधिकांश लोग यह चाहते थे कि देश मे शक्तिशाली केन्द्र की स्थापना की जाय। विश्व राजनीति में तभी भारत अपनी आवाज बुलंद कर सकेगा, और अन्य राष्ट्र उसका सम्मान करेगे। केबिनेट मिशन ने जो योजना पेश की थी उसमें एक संघ व्यवस्था की स्थापना की सिफारिश की गयी और शक्ति का कन्द्रीकरण के बजाय शक्ति के विकेन्द्रीकरण पर बल दिया गया है।[1]

प्रान्तों में संसदीय उत्तरदायी शासन प्रणाली की स्थापना का समर्थन किया गया। इसलिये राज्यपाल (गवर्नर) के स्वविवेकी अधिकारों में काफी कटौती की गई और कहा गया कि वह अपने मंत्रिमंडल के परामर्श से कार्य करेगा।[2] संविधानिक परामर्शदाता श्री बी० एन० राव ने कहा कि गवर्नरों के स्वविकी और व्यक्तिगत निर्णय के अधिकारों का स्वतंत्र भारत के संविधान में कोई स्थान नहीं है क्योंकि इनसे ब्रिटिश शासन काल में गवर्नरों ने निरंकुश रूप से शासन किया था। अब यह सम्भव नही है क्योकि मंत्री लोग प्रान्तीय व्यवस्थापिका को उत्तरदायी रहेंगे और प्रान्तीय व्यवस्थापिका सार्वजनिक वयस्क मताधिकार के आधार पर चुना जाना है। कुछ प्रान्तों के प्रतिनिधियों ने सुझाव दिया था कि गवर्नर का पद कई कारणों से रिक्त हो सकता है ऐसी अवस्था में एक डेपूटी गवर्नर का पद होना आवश्यक है। किन्तु श्री राव ने इस सुझाव को स्वीकार नही किया।[3]

संविधानिक परामर्शदाता समिति ने यह सुझाव दिया कि प्रान्त की कार्यपालिका शक्ति उन विषयों तक विस्तारित रहेगी जहाँ तक प्रान्तीय व्यवस्थापिका को कानून बनाने का अधिकार होगा। राव के मेमोरेंडम मे प्रान्तों का एक गवर्नर (राज्यपाल) होगा जिसकी सहायता और परामर्श देने के लिये एक मत्रिपरिषद् होगी। यह कहा गया कि राज्यपाल और राज्यके मंत्रिमंडल के बीच वही स्थिति होगी जो ब्रिटेन मे राजमुकुट और केबिनेट के बीच है।[4]

श्री बी० एन० राव द्वारा प्रान्तीय संविधान पर तैयार किया गया मेमोरेंडम पर प्रान्तीय संविधान समिति ने 6, 8 और 9 जून 1946 को वाद विवाद किया। प्रान्तीय संविधान समिति की 6 जून की बैठक में राज्यपाल के पद का स्वरूप और उसके कार्यों के बारे में विरोधी विचार व्यक्ति किये गये। कई सदस्य संयुक्त राज्य

अमेरिका के समान निर्वाचित गवर्नर के पद की व्यवस्था करना चाहते थे जो शासन की वास्तविक प्रधान होता था, ऐसी स्थिति में जो केबिनेट नियुक्त की जाती वह गवर्नर के द्वारा नियुक्त की जाती और यह केबिनेट व्यवस्थापिका के प्रति उत्तरदायी न होकर गवर्नर के प्रति ही उत्तरदायी होती है। कुछ सदस्यों ने सुझाव दिया कि गवर्नर की नियुक्ति प्रधानमंत्री के द्वारा होनी चाहिए, जो प्रान्त के शासन के लिए प्रधानमंत्री को ही उत्तरदायी होगा। कई सदस्यों ने सुझाव दिया कि केन्द्र सरकार गवर्नर को मनोनीत करेगी और गवर्नर प्रान्तों और केन्द्र के बीच कड़ी के रूप में कार्य करेगा।

गवर्नर के पद के स्वरूप का निर्धारण करने में सबसे महत्वपूर्ण कारण था कि अधिकांश सदस्य भारत में एक ऐसे संघ शासन की स्थापना करना चाहते थे जिसमें केद्र सरकार अत्यधिक शक्तिशाली हो और इकाईयों की स्वायत्ता सीमित कर दी जाय। इस प्रकार संविधान सभा में अमेरिकी और स्विस संघीय मॉडलों का अनुकरण नही किया गया - इन देशों में संघ की इकाईयों (अमेरिका में 'स्टेट्स' और स्विट्जरलैण्ज में ' कैन्टस') को अपने क्षेत्रों में पूर्ण स्वायत्ता दी गयी है। इसलिये अमेरिका में गवर्नरों का पद निर्वाचित रखा गया है और राज्य क्षेत्र के वह सर्वतंत्र कार्यपालिका के रूप में कार्य करता है। इसके विपरीत केनाडा में केंद्रीकरण प्रबल है, यद्यपि वहाँ भी संघ शासन की स्थापना की गयी है। इसलिये वहाँ गवर्नर को केंद्र के एजेंट के रूप में मनोनीत किया जाता है।

प्राविशियल कान्स्टीट्यूशन कमेटी और यूनियन कान्सटीट्यूशन कमेंटी की संयुक्त बैठक में यह निर्णय लिया गया कि भारत का संविधान संघात्मक होगा किन्तु केंद्र सरकार बहुत अधिक शक्तिशाली होगी। राज्यपालों की नियुक्ति केंद्र सरकार द्वारा की जायेगी किन्तु इनके नामों पर राज्यों की भी सहमति होनी चाहिए। राज्यों मे मंत्रिमंडालत्मक उत्तरदायी सरकार की स्थापना की जानी चाहिए। यह भी सुझाव दिया गया कि गवर्नरों का परोक्ष निर्वाचन होना चाहिए। जून 8, 1947 को प्राविंशियल कान्स्टीट्यूशन कमेंटी ने श्री राव के मेमोरेंडम पर विचार करते हुए यह सिफारिश की कि नियुक्ति के समय राज्यपाल की आयु कम से कम 35 वर्ष होनी चाहिए। समिति ने डेपूटी गवर्नर के पद की सिफारिश को अमान्य कर दिया। गवर्नर के पद की रिक्तता होने पर राष्ट्रपति नियुक्त करेगा। किन्तु प्रान्तीय समिति ने प्रान्तीय व्यवस्थापिका के निर्वाचन द्वारा इस रिक्त पद की पूर्ति के लिये कहा। प्राविशियल कान्स्टीट्यूशन कमेटी के अनुसार सभी मंत्रियों की नियुक्ति में सामान्य संसदीय परम्पराओं का अनुसरण किया जाना चाहिए। समिति ने यह भी स्वीकार किया कि राज्यों में शान्ति और व्यवस्था स्थापित करने का दायित्व गवर्नर को होना चाहिए। किन्तु इसके लिये गवर्नर को कोई विशेष उत्तरदायित्व सौंपने की आवश्यक्ता नहीं है। समिति ने यह भी स्वीकार किया कि अल्संख्यक वर्गों के विशेष उत्तरदायित्व का भार गवर्नर को ही उठाना चाहिए। किन्तु इस मामले में तब तक कोई निर्णय नहीं लेना चाहिए जब तक परामर्शदात्री समिति (एडवाइजरी कमेटी) कोई सुझाव न दे।

9 जून को प्रान्तीय समिति ने गवर्नरो के निर्वाचन की व्यवस्था पर विचार किया। इसने गवर्नर की अवधि 4 वर्ष करने का सुझाव दिया। इस समिति में बी० जी० खेर, के० एन० काटजू, पी० सुब्बारायान तथा वल्लभ भाई पटेल थे। गवर्नर और मंत्रियों के बीच के सम्बन्धों पर भी विचार किया गया। मंत्रियों की नियुक्ति में गवर्नर को परम्पराओं का पालन करना चाहिए। ये परम्पराएं धीरे-धीरे विकसित होंगी (जैसा ब्रिटेन में विकसित हुआ था)। इन परम्पराओं को संविधान के एक विशेष परिशिष्ट में सम्मिलित किया जाना चाहिए। ये परम्पराएं 1935 के अधिनियम के इंस्ट्रूमेन्ट्स ऑफ इन्स्ट्रक्शन्स का स्थान लेंगी। प्राविन्शियल कान्स्टीट्यूशन कमेटी ने यह भी कहा कि इन परम्पराओं का पूर्ण रूपेण पालन करना जरूरी नहीं निम्न मामलों में गवर्नरों की पूर्ण स्वायत्तता दी जानी चाहिए।

उसके स्वविवेकी अधिकारों का उपयोग निम्न मामलों में होना चाहिए —

(i) प्रान्त में या उसके किसी भाग मे शान्ति व्यवस्था को भारी खतरा उत्पन्न हो जाय;

(ii) प्रान्तीय व्यवस्थापिका को आमंत्रित करना (Summoning) और भंग करना;

(iii) निर्वाचन के देखरेख, नियंत्रण और दिशा निर्देशन;

(iv) प्रान्त के महालेखापाल और लोक सेवा आयोग के अध्यक्षों और सदस्यों की नियुक्ति।

1935 के अधिनियम के अंतर्गत गवर्नरो के विशेष उत्तर दायित्वों से सम्बन्धित निरंकुश अधिकारो की कटु आलोचना की गयी थी। उस समय सभी ने इन अधिकारो की इस आधार पर आलोचना की थी कि इससे देश में मंत्रिमंडल उत्तरदायी शासन की राह पर नहीं बढ़ पायेगा। सरदार वल्लभ भाई पटेल इन सब आलोचनाओं से परिचित थे, इसलिए उन्होंने लोगों को यह कहकर आश्वस्त किया कि अब गवर्नर इन व्यापक अधिकारों का बिल्कुल प्रयोग नही करेंगे और प्रान्तो में मंत्रियों का ही उत्तरदायी शासन चलेगा। शांति और व्यवस्था स्थापित करने में भी गवर्नर मनमानी नही करेंगे और मंत्रियों को पूर्ण स्वतंत्रता प्रदान करेंगे। इससे इस स्थिति में भी गवर्नरों और मंत्रियों के बीच किसी प्रकार का विवाद उत्पन्न नहीं होगा। समिति ने यह मत व्यक्त किया कि चूँकि गवर्नरों का लोकसेवाओं और प्रशासन पर कोई नियंत्रण नही होगा, इन पर मंत्रियों का ही नियंत्रण होगा, अतएव गवर्नर के निरंकुश होने की कोई सम्भावना नही है। समिति ने सुझाव दिया कि गवर्नर को इस सम्बन्ध में अधिक से अधिक राष्ट्रपति को रिपोर्ट भेजने का ही अधिकार दिया जाना चाहिए।

गवर्नर के अन्य विशेषाधिकारो पर विचार करते हुए सरदार वल्लभ भाई पटेल ने कहा कि जहाँ तक प्रान्तीय व्यवस्थापिकाओं को आमंत्रित करने (Summoning) और भंग करने (Dissolution) का अधिकार है, पटेल का कहना था कि ये कोई विशेष शक्तियाँ नहीं है। इसी प्रकार निर्वाचनों का संचालन, निर्देशन, नियंत्रण आदि राष्ट्रपति की विशेष देख रेख में सम्पादित होंगे। लोकसेवा आयोग के अध्यक्ष और सदस्यों तथा महालेखापाल की नियुक्ति गवर्नर मंत्रिमंडल के परामर्श से करेगा।

पटेल ने कहा कि सारांश में यह कहा जा सकता है कि गवर्नर का केवल एक मात्र महत्वपूर्ण स्वविवेकी अधिकार है और वह है राष्ट्रपति को उस समय रिपोर्ट भेजना जब प्रान्त की शान्ति व्यवस्था भंग हो जाये। प्रान्तीय संविधान समिति के इन प्रस्तावों को संविधान सभा की स्वीकृति के साथ संविधान के प्रारूप (Draft Constitution) में सम्मिलित किया गया। इसमें संविधान के परामर्शदाता श्री बेनेगल नरसिंह राव को भी सहमति थी।[5]

प्रत्येक राज्य के लिये एक गवर्नर होगा [6]

श्री लक्ष्मी नारायण साहू ने अनुच्छेद 129 के सम्बन्ध में अपना संशोधन पेश करते हुए कहा कि इस अनुच्छेद को इस तरह लिखा जाय कि उसका यह अर्थ निकले कि प्रत्येक राज्य के लिये एक गवर्नर हो ही। श्री साहू के अनुसार यदि ऐसा नहीं किया जाता तो राज्यों के लिये अपना सम्मान बचाये रखना मुश्किल होगा।[7]

श्री ब्रजेश्वर प्रसाद ने कहा कि प्रान्तों के लिये कोई गवर्नर की आवश्यक्ता नहीं है। ब्रजेश्वर प्रसाद चाहते थे कि गवर्नरों के स्थान पर आयुक्तों की नियुक्ति की जाय। उन्होंने कहा कि चूँकि हम अमेरिका के सदृश्य भारत में शक्ति का पृथक्करण नही चाहते और न विकेन्द्रीकृत संघ व्यवस्था की स्थापना करना चाहते है, अतएव भारत मे गवर्नरों की कोई आवश्यकता नही है।[8]

श्री आर० के० सिधवा ने श्री साहू का समर्थन करते हुए कहा कि केवल उन्हीं को गवर्नर नियुक्त किया जाय जिनमें विशेष योग्यता हो।

श्री रोहणी कुमार चौधरी ने श्री साहू के संशोधन का विरोध करते हुए कहा कि ऐसी स्थिति निर्मित न हो जिससे कि कुछ प्रभावशाली और बड़े राज्य जैसे बम्बई, यू०पी० (यूनाइटेड प्राविन्सेस अब उत्तर प्रदेश) पश्चिम बंगाल, मद्रास और दिल्ली से ही गवर्नरों की नियुक्तियॉ होंगी, और अन्य राज्यों को अपने यहॉ से गवर्नर भेजने का मौका नहीं मिलेगा।[9]

राज्य की कार्यपालिका शक्ति[10]

श्री के० टी० शाह ने अनुच्छेद 130 में अपना संशोधन पेश किया। उन्होने कहा कि गवर्नर की कोई स्वविवेकी अधिकार न दिये जायें। गवर्नर को केवल अपने मंत्रिपरिषद् के परामर्श के अनुसार कार्य करना चाहिए। स्वतंत्र भारत में स्वविवेकी अधिकारों के लिए कोई स्थान नहीं है।[11]

श्री मोहम्मद ताहिर ने कहा कि "May" के बाद यह शब्द जोड़ा जाय, "On behalf of the people" उनके अनुसार राज्यपाल जनता का प्रतिनिधि है, और जनता के हित के लिए, जनता की ओर से उसे अपनी कार्यपालिका शक्ति का प्रयोग करना चाहिए।[12] श्री नाजिरुद्दीन अहमद ने कहा कि इस अनुच्छेद से इन शब्दों

को हटा देना चाहिए - "transfer to the Governor any functions" और इनके स्थान पर दूसरे शब्दों को रखा जाय- "authorise or empower the Governor------or performed by"

राज्यपालों का निर्वाचन या नियुक्ति[13]

श्री ब्रजेश्वर प्रसाद ने कहा कि भारतीय राष्ट्र की एकता को बनाये रखने के लिये केंद्र सरकार का राज्यो पर पूर्ण नियंत्रण रहना चाहिए अन्यथा देश में विभाजक प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन मिलेगा। श्री ब्रजेश्वर प्रसाद ने कुछ लोगों के इस सुझाव को अमान्य कर दिया कि गवर्नर को उस पैनेल से चुना चाहिए जो उस राज्य के व्यवस्थापिका द्वारा पेश किया जाया। इससे गवर्नर के चुनाव पर व्यवस्थापिका की राजनीति हावी हो जायेगी। गवर्नर को राज्य के बाहर का व्यक्ति होना चाहिए। यदि उसी राज्य के व्यक्ति को गवर्नर के पद पर नियुक्त किया जाय तो इससे देश में विभाजक प्रवृत्तियॉ सिर उठाने लगेंगी। राष्ट्रपति को गवर्नर की नियुक्ति में पूर्ण स्वतंत्रता प्रदान की जानी चाहिए - उसे गवर्नर को चुनने की पूर्ण स्वतंत्रता मिलनी चाहिए।[14]

श्री हरिविष्णु कामथ का विचार था कि हमें भारत को एक एकात्मक राज्य (Unitary State) नही बनाना चाहिए। श्री कामथ केंद्रीकरण की इन प्रवृत्तियों के खिलाफ थे। वे भारत में एक विकेद्रीकृत संघ व्यवस्था (Dicentralise Federation) के समर्थक थे। वैसे प्रान्तों में प्रान्तीय स्वराज्य के नाम पर जो प्रयोग हुआ उससे लोग अच्छा अनुभव प्राप्त कर चुके हैं। श्री कामथ ने कहा कि चूँकि हम संसदीय प्रणाली की सरकार अपनाने जा रहें हैं इसलिये इस प्रणाली में गवर्नर को निर्वाचित करना उपर्युक्त नहीं होगा क्योंकि वह फिर राज्य की राजनीति में पड़ने लगेगा और मुख्यमंत्री और गवर्नर दोनों एक दूसरे के प्रतिद्वन्दी के रूप में कार्य करने लगेंगे। श्री कामथ ने इस सुझाव को भी अमान्य कर दिया कि राज्य की व्यवस्थापिका गवर्नरों का एक पैनल तैयार करे और उसी पैनल से राष्ट्रपति गवर्नर का चुनाव करे। इससे व्यवस्थापिका की सारी राजनीति गवर्नर के चुनाव में आ जायेगी और गवर्नर भी राज्य की राजनीति में उलझने लगेगा। इसलिये कामथ ने कहा कि गवर्नरों की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा होनी चाहिए। श्री कामथ ने कहा कि संसदीय प्रणाली की सफलता की एक बड़ी आवश्यक्ता यह है कि राज्य के प्रधान को संविधानिक प्रधान (Constitutional Figure head) के रूप में दलबंदी से दूर रहकर तटस्थ होकर कार्य करना चाहिए।

श्री कामथ ने ब्रजेश्वर प्रसाद के इस विचार का खंडन किया कि गवर्नर एक नाममात्र की कार्यपालिका (Symbol) या राज्य शासन का प्रतीक है। उसे व्यापक अधिकार मिले हुए हैं - वह अध्यादेश जारी कर सकता है और राज्यों में संविधानिक आपात की घोषणा के लिये राष्ट्रपति को सिफारिशी रिपोर्ट भेज सकता है। जहाँ तक अध्यादेशों का प्रश्न है ये थोड़े समय के लिये जारी किये जाते हैं अतएव इनसे कोई विशेष हानि की सम्भावना नहीं है। संविधानिक आपात लागू होने पर गवर्नर राष्ट्रपति के एजेंट के रूप में कार्य करता है। श्री कामथ ने कहा कि वे अध्यादेश जारी करने के घोर विरोधी हैं, किन्तु चूँकि डा० अम्बेडकर ने उनकी

आश्वस्त किया है कि राज्य की व्यवस्थापिका अधिकांश अवसरो पर अधिवेशन में रहेगी इसलिये अध्यादेश जारी करने के बहुत कम मौके आयेंगे।[15]

सरदार हुकमसिह ने कामथ का समर्थन करते हुए कहा कि गवर्नरों को निर्वाचिन की पद्यति के द्वारा नियुक्त करना एक अत्यधिक दोषपूर्ण प्रणाली है। यदि गवर्नर भी निर्वाचित हो तो गवर्नर और मुख्यमंत्रियों में प्रायः मतभेद उत्पन्न होगा और गवर्नर भी राज्य की राजनीति में सक्रिय भूमिका निभाते रहेंगे। इससे गवर्नर और मुख्य मंत्री में शक्ति के लिये संघर्ष होता रहेगा। फिर गवर्नर का चुनाव कराना एक मॅहगी प्रक्रिया होगी और इसमें समय और श्रम लगेगा। हुकुम सिग ने व्यवस्थापिका द्वारा पैनल बनाकर चुनाव कराने की पद्यति को उचित बताया। इसके पश्चात भी कम हो जायगा और पैनल बनाते समय व्यवस्थापिका उम्मीदवारो के गुणावगुणों का ध्यान रखेगी। इसमें गवर्नर द्वारा शक्ति के दुरुपयोग की सम्भावना भी कम हो जायेगी।[16]

श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर ने गवर्नरों की नियुक्ति की 4 प्रणालियों का उल्लेख किया -

(I) सार्वजनिक वयस्क मताधिकार के आधार पर गवर्नर का चुनाव।

(II) अनुपातिक प्रतिनिधित्व या अन्य किसी सिद्धान्त के आधार पर प्रान्तीय व्यवस्थापिका द्वारा बहुमत से चुनाव।

(III) अनुपातिक प्रतिनिधित्व या अन्य किसी सिद्धान्त के आधार पर प्रान्तीय व्यवस्थापिका द्वारा तैयार किये गये पैनल में से चुनाव।

(IV) केन्द्रीय मंत्रिमण्डल के परामर्श से राष्ट्रपति द्वारा नियुक्ति। श्री अय्यर ने कहा कि उनके मत में सबसे अच्छी प्रणाली वह है जिसमें राष्ट्रपति मंत्रिमण्डल के परामर्श से नियुक्त करे।

श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर प्रारूप समिति के सदस्य भी थे। उन्होंने अपने मत के समर्थन में कई तर्क प्रस्तुत किये। उन्होंने कहा कि यदि गवर्नर पद को संविधानिक प्रधान (Constitutional Fegurehead) या नाममात्र की कार्यपालिका बनाना है तो इस पद के निर्वाचन आदि पर धन, श्रम आदि खर्च करना कोई अर्थ नहीं रखता । निर्वाचित गवर्नर मुख्यमंत्री और केबिनेट के मंत्रियो के साथ विवाद में पड़ सकता है और उनके बीच भारी मतभेद उत्पन्न हो सकता है क्योंकि दोनों ही अपने को जनता का प्रतिनिधि मान सकते हैं। फिर गवर्नर का जो निर्वाचन होगा वह दलबंदी के आधार पर, दलीय टिकट के आधार पर होगा। राज्य में जो चुनाव होंगे वे मुख्यमंत्री के पद के उम्मीदवारो के नेतृत्व में चुनाव होंगे। यदि गवर्नर का भी चुनाव हो तो इससे यह दिक्कत होगी कि प्रान्तीय चुनाव के क्षितिज पर दो नेता उभरेंगे और दोनों ही राज्य की राजनीति में अपना प्रभुत्व स्थापित करने का प्रयास करेंगे। इससे अतिरिक्त रोजमर्रा के प्रशासन में भी निर्वाचित गवर्नर और मुख्मंत्री आपस में उलझते रहेगे। हमने अमेरिकी संविधान का अनुकरण नहीं किया है। अमेरिका में राज्यों के गवर्नर राज्यों के निर्वाचकों द्वारा निर्वाचित होते हैं। अमेरिका में शक्ति पृथक्करण का सिद्धान्त लागू किया

गया है और कार्यपालिका (गवर्नर) और व्यवस्थापिका के बीच शक्ति का पार्थक्य होने के कारण दोनों अपने अपने क्षेत्रों में कार्य करते हैं और उनके बीच शक्ति का संघर्ष बहुत कम दिखलायी देता है। किन्तु भारत ने संसदीय उत्तरदायी प्रणाली अपनायी है जिसमें शक्ति का केंद्र मुख्य मंत्री है, गवर्नर संविधानिक प्रधान या नाममात्र की कार्यपालिका है अतएव उसके चुनाव का कोई सवाल ही नही उठता। हमने कनाडा की प्रणाली का अनुसरण किया है।[17]

श्री अय्यर ने यह आशा व्यक्त की कि कुछ समय पश्चात भारत में भी संविधानिक परम्पराएं बनने लगेंगी जिससे गवर्नरों की नियुक्तिके सम्बन्ध में स्वस्थ परम्परायें बनने लगेंगी और गवर्नरो की नियुक्ति में राष्ट्रपति प्रान्तीय सरकारों से भी परामर्श लेगा। श्री अय्यर ने कहा कि राष्ट्रपति प्रान्त की आवश्यक्ताओं और परिस्थियों को देखते हुए उपर्युक्त गवर्नरों का चुनाव करेगा। राजनैतिक जीवन में प्रतिष्ठित सम्मानित व्यक्तियों, तपे तपाये सच्चरित्र राजनीतिज्ञों को ही गवर्नर के पद पर नियुक्त किया जायगा। सबसे बड़ी बात यह है कि गवर्नर को केवल संविधानिक प्रधान की भूमिका ही निभानी चाहिए। गवर्नर को प्रान्तीय सरकार का एक बुद्धिमान परामर्शदाता होना चाहिए। उसे मत्रिमंडल का सुयोग्य परामर्शदाता होना चाहिए, उसे राज्य मे अशान्ति उत्पन्न होने पर अशान्ति की आग को बुझाने का प्रयास करना चाहिए।[18]

श्री अय्यर ने कहा कि गवर्नर को अपनी असाधारण शक्तियों का भी समय-समय पर प्रयोग करना चाहिए। ऐसी भूमिका निभाने के लिये गवर्नरो की नियुक्ति ही होनी चाहिये। गवर्नरों का चुनाव होने पर वे इस भूमिका को अदा नहीं कर सकते। यदि गवर्नर का चुनाव हो तो उसमें और निर्वाचित मुख्यमंत्री और मंत्रियों में आये दिन विवाद छिड़ जायेगा। यदि गवर्नर को मनोनीत या नियुक्त किया जाय तो इस प्रकार का विवाद उत्पन्न नहीं होगा। इस प्रकार श्री अय्यर ने जोरदार शब्दों में गवर्नरों को राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत या नियुक्त किये जाने की पद्धति का समर्थन करते हुए कहा कि इससे प्रान्तीय शासन में एकता और समन्वय बना रहेगा, इससे राज्य का प्रशासन ठीक से चल सकेगा, इससे कैबिनेट और गवर्नर के सम्बन्ध बहुत अच्छ बने रहेगे। इन कारणों से हमें कनाडा की प्रणाली को अपनाकर गवर्नरों की राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त की प्रणाली को अपनाना चाहिए। बाद में इस परम्परा का विकास होना चाहिए कि राष्ट्रपति या केंद्रीय सरकार जब गवर्नरों की नियुक्ति करती है तोकेंद्र सरकार को जिस प्रान्त के लिये गवर्नर को नियुक्त करना हो उस प्रान्त की सरकार से परामर्श लेकर ही किसी व्यक्ति को गवर्नर पद पर नियुक्त करना चाहिए।[19]

डा० पी० एस० देशमुख के अनुसार भी गवर्नर को राजनीतिक दलबंदी से दूर रखने के लिए उसे राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किया जाना चाहिए। उन्होंने कुछ सभासदों के इस तर्क का खण्डन किया कि यदि गवर्नर की नियुक्ति होती है तो प्रान्तों के नागरिक अपने मताधिकार का प्रयोग करने से वंचित रह जायेगे। प्रान्त में और ढेर सारे पदो के लिये निर्वाचन होते रहेंगे और मतदाताओं को निर्वाचन के कई अवसर प्राप्त होगे। चूँकि गवर्नर के संविधानिक प्रधान या नाममात्र की कार्यपालिका है अतएव उसे मनोनीत ही करना चाहिए। यदि उसे

निर्वाचित किया जाय तो वह प्रान्त के दैनन्दिन शासन में हस्तक्षेप करने लगेगा। एक निर्वाचित गवर्नर का मुख्यमंत्री से कभी भी ठीक संबंध नहीं हो सकता। इस चित्र का एक दूसरा पहलू भी है, यदि निर्वाचित गवर्नर और मुख्यमंत्री एक हो जाये तो वह राज्य केंद्र सरकार के नियंत्रण से बाहर हो जायेगा। ऐसी स्थिति में गवर्नर राष्ट्रपति के "एजेंट" के रूप में कार्य नहीं कर सकेगा। इसलिये गवर्नर को तभी तक अपने पद पर रहना चाहिए जब तक वह राष्ट्रपति की प्रसन्नता को प्राप्त करता रहे।[20]

श्री बी० जी० खेर ने भी गवर्नरों की नियुक्ति के सिद्धान्त का ही समर्थन किया। उन्होंने निर्वाचन के सिद्धान्त का विरोध किया। उन्होंने स्वीकार किया कि 1946 में जब संविधान सभा ने कार्य करना आरम्भ किया था तो कई लोगों ने निर्वाचन की प्रणाली का समर्थन किया था, अब चूंकि संविधान सभा में संशदीय प्रणाली को मान्य कर लिया गया है अतएव जब समय और परिस्थितियाँ बदल चुकी है और अब निर्वाचित गवर्नरों का समर्थन नहीं किया जा सकता। अब अधिकांश सदस्य गवर्नरों को मनोनीत करने के पक्ष में है। गवर्नरों का चुनाव एक अत्यधिक खर्चीली प्रणाली होगी। फिर निर्वाचित गवर्नर और मुख्य मंत्री में शक्ति का संघर्ष चलता रहेगा। एक अच्छा गवर्नर राज्य शासन के कल्याण के लिये कार्य करेगा और एक बुरा गवर्नर राज्य शासन को क्षति पहुँचायेगा। श्री खेर ने कहा कि गवर्नरों को बहुत कम संविधानिक अधिकार दिये गये है जैसे - राज्य की व्यवस्थापिका को आमंत्रित करना और भंग करना, राज्य विधान सभा द्वारा पारित विधेयकों पर अपना हस्ताक्षर देना, राज्य के प्रतिनिधि के रूप मे कार्य करना, सामान्य निर्वाचन के बाद या मंत्रिमण्डल के इस्तीफा देने के बाद मुख्यमंत्री की नियुक्ति करना, प्रान्त का विशेष अवसरों पर प्रतिनिधित्व करना, आपातकालीन परिस्थितियों में वह राज्य का प्रतीक है, और यदि वह एक अच्छा गवर्नर है, एक सक्रिय गवर्नर है तो वह प्रान्त के विरोधी दलों से सम्पर्क स्थापित कर उनको सरकार के अच्छे विधेयको का समर्थन करने के लिये अपील कर सकता है, वह प्रान्त मे व्यापक दौरा करके प्रशासन को चुस्त बनाने में सक्रिय योगदान दे सकता है, वह अन्य कई तरीकों से प्रान्तीय शासन चुस्त और सक्रिय बनाने में मंत्रिमंडल को मदद दे सकता है। उन्होने श्री अल्लादी कृष्ण स्वामी अय्यर के कई तर्कों का समर्थन किया। श्री खेर ने "मिल" को उद्धृत करते हुए कहा कि लोकतंत्रीय शासन प्रणालियों में राज्य के प्रधान का निर्वाचन नही होना चाहिए। उन्होंने कहा कि चूँकि भारत ने संसदीय प्रणाली को अपनाया है इसलिये गवर्नरों की नियुक्ति करने के अतिरिक्त अन्य कोई तरीका नहीं है।[21]

श्री रोहणी कुमार चौधरी ने निर्वाचन का समर्थन किया - उन्होने कहा कि दो वर्ष पूर्व संविधान सभा की प्रान्तीय संविधान समिति ने निर्वाचन की प्रणाली का समर्थन किया था, यही प्रणाली लागू होनी चाहिए। गवर्नर को राज्य की जनता की सेवा करने और देश के संविधान और कानूनों की रक्षा करने की शपथ लेनी होती है अतएव इस पदाधिकारी का निर्वाचन ही होना चाहिए। वे कोई ऐसी स्थिति की कल्पना नहीं कर सकते जिसमें राष्ट्रपति गवर्नर की नियुक्ति करते हुए जनता से परामर्श न ले। जब सुप्रीम कोर्ट और हाईकोर्ट के

न्यायाधीशों की नियुक्ति करनी होती है तो राष्ट्रपति को देशभर के न्यायाधीशों से परामर्श लेना होता है। तब फिर गवर्नरों की नियुक्तिकरने में राष्ट्रपति को उस प्रान्त के सभी लोगों से क्यों न परामर्श लेना चाहिए। यदि किसी प्रान्त में गैर कांग्रेस मंत्रिमंडल चुनकर आ जाय और राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त गवर्नर कांग्रेस पार्टी (केन्द्र में) का हो तो गवर्नर और प्रान्तीय केबिनेट में कभी भी नहीं पटेगी। इसके अतिरिक्त जिस राज्य में गवर्नर की नियुक्ति करना हो, उस राज्य के रीति रिवाजों, परम्पराओं, आचार- विचारों से गवर्नर को परिचित होना चाहिए। श्री रोहिणी कुमार ने आसाम का उदाहरण देते हुए बताया कि यदि आसाम के गवर्नर को आसाम के आदिवासियों और कबाइलियों के रीति रिवाजों का ज्ञान न हो तो वह अपने पद के दायित्वो को सम्पूर्ण करने बुरी तरह विफल होगा। ब्रिटिश गवर्नर्स का इस सम्बन्ध में उदाहरण नहीं दिया जा सकता क्योंकि ये साम्राज्यवादी हितों के संरक्षण में लगे रहते थे। भारतीय गवर्नरों का ऐसा कोई उद्देश्य नहीं रह गया है। उन्हे तो जनता के सेवक के रूप में कार्य करना होगा। यह तर्क भी गलत है कि गवर्नर के निर्वाचन में काफी खर्च होगा। यदि गवर्नर को उसी दिन निर्वाचित किया जाय जिस दिन विधान सभा का निर्वाचन होता है, तो यह खर्च बहुत कम हो जायागा। उन्होंने कहा कि प्रान्त के बाहर से गवर्नरों को निर्वाचित कर हम प्रशासन में कुशलता नहीं बढ़ा सकते। बार-बार गवर्नरों को प्रान्त के बाहर से नियुक्त करने पर लोगों में असंतोष बढ़ेगा।[22]

पंडित हृदय नाथ कुंजरू ने भी गवर्नरों की नियुक्ति का विरोध किया। उनके अनुसार यदि राष्ट्रपति गवर्नरों की नियुक्ति करे तो इससे गवर्नर केंद्र सरकार के नियंत्रण में आ जायेगा, राज्य की सरकार भी केंद्र का एजेंट बनकर रह जायगी। इससे संघीय व्यवस्था प्रतिकूल रूप से प्रभावित होगी। कुंजरू के अनुसार देश की इस घड़ी में देश में तानाशाही प्रणाली की स्थापना को रोकना है। इसलिये केंद्र सरकार में बहुत अधिक विश्वास व्यक्त नहीं किया जाना चाहिए। प्रान्तों को पर्याप्त स्वायत्ता दी जानी चाहिए। उन्होंने कहा कि यदि केन्द्र प्रान्तो के सभी मामलों में हस्तक्षेप करने लगे तो देश में तानाशाही की स्थापना हो जायगी। भारतीय संघ में केंद्र और राज्य दोनों का सहअस्तित्व होना चाहिए। गवर्नरों के पद का केंद्र सरकार के द्वारा दुरुपयोग नहीं किया जाना चाहिए। इतना होते हुए भी पंडित कुंजरू ने कहा कि गवर्नरों का चुनाव नही होना चाहिए, उनको राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किया जाना चाहिए।[23]

डा० पी० के० सेन ने सार्वजनिक वयस्क मताधिकार के आधार पर गवर्नरों के चुनाव का विरोध किया क्योंकि ऐसा करना केबिनेट सरकार के सिद्धान्त के विरुद्ध है। ब्रिटिश केबिनेट में राजमुकुट एक नाममात्र की कार्यपालिका है। इसी प्रकार से राज्यों में गवर्नर नाममात्र की कार्यपालिका है और मुख्यमंत्री और मंत्रिमंडल वास्तविक कार्यपालिका है। इसी प्रकार से उन्होने राज्य की व्यवस्थापिका द्वारा पेनल बनाकर निर्वाचन की पद्धति का भी विरोध किया क्योंकि इससे राज्यपाल मुख्यमंत्री के लिये कॉटा सिद्ध होगा। उन्होने कहा कि गवर्नरों को राज्य के बाहर से ही नियुक्त किया जाना चाहिए। इससे वे खुले दिमाग से राज्य मे आयेंगे और राज्य की राजनीति के पचड़े में नही पड़ेगें और न किसी के साथ पक्षपात करेंगे।[24]

डा० सेन के अनुसार गवर्नर राज्य शासन में हस्तक्षेप नहीं करेगा वरन् वह शासन को सरल गति से चलने में मदद देगा। यदि राज्य के भीतर दलबंदिया, गुटबंदियों में पारस्परिक विवाद उत्पन्न हो गया है तो गवर्नर इनके बीच शान्ति और सौहार्द बनाय रखने का प्रयत्न करेगा।[25]

श्री विश्वनाथ दास उड़ीसा के मुख्यमंत्री रह चुके थे। उन्होंने अपने अनुभवों से कहा कि गवर्नर उनके दल को तोड़ने पर उतारू हो गये थे। वे प्रान्तीय संविधान समिति के इस विचार से समहत थे कि गवर्नरों का चुनाव होना चाहिए। यदि गवर्नरों को राष्ट्रपति मनोनीत करे तो इसका अर्थ होगा कि केंद्र में तो हम लोकतांत्रीय व्यवस्था कायम रख रहे हैं किन्तु राज्यों में तानाशाही कायम करना चाहते हैं। फिर यदि प्रान्त में गैर कांग्रेसी दल है तो केंद्र और प्रान्तों में हमेशा झगड़े होते रहेंगे- केन्द्र सरकार गवर्नर को एजेंट बनाकर प्रान्तीय सरकारों के क्षेत्र में हस्तक्षेप करते रहेंगे। श्री दास ने कहा कि श्री अय्यर का यह कहना गलत है कि हम केनेडियन मॉडल का अनुसरण कर रहे हैं; वास्तव में हम दक्षिण अफ्रीका के मॉडल का अनुसरण कर रहे हैं - दक्षिण अफ्रीका संघ की इकाईयों या प्रान्तों को कोई स्वायत्ता नहीं दी गयी है।[26]

श्रीमती दुर्गाबाई देशमुख ने गवर्नरों की नियुक्ति का समर्थन किया। उन्होने निर्वाचन या व्यवस्थापिका द्वारा पैनल तैयार करके निर्वाचन की प्रणाली का विरोध किया। विश्व में व्यवस्थापिका द्वारा पैनल बनाकर निर्वाचन की प्रणाली का कहीं भी प्रयोग नहीं हुआ है। राष्ट्रपति को गवर्नरों की नियुक्ति का अधिकार होना चाहिए; ऐसी नियुक्ति में वे प्रान्तीय सरकारों की सहमति लेंगे। इस सम्बन्ध में परम्पराएँ बनने लगी है। व्यवस्थापिका में अनुपातिक पद्धति के द्वारा निर्वचान करने की प्रणाली व्यवस्थापिका को गुटों में बाँट देगी और इसमें फ्रैंच प्रणाली के सारे दोष आ जायेगे। उन्होने कहा कि पैनल प्रणाली का उपयोग विश्वविद्यालयों के चुनावों में किया गया है। किन्तु वह जो उम्मीदवार पराजित हुए वे कुलपति के विरोधी हो गये और विश्वविद्यालय प्रशासन को ठप्प करने में उनकी प्रमुख भूमिका रही।[27]

प्रोफेसर शिबनलाल सक्सेना ने गवर्नरों के निर्वाचन की पद्यति का समर्थन किया। यदि गवर्नर सार्वजनिक वयस्क प्रणाली द्वारा चुने जायें तो उनको लोकसम्मान प्राप्त होगा, जैसा इंगलैण्ड में राजा को प्राप्त है। यदि हमें भारतीय संविधान को ब्रिटिश माडेल पर आधारित करना है, तो गवर्नरों को केवल नाममात्र की कार्यपालिका बनाने से काम नहीं चलेगा, गवर्नरों को वही सम्मान और प्रतिष्ठा प्राप्त होनी चाहिए जो ब्रिटेन में राजा को प्राप्त है। केंद्र द्वारा नियुक्त गवर्नरों की कोई प्रतिष्ठा नहीं होगी। भूतकाल में जो गवर्नर हुए उनमे से बहुतों का चरित्र इस प्रकार का था कि जनता उनको कभी निर्वाचित नहीं करती। दूसरे, इसमें कोई दिक्कत नहीं होनी चाहिए यदि गवर्नर और मुख्यमंत्री दोनों निर्वाचित हों क्योंकि दोनों ही राष्ट्रभक्त होंगे और राज्य के विकास में जी जान से जुट जायेंगे। तीसरे, यदि राष्ट्रपति गवर्नरों की नियुक्ति करता है तो केंद्र सरकार प्रान्तीय सरकारों पर हावी हो जायेगी और प्रान्तीय सरकारों के कार्यों में आये दिन हस्तक्षेप करने लगेगी। ऐसी स्थिति में प्रधानमंत्री प्रान्तीय सरकारों को अपने हाथ की कठपुतली बना लेगा। चौथे, जब गवर्नर किसी प्रान्त की संविधानिक मशीनरी के

विफल होने की रिपोर्ट केंद्र सरकार को भेजेगा तो मुख्यमत्री प्रान्त का बहुमत प्रान्त में अशान्ति फैला सकता है। पॉचवें, एक संघीय संविधान में मनोनीत गवर्नरों के लिए कोई स्थान नहीं है। लोग स्वयं यह देखेंगे कि गवर्नर केंद्र से सहयोग करे और देशहित में प्रशासन चलाये। गवर्नरों का निर्वाचन कराने से कोई अतिरिक्त समस्या या कठिनाई उत्पन्न नहीं होगी। गवर्नर का निर्वाचन देश के निर्वाचन के साथ किया जा सकता है।[28]

श्री कन्हैया लाल मणिकलाल मुंशी ने मनोनीत गवर्नरों का समर्थन किया। उन्होंने कहा कि 1947 में जब यूनियन कान्स्टीट्यूशन कमेटी और प्राविन्शियल कान्स्टीट्यूशन कमेटी की बैठक हुई तो उसमें दो विरोधी मत व्यक्त किये गये - (1) कुछ लोगो का मत था कि गवर्नर को अमेरिकी मॉडेल का अनुकरण करते हुए सार्वजनिक वयस्क मताधिकार के आधार पर निर्वाचित करना चाहिए; (2) अधिकांश लोगों का मत था कि ब्रिटिश माडेल का अनुकरण करते हुए गवर्नर को राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत किया जाना चाहिए और उसे कोई अधिकार नहीं मिलना चाहिए, वह एक नाममात्र की कार्यपालिका हो। अंत में इस दूसरे दृष्टिकोण को ही मान्य किया गया। उस समय यह विचार व्यक्त किया गया था यदि दलों में विभाजन के परिणास्वरूप केंद्र या प्रान्तों में कोई स्थायी सरकार बनाना सम्भव न हो तो एक शक्तिशाली राष्ट्रपति और वयस्कमताधिकार की प्रणाली से निर्वाचित गवर्नर देश को स्थायित्व प्रदान करेगा। अप्रैल 1949 में दोनों समितियों की फिर बैठक हुई और अंत में यह निर्णय लिया गया कि गवर्नर की नियुक्तिराष्ट्रपति के द्वारा होनी चाहिए उस समय यह विचार व्यक्त किया गया कि प्रान्त के सबसे योग्य व्यक्ति मुख्यमंत्री, मंत्री और कैबिनेट मंत्रियों के रूप में चुनाव लड़ेंगे। इसलिये यह सोचा गया कि राज्य का धन और शक्ति व्यर्थ जायगी। यदि हम गवर्नरों का चुनाव करायें क्योंकि तब गौण क्षमता वाले राजनीतिज्ञ इन पदों के लिये चुनाव लड़ेंगे। ऐसे व्यक्ति दल में द्वितीयक स्थानों पर होने के कारण मुख्यमंत्री के सामने सिर झुकाकर चलेंगे। फिर सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि यदि मुख्य मंत्री तो अपने दल का नेता है और केवल एक क्षेत्र से चुना गया है, किन्तु गवर्नर सार्वजनिक वयस्क मताधिकार के आधार पर पूरे प्रान्त से निर्वाचित हुआ है तो दोनों में संघर्ष होना अनिवार्य है। शक्ति का केंद्र मुख्यमंत्री है किन्तु पूरे प्रान्त का प्रतिनिधि गवर्नर है। फिर यदि ऐसे निर्वाचित गवर्नर को मुख्यमंत्री के अधीन कार्य करना पड़े तो वह क्यों ऐसा करे। गवर्नर कभी भी अपनी गौण स्थिति से संतुष्ट नहीं होगा। दोनों समितियों ने यह निर्णय लिया कि मुख्यमंत्री को तो प्रान्तीय शासन का मुखिया होना ही चाहिए। इन कारणों से गवर्नर का निर्वाचन करने के विचार का त्याग कर दिया गया। 1935 के अधिनियम में गवर्नरों का अनुच्छेद 144(b) के अन्तर्गत - उसे मंत्रियों को हटाने के व्यापक अधिकार दिये गये थे। इस अनुच्छेद को हटाने का निर्णय लिया गया है। ब्रिटिश संविधान का अनुसरण करते हुए गवर्नर के इस स्वविवेकी अधिकार को समाप्त किया जा रहा है और गवर्नर ही राज्य का प्रधान या नाममात्र की कार्यपालिका रहेगा।

किन्तु श्री मुंशी ने अल्लादी कृष्णस्वामी के विचारों का खंडन करते हुए कहा कि भारतीय गवर्नरों की तुलना कनाडा के गवर्नरों से नहीं की जा सकती है; भारतीय गवर्नरों के पद का स्वरूप कनाडा के गवर्नरों से

मिलता जुलता नहीं है। कनाडा का गवर्नर ब्रिटिश सरकार का एजेंट है, यद्यपि वह भी नाममात्र की कार्यपालिका है। वह अनच्छेद 147 के अनुसार सामान्य स्थितियों मे मंत्रियों के परामर्श के अनुसार चलेगा।

श्री मुंशी के अनुसार गवर्नरों को मनोनीत करने के कारण हैं। उस समय की कल्पना कीजिये जब कि कोई दल बहुमत में नही है, या यदि एक दल बहुमत में तो किन्तु वह कई गुटों मनें बॅटा हुआ है और मुख्यमंत्री पद के कई दावेदार हैं। ऐसी स्थिति में वह व्यक्ति अधिक उपयुक्त होगा जो उस राज्य की राजनीति का अंग नहीं है। यदि गवर्नर उसी राज्य का हो और उसे निर्वाचित किया जाया तो वह उस राज्य की राजनीति का खिलाड़ी होने के कारण निष्पक्ष भूमिका अदा नहीं कर सकेगा। अतएव राष्ट्रपति द्वारा प्रान्त के बाहर से नियुक्त व्यक्ति इन स्थितियों में राज्य में निष्पक्ष भूमिका अदा कर सकेगा एक निर्वाचित गवर्नर कभी भी ऐसी भूमिका अदा नहीं कर सकेगा और वह इस पक्ष या उस पक्ष से मिलने का प्रयास करेगा और उसके निर्णय पक्षपातपूर्ण होंगे।

राज्य की संविधानिक मशीनरी के विफल होने की स्थिति में गवर्नर को राष्ट्रपति को रिपोर्ट देना पड़ता है। ऐसी स्थिति में भी एक निर्दलीय मनोनीत गवर्नर अच्छी भूमिका अदा कर सकता है क्योंकि उसके निर्णय पक्षपात पूर्ण होंगे। अनुच्छेद 188 के अनुसार गवर्नर की रिपोर्ट दलीय आधार पर नहीं प्रेषित की जानी चाहिए। उसकी रिपोर्ट निष्पक्ष होनी चाहिए। ऐसी स्थिति में गवर्नर सीधे केंद्र से जुड़े होने के कारण निष्पक्ष रूप से, बिना किसी दल से अपना सम्बन्ध स्थापित किये रिपोर्ट देगा।[29]

1947 तक पंडित जवाहर लाल नेहरू भी गवर्नरों के निर्वाचन के पक्षपाती थे। किन्तु 1947 के बाद वे भी गवर्नरों को राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त या मनोनीत करने के समर्थक हो गये। श्री नेहरु ने कहा कि वे गवर्नरों को मनोनीत करने के पक्ष में सभी दृष्टिकोण से समर्थन करते हैं। न केवल व्यावहारिक दृष्टिकोण से वरन लोकतंत्रीय दृष्टि से भी वे गवर्नरों के मनोनीत किये जाने की प्रणाली को उपयुक्त मानते हैं। निर्वाचित गवर्नर पृथकतावादी, क्षेत्रीय और साम्प्रदायिक भावनाओं का समर्थन करेंगे। इसके अतिरिक्त गवर्नरों और मुख्यमंत्रियों के बीच प्रतियोगिता आरम्भ हो जायेगी। फिर गवर्नर का चुनाव कराने में बहुत धन और शक्ति का अपव्यय होगा। गवर्नरों को यह देखना चाहिए कि प्रान्त की मशीनरी सुचारु रूप से चले और इसमें वह अनावश्यक हस्तक्षेप न करे। श्री नेहरु ने कहा कि दुनिया भर में सरकारें टूट रही हैं, विघटित हो रही है और बहुत कम लोकतंत्रीय सरकारें बची हैं। भारत में हमें इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि एक स्थायी लोकतंत्रीय व्यवस्था स्थापित की जाये। हमे यह देखना चाहिए कि हमें कोई ऐसा कदम नहीं उठाना चाहिए जिससे भारतीय संविधानिक व्यवस्था तार-तार हो जाय और शासन लुंज-पुंज हो जाय। इससे देश में संघर्ष और संघर्ष के परिणामस्वरूप विघटन उत्पन्न होगा। हमें प्रत्येक बात पर दृष्टि से विचार करना चाहिए कि भारत की एकता, स्थिरता और सुरक्षा बनी रहे। अधिकाधिक निर्वाचन का अर्थ है समय और धन की बर्बादी। लोगो का ध्यान

अन्य महत्वपूर्ण मामलों से हटकर चुनावों में लग जाता है, जो धन राष्ट्र निर्माण में खर्च होना चाहिए वह चुनाव में खर्च हो जाता है। अंत में पंडित नेहरु ने कहा कि गवर्नरों का चुनाव होने से अल्पसंख्यक वर्गों को प्रतिनिधित्व नहीं दिया जा सकेगा। ऐसी स्थिति में केवल बहुसंख्यक वर्ग को ही प्रतिनिधित्व दिया जा सकेगा। गवर्नरों को मनोनीत करने और राज्य के बाहर से नियुक्त करने पर सभी अल्पसंख्यकों को प्रतिनिधित्व दिया जा सकेगा।[30]

मुहम्मद सादुल्ला ने राज्यपालों के निर्वाचन का समर्थन किया। निर्वाचित गवर्नर और निर्वाचित मुख्यमंत्री के बीच आपस में अच्छा संयोग होगा और वे आपस में मिलकर कार्य करेंगे क्योंकि वे एक ही दल के होंगे। प्रान्त के मतदाता गवर्नर का निर्वाचन करके प्रान्त के प्रशासन में सहभागिता कर सकेंगे। यदि एक प्रान्त के गवर्नर को किसी दूसरे प्रान्त में गवर्नर नियुक्त किया जाता है तो वह उस प्रान्त के बारे में पूरी तरह अनभिज्ञ रहेगा अतएव प्रशासन चलाने में असफल होगा। फिर चूँकि गवर्नर केन्द्र का एजेंट होगा और केंद्र के निर्देशों पर कार्य करेगा अतएव उसमें और गवर्नर में आये दिन खटपट होगी। विशेषकर यदि केद्र में एक दल सरकार में है और प्रान्त में एक दल सरकार में है। इसके अतिरिक्त गवर्नर का निर्वाचन उसी समय हो सकता है जब कि प्रान्त में विधानसभा के लिये निर्वाचन हो, इससे कोई अतिरिक्त शक्ति और धन खर्च नहीं होगा। उन्होंने कहा कि भूतकाल में आई.सी.एस. कैडर से भारत मे गवर्नरों की नियुक्ति की जाती थी और उस समय भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने ऐसे गवर्नरों की नियुक्ति की कड़ी आलोचना की थी। किन्तु आज वह स्वयं गवर्नरों की नियुक्ति के पक्ष में है और एक प्रान्त के व्यक्ति को दूसरे प्रान्त में गवर्नर के पद पर नियुक्त करना चाहते हैं। श्री सादुल्ला खान ने आरोप लगाया कि कांग्रेस पार्टी चाहती है कि केवल उसी दल सेगवर्नर नियुक्त किये जाये और इसी कारण वह गवर्नरों के निर्वाचन के खिलाफ है। ऐसी परिस्थितियोमें अन्य दलों से गवर्नरों की नियुक्ति नहीं की जा सकेगी।[31]

श्री टी.टी. कृष्माणामाचारी ने राज्यपालों को मनोनीत करने की पद्यति का समर्थन किया। उनके अनुसार कुछ सदस्यों ने कनाडा और आस्ट्रेलिया को जो उदाहरण दिया है वह गलत है। इल राज्यों में गवर्नरों को नियुक्त किया जाता है और केंद्रीय केबिनेट के परामर्श पर उनको पद से अलग किया जा सकता है। श्री कृष्णामाचारी ने कहा कि वे यह भी चाहते है कि प्रधानमत्री जब गवर्नरों की नियुक्ति करे तो वह जिस प्रान्त के लिये गवर्नरों की नियुक्ति की जानी है उस प्रान्त के मुख्यमंत्री से अवश्य परामर्श लें। उनके अनुसार अब तक इस दिशा में परम्पराएँ विकसित हो चुकी है। उन्होंने प्रान्त के बाहर से ही गवर्नरों की नियुक्ति का समर्थन किया। विधेयकों की जाँच करते हुए गवर्नरों को राष्ट्रपति से निर्देश प्राप्त करना चाहिए।

ऐसी स्थिति में विधेयकों को राष्ट्रपति के निर्देश पर ही गवर्नर द्वारा सुरक्षित रखा जायगा और इस सम्बन्ध में गवर्नर दायित्व से मुक्त हो जायगा अन्यथा उसके और मुख्यमंत्री के बीच सम्बन्धों में कडुवाहट आ सकती है।

अनुच्छेद 188 पर बोलते हुए श्री कृष्णामाचारी ने कहा कि राष्ट्रपति प्रधानमंत्री के परामर्श से कार्य करेगा और प्रधानमंत्री संसद को उत्तरदायी रहेगा। कांग्रेस वर्तमान में एक पूर्ण बहुमत प्राप्त राष्ट्रीय दल है अतएव वह कभी भी तानाशाही तौर तरीकों को नही अपनायेगी, वह दूसरे दलों के लोकतंत्रीय अधिकारों का सम्मान करेगी। वह उनके विचारों का भी ध्यान रखेगी। यदि गवर्नर का निर्वाचन किया जाय तो इससे शक्ति के दो केंद्र स्थापित हो जायेंगे - गवर्नर और मुख्यमंत्री। इससे इन दो शक्ति केंद्रों के बीच निरंतर विवाद छिड़ा रहेगा। राज्यपालों की नियुक्ति उनकी योग्यता को देखकर नहीं किन्तु उनकी व्यावहारिक बुद्धि के आधार पर की जानी चाहिए। बहुत अधिक योग्य गवर्नर को मतदाता न भी चाहें तो ऐसे गवर्नर का मुख्यमंत्री से अक्सर विवाद हो सकता है।[32]

श्री व्ही. व्ही. सर्वटे ने भी गवर्नरों की नियुक्ति का समर्थन किया है।[33]

श्री आर. के. सिधवा प्रारम्भ से ही गवर्नरों की नियुक्ति के समर्थक थे। 1947 के पूर्व भी उन्होंने गवर्नरों की नियुक्ति का समर्थन किया था। उनके अनुसार गवर्नर कोई वास्तविक कार्यपालिका नहीं है, वह एक नाम मात्र की संविधानिक कार्यपालिका है। गवर्नरों को प्रान्त के बाहर से नियुक्त किया जाना चाहिए। यदि उसी प्रान्त से गवर्नरों की नियुक्ति की जाय तो दल के भीतर काफी झगड़े झाँसे होंगे। फिर ऐसा नहीं होना चाहिए कि थोड़े से बड़े प्रान्तों से ही गवर्नरों की नियुक्ति की जाय। इससे इन प्रान्तों का एकाधिकार स्थायित्व हो जायगा, जो सर्वथा अनुचित है। सभी प्रान्तों से गवर्नरों की नियुक्ति होनी चाहिए जिससे राज्य प्रशासन में उनकी साझेदारी बनी रहे। राष्ट्रपति को इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि प्रत्येक प्रान्त में योग्य व्यक्ति पाये जाते हैं और सभी प्रान्तों को गवर्नरों की नियुक्ति में समान रूप से अवसर दिया जाना चाहिए।[34]

अंत में डा. अम्बेडकर ने वाद विवाद का समापन किया। उन्होंने कहा कि गवर्नर के कोई संविधानिक कार्य या शक्तियाँ नहीं होंगी - उसे ब्रिटिशकालीन गवर्नरों के कोई स्वविवेकी या व्यक्तिगत निर्णय की कोई शक्तियाँ नहीं होंगी। नये संविधान के अनुसार गवर्नर सभी कार्यों का सम्पादन अपने मंत्रिमंडल के परामर्श से करेगा। इसलिये गवर्नरों के निर्वाचन का कोई अर्थ नहीं रह जाता। गवर्नरों का निर्वाचन कराना में काफी खर्च होगा। इस चुनाव को सम्पन्न कराने में काफी शक्ति और समय का अपव्यय होगा। कोई भी व्यक्ति, बिना यह जाने कि गवर्नरों की संविधान के अंतर्गत क्या स्थिति है, उसके क्या कार्य हैं, चुनाव लड़ने के लिए तैयार नहीं होगा। ड्राफ्टिंग कमेटी (प्रारूप समिति) को यह प्रतीत हुआ कि गवर्नरों की कोई संविधानिक शक्तियॉ नहीं होंगी, उसके कार्य और उसकी भूमिका अत्यधिक सीमित होगी, उसका पद एक शोभा का पद या उसके अलंकारिक प्रधान का पद होगा। डा. आम्बेडकर ने कहा कि यह कोई मायने नहीं रखता कि गवर्नर के पद का निर्वाचन होगा या उसे मनोनीत किया जायगा। जो बात महत्व की है वह यह है कि गवर्नर को क्या शक्तियाँ दी गई हैं और क्या वह राज्य के प्रशासन में हस्तक्षेप कर सकता है। प्रारूप समिति ने यह महसूस किया कि नये संविधान के अन्तर्गत गवर्नरों की कोई शक्तियाँ नहीं होंगी।

इन आधारों पर संविधान सभ में यह निर्णय लिया गया कि गवर्नरों को राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किया जायेगा।[35]

गवर्नर के पद की अवधि (Term of office of the Governor)

श्री के.टी. शाह ने अनुच्छेद 132 में संशोधन पेश किया। उन्होंने कहा कि चूँकि गवर्नर को राष्ट्रपति नियुक्त करेगा, अतएव जब तक गवर्नर संविधानिक ढंग से कार्य करता है तब तक उसे पद से नहीं हटाया जायेगा। सारांश में राष्ट्रपति जब चाहे तब गवर्नरों को पद से नही हटा सकेगा। के.टी.शाह ने कहा कि संविधान में यह वाक्यांश भी जोड़ा जाना चाहिए कि यदि गवर्नर पर राजद्रोह सिद्ध हो जाय या वह राष्ट्र या प्रान्त को अखंडता, सुरक्षा को खतरे मे डाल रहा हो ऐसी हालत में राष्ट्रपति उसे पदच्युत कर सकता है। किन्तु ये असाधारण स्थितियाँ हैं सामान्य स्थितियों में यह प्रावधान लागू नहीं होगा। आगे श्री शाह ने इस प्रकार का संशोधन पेश किया - गवर्नर को अस्वस्थता, पंगुता और भ्रष्टाचार के आधार पर पद से हटाया जा सकता है। श्री शाह ने एक और संशोधन प्रस्तुत करते हुए कहा कि यदि गवर्नर पद से इस्तीफा दे दे या उसकी मृत्यु हो जाय तो गवर्नर का पद रिक्त माना जायगा। यह केवल एक आकस्मिक स्थिति के लिये है।[36]

डा. अम्बेडकर ने इस अनुच्छेद में अपना संशोधन पेश करते हुए कहा कि गवर्नर को राष्ट्रपति अपनी स्वेच्छा से पद से हटा सकता है।[37]

प्रोफेसर शिबनलाल सक्सेना ने कहा कि राष्ट्रपति द्वारा गवर्नर को उसके पद से जब चाहे तब हटा देना एक अत्यधिक तानाशाही पूर्ण लोकतंत्र के विरुद्ध व्यवस्था है। ऐसी व्यवस्था गवर्नर के पद की स्वतंत्रता को समाप्त कर देगी। गवर्नर राष्ट्रपति अर्थात् प्रधानमंत्री का सेवक बन जायेगा और ऐसी व्यवस्था के तहत गवर्नर कोई इज़्ज़त नहीं रह जायगी।[38]

श्री लोकनाथ मिश्रा ने डा. अम्बेडकर के संशोधन का समर्थन करते हुए कहा कि राष्ट्रपति अपने स्वेच्छा से गवर्नर को पद से हटा सकेगा। ऐसा इसलिये जरूरी है क्योंकि राष्ट्रपति ने ही गवर्नर की नियुक्ति की है और जो अधिकारी नियुक्त करता है उसे ही हटाने का अधिकार भी प्राप्त होना चाहिए। यह इसलिये जरूरी है कि गवर्नर सामान्यतया उस प्रान्त का व्यक्ति नहीं होगा और वह मनमाने ढंग से कार्य कर सकता है। श्री लोकनाथ मिश्रा यह भी चाहते थे कि गवर्नर को राज्य की व्यवस्थापिका भी पद से हटा सके।

डा. अम्बेडकर ने कहा कि "Pleasure" शब्द एक व्यापक शब्द है; इसके अंतर्गत गवर्नर को हटाने के लिये वे सब कारण आ जाते है जिनकी ओर सदस्यों ने इंगित किया है अतएव "Pleasure" शब्द में अन्य कारणों को जोड़ने का कोई लाभ नही मिलेगा।

गवर्नर की योग्यताएँ, वेतन, भत्ता आदि

ड्राफ्ट संविधान के अनुच्छेद 133 को हटा दिया गया। अनुच्छेद 134 में गवर्नर की योग्यताओं पर प्रकाश डाला गया है। अनुच्छेद 135 में गवर्नर के पद के लिये कतिपय निर्योग्यताएँ, भत्ता, वेतन आदि का उल्लेख किया गया है।

डा. अम्बेडकर ने स्वयं इन अनुच्छेदों मे कई संशोधन पेश किये। श्री हरिविष्णु कामथ ने राजभवन से सम्बन्धित कतिपय संशोधन प्रस्तुत किये।

श्री कामथ ने कहा हमारे संविधान में इसी तरह कई अनावश्यक बातें हैं जो इसके कलेवर को नाहक बढ़ा देती है इस दूषित प्रवृत्ति के कारण सारा संविधान बोझिल हो जाता। हमें यह मानकर चलना चाहिए कि गवर्नर का एक सरकारी बंगला या राजभवन होगा ही, फिर इसे संविधान में लिखने की क्या आवश्यकता है। संयुक्त राज्य अमेरिका के संविधान में यह प्रावधान नही है। प्रारूप समिति ने इस प्रावधान को आयरिश संविधान से लिया है। डा. अम्बेडकर ने कहा कि चूँकि 1935 के संविधान में गवर्नर जनरल और गवर्नरों के लिये सरकारी बंगलों का उल्लेख है अतएव प्रारूप समिति ने भी इस प्रावधान को ज्यो का त्यों रख दिया। किन्तु श्री कामथ ने कहा कि हमें पुरानी बातों का अंधानुकरण करने की प्रवृत्ति से बचना चाहिए।

श्री दास ने प्रारूप समिति की इस आधार की कड़ी आलोचना की कि राज्यपालों का मासिक वेतन 5,500 रु० रखा जाय। इतनी ऊँची तनख्वाह देना गाँधीजी के सिद्धान्तों का सरासर उल्लंघन करना है। श्री दास ने कहा कि स्वतंत्र भारत में गवर्नरों को वह बाह्याडम्बर और भोग का नग्न प्रदर्शन छोड़ देना चाहिए जो अंग्रेजों के जमाने के गवर्नर दिखलाया करते थे। श्री दास ने कहा कि ये गवर्नर वास्तव में रानी मधुमक्खी की तरह हैं जिसे बिना कोई काम किये सारी विलासिता की चीजें अन्य मधुमक्खियों द्वारा प्रदान की जाती है (Drones)। ये गवर्नर जीवन पर्यन्त गवर्नर बने रहेंगे और राजकोष पर भार बने रहेंगे।

श्री रोहिणी कुमार चौधरी ने कहा कि गवर्नर को सरकारी भवन मिलना ही चाहिए, अन्यथा ने दूसरे प्रान्त में जाकर कई कठिनाइयों का सामना करेगे और अपने को अजनबी मानेंगे। दूसरे, गवर्नर को पर्याप्त भत्ता मिलना चाहिए जिससे वह अपने मेहमानों की पर्याप्त खातिरदारी कर सके। गवर्नर को कई सामाजिक सांस्कृतिक कार्यक्रमों में भाग लेना पड़ता है, इन कार्यों को उसे सम्मानजनक ढंग से पूरा करने के लिये पर्याप्त भत्ता दिया जाना चाहिए।[39]

श्री विश्वनाथ दास ने कहा कि चूँकि गवर्नर नाममात्र की कार्यपालिका होंगे उनका पद मात्र अलंकारिक होगा अतएव उन्हे इतनी ऊँची तनख्वाह नही दी जानी चाहिए विशेषकर तब जबकि राष्ट्रीय आन्दोलन के दौरान कराची कांग्रेस में गवर्नर की मात्र 500 रु० तनख्वाह देने का ही निर्णय लिया गया था।[40]

श्री थिरुमल राव ने कहा कि कुछ भी प्रान्तों की व्यवस्थापिका की मर्जी पर नही छोड़ा जाना चाहिए और संविधान सभा को ही गवर्नरों की तनख्वाह निर्धारित कर देना चाहिए। भले ही शक्ति की दृष्टि से गवर्नरो को मंत्रियों और प्रान्तों की व्यवस्थापिका की तुलना में बहुत कम या नही के बराबर शक्ति मिली हो किन्तु गवर्नर की मान मर्यादा या प्रतिष्ठा इन दोनों से अधिक ऊँची है। जनता की आँखों में यह पद प्रान्त का सबसे अधिक प्रतिष्ठित पद है। अतएव संविधान सभा को ही गवर्नरों का वेतन निश्चित कर देना चाहिए जिससे प्रान्तीय व्यवस्थापिका के विविध दल मनमाने ढंग से उनका वेतन घटायें या बढ़ाये नहीं।[41]

श्री के.टी. शाह ने गवर्नरों को पेंसन और भत्ता देने का संशोधन पेश किया। किन्तु यह संशोधन संविधान सभा द्वारा अमान्य कर दिया गया। शाह का यह उद्देश्य था कि इन पदों पर कार्य करने वाले विख्यात, प्रतिष्ठित व्यक्तियों को वृद्धावस्था में अभाव और गरीबी में जीवन व्यतीत न करना पड़े। साथ ही जिससे कि वे सेवानिवृत्ति के बाद किसी प्रकार के प्रलोभन में न पड़े इसलिये भी यह आवश्यक है कि उन्हें अच्छी पेंशन दी जाय।[42]

गवर्नरों को शपथ

डा. अम्बेडकर ने संविधान के प्रारूप में संशोधन पेश किया। इसी प्रकार टी.टी. कृष्णमाचारी ने भी संशोधन पेश किया।श्री टी.टी. कृष्णामाचारी ने कहा कि यह उचित होगा कि गवर्नर प्रान्त की व्यवस्थापिका के सम्मुख शपथ न लेकर प्रान्त के हाइकोर्ट के मुख्य न्यायाधीश के सामने शपथ ले।

एच. व्ही. कामथ ने कहा कि गवर्नर ईश्वर के नाम पर यासत्यनिष्ठा से पद की शपथ ले सकते हैं। श्री हृदय नाथ कुंजरु ने भी कहा कि किसी को हम ईश्वर के नाम पर शपथ लेने के लिये बाध्य नहीं कर सकते हैं। वह यदि चाहे तो "सत्यनिष्ठा से" शपथ ले सकता है।[43]

आकस्मिक प्रावधान

संविधान के प्रारूप के तीन अनुच्छेदों को हटा दिया गया। अनुच्छेद 138 पर वाद विवाद हुआ। दो संशोधन पेश किये गये– एक ब्रजेश्वर प्रसाद द्वारा और दूसरा मोहम्मद ताहिर द्वारा।

गवर्नरों की क्षमादान आदि की शक्ति

अनुच्छेद 141 में गवर्नरों को क्षमादान, अपराधियों के दंड को कम करने, दंड की विशेषता को बदल देने आदि से सम्बन्धित शक्तियाँ सम्मिलित हैं।

गवर्नर के कार्यपालिका सम्बन्धी शक्तियाँ

संविधान के प्रारूप 142 और 143 में गवर्नर की कार्यपालिका शक्तियों पर विचार किया गया है। श्री कृष्णामाचारी ने संविधान के प्रारूप के अनुच्छेद 142 से सम्बन्धित एक संशोधन पेश किया। प्रान्त की

कार्यपालिका शक्ति प्रान्त के कानून बनाने के क्षेत्र तक विस्तृत रहेगी। श्री हरिविष्णु कामथ ने इस आशय का संशोधन प्रस्तुत किया कि प्रत्येक प्रान्त में एक मंत्रीपरिषद होगी जिसका प्रमुख मुख्यमंत्री होगा जिसका कार्य गवर्नर को परामर्श देना होगा।

श्री कामथ ने कहा कि हमने 1935 के अधिनियम का अंधानुकरण किया है वास्तव मे हमें गवर्नर को प्रान्तीय क्षेत्र में उतनी ही शक्तियाँ देनी चाहिये जितनी कि राष्ट्रपति को संघीय क्षेत्र में दी गयी है और चूँकि राष्ट्रपति को कोई स्वविवेकी और व्यक्तिगत निर्णय के अधिकार नहीं दिये गये हैं इसीलिये गवर्नरों को भी ये स्वविवेकी अधिकार नहीं दिये जाने चाहिए। के. टी. शाह ने भी इस सम्बन्ध में एक संशोधन पेश किया जिसका उद्‌देश्य था कि प्रान्त की सरकार ऐसी चले कि वह सामूहिक रूप से व्यवस्थापिका को उत्तरदायी हो और गवर्नर इसमें किसी प्रकार का हस्तक्षेप न करे। गवर्नर संविधानिक प्रधान होगा और वह मंत्रीपरिषद् के परामर्श से कार्य करेगा। शासन चलाने का उत्तरदायित्व मुख्यमंत्री का होगा, गवर्नर का नहीं।[44]

श्री टी.टी. कृष्माचारी ने कहा कि गवर्नरों के स्वविवेकी अधिकार कुछ सीमा तक बने रहेंगे, यद्यपि उनका प्रयोग सामान्य स्थितियों में नहीं होगा।

श्री ब्रजेश्वर प्रसाद ने कहा कि यदि हम इस अनुच्छेद का अनुसरण करें तो इससे तो ऐसा लगता है कि गवर्नर अपने मंत्रिमंडल के परामर्श को मानने के लिए बाध्य नहीं है। इस अनुच्छेद का यह अर्थ निकलता है कि गवर्नर को मंत्रियों को केवल परामर्श देने का अधिकार है। उनके परामर्श को गवर्नर माने या न माने यह उस पर निर्भर करता है। ब्रजेश्वर प्रसाद ने कहा कि गवर्नरों को पर्याप्त स्वविवेकी और व्यक्तिगत निर्णय की शक्तियॉ प्राप्त होनी चाहिए और गवर्नरो के विशेष उत्तरदायित्व (Special Responsibilities) भी निर्धारित किये जाना चाहिए। उनका कहना था कि वर्तमान में प्रान्तों में नेतृत्व का अभाव और सुयोग्य व्यक्तियो के अभाव मे प्रान्तों में कई तरह की बातें चल रही हैं। जब तक गवर्नरों को व्यापक अधिकार नहीं दिये जाते तब तक प्रान्तों का शासन ठीक से नहीं चलाया जा सकता। उनके अनुसार यद्यपि ऐसी प्रक्रिया लोकतंत्रीय नहीं है फिर भी देशहित के लिये इसी प्रकार की व्यवस्था अपनायी जानी चाहिए।[45]

डॉ. पी. एस. देशमुख का कहना था कि अनुच्छेद 143,1935 के संविधान का अनुकरण है। उनका यह मत था कि गवर्नरों को व्यापक अधिकार दिये जाने चाहिए उन्हें मंत्रीमंडल की बैठकों की अध्यक्षता करने की शक्तियॉ भी दी जानी चाहिए।[46]

पंडित हृदय नाथ कुंजरु ने कहा कि ये संशोधन हमें ब्रिटिश साम्राज्यवाद की याद दिलाते हैं अतएव इन प्रावधानों और संशधनों को हटा देना चाहिए। श्री कुंजरु का कहना था कि जब तक कि संविधान यह स्पष्ट रूप से न कहे कि गवर्नर के स्वविवेकी अधिकार है तब तक गवर्नरों की मंत्रिमंडल के परामर्श को मानना चाहिए। उन्होंने श्री देशमुख के इस सुझाव का खंडन किया कि गवर्नर को मंत्रिमंडल की अध्यक्षता करने का

अधिकार दिया जाना चाहिए। यह व्यवस्था लोकतंत्रीय और उत्तरदायी सरकार के विरुद्ध होगी। अतएव अनुच्छेद 183 की भाषा इस प्रकार रखी जाय कि उससे गवर्नरों को किसी प्रकार से स्वविवेकी अधिकार देने की गुंजाइश न रखी जाय।[47]

प्रोफेसर शिबन लाल सक्सेना गवर्नरों को किसी प्रकार की स्वविवेकी शक्तियॉ दिये जाने के विरुद्ध थे। ऐसी शक्तियॉ भूतकाल में अँग्रेज गवर्नरों को दिये गये थे, और भारतीयों को इन शक्तियों के चलते अत्यधिक अपमानित होना पड़ा था। उन्होंने कहा कि यदि इन शक्तियों को पूर्ववत् संविधान में स्थान दिया जाता है तो इससे गवर्नरों और मुख्यमंत्रीयों के बीच का विवाद काफी बढ़ जायेगा।[48]

श्री महावीर त्यागी ने कहा कि गवर्नरों की स्वविवेकी शक्तियाँ उचित हैं क्योकि गवर्नरों को केन्द्र सरकार के एजेंट के रूप में कार्य करना पड़ता है। यद्यपि प्रान्त पूर्णतया स्वायत्त है फिर भी केंद्र सरकार को कुछ अवशिष्ट या सुरक्षित अधिकार हैं। श्री त्यागी ने कहा कि लोकतंत्र" उस जानवर के समान है जो अपने विवेक से नहीं अपनी अन्तः प्रेरणाओं से कार्य करता है, ऐसे जानवर पर नियंत्रण रखने के लिये ही गवर्नरों को स्वविवेकी और व्यक्तिगत नियंत्रण के अधिकार दिये जाने चाहिए। इसके अतिरिक्त प्रान्त की सरकारें अपनी नीतियों में स्थिर नहीं भी रह सकती। आज इस दल को सरकार है कल उस दल की सरकार है, इससे राज्य सरकार की नीतियॉ बदलती रहेंगी। गवर्नर भी बदलता रहेगा, किन्तु केंद्र सरकार की नीतियॉ और उसके द्वारा दिये गये निर्देश नहीं बदलेंगे। प्रान्तों या राज्यों को जितनी शक्तियॉ दी जायेंगी उतना ही उन पर अंकुश लगाने की आवश्यकता होगी। गवर्नर को एक तरफ प्रान्त या राज्य में केंद्रीय नीतियों के रक्षक के रूप में कार्य करना होगा और दूसरी तरफ संविधान के रक्षक के रूप में। इसलिये गवर्नरों को दिये शक्तियों में कोई कटौती नहीं की जानी चाहिए।[49]

श्री बी. एम. गुप्ता ने भी श्री देशमुख का विरोध करते हुए कहा कि गवर्नर को केबिनेट की बैठकों की अध्यक्षता नहीं करनी चाहिए। यदि वह केबिनेट की बैठकों की अध्यक्षता करता है तो वह केबिनेट के निर्णयों को पूरी तरह प्रभावित करेगा और राज्य के प्रशासन के मामले में दखलदांजी करने लगेगा। गवर्नर को वे ही शक्तियाँ दी जानी चाहिए जो उसके लिये संविधानिक प्रमुख (Constitutional head) के रूप में कार्य करने के लिये आवश्यक है; उसे अन्य शक्तियाँ नही दी जानी चाहिए।[50]

श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर ने डा. बी. आर. अम्बेडकर के संशोधन का समर्थन किया। इस अनुच्छेद का विश्लेषण करते हुए उन्होंने कहा कि गवर्नर को अपने मंत्रीमंडल के परामर्श से ही कार्य करना चाहिए। किन्तु जहाँ गवर्नर से अपेक्षा की जाती है कि वह अपने स्वविवेक में कार्य करेगा वहाँ उसे मंत्रीपरिषद् के परामर्श के अनुसार कार्य नहीं करना है।

पंडित ठाकुर दास भार्गव ने भी श्री कामथ के संशोधन का विरोध किया। उन्होंने इस कथन का विरोध किया कि गवर्नर एक " डमी या यंत्र" (dummy orautomaton) के समान मंत्रीपरिषद् की सभी बातों को मानता जायेगा। उनके अनुसार गवर्नर के बड़े व्यापक कार्य होंगे और इन कार्यों और जिम्मेदारियों का वहन करने के लिये उसे बहुत व्यापक शक्तियाँ दी जायेंगी। अनुच्छेद 144 के अनुसार उसे मंत्रीयों को नियुक्त करने और उन्हें अपनी "प्रसन्नता" (Pleasure) अपने पद पर बने रहने देने का अधिकार होगा। जब मंत्रिमंडल की अवधि समाप्त हो जाय या जब गवर्नर मंत्रिमंडल को हटा दे तो गवर्नर उस राज्य का शासन अपने स्वविवेक में चलायेगा। मंत्रीमंडल गठित होने के पूर्व भी गवर्नर अपने स्वविवेक में कार्य करेगा। अनुच्छेद 144 और 175 में उसे कुछ ऐसी शक्तियाँ दी गयी हैं जिन्हें वह अपने स्वविवेक में प्रयोग करेगा। संविधान के प्रारुप के अनुच्छेद 144(4) में गवर्नर को अपने स्वविवेक में प्रान्त में सुशासन, शान्ति व्यवस्था, विभिन्न वर्गों का कल्याण, इनके बीच सद्भावना बनाये रखना, विभिन्न धर्मों, सम्प्रदायों, अल्पसंख्यक वर्गों के बीच समन्वय स्थापित करने के लिये कार्य करेगा।

पंडित ठाकुर दास भार्गव ने कहा कि गवर्नर जनता और प्रशासन दोनों के लिये मार्गदृष्टा होगा, वह मंत्रिपरिषद् का भी मार्गदर्शन करेगा। उसके कुछ कार्य लिखित संविधान के अनुसार होंगे और कुछ कार्य वह अलिखित परम्पराओं और स्वविवेक के आधार पर करेगा। वह किसी दल से अपना सम्बन्ध नहीं रखेगा और वह प्रशासन और मंत्रिमंडल से तटस्थ होकर (दलबंदी से दूर) अपना सम्बन्ध स्थापित करेगा। कई मामलों में गवर्नर मंत्रीपरिषद् के परामर्श से कार्य करेगा और कुछ मामलों में उसे ऐसा परामर्श नहीं मिलेगा या मिलने पर भी वह स्वविवेक से ही कार्य करेगा।

श्री भार्गव के अनुसार गवर्नर को यह अधिकार होगा कि वह किसी भी मामले में (प्रशासन से सम्बन्धित) मंत्रियों से सूचना प्राप्त कर सकता है (Calling for information)। वह यह आदेश दे सकता है कि यदि किसी मंत्री ने कोई निर्णय लिया हो किन्तु जिस निर्णय को मंत्रिपरिषद् के सामने नही रखा गया है, ऐसे निर्णय को मंत्री मंत्रिपरिषद् के सामने रखे। मंत्रिमंडल को ऐसा आदेश देते हुए गवर्नर अपने स्वविवेक में कार्य करेगा। इस अधिकार के द्वारा गवर्नर कि किसी मंत्री के गैर जिम्मेदाराना हरकतों पर अंकुश लगा सकेगा।[51]

श्री एच. व्ही. पाटस्कर ने कहा कि इन संशोधनों को अमान्य किया जाना चाहिए। व्यावहारिक रूप से समीक्षा करने पर यह प्रावधान उचित नहीं है।[52]

श्री कृष्णचंद्र ने यह विचार व्यक्त किया कि अनुच्छेद 146 और 188 आवश्यक हैं। गवर्नर वह एजेट है जो राष्ट्रपति को पूरे देश भर में शान्ति व्यवस्था स्थापित करने में सहायता पहुँचाता है। गवर्नर के माध्यम से ही राष्ट्रपति पूरे देश में शान्ति व्यवस्था स्थापित करने के अपने दायित्व को सुचारु रूप से कर सकता है। श्री कृष्ण चंद्र शर्मा ने श्री के.टी. शाह की आलोचना करते हुए कहा कि यद्यपि मंत्री गवर्नर को उत्तरदायी नही है फिर भी वे राज्य की व्यवस्थापिका को और व्यवस्थापिका के माध्यम से राज्य की जनता को उत्तरदायी हैं।[53]

श्री रोहणी कुमार चौधरी ने डा. अम्बेडकर की कड़ी आलोचना की। श्री रोहणी कुमार ने कहा कि 1935 के अधिनियम के अन्तर्गत यह स्थिति थी कि मंत्री जो परामर्श देते थे उनको यदि गवर्नर अमान्य करता तो फिर किसी अदालत में इस बात की जानकारी नहीं ली जा सकती थी कि मंत्रियों ने क्या परामर्श दिया। इसके अतिरिक्त गवर्नर जो उस प्रान्त का नहीं होता, और जो राष्ट्रपति का मनोनीत होता है, तो फिर वह मंत्रियों और राज्य या प्रान्त की जनता से क्यों डरेगा। वह लोकमत की अवहेलना करते हुए निरंकुश ढंग से कार्य कर सकता है। श्री चौधरी ने कहा कि हमने संविधान के प्रारुप में पुनः 1935 के अधिनियम के उस घृणास्पद अनुच्छेद को स्थान दिया है।[54]

डॉ. अम्बेडकर ने आलोचकों की आलोचनाओं का उत्तर देते हुए कहा कि कनाडा और आस्ट्रेलिया के गवर्नर जनरलों को भी स्वविवेकी अधिकार दिये गये हैं किन्तु इन अधिकारो को प्राप्त करके भी ये गवर्नर जनरल निरंकुश नहीं हो गये हैं। इन देशों के संविधान के द्वारा लोकतंत्रीय उत्तरदायी सरकारों की स्थापना की गयी है। कनाडा के संविधान में धारा 55 में गवर्नर जनरल को स्वविवेकी अधिकार दिये गये है।

आज से 100 वर्ष व्यतीत हो चुके हैं किन्तु कनाडा और आस्ट्रेलिया के लोगों ने इन स्वविवेकी अधिकारों को बदलने की आवश्यक्ता नहीं समझी है। इस अवसर पर श्री कामथ, पंडित कुंजरु और श्री लोकनाथ मिश्रा ने डा. अम्बेडकर से यह प्रश्न किया कि क्या हम भी कनाडा और आस्ट्रेलिया के सदृश्य डोमिनियम स्टेटस की स्थापना करना चाहते है या भारत में हम गणतंत्रीय व्यवस्था की स्थापना करना चाहते हैं। डा. अम्बेडकर ने यह आश्वासन दिया कि गवर्नर अपने इस अधिकार का जब चाहें तब उपयोग नहीं करेंगे वरन बहुत सीमित अवसरों पर अत्यधिक आवश्यक होने पर ही इन अधिकारों का उपयोग करेंगे। जब श्री कामथ ने पूछा कि फिर राष्ट्रपति को क्यों ऐसे स्वविवेकी अधिकार नही दिये गये हैं तो डा. अम्बेडकर ने कहा कि राष्ट्रपति सदैव अपने मंत्रिपरिषद् के परामर्श से कार्य करता है किन्तु गवर्नर को राष्ट्रपति के एजेंट के रूप मे भी कार्य करना पड़ता है।[55] वह केंद्र सरकार का प्रान्त में एजेंट है, और एजेंट के रूप में उसकी स्थिति अधीनस्थ की है। फिर भी डा. अम्बेडकर ने यह स्वीकार किया कि यदि सदन चाहे तो इन स्वविवेकी अधिकारों को इस खंड से हटाकर अन्यत्र भी रखा जा सकता है।[56] इसके बाद संविधान के प्रारूप 144 पर वाद विवाद हुआ। डा. अम्बेडकर के अतिरिक्त मोहम्मद ताहिर, मुहम्मद इस्माइल, के.टी. शाह, पंडित ठाकुरदास भार्गव आदि ने भी संशोधन पेश किये। श्री ताहिर ने कहा कि किसी मंत्रिमंडल को जब तक राज्य की विधानसभा का विश्वास मत प्राप्त है तभी तक वह अपने पद पर बना रहता है। गवर्नर की "प्रसनन्ता पर्यन्त नही किन्तु व्यवस्थापिका के विश्वास पर्यन्त ही कोई मंत्रिपरिषद अपने पद पर बना रहता है। श्री ताहिर ने कहा कि मंत्रिमंडल और गवर्नर के सम्बन्ध अच्छे हो सकते हैं, किन्तु यदि मंत्रिमंडल ने व्यवस्थापिका का विश्वास खो दे तो उसे गवर्नर के नचाहते हुए भी पद से हटना पड़ सकता है। अतएव किसी मंत्रिपरिषद का गवर्नर से कितना भी अच्छा

सम्बन्ध हो यदि वह व्यवस्थापिका का विश्वास खो दे तो उसे पद से इस्तीफा देना पड़ेगा - ऐसी स्थिति में गवर्नर को मंत्रिमंडल से इस्तीफा देना पड़ेगा और इस्तीफा न देने पर मंत्रिमंडल को भंग कर देना पड़ेगा। [57]

श्री मोहम्मद इस्माइल ने भी इस बात का समर्थन किया कि "गवर्नर की प्रसन्नता "(Pleasure of the governor) का कोई मूल्य नही है, मंत्रियों को गवर्नर की प्रसन्नता प्राप्त करने के बजाय राज्य की व्यवस्थापिका का विश्वास हासिल करना चाहिए। गवर्नर एक मनोनीत कार्यपालिका है उसे निर्वाचित मंत्रिमंडल को अपनी प्रसन्नता पर्यन्त बनाये रखने का कोई अधिकार नही है। आज विश्व के अन्य लोकतंत्रीय देशों में भी मंत्रीमंडल का व्यवस्थापिका को उत्तरदायित्व एक मान्य सिद्धान्त हो चुका है। [58]

डा. अम्बेडकर ने अपना संशोधन पेश करते हुए कहा कि संविधान के प्रारूप में गवर्नर को मंत्रियों के चुनाव में और अन्य कार्यों को करने में संविधान के निर्देशों और आदेशों का अनुसरण करना चाहिए।[59]

मोहम्मद ताहिर कुछ शब्दों को संविधान के प्रारूप से निकाल देना चाहते थे कि गवर्नर ने जो कार्य किया उसे इस आधार पर अदालत में चुनौती नही दी जा सकती कि गवर्नर ने यह कार्य उसको दिये गये निर्देशों के प्रतिकूल किया ।[60]

डा. अम्बेडकर ने कहा कि यदि संविधान के प्रारूप में इस आशय का संशोधन किया जाय तो इससे चौथी अनुसूची में लिये गये निर्देशों का उल्लंघन होगा। इस अनुसूची में गवर्नरों को कतिपय निर्देश दिये गये है।

श्री के.टी. शाह चाहते थे कि प्रत्येक गवर्नर, मंत्री अपना पद ग्रहण करने के पूर्व सम्बन्धित राज्य की व्यवस्थापिका को अपनी चल अचल सम्पत्ति का पूरा ब्यौरा दे। श्री शाह के अनुसार गवर्नरों और मंत्रियों को संदेह के परे होना चाहिए और उन्हें भ्रष्टाचार में लिप्त नहीं होना चाहिए। इंग्लैड में बाल्डविन ने अपने किसी बड़े इस्पात कारखाने के संचालक पद से इस्तीफा दे दिया था, और जब उन्होंने प्रधान मंत्री का पद छोड़ा तो उनकी आर्थिक हालत बहुत खराब हो चुकी थी। सार्वजनिक जीवन में मंत्रियों और गवर्नरों को भ्रष्टाचार और अनैतिक आचरण से दूर रहना चाहिए।

श्री ठाकुरदास भार्गव ने कहा कि इस अनुच्छेद में जो स्वविवेकी अधिकार (अनुच्छेद 144) दिये गये है वे अत्यधिक व्यापक है और ऐसे व्यापक अधिकार गवर्नरों को नहीं दिये जाने चाहिये क्योंकि वे मनोनीत हैं। इन व्यापक अधिकारों कके चलते व्यवस्थापिका के बहुमत दल की अवहेलना करते हुए गवर्नर अन्य दलों से मंत्रीयों की नियुक्ति कर सकता है। श्री भार्गव चाहते थे कि ऐसा कोई प्रावधान रखा जाय जिससे गवर्नर व्यवस्थापिका के बहुमत प्राप्त दल या सबसे बड़े दल से ही मंत्रिमंडल गठित करने के लिए बाध्य हो। श्री भार्गव ने "गवर्नर की प्रसन्नता"(during the pleasure of the governor) वाक्यांश की आलोचना करते हुए कहा कि इस वाक्यांश का भूतकाल में अलग अलग अर्थ लगाया गया है और गवर्नरों ने बहुत अधिक

मनमानी की। इसलिये इस सम्बन्ध में सुस्पष्ट संविधानिक परम्पराओं को विकसित करने की आवश्यकता है जिससे किसी मंत्रिमंडल को गवर्नर तभी भंग कर सकता है जब कि उसका व्यवस्थापिका मे बहुमत न हो। जब तक मंत्रिमंडल का व्यवस्थापिका में बहुमत है तब तक मंत्रिमंडल को पद से नही हटाया जा सकता। इस सम्बन्ध में अनुच्छेद 144 गवर्नर को बड़े व्यापक अधिकार सौंप देता है।[61]

श्री एच. व्ही. पाटस्कर ने भी श्री भार्गव के संशोधन का समर्थन किया। उन्होंने कहा कि "गवर्नर की प्रसन्नता" गवर्नर को निरंकुश शक्तियाँ प्रदान करते हैं। भारत स्वतंत्र और लोकतंत्रीय देश बन चुका है। इस देश मे ऐसा निरंकुश पदाधिकारी लोकतंत्रीय व्यवस्था के विरुद्ध है। मंत्री गवर्नर की प्रसन्नता पर्यन्त तक पद पर नहीं बने रहेंगे वरन वे तब तक अपने पद पर बने रहेंगे जब तक वे व्यवस्थापिका के प्रति उत्तरदायी हैं।

डा. अम्बेडकर ने सम्पूर्ण विवाद का समापन करते हुए कहा कि "Pleasure of the governor" शब्द हर लोकतंत्रीय संविधान में उपयोग हुआ है, यह शब्द पहले से चलन में रहा है, इस शब्द को हमें व्यवस्थापिका के प्रति उत्तरदायित्व के अर्थ में लेना चाहिए। इस शब्द का यह अर्थ नहीं है कि गवर्नर को मंत्रिमंडल को निरंकुश ढंग से पदच्युत करने का अधिकार है। [62]

इसके बाद अनुच्छेद 146 पर वाद विवाद हुआ। इस अनुच्छेद में गवर्नर के कार्यपालिका सम्बन्धी कार्यों और शक्तियों की विवेचना की गई है। इस सम्बन्ध में श्री के.टी. शाह ने अपना संशोधन पेश किया जो अस्वीकृत हो गया।[63]

इसके बाद अनुच्छेद 147 पर वाद विवाद हुआ श्री कामथ ने कहा कि संविधान के कई प्रावधान इस अनुच्छेद से मेल नहीं खाते। गवर्नर एक मनोनीत नाममात्र की कार्यपालिका है, किन्तु उसे निर्वाचित मंत्रिमंडल के ऊपर अधिकार दिये गये हैं। उदाहरण के लिये यदि कोई मंत्री बिना मंत्रिमंडल में किसी मामले को रखे उस पर कोई निर्णय ले लेता है तो गवर्नर उस मंत्री को यह आदेश दे सकेगा कि वह ऐसे मामले को मंत्रिपरिषद् में रखे और इस उद्देश्य के लिये मंत्रिपरिषद् की बैठक बुलाई जाय। किन्तु श्री कामथ ने कहा कि यह अधिकार गवर्नर का बिल्कुल ही नहीं है। यह अधिकार मुख्यमंत्री का है। हमने प्रान्तों में लोकतंत्रीय व्यवस्था लागू की है और एक मनोनीत गवर्नर को यह अधिकार देना संविधान के आधारभूत तत्वों पर कुठाराघात करना है।

इस अनुच्छेद के खंड (b) के प्रावधानों की भी कामथ ने आलोचना की। यह खंड गवर्नर को यह अधिकार देता है कि वह मंत्रियों से उनके विभागों के प्रशासन से सम्बन्धित कोई भी सूचना मॉग सकता है, और मंत्रियों का यह कर्तव्य है कि वे गवर्नर को अपने विभाग से सम्बन्धित सभी प्रशासनिक विषयों की सूचना दें। इस मामले को मुख्यमंत्री की शक्तियों के दायरे में रखना चाहिए कि वह कौन सा विषय सूचनार्थ गवर्नर को दे और कौन सा न दे।[64]

डा. पी. एस. देशमुख ने हरिविष्णु कामथ से अपनी असहमति व्यक्त की। उन्होंने कहा कि मंत्रियों के प्रत्येक आदेश गवर्नर के नाम से जारी किये जाते हैं। यदि मंत्री गवर्नर को ऐसे आदेश न भेजें तो गवर्नर को यह पता भी नही चलेगा कि मंत्री ने गवर्नर के नाम से कितने आदेश जारी किये। श्री देशमुख ने कहा कि हमें यह मानकर चलना चाहिए कि मुख्यमंत्री सारी सूचनाएँ और मंत्रियों के सारे आदेशों को गवर्नर के सामने रखवायेगा ही। इस पर श्री कामथ ने पूछा कि इस सम्बन्ध में क्या गारंटी है कि मुख्यमंत्री सारी सूचनाओं और सारे आदेशो को गवर्नर के सामने रखवायेगा ही। इस पर श्री देशमुख ने उत्तर दिया कि गवर्नर की बुद्धिमानी और गवर्नर को नियुक्त करने वाले पदाधिकारी की बुद्धिमानी ही इस बात की गारंटी है। [65]

इस विषय में और अधिक बोलते हुए श्री देशमुख ने कहा कि दैनन्दिन के मामलों को (routine matters) को गवर्नर मंत्रिमंडल के सामने रखने नही कहेगा किन्तु उन्हीं मामलों को मंत्रिमंडल की बैठक मे रखने को कहेगा जो विशेष महत्व के है और जिनका प्रान्त की राजनीति पर विशेष प्रभाव पड़ने वाला है। केवल इतना ही आवश्यक निर्णय केबिनेट को ही लेना है न कि गवर्नर को।

श्री देशमुख ने कहा कि अनुच्छेद का खंड (b) अत्यधिक आवश्यक है। कभी-कभी ऐसा भी हो सकता है कि मंत्रिमंडल के कुछ मंत्रियों को गवर्नर से पटरी न बैठ रही हो उस समय ये मंत्री गवर्नर को बिना बताये कोई निर्णय ले सकते हैं और उस निर्णय को क्रियान्वित कर सकते हैं। गवर्नर को ये अधिकार केवल जानकारी के लिये ही दिये जाते है, वह उनका दुरुपयोग नहीं करेगा। यह आवश्यक है कि उसे प्रशासन की दैनन्दिन गतिविधियों के बारे में पूर्ण जानकारी होनी चाहिए। वास्तव में गवर्नर प्रान्तीय स्वराज्य, राष्ट्रपति (भारत सरकार) और प्रान्तीय शासन के बीच एक कड़ी है, और इस कार्य को वह तभी ठीक से सम्पन्न कर सकता है जबकि उसे मंत्रीगण अपने विभाग की गतिविधियों और कार्यों से अवगत रखे।[66]

श्री देशमुख ने यह भी विचार व्यक्त किया कि विधेयकों को उन्हें विधान सभा में पेश करने के पूर्व गवर्नर के पास भेजा ही जाना चाहिए। इससे गवर्नर को यह पता रहेगा कि किन विषयों पर विधेयक पेश किये जा रहें हैं, उसका प्रान्त की राजनीति पर क्या प्रभाव पड़ेगा, केंद्र सरकार पर उस विधेयक का क्या प्रभाव पड़ेगा, क्या यह केंद्र सरकार की नीतियों के अनुकूल है, आदि आदि। गवर्नर मुख्यमंत्री को अनुभवपूर्ण परामर्श दे सकेगा। गवर्नर केवल परामर्श देगा, वह प्रशासन में हस्तक्षेप नहीं करेगा। गवर्नर को यह जानकारी प्राप्त करने का अधिकार है कि कोई प्रान्तीय विधेयक प्रान्त और राष्ट्र के हित में है या नहीं। [67]

इस अवसर पर जब श्री कामथ ने पूछा कि हम मुख्यमंत्री पर क्यों न विश्वास रखें और गवर्नर को क्यों हस्तक्षेप करने दें, तो श्री देशमुख ने कहा कि गवर्नर प्रान्तीय प्रशासन मे हस्तक्षेप नहीं करेगा, व केवल सरकार की गतिविधियों और कार्यवाहियों केबारे में जानकारी प्राप्त करेगा।[68]

उड़ीसा के श्री बी. दास ने ब्रिटिश काल के गवर्नरों के अनुभवों से कहा कि इन गवर्नरो ने अत्यधिक निरंकुश ढंग से कार्य किया था।69 श्री दास ने कहा कि चूंकि हम सारी शक्तियों का केंद्रीकरण करने जा रहे हैं अतएव हमें भारत को एक "यूनियन" या संघ व्यवस्था घोषित करने का कोई अधिकार नही है और संघ संविधान को रद्द कर हमें एक एकात्मक संविधान का निर्माण करने में जुट जाना चाहिए। ऐसी अवस्था में यदि हम प्रान्तीय गवर्नरों, मंत्रिमंडलों और व्यवस्थापिकाओं को भंग कर दें और सारी शक्तियाँ राष्ट्रपति, केंद्रीय सरकार और संसद में केंद्रित कर दें तो देश का काफी पैसा बचेगा। श्री दास ने कहा कि उनका गवर्नरों की बुद्धिमानी (जैसा देशमुख ने कहा था,"wisdom of the governor") में कोई विश्वास नही है। वे गवर्नरो की भूमिका को शून्य (ciphers) मानते थे, गवर्नर केवल मंत्रिमंडलों से झगड़ते रहेंगे।

श्री बी. एम. गुप्ता ने कुछ बातों में श्री कामथ का समर्थन किया। उन्होंने कहा कि मंत्रिमंडलात्मक प्रणाली मे दो प्रकार के निर्णय लिये जाते है - एक सम्पूर्ण कैबिनेट की बैठकों में अति महत्वपूर्ण नीतिगत मामलो पर और दूसरे जो मंत्रिमंडल की बैठको में नही आते और निजी रूप से मंत्री ही जिनमें निर्णय लेता रहता है। ये रोजमर्रा के ढेर से मामले होते है। प्रथम प्रकार के मामले ही गवर्नर के पास भेजे जाते हैं। इन्हीं की जानकारी गवर्नरो को दी जाती है और दी जानी चाहिए। रोजमर्रा के सैकड़ों हजारो निर्णय मंत्री के आदेश आदि की जानकारी गवर्नर को देना न तो सम्भव है और न वांछनीय। इससे कोई मंत्री और उसका विभाग कार्य ही नही कर सकता। इससे दैनन्दिन प्रशासन की गति ही रुक जायगी। श्री गुप्ता ने कहा कि उनका यह आशय नहीं है कि मुख्यमंत्री और अन्य मंत्रियों को गवर्नर के अनुभवी परामर्श से वंचित किया जाय। किन्तु इस अनुच्छेद के प्रावधानों के अन्तर्गत रखना सर्वथा गलत है। गवर्नर निजी तौर से परामर्श दे सकता है किन्तु परामर्श देने का अधिकार गवर्नर को संविधानिक प्रावधान के रूप में नही दिया जा सकता। वह मुख्य मंत्री को निजी तौर पर परामर्श दे सकता है। श्री गुप्ता ने ब्रिटिश संविधान में रानी विक्टोरिया की भूमिका का उल्लेख करते हुए कहा कि वे अपने प्रधानमंत्री को मौखिक पत्रों के माध्यम से बहुमूल्य परामर्श देती थी। इन परामर्शों के द्वारा एक चतुर रानी ब्रिटेन के प्रधान मंत्रियों का मार्गदर्शन करने, दिशा निर्देश देने और उनके निर्णयों को प्रभावित करने में अत्यधिक सफल रहीं। यही शैली भारत मे भी अपनायी जानी चाहिए।70

श्री गुप्ता ने आगे कहा कि इस अधिकार को गवर्नर का संविधानिक अधिकार बना देने पर मंत्री ठीक से कार्य नहीं कर सकेंगे। 1935 के अधिनियम में राज्य सरकार के सचिव (Secretaries) मंत्री के ऊपर जाकर गवर्नर से मुलाकात कर सकते थे और गवर्नरों को अधिकार था कि वे सचिवों को बुलाकर सीधे प्रशासन सम्बन्धी दैनन्दिन जानकारी प्राप्त कर सकते थे। यह एक अत्यधिक दूषित प्रणाली थी और 1936-37 में प्रान्तीय मंत्रीमंडलों में इस व्यवस्था के चलते भारी रोष था। वे सचिवों को गवर्नरों का जासूस मानते थे। इसी असंतोष के कारण अधिकांश मंत्रिमंडलों ने इस्तीफा दे दिया था। 1935 के अधिनियम पर जब ब्रिटिश संविधान में वाद-विवाद हो रहा था तो किसी सांसद ने कहा था कि सचिव लोग मंत्रियों के पीछे-पीछे चलने वाले शिकारी

कुत्ते या जासूसी कुत्ते (watch dogs) हैं जो मंत्रियों के बारे में सारी खबरें गवर्नर को दिया करेंगे। यदि फिर से गवर्नरों को यह संविधानिक अधिकार दे दिया जाय तो गवर्नर हर दम हर मंत्री के विभागों की दिनचर्या की जानकारी प्राप्त कर सकता है। इससे मंत्री को लगेगा कि उसकी जासूसी की जा रही है और उसके गवर्नर से सम्बन्ध बुरी तरह बगड़ सकते हैं। यदि इसे एक संविधानिक अधिकार का रूप दिया जाय तो गवर्नर ऐसे अधिकार का दुरुपयोग भी कर सकते है।

प्रोफेसर शिबनलाल सक्सेना ने कहा कि गवर्नरों को मंत्रियों के सभी कार्यों की जानकारी मिलना चाहिए। अन्यथा वह प्रान्तीय प्रशासन के प्रमुख की भूमिका नही निभा सकता। वह राष्ट्रपति (भारत सरकार) और प्रान्तीय सरकार के बीच की कड़ी है। फिर राष्ट्रपति प्रशासन और राजनीति के मॅजे हुए खिलाड़ियों को ही राज्यपाल के पद पर नियुक्त करेगा। ऐसे राज्यपाल दैनन्दिन राजनीति से अपने को ऊपर रखेंगे। श्री सक्सेना का यह विचार था कि नयी व्यवस्था में गवर्नर सम्पूर्ण मंत्रिमंडल का विश्वास प्राप्त करने का प्रयत्न करेगा।

श्री आर. के. सिधवा ने कहा कि राज्य शासन से सम्बन्धित प्रत्येक फाइल गवर्नर के पास हस्ताक्षर के लिये जाती है। संविधान के अनुसार राज्य सरकार के सभी कानूनों, नियमो, आदेशों पर गवर्नर के सीलयुक्त हस्ताक्षर अनिवार्य रूप से लिये जाने चाहिए- यह एक संविधानिक औपचारिकता है। अतएव गवर्नर को वैसे भी सभी विभागों की जानकारी मिलती ही रहती है।

श्री कामथ ने श्री सिधवा से भिन्न मत व्यक्त करते हुए कहा कि गवर्नर के पास सभी कागजात नहीं जाते हैं, केवल वही कागजात जाते हैं जिन पर सम्पूर्ण केबिनेट में निर्णय लिया गया हो। मंत्रियों के निजी निर्णय गवर्नर के पास नहीं जाते। श्री कामथ ने कहा कि ऐसा श्री सिधवा के प्रान्त सिध में हो सकता है अन्य प्रान्तों में नहीं।

श्री सिंधवा ने कहा कि यदि किसी मंत्री ने कोई निर्णय ले लिया है किन्तु गवर्नर को इस बात का संदेह है कि इस निर्णय से सम्पूर्ण मंत्रिमंडल सहमत है, तो वह मंत्री के इस निर्णय पर सम्पूर्ण मंत्रिमंडल की बैठक में पुनर्विचार के लिये कह सकता है।

श्री विश्वनाथ दास ने कहा कि संविधान के प्रारूप में गवर्नर के लिये दो भूमिकाये अलग-अलग रखी गयी हैं। एक तो उसे संविधानिक प्रमुख के रूप मे नाममात्र की कार्यपालिका के रूप में कार्य करना है और दूसरे उसे गवर्नर के परामर्शदाता के रूप में कार्य करना है। ऐसा परामर्श देते हुए वह मंत्रियों को एक विशेष दिशा मे आगे बढ़ने के लिए दिशा निर्देश दे सकता है। किन्तु श्री दास ने कहा कि गवर्नर कभी कभी परामर्श दे सकता है किन्तु वह प्रान्तीय प्रशासन में हस्तक्षेप नही कर सकता। गवर्नरों को जो चौथी अनुसूची में दिशा निर्देश (Instruments of Instruction) उनका कोई संविधानिक या कानूनी महत्व नही है क्योकि इनको लेकर कोई अदालत में नहीं जा सकता। फिर भविष्य में प्रान्तों में एक दल की सरकार हो सकती है और राज्यों

में दूसरे दल की। इससे गवर्नर तो प्रधानमंत्री (राष्ट्रपति) द्वारा नियुक्त किया जायगा और वह केद्र के आदेशों का ही पालन करेगा। इससे मंत्रिमंडल और गवर्नर में आये दिन विवाद बना रहेगा। अतएव गवर्नरों को ऐसी शक्तियाँ नही दी जानी चाहिए जिससे वह प्रान्त के शासन और राजनीति में दखलंदाजी करने लगे।[71]

श्री मुंशी ने कहा कि यद्यपि गवर्नर एक नाममात्र की या संविधानिक कार्यपालिका है जिसकी शक्तियॉ नहीं के बराबर है किन्तु गवर्नर के बहुत से कार्य है (has many functions to perform) इसलिये इस अनुच्छेद की आवश्यक्ता है। यदि गवर्नर को लगे कि कोई मंत्री मुख्यमंत्री के पीठ पीछे या केबिनेट से छिपाकर कोई काम कर रहा है तो गवर्नर ऐसे मंत्री को कह सकता है कि वह मामले को केबिनेट के सामने लाये। इसलिये गवर्नर वास्तव में केबिनेट के सामूहिक उत्तरदायित्व के सिद्धान्त की रक्षा कर रहा है। गवर्नर को अवश्य ही कोई शक्तियॉ नहीं दी गई है और न उसे प्रान्त की राजनीति में सक्रिय भूमिका अदा करनी चाहिए। उसे प्रान्त की राजनीति से दूर रहकर तटस्थ और उपयोगी भूमिका निभानी चाहिए और मुख्यमंत्री को अपना सत्परामर्श देना चाहिए। श्री मुशी ने कहा कि गवर्नर ब्रिटिश राजमुकुट के समान कार्य करेगा। रानी या राजा मंत्रियो को सत्परामर्श देने का अधिकार रखते हैं यद्यपि वे प्रशासन और राजनीति मे दखल नहीं देते। प्रशासन चलाना, निर्णय करना मंत्रियों का कार्य है और रानी का कार्य सत्परामर्श देना है; यह प्रधानमंत्री पर निर्भर करता है कि वह ऐसे सत्परामर्श को माने या न माने।[72]

गवर्नर को प्रान्त में अल्पसंख्यक वर्ग के हितों का ध्यान रखना होता है। इसलिये उसे इस कार्य को भली भाँति सम्पादित करने के लिये मंत्रियो की नीतियों और कार्यों में समन्वय स्थापित करना पड़ता है। जब राज्य में कई दल उभरकर सत्ता में आयें तो इन सबके बीच समन्वय स्थापित करने के लिये गवर्नर बहुमूल्य परामर्श दे सकता है।

श्री रोहणी कुमार चौधरी ने इस अनुच्छेद की कड़ी आलोचना करते हुए कहा कि यह "हमारे संविधान पर एक काला धब्बा है। थोड़ा सा गोबर एक विशाल बर्तन में रखे दूध को खराब कर सकता है, उसी प्रकार यह एक अनुच्छेद सम्पूर्ण संविधान को गंदा कर देगा।" श्री चौधरी ने कहा कि इससे मंत्रियों और गवर्नर के बीच मनमुटाव बढ़ेगा। गवर्नर को केवल उतनी ही सूचना प्राप्त करने का अधिकार है जो उसके विशेष उत्तरदायित्व को प्रभावित करती है। फिर यदि कोई सचिव कोई फाइल गवर्नर के पास नही भेजता है तो क्या मंत्री इसके लिये उत्तरदायी होगा। श्री रोहणी कुमार चौधरीन ने स्वीकार किया 1935 में भी यह प्रावधान था किन्तु तब देश पराधीन था और अब भारत स्वतंत्र हो गया है और उसने गणतंत्रीय व्यवस्था अपना ली है। श्री चौधरी ने कहा कि गवर्नर को केवल उतनी ही सूचना दी जानी चाहिए जितनी की मुख्यमंत्री उचित समझे। खंड (स) पर बोलते हुए श्री चौधरी ने कहा की मंत्री, मुख्यमंत्री से विचार विमर्श कर अपने विभाग से सम्बन्धित कई प्रकार के निर्णय लेता है। ऐसे मामलों में गवर्नर को हस्तक्षेप करने का क्या अधिकार है ? जब मुख्य मंत्री

को अपने मंत्रियों पर नियंत्रण करने का पूरा अधिकार दिया गया है तो फिर गवर्नर ऐसे मामलों में क्यों हस्तक्षेप करे।

डा. अम्बेडकर ने वाद विवाद का समापन करते हुए कहा कि अनुच्छेद 147 अनुच्छेद 65 की हुबहू नकल है। अनुच्छेद 65 जो अधिकार राष्ट्रपति को देता है वही अधिकार अनुच्छेद 147 गवर्नर को देता है (इस अवसर पर श्री कामथ ने प्रत्युत्तर में कहा कि गवर्नर तो राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत किया जाता है किन्तु राष्ट्रपति निर्वाचन के द्वारा चुना जाता है) ।

डा. अम्बेडकर ने कहा था कि उन्होंने पहले ही कहा था कि हमें गवर्नर के कार्यों (functions) और गवर्नर के दायित्वों या कर्तव्यों (duties) में अंतर स्थापित करना चाहिए। उन्होंने कहा कि यद्यपि गवर्नर के कोई कार्य नही हैं फिर भी वह चूँकि एक संविधानिक पद है, उसे कुछ कर्तव्यों या दायित्वों को निभाना पड़ता है।[73]

डा. अम्बेडकर ने गवर्नर के कर्तव्यों को दो भागों में विभाजित किया -

(1) उसे मंत्रीपरिषद् को पद पर बनाये रखना होता है। चूँकि मंत्री गवर्नर की प्रसन्नता पर्यन्त तक पद पर बने रहेंगे उसे यह निर्णय लेना चाहिए कि वह कब और किस प्रकार से मंत्रियों को पद से हटाये और अपनी प्रसन्नता या अप्रसन्नता का प्रयोग करे।

(2) मंत्रिपरिषद् को परामर्श देना, मंत्रिपरिषद् को ताकीद करना (warn), मंत्री को विकल्प सुझाना, और मंत्री को अपने निर्णय पर पुनर्विचार के लिए कहना। यदि गवर्नर बन कर्तव्य या दायित्वों को पूरा न करे तो इस पदाधिकारी की कोई आवश्यक्ता नहीं रह जायगी। गवर्नर किसी दल का प्रतिनिधित्व नही करता, वह सम्पूर्ण जनता का प्रतिनिधित्व करता है। वह जनता के नाम पर राज्य का प्रशासन चलाता है। उसे यह देखना चाहिए कि प्रशासन निष्ठापूर्वक, स्वच्छता से चलाया जाय, प्रशासन को कुशलता पूर्वक चलाया जाना चाहिए। प्रशासन में कोई पक्षपात नहीं होना चाहिए। उसे यह भी देखना चाहिए कि जो प्रस्ताव मंत्रिपरिषद् या मंत्री द्वारा पेश किये जाते हैं वे जनकल्याण के विपरीत न हों, यदि ऐसा है तो वह इन प्रस्तावों या निर्णयों पर पुनर्विचार के लिये कह सकता है। इसलिये जब तक गवर्नर को प्रशासन सम्बन्धी सारी सूचनाऐं न दे दी जाय तब तक वह इन दायित्वों को कैसे पूरा करेगा।[74]

डा. अम्बेडकर ने कहा कि केंद्र में ऐसी ही व्यवस्था है - सारे मंत्रालय गवर्नर जनरल के सामने अपने निर्णयों, प्रस्तावों, कार्या का एक लेखा जोखा गवर्नर जनरल के सामने पेश करते है; केबिनेट के निर्णय भी गवर्नर जनरल के सामने पेश किये जाते है। इससे गवर्नर जनरल को सम्पूर्ण प्रशासन की जानकारी रहती है। वही प्रक्रिया राज्यों में भी अपनायी जानी चाहिए। किन्तु डा. अम्बेडकर ने यह भी स्वीकार किया कि गवर्नर प्रशासन में हस्तक्षेप नहीं करेगा।

राज्यपाल के व्यवस्थापिका सम्बन्धी अधिकार

श्री मोहम्मद ताहिर ने अपना संशोधन पेश करते हुए कहा कि गवर्नर को विधान सभा भंग करने का अधिकार तभी दिया जाय जब ऐसा करने के लिये ठोस कारण हो जब तक शासन ठीक से चल रहा है और मंत्रिमंडल का व्यवस्थापिका में बहुमत है तब तक गवर्नर जनरल को व्यवस्थापिका भंग करने का अधिकार नही मिलना चाहिए।

श्री कामथ ने कहा कि हमें गवर्नर को इतने व्यापक अधिकार नहीं दे देना चाहिए जिससे कि वह जब चाहे तब व्यवस्थापिका को भंग कर सके। गवर्नर को मंत्रिमंडल के परामर्श को स्वीकार करना चाहिए। उसे मंत्रिमंडल के परामर्श के विरुद्ध कोई कार्य नहीं करना चाहिए । इसलिये श्री कामथ ने कहा कि अनुच्छेद 153 को संशोधित रूप में रखना जरूरी है जिससे गवर्नर मनमानी न कर सकें। श्री कामथ न कहा कि आज के लोकतंत्रीय युग में गवर्नर को ऐसे व्यापक अधिकार नही दिये जा सकते। भारत का संविधान लोकतंत्रीय है, उसमें गवर्नरो को ऐसे निरंकुश अधिकार नही दिये जा सकते।

अनुच्छेद 154, 155 गवर्नर का व्यवस्थापिका को संबोधित करने का अधिकार है (right to address)। उसके बाद अनुच्छेद 165 पर वाद विवाद हुआ। किसी सदस्य का पद रिक्त हो गया है और उसके निर्वाचन क्षेत्र में चुनाव कराना है- इस पर गवर्नर ही निर्णय देगा। किसी सदस्य में कोई निर्योग्यता उत्पन्न हो गई है या नही इसकी जाँच निर्वाचन आयोग द्वारा गवर्नर से सूचना मिलने पर ही की जायेगी। इसी प्रकार किसी क्षेत्र में चुनाव का कार्य गवर्नर से सूचना प्राप्त करने पर निर्वाचन आयोग द्वारा कराया जायगा। किसी सदस्य में कोई निर्योग्यता उत्पन्न हुई है या नही इस पर जाँच कर जो रिपोर्ट आयोग द्वारा दी जाय वह रिपोर्ट अंतिम होगी और गवर्नर को उसे मानना पड़ेगा।

संविधान के प्रारूप के निम्न अनुच्छेद जो गवर्नर से सम्बन्धित है- 172(1), 175, 176, 177, 177(1), 178(3), 179(1) (a) (b) (2), 180, 182(1) (3), 110। इन अनुच्छेदों को संविधान सभा में बिना किसी वाद विवाद के पारित कर दिया गया।

पंडित हृदय नाथ कुंजरु ने अध्यादेशों की अवधि 6 सप्ताह से घटाकर 2 सप्ताह करने के लिये कहा। संविधान के प्रारुप 187(a)(b) में कहा गया है कि व्यवस्थापिका का अधिवेशन आरम्भ होने के 6 सप्ताह बाद तक कोई अध्यादेश जारी रहेगा अन्यथा उसे इससे पहले ही वापस ले लिया जाय। डा. काटजू ने कहा कि संसद का क्षेत्र बहुत बड़ा है किन्तु राज्य की व्यवस्थापिका का क्षेत्र छोटा होने के कारण 6 सप्ताह की अवधि बहुत अधिक हो जाती है अतएव इसको कम कर 2 सप्ताह की अवधि की जानी चाहिए। डा. काटजू ने कहा की ठीक से गणना करने पर कभी कभी किसी अध्यादेश की अवधि 6 माह, 6 सप्ताह या और अधिक हो जा सकती है। अध्यादेश पारित करना कार्यपालिका का कार्य और यदि इसे जरूरत से अधिक अवधि तक चलने

दिया जाय तो यह व्यवस्थापिका के अधिकार क्षेत्र में हस्तक्षेप हो जाता है। इसलिये इसकी अवधि बहुत कम रखी जानी चाहिए। जब व्यवस्थापिका का अधिवेशन न चल रहा हो तो कार्यपालिका आवश्यकता पड़ने पर अध्यादेश पारित करने का अधिकार है, किन्तु जब व्यवस्थापिका का अधिवेशन आरम्भ हो गया है तो अध्यादेश को तुरन्त निरस्त कर देना चाहिए। यही लोकतंत्रीय प्रक्रिया है।[75]

प्रोफेसर शिबनलाल सक्सेना के अनुसार अध्यादेश पारित करने का अधिकार केवल राष्ट्रपति को दिया जाना चाहिए। गवर्नर राष्ट्रपति को अनुमति से ही अध्यादेश पारित कर सकता है। राष्ट्रपति के अलावा और किसी को अध्यादेश पारित करने का अधिकार देना व्यवस्थापिका के अधिकारों को सीमित करना और संविधान को कुरूप बना देना है।[76]

गवर्नर के आपात कालीन अधिकार

इस विषय पर एक पृथक अध्याय में विस्तार से विवेचना की गई है।

संविधान के प्रारूप में अनुच्छेद 188 में इस विषय को सम्मिलित किया गया है। सविधान मे अनुच्छेद 356 गवर्नर के इस आपात कालीन अधिकार की व्यवस्था करता है। यह संविधान का सबसे विवादास्पद अध्याय रहा है।[77]

निर्वाचन आयोग और गवर्नर

पहले निर्वाचन सम्बन्धी विवादों का निपटारा करने के लिये गवर्नर को यह अधिकार दिया गया था कि वह एक पैनल बनाये जो इन वावादों का निपटारा करेगा। बाद में यह कार्य निर्वाचन आयोग को सौंप दिया गया। वाद विवाद के दौरान सदस्यों ने पैनल व्यवस्था की आलोचना की।[78]

गवर्नर और न्यायपालिका

जिस प्रकार सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति में संविधान सभा ने यह निर्णय लिया था कि न्यायाधीशों की नियुक्ति में प्रधानमंत्री को एकाधिकारी शक्ति न दी जाय उसी प्रकार से राज्य के उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों की नियुक्ति मे भी यही निर्णय लिया गया।[79]

6 मार्च 1947 को डा. बी. एन. राव ने एक प्रश्नावली जारी की, इसमें हाइकोर्ट के न्यायाधीशों की नियुक्ति में गवर्नर को क्या भूमिका प्रदान की जाय इस पर प्रश्न पूछे गये थे। सदस्यो ने अपने सुझाव भेजे थे।

संविधानिक परामर्शदाता श्री बी. एन. राव ने यह सुझाव दिया था कि 1935 के अधिनियम की प्रक्रिया अपनायी जानी चाहिए। प्रान्तीय संविधान समिति के अध्यक्ष श्री वल्लभ भाई पटेल ने प्रस्ताव दिया कि हाईकोर्ट के न्यायाधीशों की नियुक्ति में राष्ट्रपति को निम्न से परामर्श लेना चाहिए-

(i) सुप्रीम कोर्ट के मुख्य न्यायाधीश ।

(ii) प्रान्त का गवर्नर ।

(iii) प्रान्त के उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायाधीश।

संविधान सभा के प्रारूप समिति ने इन प्रस्तावों को अपनी स्वीकृति दे दी।

समापन और निष्कर्ष

संविधान के निर्माताओं ने राज्यपाल के पद पर विस्तार से वाद विवाद किया। डा. अम्बेडकर सहित संविधान सभा के अधिकांश सदस्य जिनमें भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के सदस्य प्रमुख थे भारत में केनेडियन माडेल का अनुकरण करते हुए केंद्रीकरण और विकेंद्रीकरण के विरोधी तत्वों का समन्वय करना चाहते थे। वे भारत की साम्प्रदायिकता, भाषा, धर्म, क्षेत्रीयता, जाति आदि के विभाजक तत्वों के कुप्रभावों से बचाकर एक अत्यधिक केंद्रीत शासन की स्थापना करना चाहते थे। उनका आदर्श एक केंद्रीकृत संघ (Centralised Federation) की स्थापना करना था। यही कारण है कि जब कुछ सदस्यों ने इस बात की जोरदार पैरवी की कि गवर्नर पद का निर्वाचन होना चाहिए तो डा. अम्बेडकर सहित कांग्रेस के सभी सदस्यों ने इसका विरोध किया और उन्होंने एक मनोनीत गवर्नर का समर्थन किया।

गवर्नर को राष्ट्रपति मनोनीत करेगा। राष्ट्रपति की प्रसन्नता पर्यन्त की गवर्नर अपने पद पर रहेगा। इस प्रावधान का दुरुपयोग के बाद में अवश्य हुआ। विशेषकर 1977,1980,1989,1991 में जब थोक पर गवर्नरों को हटाया गया या उनके तबादले किये गये क्योंकि केंद्र में जो सरकार पदारूढ़ थी वह नही चाहती थी कि ये गवर्नर जो दूसरे दलों द्वारा नियुक्त किये गये थे अपने पदों पर कार्य करते रहे। केंद्रीय सरकार को इन गवर्नरों के पद पर बने रहने से बहुत अधिक असुविधा होती।

संविधान सभा में गवर्नरों से सम्बन्धित दो प्रावधान उभरे उन प्रावधानों को दो भागो में विभाजित किया जा सकता है -

(i) गवर्नर को राष्ट्रपति का एजेंट बनाना जिससे केंद्रीय सरकार राज्यों की गतिविधियों की पूरी जानकारी प्राप्त कर सके और राज्यों की सरकारों पर अपनी पकड़ पूरी तरह स्थापित कर सके। यह प्रयास एक विकृत केंद्रीकरण की व्यवस्था का जनक सिद्ध हुआ और राज्यों में इसके विरुद्ध तीव्र प्रतिक्रिया हुई। जब जब केन्द्र और राज्यों में अलग-अलग सरकारें स्थापित हुई तब तब गवर्नर की भूमिका को लेकर दोनों सरकारों में काफी झड़पे हुई। इसने संघवाद के उस आधारभूत सिद्धान्त पर चोट पहुँचाई जिसे व्यापक रूप से सह अस्तित्व और स्वायत्ता का सिद्धान्त कहा जाता है।

(ii) गवर्नर को नाममात्र की कार्यपालिका या संविधानिक प्रधान का रूप देना। यह व्यवस्था भी कुछ अच्छी नहीं चली गवर्नरों में कई राजनीति बाज थे, वे राजनीति से अपने को दूर नहीं कर पाते थे और इस

तरह उनमे ओर मुख्यमंत्रियों में बड़े विवाद उत्पन्न हुआ। हाल में तमिलनाडु मे जयललिता बनाम चेन्नारेड्डी के बीच के विवाद इसी प्रकार के थे।

गवर्नरों की नियुक्ति प्रथमदर्शी विवाद से परे प्रतीत होती है कि राष्ट्रपति गवर्नरों की नियुक्ति करेगा। किन्तु यहाँ भी केद्र सरकार ने अपने दल के लोगो को गवर्नरो के रूप में ऐसे राज्यो में नियुक्त किया जहॉ अन्य दलो की सरकारें थी। इस सम्बन्ध मे क्लासिकी उदाहरण पश्चिम बंगाल के गवर्नर रघुवीर का है।

गवर्नरों के अन्य अधिकार जैसे कार्यपालिका सम्बन्धी, विधायिका सम्बन्धी भी अत्यधिक विवादास्पद सिद्ध हुए। मुख्यमत्री की नियुक्ति में, मंत्रिमंडल को भंग करने में गवर्नरों की भूमिका अत्यधिक विवादास्पद रही।

इसी प्रकार से गवर्नरो को जो विधायी अधिकार संविधान सभा ने सौपे थे, उन्होने भी काफी विवादों को जन्म दिया। विधानसभा आमत्रित, स्थगित, भग करने में, अध्यादेश पारित करने में राज्यपालों ने संविधान के दिशा निर्देशों की अवहेलना की।

सर्वाधिक विवादास्पद अनुच्छेद 356 रहा जिसका प्रयोग करके गवर्नरों ने पक्षपातपूर्ण रिपोर्ट दिये जिसे पूरे देश भर मे हंगामा हुआ।

Father of the constitution (संविधान के जनक) ने तो बड़ी ईमानदारी, निष्ठा और परिश्रम से गवर्नरों से सम्बन्धित प्रावधानों को अंतिम रूप दिया था। किन्तु अंततः कोई संविधान (सदैव के लिए भविष्य की पीढ़ियो को बाँधकर नहीं रख सकता । अमेरिकी संविधान निर्माताओं - हेमिल्टन, मेडिसन, जान जे.- ने कहा था कि कोई देश हमेशा के लिए कोई संविधान नहीं बना सकता। समय के साथ मनुष्य और समाज दोनों बदलते हैं। जो राष्ट्र युग भावनाओं और राजनैतिक परिवर्तनों (sprit of age and political changes) की अवहेलना करताहै, इसके प्रति उदासीनता बरतता है, ऐसे राष्ट्र का पतन अवश्यम्भावी है। डा. अम्बेडकर ने भी इस प्रकार की भविष्यवाणी संविधान सभा के समापन के अवसर पर किया था।

सरकारिया आयोग और अन्य आयोगों ने संविधान के अन्य अनुच्छेदो के साथ साथ गवर्नर से सम्बन्धित अनुच्छेदो में भी संशोधन करने की आवश्यकता पर बल दिया है।

[आने वाले आध्यायों में हम प्रान्त (Provinces) की जगह "राज्य" (states) शब्द का और गवर्नर (governor) शब्द के स्थान पर "राज्यपाल" शब्द का प्रयोग करेंगे। डा. राजेन्द्र प्रसाद की अध्यक्षता में अनुवादित भारतीय संविधान में राज्यपाल शब्द का ही प्रयोग किया गया है।]

फुट नोट्स

1 संविधान सभा के वाद विवाद (C A D -Constituent Assembly Debates), भाग IV, पृ. 545 ›

2 शिवा राव, बी.- दि फ्रेमिंग ऑफ इंडियाज कान्स्टीट्यूशन 4 भाग, भाग 4: ए स्टडी, नई दिल्ली, इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, पृ.383 -

3 प्रसाद, डॉ. राजेन्द्र- भारत का संविधान, नई दिल्ली, भारत सरकार, 1950, राज्यपाल का अध्याय; Governor शब्द का अनुबाद 'राज्यपाल' किया गया है। संविधान सभा द्वारा निर्मित भारत का संविधान अंग्रेजी में लिखा गया है, डा. राजेन्द्र प्रसाद की अध्यक्षता में गठित समिति ने इसका हिन्दी अनुवाद किया है।

4 शिवा राव, पृ.384-86

5 वही, पृ.387-91

6 संविधान का प्रारूप : अध्याय II, कार्यपालिका - गवर्नर

Article 129- There shall be a governor for each state

7 C A D. (संविधान सभा के वाद विवाद), भाग VIII, पृ. 416

8 वही, पृ.417-22

9 वही

10 Draft Constitution- Art 130(1), (2) (a), (b) .. "The executive power--------authority subordinate to the Governer"

11 C A.D. भाग VIII, पृ. 422

12. वही, पृ. 423

13 वही

14 अनुच्छेद 131 (Draft Constitution)

15. C A D., भाग VIII, पृ.424

16 वही, पृ. 428-29.

17 वही, पृ.431

18 वही, पृ. 432

19. वही- "The central fact to be remembered is that the Governor is to be a constitutional head, a sagacious counsellor and adviser to the ministry, one who can throw all over troubled waters "

20 वही, पृ. 432-33- "On the whole in the interest of harmony, in the interest of good working, in the interests of sounder relations between the provincial cabinet and the governor, is will be much better if we adopt the Canadian model and have the Governors appointed by the president with the convention growing up that the cabinet at the centre would also be guided by the advice of the provincial cabinet "

21 वही, पृ.434

22 वही, पृ.436- "He is the symbol of the state, and we have found in actual practice, that if he is an active governor, a good man, he can by means of getting into touch with the opponents of the party which is in power, reconcile them to a good number of measures, and generally by means of ours and others measures make the administration run smoothly similarly he can do a great deal of mischief "

श्री खेर ने जान स्टुअर्ट मिल की "रिप्रेसेंटेटिव गवर्नमेंट" से निम्न उद्धरण प्रस्तुत किया-

"The most important principle of good government in a popular constitution is that the executive functionaries should ever be appointed by popular election, neither by the votes of the people themselves nor by those of their representatives"

23 वही, पृ. 438- "Why deprive the people of the right to have a voice in the appointment of the person who will control their destinies "

24 वही, पृ.442-43- "But let us divest ourselves completely of the nasion that the governor is to be used in any way in order to carry out the wishes of the central executive "

25 वही, पृ. 446- "It would be an advantage because that person would come to the province with a free mind, perfectly detached perfectly unassociated with the different factions, or different sections of opinions in the province "

26 श्री सेन ने आगे कहा - "He is not to interfere, but he is just, to smooth matters----if there are factions, if different sections of the community are at logger heads with each other, it is for him to act more or less as a lubricator, a cementing factor "

27 वही, पृ. 448

28 वही, पृ. 448-49

29 वही, पृ. 450

30 वही, पृ. 451-54 "It would be better to have a governor mominated by the centre who is free from the passion and jealousies of local party politics,------Article 188 implies that the conditions in the province are abnormal and hence a governor who is detached from local party politics can perform that function much better than a governor who is elected Further, a person who is associated with the centre will be in much better position to restore stability with the aid of centre, than a person who is associated intimately with the politics of that province "

31 वही, पृ.454-56- "From almost every point of view this proposal that is moved of a nominated governor, in the present context of the constitution was not only desirable from the practical point of view too, it was desirable and worth while An elected governor will encourage separatist tendencies like provincialism and communalism Then if the governor is elected there will be far better links with the centre, then a rivalry in the majority party between the governors and the council of ministers would start, Election of the governor would require tremendons energy, a lot of time and money "

32. वही, पृ.456-64

33 वही

34. वही

35 वही पृ.464-67

36 वही, पृ. 467-70- "The governer is not to have any kind of functions to use a familiar phraseology no functions which he is required to discharge in his discretion or in his individual judgment ' According to the principal of the new

constitution he is required to follow the advice of his ministry in all matters Hence election of the governor would become unnecessary, elections would cost a lot of money, a lot of time and a lot of trouble----hence he is to be appointed "

37 वही, पृ.470-72

38 वही -

39 वही, पृ. 473- "He will be purely a creature of the president that is to say the prime minister and the party in power at the centre, the Governor will then have no respect "

40 वही, पृ.477

41 वही, पृ.478

42 वही, पृ.480

43 वही, पृ.482

44 वही, पृ.486.

45 वही, पृ.487-89

46 वही, पृ.490

47 वही, पृ.491.

48. वही, पृ.492

49. वही, पृ.493

50. वही, पृ.494

51. वही, पृ.496

52 वही, पृ.497

53 वही

54 वही

55 वही, पृ.498.

56 वही, डा. अम्बेडकर ने कहा-"The president has to function as a nominal executive in all circumstances, whereas the governor has to act as the agent of the centre "

57. वही, पृ.501

58 वही, पृ.503

59 वही, पृ.504

60 वही- "In the choice of his ministers and in the exercise of his other functions under the constitution "

61 वही- "But the validity of anything done by the governor shall not be called in question on the ground that it was done otherwise than in accordance with such instructions "

62 वही, पृ.512

63 वही, पृ.513

64. वही, पृ. 518-30

65 वही

66 वही, पृ.531-33- Shri Deshmukh replied- "That the guarantee is the Governor's wisdom and the wisdom of the authority that will appoint the Governor "

67 श्री देशमुख ने आगे कहा - "After all the Governor is essentially a link between provincial autonomy and the president and the government, and that function he can discharge only if he has the authority to ask the cabinet to reconsider certain things and also to keep himself informed from day to day as to what orders have been issued and what sort of administration is being carried on"

68 वही - "He is the one man who will be on the spot and who could advise the chief minister from a wider and more impartial stand point Apart from giving advise I do not think he likely to go very much further "

69 वही, पृ. 534

70 वही

71 वही, पृ.537, श्री गुप्ता ने रानी विक्टोरिया के पत्रों का उदाहरण देकर लिखा है- "We have the evidence of how a sagacious monarch without any statutory constitutional right could exert a profound influence of the decisions of the cabinet by making various private suggestions "

72. वही, पृ. 540

73 वही, पृ. 543- श्री मुंशी ने विस्तार से ब्रिटिश प्रधानमंत्री श्री एस्क्विथ को उद्धृत किया- "We have none established tradition that in the last resort the occupant of the throne accepts and acts on the advice of his ministers---he is entitled and bound to give his ministers all relevant information which comes to him."

74 डॉ. अम्बेडकर ने कहा-"A distinction has been made between functions of the Governor and the duties which the Governor has to perform- My submission is that although the Governor has no functions still, even the constitutional governor that he is, has certain duties to perform "

75 डॉ. अम्बेडकर ने बेजहाट की भाषा का प्रयोग करते हुए कहा- "The duties of the Governor can be classified into-

(1) He has to retain the ministry in office Because the ministry is to hold office during his pleasure he has to see whether and when he should exercise his pleasure against the ministry

(2) To Advise the ministry, to warn the ministry, to suggest to the minister an alternative and to ask for a reconsideration If the Governor is not to perform the above function he will become an unnecessary functionary The Governor is the representative not of a party, he is the representative of the people as a whole in the state It is in the name of the people that he carries on adminstration "

76 वही, पृ.869

77. वही,

78 संविधान सभा के वाद विवाद, भाग VIII,पृ.906

79. वही, पृ.911

अध्याय — 4

राज्यपाल का पद-नियुक्ति, वेतन, विशेषाधिकार आदि

खंड—I

राज्यपाल राज्य के प्रधान

अनुच्छेद 152 और 155 के अनुसार राज्यपाल राज्यों के प्रधान हैं । स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व राज्यपाल "प्रान्तों" के प्रधान होते थे । उस समय देशी रियासतें अर्ध सार्वभौम इकाईयां थीं । स्वतंत्रता प्राप्ति के समय इनकी संख्या लगभग 600 थी । इसके अतिरिक्त चीफ कमिश्नरों और लेफ्टिनेंट गर्वनरों के प्रान्त भी थे जिनका क्षेत्रफल छोटा होता था ।

15 अगस्त 1947 को भारत स्वतंत्र हुआ । इन देशी रियासतों को सरदार पटेल जो उस समय गृह मंत्री थे, के प्रयास से भारतीय संघ में विलीन किया गया। [1] 216 देशी रियासतों को पहले के प्रान्तों मे विलीन किया गया । शेष देशी रियासतों को 'ख' और 'ग' वर्ग के राज्यों में विलीन किया गया और इनके प्रधान को राजप्रमुख कहा गया । 'क' वर्ग के राज्य गर्वनरों के प्रान्त थे । गर्वनरों और राजप्रमुखों का एक ही दर्जा था। 'घ' वर्ग के राज्य केंन्द्र शासित राज्य कहलाये, ये पहले चीफ कमिश्नरों या लेफ्टिनेंट गवर्नरों के प्रान्त थे।

गवर्नर और राजप्रमुखों में अधिकारों की दृष्टि से कोई अंतर नहीं था किन्तु निम्न बातों में उनके बीच अंतर अवश्य था -

(1) क वर्ग के राज्य का प्रधान राज्यपाल होता है; ख वर्ग और ग वर्ग के राज्यों को "राज्यप्रमुख" कहा जाता था ।

(2) राष्ट्रपति राज्यपालों की नियुक्ति(appoints) करता है किन्तु राष्ट्रपति राजप्रमुखों को मान्यता (recognises) देता है ।

(3) राज्यपाल राष्ट्रपति के प्रसन्नता (pleasure) पर्यंत नियुक्त होता है सामान्यतया वह 5 वर्ष का अवधि के लिये नियुक्त होता है। किन्तु राजप्रमुख का पद "वंशगत" (Heriditary) होता है। राजप्रमुख पुराने देशी रियासतों के राजा या शासक होते थे, इसलिये संविधान सभा में यह तय किया गया कि जब तक यह व्यवस्था चलेगी राजप्रमुख का पद वंशगत रूप से चलता रहेगा । किन्तु यह भी कहा गया कि कोई भी राजप्रमुख तभी तक अपने पद पर बना रहेगा जब तक राष्ट्रपति उनको इस पद पर मान्यता देता रहेगा ।

(4) राष्ट्रपति विख्यात राजनीतिज्ञों, भूतपूर्व अनुभवी प्रशासकों या सार्वजनिक क्षेत्र के अन्य किसी ख्याति प्राप्त व्यक्ति को राज्यपाल के पद पर नियुक्त करेगा । राजप्रमुख देशी रियासतों के भूतपूर्व शासक ही होते थे ।

(5) राज्यपालों का वेतन भत्ता आदि द्वितीय अनुसूची के अनुसार होगा जिसमें संसद को समय समय पर `परिवर्तन, संशोधन का अधिकार होगा । किन्तु राजप्रमुखों का वेतन, भत्ता आदि उस संविदा के अनुसार होगा जो राष्ट्रपति और उस देशी रियासत के बीच सम्पन्न हुआ था ।

उपरोक्त अन्तरों को नजरअंदाज कर दें तो शेष बातों में राज्यपाल और राजप्रमुख के बीच किसी प्रकार का अंतर नहीं होगा ।

संविधान में सातवां संशोधन 1956 में किया गया। इस संशोधन अधिनियम के अनुसार 'ख' और 'ग' वर्ग के राज्यों को समाप्त कर दिया गया और 'घ' वर्ग के राज्यों को "केंन्द्र शासित क्षेत्रों" Centrally administred territories) में परिवर्तित कर दिया गया। अब जो राज्य रहे उनके प्रधान राज्यपाल रहे । राजप्रमुख" का पद समाप्त कर दिया गया ।[2]

केनेडियन माडेल

संविधान निर्माताओं ने भारत में जिस संघीय व्यवस्था का निर्माण किया वह अमेरिकी माडेल से भिन्न है। अमेरिका में विकेंद्रित व्यवस्था है, जहाँ राज्यों को संघ या केंन्द्र सरकार के नियंत्रण में बहुत दूर तक मुक्त रखा गया है । वहाँ राज्यपालों का निर्वाचन होता है । राज्यसूची के विषयों में राज्य स्वायत्त हैं। केन्द्र इनके क्षेत्र में हस्तक्षेप नही कर सकता है। इसलिये अमेरिकी राज्यपाल वास्तविक कार्यपालिका प्रधान है । राष्ट्रपति उनको नियुक्त नहीं करता और न उनको किसी प्रकार का आदेश ही दे सकता है । केनाडा में प्रान्तों को इतनी स्वायत्ता नहीं दी गयी है । वहाँ गर्वनरो को नियुक्ति गर्वनर जनरल द्वारा होती है और वे गर्वनर जनरल के एजेंट होते है ।

भारत ने केनेडियन माडेल का अनुसरण किया है । अनुच्छेद 155 में कहा गया है - "राष्ट्रपति राज्यपाल की नियुक्ति करेगा"।[3]

नियुक्ति की पद्धति

इस तरह अनुच्छेद 155 के अनुसार राष्ट्रपति राज्यपाल की नियुक्ति करेगा। राष्ट्रपति प्रधानमंत्री के परामर्श से राज्यपाल की नियुक्ति करता है । इस नियुक्ति में प्रधानमंत्री गृह मंत्रालय से परामर्श करता है । इस प्रकार राज्यपाल की नियुक्ति केंन्द्र सरकार द्वारा की जाती है । यह नियुक्ति एक "राजनैतिक नियुक्ति (Political appointment)" है । यही कारण है कि केंन्द्र में सरकारों के बदलने के साथ साथ प्रायः राज्यपाल

भी बदले जाते है। पिछले सरकार द्वारा नियुक्त राज्यपालों को वर्तमान सरकार चलने भी दे सकती है या फिर उनको इस्तीफा देने के लिये कहा जा सकता है ।

"Pleasure of the president" राष्ट्रपति की प्रसन्नता का अर्थ है " Pleasure of the Central Government" केन्द्रीय सरकार की प्रसन्नता और केन्द्रीय सरकार में आज एक दल का शासन हो सकता है तो कल दूसरी दल का और केंद्र में सरकारों के परिवर्तन के साथ, आने वाली सरकार की प्रसन्नता भी बदल जाती है । 1969 में पश्चिम बंगाल की साम्यवादी दल (CPM) ने तत्कालीन राज्यपाल धर्मवीर को बदलने के लिये लिखा था । केंद्र सरकार ने इसका जवाब देते हुए कहा था कि राज्यपाल राष्ट्रपति की प्रसन्नता पर्यत अपने पद पर बना रहता है और राज्यपाल को हटाने या नियुक्त करने का संवैधानिक अधिकार केंद्रीय सरकार का है। इस समय विरोधी दल राज्यपाल की नियुक्ति की प्रक्रिया में परिवर्तन करने की माग कर रहे थे। उस समय श्री गोविद मेनन, जो विधि मंत्री थे, ने कहा था कि राज्यपाल की नियुक्ति की प्रक्रिया में परिवर्तन करने का केंद्रीय सरकार का कोई इरादा नहीं है, उनके मत में यदि राज्यपाल का निर्वाचन होता है तो उसे भी इन्हीं समस्याओं का सामना करना पड़ेगा । किन्तु देश के प्रमुख पत्रों ने राज्यपाल की नियुक्ति की प्रक्रिया को बदलने की आवश्यकता महसूस की । चौथे निर्वाचन के बाद स्थितियाँ बड़ी तेजी से बदल रही थी । कांग्रेस दल का एकाधिकार और वर्चस्व समाप्त हो रहा था ।

राज्यपालो की नियुक्ति में उपरोक्त प्रक्रिया के अतिरिक्त अन्य कई बातो को भी ध्यान मे रखा जाता है, जैसे -

(1) मुख्यमंत्री से परामर्श - संवैधानिक रूप से राज्यपालों की नियुक्ति राष्ट्रपति या केंद्रीय सरकार द्वारा की जाती है और मुख्य मंत्रियो या राज्य सरकार से इसमें परामर्श लेने की कोई सविधानिक बाध्यता केंद्रीय सरकार की नहीं है । यह स्थिति चौथे निर्वाचन के पूर्व तक बनी रही और इस व्यवस्था का कोई विशेष विरोध भी नहीं हुआ । किन्तु चौथे निर्वाचन के बाद से स्थिति मे तेजी से परिवर्तन होना आरम्भ हो गया । कई राज्यो में गैर कांग्रेसी दलों की सरकारें बनीं ।

धर्मवीर को जब पश्चिम बंगाल का राज्यपाल बनाया गया तो पश्चिम बंगाल के मुख्यमंत्री श्री अजय मुखर्जी और उप मुख्यमंत्री श्री ज्योति बसु ने कहा कि धर्मवीर केंद्र सरकार के पिट्ठू है और केंद्र ने उन्हें पश्चिम बंगाल पर थोप दिया है जिससे वे केंद्र की जासूसी करते रहें और केंद्र के निर्देश पर पश्चिम बंगाल सरकार के मार्ग में रोड़े अटकाते रहें । केद्र सरकार ने इन्न आरोपों का खंडन करते हुए कहा कि धर्मवीर की नियुक्ति के पूर्व केंद्र सरकार ने मुख्यमंत्री से परामर्श लिया था ।

इसी प्रकार जब नित्यानंद कानूनगो को बिहार का राज्यपाल बनाया गया तो बिहार सरकार ने अपना विरोध किया । बिहार सरकार का कहना था कि कानूनगो की नियुक्ति मे केद्र सरकार ने बिहार के मुख्यमंत्री श्री महामाया प्रसाद सिहा से कोई परामर्श नही लिया था । किन्तु केंन्द्र सरकार का कहना था कि उसने बिहार के मुख्यमंत्री से परामर्श लेकर ही कानूनगो की नियुक्ति की थी । बिहार सरकार ने अपना विरोध व्यक्त करते

हुए श्री कानूनगो का पटना हवाई अड्डे पर स्वागत भी नही किया था और जब वे राजभवन में पधारे तब भी उनका राज्य सरकार ने कोई राजकीय सम्मान प्रकट नही किया । 4

वैसे मध्य प्रदेश में कांग्रेस की सरकार थी । केंद्र सरकार ने मुख्य मंत्री श्री श्यामचरण शुक्ला से परामर्श करके ही श्री सत्यनारायण सिहा को मध्यप्रदेश का राज्यपाल नियुक्त किया था ।

(2) राज्य सरकारो से परामर्श लेना एक संविधानिक अभिसमय (Constitutional convention) का रूप धारण कर चुका है - मुख्यमंत्री और राज्य सरकार यह नही कह सकते कि यह उनका सवैधानिक अधिकार है कि राज्यपालो की नियुक्ति मे उनसे परामर्श लिया जाय । क्योंकि इस बात का उल्लेख सविधान मे नही है । फिर भी यह एक संविधानिक परम्परा का रूप धारण कर चुकी है और केंद्र सरकार राज्य सरकारो से परामर्श लेकर ही राज्यपालो की नियुक्ति करते है ।

इस परम्परा की उपयोगिता यह है कि इससे केन्द्र और राज्य सरकार एक दूसरे के सहयोग से कार्य करते है और उनमे सम्पर्क की कड़ी के रूप मे राज्यपाल अपनी भूमिका निभाता रहता है । दूसरे, राज्यपाल और मुख्यमत्री के बीच भी अच्छा सम्बन्ध बना रहता है । स्टेटसमैन ने इस विषय पर यह विचार व्यक्त किया था कि इससे न केवल मुख्यमंत्री और राज्यपाल तथा राज्यसरकार और केंद्र सरकार के बीच एकता बनी रहेगी वरन इससे राज्यपाल पद की भी गरिमा बनी रहेगी क्योंकि राज्यसरकार उस व्यक्ति का सम्मान करता रहेगा जिसकी नियुक्ति मे उसका परामर्श लिया गया है । 5

केन्द्र सरकार न केवल मुख्यमत्री से राज्यपाल की नियुक्ति मे परामर्श ही ले वरन मुख्यमंत्री के परामर्श का सम्मान भी करे अर्थात मुख्यमंत्री को इस नियुक्ति मे प्रमुख भूमिका अदा भी करनी चाहिये । इंडियन एक्सप्रेस ने तो अपने सम्पादकीय मे लिखा कि देश मे ऐसी संविधानिक परम्परा की स्थापना होनी चाहिए कि केंद्र सरकार लगभग हर स्थिति मे मुख्यमत्री के परामर्श को माने वह इस परामर्श की तभी अवहेलना करे जब राष्ट्रीय हित का प्रश्न हो । जब भी किसी नये राज्यपाल की नियुक्ति करनी हो तभी इस प्रकार की स्वस्थ परम्परा का पालन किया जाय । साथ ही एक राज्यपाल को अपनी अवधि पूरी करने दी जाय । इस सविधानिक परम्परा के पालन करने पर सघ और राज्यो के बीच स्वस्थ सम्बन्धों की स्थापना हो सकेगी । 6

किन क्षेत्रों से राज्यपालों की नियुक्ति की जाय

सामान्यतया दो क्षेत्रो से अधिकांश राज्यपालो की नियुक्ति की गयी है -

(1) अधिकांश राज्यपालो को राजनैतिक दलो से नियुक्त किया जाता है अर्थात राज्यपालो में से अधिकांश राजनीतिज्ञ ही रहे है ।

(i) कांग्रेस के प्रभावशाली सदस्य जो चुनाव हार जाते है राज्यपाल बना दिया जाता है, इससे ये राजनीतिज्ञ अपने क्षेत्र से दूर हटा दिये जाते है और वे क्षेत्रीय राज्यनीति में सक्रिय भूमिका नही

निभा सकते है । श्री व्ही. व्ही. गिरी, एच. व्ही. पाटस्कर, एन व्ही. गाडगिल, हफीज मोहम्मद इब्राहिम आदि कांग्रेस के अपने अपने क्षेत्र मे प्रभावशाली सदस्य थे । किन्तु वे चुनाव हार गये थे अतएव उनको राज्यपालों के पद पर नियुक्त कर दिया गया ।

(ii) कभी-कभी कांग्रेस हाई कमांड ने किसी सक्रिय राजनीतिज्ञ को उनके क्षेत्र से हटाकर दूसरे राज्य में राज्यपाल नियुक्त कर दिया है। कांग्रेस हाई कमांड उसके राज्य में स्थिरता कायम करने के लिए ऐसा करता है। उस राजनीति के कारण राज्य में गुटबंदी और शक्ति की होड़ इस कदर बढ़ जाती है कि कांग्रेंस हाई कमांड को उस राज्य में विविध गुट्ठों के बीच सामंजस्य स्थापित करना कठिन हो जाता है। केरल से ए० जे० जान०, उड़ीसा से हरे कृष्णा महताब, पंजाब से भीमसेन साचर, हैदराबाद से श्री रामकृष्ण राव को इसी आधार पर हटाया गया कि वे अपनी राज्य की राजनीति में अस्थिरता और गुटबंदी न बढ़ायें। उत्तर प्रदेश की राजनीति में अस्थिरता का दौर उत्पन्न होने पर कांग्रेस ने 1962 में डॉ० संपूर्णानन्द को राजस्थान का राज्यपाल नियुक्त कर दिया। संपूर्णानन्द उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री रह चुके थे। इसी तरह उत्तरप्रदेश से ही श्री ए० पी० जैन को 1965 में केरल का राज्यपाल नियुक्त किया गया ।

(iii) कई राज्यों में विरोधियों को तोड़ने या उनके विरोध को समाप्त करने के लिये उनको राज्यपाल नियुक्त कर दिया जाता था। केरल में श्री पट्टम थानू पिल्लै, प्रजा समाजवादी दल के नेता और मुख्यमंत्री थे। इनको कांग्रेस सरकार ने पंजाब का राज्यपाल नियुक्त कर दिया। बाद में वे आंध्र प्रदेश के राज्यपाल भी बने। श्री पट्टम थानू पिल्लै ने पत्रकारों के समक्ष स्वयं यह स्वीकार किया कि कांग्रेस पार्टी उनको केरल से हटाना चाहती थी और केरल की राजनीति में उनके प्रभाव को समाप्त करना चाहती थी, अतएव उनको राज्यपाल पद का लालच दिया गया।[7] किन्तु कांग्रेस का यह रणकौशल हमेशा सफल नही हुआ। बिहार के कुछ नेताओं ने कांग्रेस हाई कमांड के नाम को राज्यपाल बनाये जाने के प्रस्ताव को ठुकरा दिया। श्री बिनोदानन्द झा और सत्यनारायण सिन्हा को ऐसा प्रस्ताव दिया गया था किन्तु इन्होने इस प्रस्ताव को ठुकरा दिया।

कभी-कभी ऐसा प्रस्ताव सशर्त स्वीकार किया जाता है जैसे 1965 में ए० पी० जैन ने राज्यपाल का पद स्वीकार करने के पूर्व कुछ शर्तें जोड़ी थी। वे केरल के राज्यपाल बनना नहीं चाहते थे और जब उन्होंने केरल का राज्यपाल बनना स्वीकार ही कर लिया तो उनकी काफी आलोचना हुई। उन्होंने पहले ही यह स्पष्ट कर दिया था, कि वे सक्रिय राजनीति से नहीं हटेंगे। उन्होंने राज्यपाल रहते हुए कांग्रेस संसदीय दल के चुनावों में रूचि लेना आरम्भ कर दिया था। स्टेट्समैन को लिखे एक पत्र में उन्होंने स्वीकार किया कि वे कुछ समयों के लिये राज्यपाल का पद पंडित नेहरू के कहने से स्वीकार कर रहे हैं किन्तु उनका इरादा सक्रिय राजनीति से सन्यास लेना नहीं है। कुछ समय बाद ही वे उत्तरप्रदेश की राजनीति में सक्रिय रूप से प्रवेश करेंगे।[8]

श्री जैन ने कांग्रेस संसदीय पार्टी के नेता के रूप में श्रीमती इंदिरा गांधी का न केवल समर्थन ही किया वरन उन्होंने श्रीमती इंदिरा गांधी के पक्ष में जोरदार प्रचार भी किया। इस तरह उन्होंने इस सुस्थापित और

स्वस्थ परम्परा को तोड़ा कि राज्यपाल को सक्रिय राजनीति से दूर रहना चाहिए और तभी वह एक संविधानिक प्रधान के रूप में कार्य कर सकेगा। इंडियन एक्सप्रेस ने यह विचार व्यक्त किया कि जो कांग्रेस के लोग राज्यपाल के रूप में नियुक्त किये जाते हैं वे निष्पक्ष संविधानिक प्रधान के दायित्वों को नहीं निभा पाते और राज्य की राजनीति में दखल देने लगते है। अतएव गैर कांग्रेस राज्यों ने एक स्वर से कांग्रेस सरकार द्वारा नियुक्त राज्यपालों का विरोध किया। 9

अतएव राजनीतिज्ञों को राज्यपाल नियुक्त करने की व्यवस्था की कड़ी आलोचना की गयी है। ऐसे राज्यपाल अपने पद के कर्त्तव्यों को पूरा करने के बजाय शक्ति की राजनीति में अधिक रूचि लेंगे। इससे मुख्यमंत्री और राज्यपालों में अक्सर संघर्ष होगा।

राजनीतिज्ञों को नियुक्त करने के पक्ष में यह तर्क दिया जाता है कि उनकी केन्द्रीय सरकार में पहुंच होगी और वे राज्य की बहुत सी समस्याओं को सीधे केंद्रीय नेतृत्व के समक्ष रख सकेंगे। केंद्र से अनुदान प्राप्त करने में योजनाओं को स्वीकृत कराने मे राज्यपाल राज्य की तरफ से केंद्रीय नेतृत्व के समक्ष राज्य की ओर से पैरवी कर सकता है। श्री प्रकाश ने भी यही विचार व्यक्त किया था कि चूंकि उन्होंने राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लिया था अतएव केंद्र के बहुत से प्रभावशाली मंत्रियों से उनकी पहचान थी अतएव जब उनको आसाम का राज्यपाल नियुक्त किया गया तो आसाम के मंत्रिपरिषद ने उनका स्वागत किया क्योंकि वे सोचते थे कि आसाम के विकास की योजनाओं को केंद्रीय सरकार की स्वीकृति दिलाने में श्री प्रकाश एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकेंगे। अब तक केंद्रीय नेतृत्व ने आसाम के विकास में कोई रूचि प्रदर्शित नहीं की थी। 10

इसी प्रकार से भूतपूर्व राज्यपाल श्री विष्णु सहाय ने यह विचार व्यक्त किया था कि ऐसा राजनीतिज्ञ राज्यपाल उस राज्य को कई प्रकार से लाभ पहुंचा सकता है। राज्यपालों के सम्मेलन में वह अपने राज्य की समस्याओं को उठा सकता है। 11

राज्यपालों की इन सब भूमिकाओं के बावजूद अब यह महसूस किया जाने लगा है कि सक्रिय राजनीतिज्ञों को राज्यपालों के पद पर नहीं नियुक्त किया जाना चाहिए। जब एन० व्ही० गैडगिल, पंजाब के राज्यपाल थे तो उन्होंने केरल की सम्यवादी सरकार के विरोध में प्रचार भी किया था। इसका काफी विरोध भी हुआ। एक अवसर पर राज्यपाल रहते हुए उन्होंने स्वतंत्र पार्टी की आलोचना की थी, एक दूसरे अवसर पर उन्होंने "नेहरू को वोट दो" के नारे का समर्थन करते हुए नेहरू के पक्ष में प्रचार भी किया था। इसी प्रकार मध्यप्रदेश के राज्यपाल एच० व्ही० पाटस्कर ने कांग्रेस की एक राजनैतिक सभा को सम्बोधित किया था। मध्यप्रदेश के राज्यपाल के० सी० रेड्डी ने अणुव्रत नेता आचार्य तुलसी के विरोध में रायपुर में जो जन आंदोलन चला था उसकी आलोचना भी की थी।

2. राज्यपाल के रूप में नौकरशाहों और अन्य क्षेत्रों से नियुक्त

राज्यपालों को भूतपूर्व लोकसेवकों, उधोगपतियों, इंजीनियरों आदि विविध सेवाओं से नियुक्त किया गया हे। ये सब गैर राजनैतिक व्यक्ति रहे हैं किन्तु इन्होंने अपने अपने क्षेत्र में विशेष योग्यता प्राप्त की है। श्री होमी मोदी एक विख्यात उधोगपति थे। उनको 1951 में उत्तरप्रदेश का राज्यपाल नियुक्तकिया गया। किन्तु ऐसे राज्यपाल सफल सिद्ध नहीं हुए है। पंडित नेहरू की सिफारिश पर उत्तरप्रदेश में कुछ ऐसे मंत्रियो की नियुक्ति की गई जिनकी जानकारी श्री मोदी को नहीं दी गई। श्री मोदी अपने पद पर बड़ी अनिच्छा से काम करते रहे। एक राज्यपाल के रूप में उनका जीवन निष्फल का जीवन रहा यद्यपि औद्योगिक जगत में वे चोटी के व्यक्तियों में गिने जाते थे।[12]

डॉ० ए० एन० खोसला अपने समय के एक विख्यात इंजीनियर रह चुके हैं। उन्होंने पंजाब में सिचाई की महत्वकांक्षी योजना तैयार की थी और इस कार्य पर वे अपना अधिकांश समय देते थे। किन्तु राजनीति और प्रशासन पर उनकी पकड़ नगण्य थी।

भूतपूर्व अनुभवी लोकसेवको के सम्बन्ध में ऐसी बात नहीं कही जा सकती है। राजनीतिज्ञों के बाद लोकसेवकों को ही इन पदों पर अधिक संख्या में नियुक्ति की गयी है। लोक सेवकों ने खुलकर राज्य की राजनीति और प्रशासन में अपनी भूमिका अदा की है। कई लोकसेवक राज्यपाल (Bureaucrat Governor) तो अत्यधिक विवादास्पद (Controversial Governors) रहे है। कई राज्य अत्यधिक समस्याग्रस्त रहे हैं, केन्द्र को काफी सोच विचारकर इन राज्यों में दृढ़ इच्छा शक्ति वाले राज्यपालों की नियुक्त करना होता है। ऐसे प्रशासक जिनको प्रशासन के साथ-साथ राजनीति का भी अच्छा ज्ञान था, इन समस्याग्रस्त राज्यों (problem states) में नियुक्त किये जाते रहे है। इनमें उल्लेखनीय हैं- सी० एम० त्रिवेदी, वाय एम० सुखथानकर, एस० एम० श्री नागेश, विष्णु सहाय, भगवान सहाय, धरमवीर, व्ही॰ विश्वनाथन, एस० एस० धावन। ये राज्यपाल अनुभवी लोकसेवक (Tested bureaucrats) रहे है। किन्तु कई राज्यों में ये विवादस्पद होकर विफलता की सीमा तक पहुंच गये। श्री धर्मवीर पंजाब के प्रशासक थे। उन्होंने कालाबाजारियों के खिलाफ अत्यधिक कठोर कदम उठाये थे। एक प्रशासक के रूप में उन्होने काफी ख्याति अर्जित की थी। किन्तु पश्चिम बंगाल में वे एक राज्यपाल के रूप में बदनाम होकर निकले। श्री धावन की भी यही हालत हुई।

पश्चिम बंगाल में श्री धावन की नियुक्ति के पूर्व पश्चिम बंगाल और केन्द्र सरकार के बीच एक जोरदार विवाद छिड़ा हुआ था। पश्चिम बंगाल मंत्रिमंडल ने राज्यपाल के लिये तीन नाम सुझाये थे। किन्तु प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी ने इन नामों को अस्वीकार कर दिया। प्रधानमंत्री ने श्री धावन के नाम की सिफारिश की श्री धावन उस समय लंदन में उच्चायुक्त थे। इस सुझाव के मिलते ही पश्चिम बंगाल की मंत्रिमंडल की बैठक हुई। श्री अजय मुकर्जी (पश्चिम बंगाल के मुख्यमंत्री) ने प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी को फोन पर सूचित

किया कि मंत्रिमंडल को धवन की कोई जानकारी नहीं है, और यदि उन्हें नियुक्त किया ही गया तो उनकी नियुक्ति की जवाबदारी श्रीमती गांधी और केन्द्रीय सरकार की होगी। गृहमंत्री श्री यशवंत राव चव्हाण की भी श्री अजय मुकर्जी से फोन पर वार्ता हुई। पश्चिम बंगाल के सूचना और प्रसारण मंत्री ने प्रेस को बतलाया कि "हम इस विषय पर कोई टिप्पणी नही करना चाहते क्योंकि हम इस व्यक्ति के विषय में कुछ भी नहीं जानते"। श्री मुकर्जी ने कहा कि हम यह नहीं कहते कि हम इस व्यक्ति को स्वीकार नही करेंगे, किन्तु चूंकि चुनाव प्रधानमंत्री ने किया है अतएव जिम्मेवारी भी उन्हीं की है।[13]

नियुक्ति की इस सारी प्रक्रिया पर टिप्पणी करते हुए इंडियन एक्सप्रेस ने अपने सम्पादकीय में लिखा कि नौकरशाहों और राजनीतिज्ञों से ही राज्यपालों की नियुक्ति करना एक संतोषजनक प्रक्रिया नहीं है। अन्य क्षेत्रों के योग्य और अनुभवी व्यक्तियों को भी इन पदो पर नियुक्त किया जाना चाहिए। यह महसूस किया जाने लगा था कि जब तक वर्तमान संविधान में आमूल परिवर्तन नहीं किया जाता तब तक राज्यपाल का पद बना रहेगा। आवश्यकता इस बात की है कि नियुक्ति की प्रक्रिया में आमूल परिवर्तन किया जाय जिससे राज्यपाल और मुख्यमंत्री तथा राज्य और केन्द्र के बीच अच्छा सम्बन्ध बना रहे। कुछ दलों ने अवश्य राज्यपाल के पद को समाप्त कर देने की बात कही है। साम्यवादी दल और संयुक्त समाजवादी दल ने 1969 के बाद से अपने चुनावी घोषणा पत्रों में राज्यपाल के पद को समाप्त करने की मांग की । 1971 के चुनाव में उन्होने राज्यपाल के पद को समाप्त कर देने का जोरदार प्रचार किया था और कहा था कि केन्द्र कांग्रेस पार्टी के संकुचित हितों की पूर्ति के लिये इस पद का प्रयोग कर रहा है।[14] साम्यवादी दल (मार्क्सिस्ट) के महासचिव श्री सुंदरैया ने कहा कि लोकतंत्रीय ताकतों को तब तक चुप नहीं बैठना चाहिए जब तक कि वे राज्यपाल के पद को केन्द्र द्वारा मनोनीत किये जाने की संवैधानिक व्यवस्था को समाप्त नहीं कर देते।[15]

सन् 1990 के बाद भी वही बातें महसूस की जा रही हैं। मजे की बात यह है कि जब कोई भी दल चाहे वह कांग्रेस हो चाहे जनता दल हो या अन्य कोई भी दल जब तक वह सत्ता में बना रहता है राज्यपाल के पद का दुरूपयोग करता जाता है और इस पद को समाप्त करने, उसकी नियुक्ति की प्रक्रिया में परिवर्तन की बात नहीं सोचता, किन्तु एक विरोधी दल के रूप में सभी दल राज्यपाल के पद को समाप्त करने या उसकी नियुक्ति की प्रक्रिया में आमूल परिवर्तन करने की बात करने लगता है।

राज्यपालों का वेतन, भत्ता और अन्य सुविधाएं

भारत सरकार के 1950 के आदेश (Government of India Order 1950, Governor allowances and privileges) के तहत राज्यपाल का वेतन और भत्ता निश्चित होता है। उसे 5500 रू० प्रतिमाह वेतन मिलता है। उसे निशुल्क निवास (राजभवन) प्राप्त होता है। इस राजभवन के सारे खर्चे सरकार वहन करती है। उसे सब प्रकार के वाहनों का निशुल्क प्रयोग करने का अधिकार है। (जैसे- रेल,

मोटर, हवाई जहाज, जहाज आदि आदि)। रेलवे सैलून मिलता है, यात्रा के समय वह इसका निशुल्क प्रयोग करता है। उसे एक सैनिक सचिव, एक सर्जन, दफ्तर के कर्मचारी और सेवक आदि की निशुल्क सेवाएं प्राप्त होती हैं। उसे 2750 रू० का अवकाश भत्ता प्राप्त होता है। 1950 के भारत सरकार के आदेश के तहत निम्न वस्तुएं पर कोई चुंगी नहीं लगता-

(i) राज्यपाल या उसके परिवार के निजी उपभोग की वस्तुएं, वस्त्र आदि।

(ii) उसके या उसके परिवार के सदस्यों के लिये पेय, तम्बाकू आदि।

(iii) राजभवन को सजाने संवारने की कोई वस्तु या प्रसाधन।

(iv) उसके उपयोग के लिये मोटर कार।

यदि कोई व्यक्ति अल्प समय के लिये ही राज्यपाल के पद पर कार्य करता है तो उसे भी ऊपर उल्लिखित वेतन, भत्ता, सुविधाएं आदि मिलेंगी। ये सब राज्य की संचित निधि पर भारित होने के कारण अमतदेय हैं।

राज्यपाल का सरकारी निवास राजभवन (Government House) कहलाता है। श्री प्रकाश, जो एक राज्यपाल भी रह चुके है, का कहना है कि राज्यभवन की सजावट और उस पर जो अधिकांश खर्च आदि होता है वह सब अतिथियों के स्वागत सत्कार पर खर्च होता है। राजभवन मे अतिथि आते ही रहते हैं, इनका सत्कार भी राज्य को ही करना चाहिए। यही कारण है कि राजभवन की पाकशाला में खाने पीने की चीजें ठसाठस भरी होनी चाहिए, अतिथियों के विश्राम के कमरे और हाल की सजावट और उनमें सारे सुख प्रसाधनों का होना आवश्यक है। राजभवन में दरबार हाल होता है। इन सबकी हालत ठीक रखने के लिए राज्यपाल को काफी समय और शक्ति खर्च करनी पड़ती है। विदेशों से बड़े-बड़े अतिथि, राज्याध्यक्ष, व्यवसायी, कलाकार, वैज्ञानिक, साहित्कार, राजनीतिज्ञ, समाज सेवकों का तांता सा लगा रहता है इनके स्वागत में त्रुटि नहीं होनी चाहिए अन्यथा राष्ट्र की बदनामी होती है। राज्यपाल राज्य का प्रधान है और उसे राज्य की मान मर्यादा की रक्षा करनी होती है। इन सबके लिये एक बड़े कार्यालयीन स्टाफ की आवश्यकता होती है। इस स्टाफ को अतिथियों के स्वागत का प्रशिक्षण भी दिया जाना चाहिए। इन सबके लिये काफी पैसा लगता है। किन्तु यह पैसा राज्यपाल पर निजी रूप में खर्च न होकर राज्य और केन्द्र सरकार के अतिथियों पर खर्च होता है अर्थात् यह खर्च राष्ट्रीय और राज्य सरकार के बजट का एक अंश है। राज्य को अपने अतिथियों की शुभेच्छाओं को प्राप्त करने के लिये यह सब खर्च अनिवार्य हो जाता है। वैसे राज्यपाल को जो वेतन भत्ता आदि मिलता है उस पर आयकर पटाने के बाद कोई अधिक नहीं बचता है।

कलकत्ता के एक महत्वपूर्ण दैनिक ने इन राजभवनों की आलोचना करते हुए भी यह स्वीकार किया कि राजभवन राज्यपाल के निजी भवन नहीं है, राजकीय या सरकारी आवास हैं जिनमें अधिकांश दफ्तर, अतिथिशाला आदि होता है।[16] ये राजभवन अंग्रेजों के जमाने में बनाये गये, इनको स्वतंत्र भारत में नहीं

बनाया गया है। राज्य सरकार को केवल इनके रख-रखाव पर खर्च करना पड़ता है। ये राजनीतिज्ञों के विलास भवन न होकर राज्य के प्रतीक हैं।[17]

श्री मुंशी ने भी श्री प्रकाश के विचार का समर्थन किया है। उनके अनुसार विविध क्षेत्रों से, देश और विदेश से लोग इस राजभवन में पधारते हैं। इस तरह राजभवन सामाजिक, संस्कृति और राष्ट्रीय जीवन के केन्द्र बन चुके है। इसीलिये इन राजभवनों और इनसे जुड़े हुए बाग/बगीचों को ठीक हालत में रखना चाहिए। ये राजभवन भारतीय गणतंत्र के प्रतीक हैं, ये राजभवन भारतीय की सामुहिक गरिमा के प्रतीक हैं।[18]

आज इन राजभवनों और उन पर किये जाने वाले खर्चों को अनिवार्य समझा जाने लगा है और कोई इनकी आलोचना नहीं करता। राज्यपालों को कोई पेंशन नही मिलती।

राज्यपाल की उन्मुक्तियां

अनुच्छेद 361 (I) में कहा गया है कि राज्यपाल किसी अदालत या न्यायालय के सम्मुख उत्तरदायी नहीं होगा। जब तक राज्यपाल अपने पद से सम्बन्धित कर्त्तव्यों और दायित्वों का निर्वाह करेगा उस पर किसी अदालत या न्यायालय में मुकदमा नहीं चलाया जायेगा।

किन्तु यह अनुच्छेद राज्य सरकार को न्यायालयों और अदालतों के क्षेत्राधिकार से किसी प्रकार के कोई उन्मुक्तियां नही प्रदान करता। राज्य सरकार पर नागरिक, संस्थाएं, संगठन आदि मुकदमा चला सकेंगे।

डॉ० जेनिग्स ने ब्रिटेन में राजमुकुट की इन उन्मुक्तियों का उल्लेख करते हुए कहा है कि राजा या रानी पर कोई मुकदमा नहीं चलाया जा सकता क्योंकि उसके सारे कार्य मंत्रिमंडल के परामर्श पर किये जाते हैं। अतएव राजा जो कुछ भी करता है वे सब मंत्रिमंडल के कार्य हैं और राजा या रानी पर किये जाने वाले यह सब कार्य मंत्रिमंडल के कार्य है"The King can do no wrong" का अर्थ हुआ जब राजा कोई कार्य स्वविवेक पर नहीं करता, स्वयं नहीं करता तो फिर किसी भी सरकारी कार्य के लिये वह क्यों उत्तरदायी होगा। उनके लिये तो मंत्रिमंडल ही उत्तरदायी होगा। इसी प्रकार डॉ० कीथ का भी कहना है कि राजा के हस्ताक्षर के नीचे किसी मंत्री या सचिव का प्रतिहस्ताक्षर रहता है और वह उस राजाज्ञा या राज्य के आदेश के लिये उत्तरदायी होगा। डॉ० जेनिग्स इस विचार को और आगे बढ़ाते हुए कहते हैं- "In the last resort the king has no option If the constitutional doctrines of ministerial responsibility mean anything at all, the king would have to sign his own death warrant if it was presented to him for signature by a minister"

यदि मंत्री रानी की मृत्यु का परवाना रानी के सामने हस्ताक्षर के लिए पेश करें तो रानी को उस पर भी हस्ताक्षर करना होगा।

भारत में राष्ट्रपति और राज्यपालों को इसी प्रकार की उन्मुक्तियां प्रदान की गयी है। अनुच्छेद 361 (3) के अनुसार राज्यपाल के विरुध किसी प्रकार का अदालती वारंट जारी नही किया जा सकता। न तो उसको दीवानी या फौजदारी मामलों में गिरफ्तार ही किया जा सकता है।[19]

राज्यपाल पर एक व्यक्ति के रूप मे अवश्य ही दीवानी अदालत में मामला दायर किया जा सकता है। किन्तु इसके लिए उसे 2 माह पूर्व लिखित सूचना देनी होगी। ऐसे मामलों में वह निजी व्यक्ति के रूप में अदालत में हाजिर होगा, राज्यपाल के रूप में नहीं।

राज्यपाल पद की शपथ

अनुच्छेद 159 में राज्यपाल पद की शपथ का उल्लेख है। अपना पद ग्रहण करने के पूर्व राज्यपाल उस राज्य के उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश या उसकी अनुपस्थिति में सबसे वरिष्ट न्यायाधीश के सम्मुख शपथ ग्रहण करेगा। शपथ से राज्यपाल को कोई विशेष शक्तियां प्राप्त नहीं होती, यह केवल एक नैतिक दायित्व का बोध करता है कि राज्यपाल को संविधान और उसके अंतर्गत पारित कानूनों का रक्षा करना होगा और उनके अनुसार अपने आचरण (शासकीय) को ढालना होगा। इसके अतिरिक्त वह राज्य की जनता की सेवा करने की भी शपथ लेता है।

राज्यपाल का शपथ समारोह बड़े दिखावे धूम धाम के बीच मनाया जाता है - सेना का बैंड (armed constabnlury band) उपस्थित रहता है और एक विशेष धुन बजायी जाती है। मुख्य सचिव राष्ट्रपति के **नियुक्ति आदेश (Warrant of appointment) को पढ़ता है। शपथ पत्र मुख्य न्यायाधीश पढ़ता जाता है** राज्यपाल दुहराता जाता है। इसके तुरन्त बाद 17 तोप की सलामी दागी जाती है जिसका अर्थ है कि राज्यपाल ने अपना पद ग्रहण कर लिया। विशिष्ट अतिथियों, प्रेस की उपस्थिति में यह सब होता है। राजभवन के सामने राज्यपाल के सम्मान में सेना मार्च करती हुई राज्यपाल को सेल्यूट करती है। (Guard of honour)।

यह शपथ ग्रहण समारोह उतनी बार दुहरायी जानी चाहिए जितनी बार किसी राज्य में नया राज्यपाल पद ग्रहण करता है या नये राज्य का कोई राज्यपाल पद ग्रहण करता है। धर्मवीर पंजाब के गवर्नर थे। जब हरियाणा एक नया राज्य बना तो धर्मवीर ने पुनः हरियाणा के राज्यपाल के पद की शपथ 1 नवम्बर, 1966 को ग्रहण की। श्री वी. के. नेहरु आसाम के राज्यपाल थे, जब नागालैंड बना तो उनको फिर से शपथ ग्रहण करनी पड़ी। जब किसी राज्यपाल की पद पर रहते हुए मृत्यु हो जाती है तो जो कार्यकारी राज्यपाल राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त होता है उसे अपने पद की शपथ ग्रहण करनी होती है, फिर नियमित रूप से जिस राज्यपाल की नियुक्ति होती है उसे भी पद ग्रहण करने की शपथ लेनी होती है।

बम्बई में श्री गिरिजा शंकर बाजपेयी राज्यपाल थे, उनकी मृत्यु पर श्री मंगलदास पकवासा को राष्ट्रपति ने कार्यकारी राज्यपाल नियुक्त किया। राष्ट्रपति ने 5 दिसम्बर 1954 को अनुच्छेदों 160 के तहत राज्यपाल

नियुक्त किया और कहा कि श्री मंगलदास पकवासा तब तक अपने पद पर बने रहेंगे जब तक कि अनुच्छेद 155 के तहत एक स्थायी राज्यपाल की नियुक्ति नहीं कर दी जाती। 20

इस नियुक्ति के आदेश की सूचना बम्बई के मुख्य सचिव को दूरभाष पर भेज दी गयी और श्री मंगलदास पकवासा को उसी दिन 5 बजे संध्या सचिवालय के मंत्रिमंडल कक्ष में निम्न की उपस्थित में शपथ ग्रहण करायी गयी - मुख्यमंत्री, विधान परिषद के सभापति, विधानसभा के अध्यक्ष, मंत्रीगण, उपमंत्री, मुख्य सचिव और अन्य सचिव।

वरिष्ठता सूची (Warrant of Precedence)

प्रोटोकोल की दृष्टि से राज्यपाल को केंद्रीय मंत्रिमंडल (केबिनेट) के मंत्रियों से ऊपर स्थान प्रदान किया जाता है। किन्तु संविधानिक शक्ति की दृष्टि से उसका महत्व नगण्य है। राज्य के मंत्रियों को सारी शक्तियों मिली हुई हैं।

राज्यपाल पद की आवश्यक शर्तें

अनुच्छेद 158 मे राज्यपाल पद की अर्हताओं का उल्लेख किया गया है -

(i) अनुच्छेद 158 (1) में कहा गया है कि राज्यपाल संसद के किसी सदन या राज्य विधान मंडल के किसी सदन का सदस्य नहीं होगा, यदि नियुक्ति के पूर्व वह इनमें से किसी सदन का सदस्य है तो उसे इस सदस्यता सेइस्तीफा देना पड़ेगा।

(ii) अनुच्छेद 158 (2) के अनुसार राज्यपाल कोई लाभ का पद (office of profit) ग्रहण नही करेगा।

(iii) अनुच्छेद 158 (3) में उसके वेतन, भत्ते, आवास, सुविधा आदि का उल्लेख है।

(iv) अनुच्छेद 158 (4) में कहा गया है कि राज्यपाल के वेतन, भत्ते, सुविधाएं आदि में उसके कार्यकाल में कटौती नहीं की जा सकती। उसका वेतन भत्ता संचित निधि से दिया जाता है जो अमतदेय है।

भारतीय संविधान में एक दोष रह गया है। जबकि राष्ट्रपति को सेवानिवृत्ति के बाद पेंशन दी जाती है, राज्यपाल को ऐसी कोई पेंशन नही दी जाती। इस बाबत संविधान निर्माताओं के समक्ष शायद यह विचार रहा होगा कि राष्ट्रपति का पद सर्वोच्च पद है, उसके बाद उस पद पर पहुंचकर व्यक्ति की राजनैतिक आकांक्षाएं समाप्त हो जाती हैं। किन्तु राज्यपाल पद एक सीढ़ी है, या एक विश्रामस्थल है, जहां से वह और आगे बढ़ सकता है, राजनीति में भाग ले सकता है।

अनुच्छेद 158 (3 A) में कहा गया है कि यदि कोई व्यक्ति एक साथ दो राज्यो का राज्यपाल बनता है तो उसका वेतन, भत्ता दोनो राज्यों के बीच में उस अनुपात में बँट जायगा जैसे राष्ट्रपति निर्धारित करे। कुछ राज्यपालों को एक साथ दो राज्यों के लिये राज्यपाल नियुक्त किया गया है जैसे पंजाब और हरियाणा, आसाम और नागालैड।

पद पर कार्य करते हुए राज्यपालों को राजकीय सम्मान

राज्यपाल यदि अपने पद पर कार्य करते हुए मरता है तो उसका राजकीय सम्मान के साथ मृतक संस्कार किया जाता है। उसकी मृत्यु पर राज्य में छुट्टी घोषित कर दी जाती है, सभी राजकीय कार्यक्रमों (राज्य सरकार के) को रद्द कर दिया जाता है तथा एक अवधि तक शोक दिवस मनाया जाता है और सभी सरकारी इमारतों पर राष्ट्रीय ध्वज आधा झुका दिया जाता है।

राज्यपाल पद के लिये आवश्यक अर्हताएं

राज्यपाल पद के लिये अनुच्छेद 157 में केवल दो बातों का उल्लेख किया गया है कोई भी व्यक्ति इस पद पर नियुक्त नहीं किया जा सकता जब तक वह भारत का नागरिक न हो और 35 वर्ष की आयु न पूरी कर चुका हो।

राज्यपालों की बार-बार यात्राएं आदि करने पर रोक

स्वतंत्रता के पूर्व गवर्नर अपने प्रान्त को छोड़कर बहुत कम बाहर जाते थें, वे दिल्ली भी बहुत कम आते थे। गवर्नर जनरल से तभी परामर्श करने के लिये दिल्ली पहुंचते थे जब ऐसा करना नितांत आवश्यक हो जाता था। अधिकांश मामलों को वे स्वयं ही निपटा लेते थे।

किन्तु स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद राज्यपाल अपने राज्यों को छोड़कर बारम्बार बाहर जाने लगे। वे अकारण या राजनैतिक कारणों से बारम्बार दिल्ली आने लगे। उन कार्यों को जिनको वे स्वविवेक पर निपटा सकते थे उनके लिये भी वे दिल्ली दौड़ने लगे जहां राजनीतिक गुटबाजी या बहसबाजी का अच्छा अवसर मिलता था। या फिर कई राज्यपाल अपना राज्य छोड़कर दूसरे राज्य में चले जाते थे और वहां नाना प्रकार के कार्यक्रमो में भाग लेते थे। कई राज्यपाल राज्य के बाहर अपने परिवार वालों से मिलने के लिये काफी समय बिता देते थे। इन सब कारणों से राजकाज प्रभावित होने लगा और राज्य सरकार और केंद्र सरकार के लिये यह एक चिता का विषय बन गया। अतएव 1968 में केंद्रीय सरकार को यह निर्णय लेना पड़ा कि राज्यपाल बिना राष्ट्रपति की अनुमति के अपने राज्य को छोड़कर बाहर न जाय। जब तक पर्याप्त कारण न हो राज्यपाल राज्य न छोड़े और न छोटी मोटी बातों के लिये वे दिल्ली ही पहुंचे। 21

राज्यपाल के पद की अवधि-संवैधानिक स्थिति

अनुच्छेद 156 में राज्यपाल के पद की अवधि का उल्लेख किया गया है। अनुच्छेद 156 (1) में कहा गया है कि राज्यपाल अपने पद पर राष्ट्रपति की "प्रसन्नता पर्यन्त" (Pleasure of the president) बना रहेगा। अनुच्छेद 156 (2) में कहा गया है कि राज्यपाल राष्ट्रपति को लिखित मे अपने पद से इस्तीफा दे सकता है। उपरोक्त दोनों बातों को ध्यान में रखते हुए राज्यपाल अपने पद पर 5 वर्ष तक बना रहेगा। 5 वर्ष की अवधि पूरी करने पर भी राज्यपाल अपने पद पर तब तक बना रहेगा जब तक कि दूसरा राज्यपाल पद ग्रहण नही कर लेता।

राज्यपालों को वापस नहीं बुलाया जा सकता या उन पर महाभियोग नहीं चलाया जा सकता

भारत में अमेरिकी संघ व्यावस्था को नहीं अपनाया गया है अमेरिका में जनमत के द्वारा नागरिक राज्यपाल को वापस बुला सकते हैं (Recall) या राज्यपाल पर महाभियोग (Impeachment) चलाकर उसे पदच्युत कर सकते है। भारतीय संविधान मे ऐसी कोई व्यवस्था नहीं है- उसे न तो वापस बुलाया जा सकता है और न उस पर महाअभियोग ही चलाया जा सकता है।

डॉ० राव ने संविधान सभा में जो प्रस्ताव पेश किया था उसमें राज्यपाल की नियुक्ति निर्वाचन के द्वारा करने की सिफारिश की गयी थी। किन्तु उनकी योजना को स्वीकार नही किया गया। संविधान सभा ने केनेडियन नमूने की संघ व्यवस्था को स्वीकार किया जिसमें गवर्नर जनरल लेफ्टिनेंट गवर्नरों को पद से अपनी प्रसन्नता पर्यत जब चाहे तब निकाल सकता है। इसी प्रकार से भारत में राष्ट्रपति जब चाहे तब राज्यपालों को पद से अलग कर सकता है अर्थात् वे उसकी प्रसन्नता पर्यत तब पद पर बने रहते है। भारत मे राज्यपाल 5 वर्ष के लिये राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किये जाते है किन्तु राष्ट्रपति चाहे तो उनको 5 वर्षों की अवधि के पूर्व भी पद से हटा सकता है, यह उसकी प्रसन्नता पर निर्भर है।

भूतकाल में संविद सरकारों की स्थापना के साथ-साथ भारत के विरोधी दलों ने राज्यपालों के वापस बुलाने या उन पर महाभियोग चलाने की मांग पेश की। यद्यपि उनको विदित था कि संविधान ने राज्यपालों को वापस बुलाने या महाभियोग चलाने के अधिकार को स्वीकार नही किया है। विभिन्न राज्यों में राज्यपालों के विरूद्ध महाभियोग लगाने और उनको वापस बुलाने की मांग पेश की गयी-

(1) बिहार - 2 अप्रैल, 1970 को सांसद श्री मधुलिमये, श्री रबी रे और श्री जी मुराहारी (सभी संयुक्त समाजवादी दल के सदस्य) ने राष्ट्रपति को एक शिकायती प्रतिवेदन पेश करते हुए याचना की कि बिहार के राज्यपाल श्री नित्यानन्द कानूनगों को वापस बुला लिया जाय। उनका कहना था कि जब कानूनगों केन्द्रीय मंत्री थे तो उनके विभाग में काफी घोटाला हुआ था, जिस पर जांच कमेटी बैठायी गयी थी और कमेटी ने कानूनगों को दोषी भी पाया था। अतएव कमेटी की रिपोर्ट के बाद कानूनगो को पद पर बने रहने का अधिकार नहीं है और राष्ट्रपति को उसे वापस बुला लेना चाहिए।

(2) पश्चिमी बंगाल - 5 दिसम्बर, 1967 को पश्चिम बंगाल के राज्यपाल श्री धर्मवीर को पद से हटाने की जोरदार मांग संसद में पेश की गयी। पश्चिम बंगाल के साम्यवादी दल के सदस्यों द्वारा यह मांग पेश की गयी थी। हिरेन मुकर्जी ने इस सम्बन्ध में अपना प्रस्ताव भी पेश किया था। मुकर्जी ने डॉ० अम्बेडकर को अपने भाषण में कई जगह उद्धृत किया। किन्तु गृहमंत्री, श्री यशवंत राव चव्हाण ने इस मांग का जोरदार विरोध किया। 22 फरवरी, 1968 को पश्चिम बंगाल की युनाइटेड फ्रंट सरकार ने एक प्रस्ताव पास किया जिसमें उन्होंने केंद्र सरकार से मांग की कि राज्यपाल श्री धर्मवीर को वापस बुला लिया जाय क्योंकि राज्यपाल ने निहित स्वार्थों का साथ दिया है और मौजूदा सरकार का विरोध करना अपना कर्त्तव्य बना लिया है।

11 मार्च को भूपेश गुप्ता के साथ अन्य कई विरोधी दलों के सदस्यों ने राज्यपाल वापस बुलाने की मांग पेश की। पश्चिम बंगाल की यूनाइटेड फ्रंट मंत्रिमंडल ने इसके पूर्व ही राज्यपाल को वापस बुलाने का एक प्रस्ताव पारित किया था (मार्च 6, 1969)। मुख्यमंत्री श्री अजय मुकर्जी ने इस निर्णय से राष्ट्रपति और प्रधान मंत्री को अवगत करा दिया था। मंत्रिमंडल ने यह भी तय किया था कि इस सम्बन्ध में केंद्र से सूचना मिलने तक रूका जाय और उसके बाद ही कोई कदम उठाया जाय। श्री विश्वनाथ मुकर्जी और श्री अजय मुकर्जी ने कहा कि यह पश्चिम बंगाल सरकार का धर्मवीर को वापस बुलाने का प्रस्ताव मात्र औपचारिक नहीं हैं, यदि इस प्रस्ताव को स्वीकार नहीं किया गया तो इसके अत्यधिक गम्भीर परिणाम होंगे। श्री धर्मवीर को बहुत अधिक बेइज्ज़त होकर पद से हटना पड़ा। 28 2.69 को राष्ट्रपति ने धर्मवीर को राज्यपाल पद से हटा दिया। यह देश के इतिहास में पहली घटना थी जब किसी राज्यपाल को उसके पद से हटा दिया गया।[22]

इसके बाद केन्द्र सरकार ने शान्ति स्वरूप धवन को पश्चिम बंगाल का राज्यपाल नियुक्त किया। वे भी श्री धर्मवीर की तरह पश्चिम बंगाल की राजनीति की दलदल में फंस गये। 28 मार्च, 1970 को उन्होंने कलकत्ता आकाशवाणी में एक भाषण दिया। इस भाषण की कांग्रेस दल में अत्यधिक प्रतिकूल प्रतिक्रिया हुई। इस बार कांग्रेस दल ने मांग किया कि राज्यपाल को उनके पद से हटा दिया जाय। धवन ने पश्चिम बंगाल की पुलिस बल की आलोचना की थी। कांग्रेस ने कहा कि इससे पुलिस का नैतिक बल गिरेगा। 5 जून, 1970 को कांग्रेस पार्टी की एक बैठक में धावन के पद से हटाये जाने की मांग की। यह कहा गया कि राज्यपाल वामपंथियों का साथ दे रहे हैं और राज्य की शान्ति और व्यवस्था प्रतिकूल रूप से प्रभावित हो रही है। राज्य के एक प्रमुख पत्र ने धवन के वापस बुलाये जाने पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए कहा कि कांग्रेस को यह नहीं भूल जाना चाहिए कि राज्यपाल पर केन्द्र सरकार का ही नियंत्रण रहता है। किन्तु पत्र ने यह भी स्वीकार किया कि धवन गलत समय गलत स्थान पर गलत भाषण देने के आदी हो गये हैं। साथ ही ऐसा प्रतीत होता है कि उनमें प्रशासकीय क्षमता की भी कमी है।[23]

जून 9, 1970 को राज्य सभा में पश्चिम बंगाल की स्थिति पर विस्तार से चर्चा हुई। राज्य सभा के सदस्यों ने (कांग्रेस का इस सदन में बहुमत था) भी धवन को वापस बुला लेने की मांग की। राज्य सभा में

विरोधी दल के नेता एम० एन० मिश्रा ने कहा कि राज्यपाल पश्चिम बंगाल में कानून और व्यवस्था स्थापित करने में पूर्ण रूपेण विफल हुए हैं। आतंकवादी, अपराधी तत्व उनकी छाया मे पनप रहे है और उनसे प्रोत्साहन प्राप्त कर रहे हैं। इसी तरह कलकत्ता उच्च न्यायालय के वकीलों के संगठन ने धवन के भाषण का विरोध किया। यदि श्री धवन को नहीं हटाया गया तो पश्चिम बंगाल में उनके विरूद्ध तीव्र आंदोलन छेड़ा जायगा।

इतना विरोध होने के बावजूद प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी और गृहमंत्री श्री यशवंत राव चव्हाण ने राज्यपाल धवन को वापस बुलाये जाने के प्रस्ताव को अमान्य कर दिया। श्री चव्हाण ने कहा कि राज्यपाल को वापस बुलाना इतना आसान नहीं है—

"To call back the governor is not such an easy thing" [24]

(3) पंजाब - 2 अप्रैल,1968 को श्री चव्हाण ने स्वीकार किया कि पंजाब के राज्यपाल ने गलती से बिना उपाध्यक्ष के हस्ताक्षर के बजट प्रस्तावों पर अपना हस्ताक्षर कर दिया है जो असंवैधानिक है। इस आधार पर लोकसभा के विरोधी दलों के सदस्यों श्री मधु लिमये और हेम बरूआ ने मांग की कि राज्यपाल को बर्खास्त कर दिया जाय। किन्तु गृहमंत्री श्री चव्हाण ने कहा कि राज्यपाल को बर्खास्त करने का कोई प्रश्न ही नही उठता। इसी तरह राज्यपाल डी० सी० पवाटे द्वारा बजट भाषण पढ़ने का कांग्रेस सदस्यों ने विरोध किया और कहा कि इस भाषण में कुछ असंवैधानिक बातें थीं जिन्हें राज्यपाल को नहीं पढ़ना चाहिए था।[25]

(4) मध्यप्रदेश - 12 मार्च, 1969 को राज्य सभा के कुछ सदस्यों ने मध्यप्रदेश के राज्यपाल श्री के० सी० रेड्डी की वापसी की मांग की क्योंकि श्री रेड्डी ने संयुक्त विधायक दल नेता राजा नरेश चंद्र सिह को मुख्यमंत्री पद की शपथ दिलाने में जान बूझकर देरी की। इसे श्री रेड्डी की तानाशाही बताया गया। श्री बांका बिहारी दास ने कहा कि "अब समय आ गया है जब हमें राज्यपाल के पद पर विचार करना है ..... राज्यपाल का यह कार्य संविधान की मूल भावना पर एक कुठाराघात है।" लोकसभा में भी राज्यपाल के इस कदम की विरोधी दलों ने कड़ी आलोचना की। [26]

राज्यपालों का तबादला (Transfer) नहीं हो सकता, उनकी नियुक्ति (Appointment) होती है

संविधान में राज्यपालों के तबादले की कोई व्यवस्था नहीं है- उनको एक राज्य से दूसरे राज्य में नियुक्त किया जा सकता है परन्तु ऐसी नियुक्ति एक नई नियुक्ति होगी और प्रत्येक बार नये राज्य मे राज्यपाल को शपथ लेनी होगी। धर्मवीर को पश्चिम बंगाल के बाद मैसूर में राज्यपाल नियुक्त किया गया। 1960 में व्ही० व्ही० गिरी उत्तरप्रदेश के राज्यपाल थे और डॉ० रामकृष्ण राव केरल के राज्यपाल, दोनों को उनकी इच्छा के अनुसार एक दूसरे के राज्य में नियुक्ति की गयी- डॉ० रामकृष्ण राव को उत्तर प्रदेश में और श्री व्ही० व्ही० गिरी को केरल नियुक्त किया गया। केरल में साम्यवादी सरकार डॉ० रामकृष्णा राव के खिलाफ थी क्योंकि

रामकृष्णा राव ने केरल में राष्ट्रपति शासन लागू करने की सिफारिश की थी। इसी प्रकार श्री व्ही० व्ही० गिरी और उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री डॉ० सम्पूर्णानन्द के बीच नही पटती थी। श्री गिरी ने यह भी तर्क दिया कि उत्तर प्रदेश का आबोहवा श्रीमती गिरी के माफिक नही थी। इन दोनों ने एक दूसरे के राज्य में जाने की इच्छा व्यक्त की थी और राष्ट्रपति ने उनकी इच्छा स्वीकार कर ली थी राष्ट्रपति भवन से यह सूचना जारी की गयी-

"The president of India, Dr Rajendra Prasad has requested for personal reasons by Mr Giri, Governor of U P and Dr Ramkrishna Rao, the governor of kerala, to be the Governor of kerala and Uttar Pradesh respectively with effect from July 1, next "[27]

इस प्रतिनियुक्ति की प्रक्रिया की संसद में कटु आलोचना की गयी क्योंकि संविधान में राज्यपालों के तबादले की व्यवस्था नहीं है।

विरोधी दलों की इस आलोचना को मद्देनजर रखते हुए यह भी कहा जा सकता है संविधान राज्यपालों के तबादले पर प्रतिबंध भी नहीं लगाता। संविधान की दृष्टि से जब एक राज्यपाल किसी राज्य से हटाया जाता है तो वह राज्यपाल नहीं रह जाता। दूसरे राज्य में वह फिर से शपथ लेता है और एक नया व्यक्ति राज्यपाल बनता है। जब धर्मवीर को पश्चिम बंगाल से हटाकर मैसूर में राज्यपाल बनाया गया तो धर्मवीर का मैसूर में पश्चिम बंगाल से तबादला नहीं हुआ, धर्मवीर को मैसूर में एक नये व्यक्ति के रूप में राज्यपाल के पद की शपथ दिलाकर राज्यपाल के पद पर नियुक्ति की गयी है।

1964, 1965, 1966 ,1967 में एक राज्य के राज्यपाल को दूसरे राज्य में नियुक्त किया गया " तबादला" (Transfer) नहीं किन्तु इनकी "नियुक्ति" (Appointment) की गयी। तबादला में नये सिरे से शपथ नहीं लेनी पड़ती किन्तु नियुक्ति में नये सिरे से शपथ लेनी पड़ती है। 1964 में श्री पट्टम थानू पिल्ले जो पंजाब के राज्यपाल थे आंध्र के राज्यपाल नियुक्त किये गये थे। श्री एस. एम. श्रीनागेश जो आंध्र के राज्यपाल थे, उनको मैसूर में नियुक्त किया। श्री जयचामराज वाडियार बहादुर मैसूर के राज्यपाल थे उनको मद्रास का राज्यपाल नियुक्त किया गया। 1965 में केरल के राज्यपाल व्ही० व्ही० गिरी को मैसूर का राज्यपाल नियुक्त किया गया। 1966 में पंजाब के राज्यपाल सरदार उज्ज्वल सिंह को मद्रास का राज्यपाल नियुक्त किया गया। 1967 में पंजाब के राज्यपाल धर्मवीर को पश्चिम बंगाल का राज्यपाल नियुक्त किया गया। गुजरात के राज्यपाल श्री नित्यानन्द कानूनगी को बिहार का राज्यपाल बनाया गया।

अस्थायी रिक्तता और छुट्टियां

यदि किसी राज्य में अस्थायी रिक्तता उत्पन्न हो तो उस राज्य के उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश को राज्यपाल पद को शपथ दिलायी जाती है जो अपने पद पर तब तक बना रहेगा जब तक नया राज्यपाल नियुक्त नहीं कर दिया जाता।

इस नियम का पालन उस समय नही हुआ था जब 1965 में पंजाब के राज्यपाल हफीज मुहम्मद इब्राहीम अवकाश पर चले गये। उस समय पंजाब के मुख्य न्यायाधीश भारत के नागरिक न होने के कारण इस पद पर नियुक्त होने के योग्य नहीं थे। अतएव केन्द्र सरकार ने सरदार उज्ज्ल सिह को पंजाब का राज्यपाल बनाया। जब मद्रास के राज्यपाल श्री जयचामराज नाडियार अवकाश पर गये तो उज्ज्व सिह जो उस समय पंजाब के राज्यपाल थे, उनको राज्यपाल बनाया गया।

कई टीकाकारो का मत है कि यह नियम लोकतंत्रीय नहीं है और इससे न्यायपालिका की स्वतंत्रता भी प्रभावित होती है। भारत के प्रथम राष्ट्रपति डॉ० राजेंद्र प्रसाद ने इस व्यवस्था का विरोध किया था।28

कोई राज्यपाल लम्बे अवधि के लिये विरले ही छुट्टी लेता है। किन्तु हफीज मुहम्मद इब्राहीम ने जब वे पंजाब के राज्यपाल थे तो 6 महीने की लम्बी छुट्टी ली थी। राज्यपाल को ऐसे अवसरों पर अवकाश के लिये या जब वह राज्य से बाहर जा रहा हो राष्ट्रपति को सूचित करना होता है।

अनुच्छेद 156 (2) के अनुसार अस्वस्थता के कारण या अन्य कारणों से राज्यपाल राष्ट्रपति को लिखित मे अपना त्यागपत्र दे सकता है।

अनुच्छेद 160 में कहा गया है कि आकस्मिक रिक्तियों जैसे मृत्यु, पद से हटाया जाना, त्याग पत्र आदि के लिये (जिनका उल्लेख भाग VI, अध्याय 1 मे नहीं किया गया) राष्ट्रपति को अधिकार दिये गये है।

1992-93 अयोध्या कांड के बाद का राज्यपालों की नियुक्ति सम्बन्धी चिंतन

6 दिसम्बर, 1992 की बाबरी मस्जिद ढहाने और उसके बाद देश मे साम्प्रदायिक दंगों की स्थिति को देखते हुए राज्यपालों की नियुक्ति की अब तक की व्यवस्था और प्रक्रिया पर नये सिरे से चितन किया जाने लगा है।

केन्द्र सरकार को सही समय पर सही ढ़ग की रिपोर्टिंग नहीं मिली। अतएव कांग्रेस पार्टी में इस पर तीव्र विवाद छिड़ा कि किन्हें राज्यपाल बनाया जाय। यह विचार व्यक्त किया गया कि केवल पार्टी के मंजे हुए अनुभवी लोगों को ही राज्यपाल के पदों पर नियुक्त किया जाना चाहिए। ये पार्टी के हित में कार्य करेंगे, पार्टी को राज्य की राजनीति की वास्तविक रिपोर्ट देंगे। इससे केंद्र सरकार गुमराह नहीं होगी। भविष्य में नौकरशाहों, निष्क्रिय राजनीतिज्ञों को यह पद दिये जाने की संभावना बहुत कम है।

इस विषय पर दो अध्यायों में 1992-93 की स्थिति पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है।

खण्ड - II

मध्यप्रदेश के राज्यपालों का कार्यकाल

	1.	डा. पट्टाभि सीतारामैया	01 11 56 से 13 06 57
	2	श्री हरिविनायक पाटस्कर	14 06 57 से 10 02 65
	3	श्री के. सी. रेड्डी	11 02 65 से 02 02 66
*	4	न्यायाधीश श्री व्ही. दीक्षित	03 02 66 से 09 02 66
	5	श्री के. सी. रेड्डी	10 02 66 से 07 03 71
	6	श्री सत्यनारायण सिन्हा	08 03 71 से 13 10 77
	7	श्री एन. एच. वॉचू	14 10 77 से 16 08 78
	8	श्री चेप्पुदिरा मुथना पुनाचा	17 08 78 से 29 04 80
	9.	श्री भगवतदयाल शर्मा	30.04 80 से 25 05 81
*	10	न्यायाधीश श्री जी. पी. सिंह	26.05 81 से 09 07 81
	11	श्री भगवत दयाल शर्मा	10 07 81 से 20 09 83
*	12	न्यायाधीश श्री जी. पी. सिह	21 09 83 से 07 10 83
	13	श्री भगवतदयाल शर्मा	08 10 83 से 14 05 84
	14	प्रो. के. एम. चाण्डी	15 05 84 से 30 11 87
*	15.	न्यायाधीश श्री एस. डी. ओझा	01 12 87 से 29 12 87
	16.	प्रो. के. एम. चांडी	30 12 87 से 09 12 88
*	17	न्यायाधीश श्री जी. जी. सोहनी	10 12 88 से 09 12 89
	18.	प्रो. के. एम. चांडी	10 01 89 से 31 03 89
	19	श्रीमती सरला ग्रेवाल	31 03 89 से 06 02 90
	20	कुँवर मेहमूद अली खॉ	06 02 90 से 23 06 93
	21	महामहिम मोहम्मद शफी कुरैशी	24 06.93 से जारी

टीप :- ★ राज्यपाल के अवकाश पर रहने की अवधि में मध्यप्रदेश उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश द्वारा कार्यवाहक राज्यपाल रहे ।

इन आकंड़ों का अध्ययन करने पर विदित होता है श्री हरिविनायक पाटस्कर मध्यप्रदेश के राज्यपाल के पद पर सबसे अधिक अवधि तक रहे - 8 वर्ष तक। इनके बाद दीर्धकाल तक अपने पदों पर रहने वालों में श्री के० सी० रेड्डी -5 वर्ष, सत्यनारायण सिंहा-6 वर्ष।

प्रोफेसर के० एम० चांडी मध्यप्रदेश के राज्यपाल रहे - 3 + 1 कुल 4 वर्ष। महमूद अली खान - 3 वर्ष तक पद पर रहे।

राज्यपाल मोहम्मद शफी कुरैशी 3 वर्ष तक पद पर रह चुके हैं, वे अभी भी अपने पद पर बने हैं।

श्री भगवत दयाल शर्मा 3 वर्ष के लिये अपने पद पर रहे।

अधिकांश राज्यपाल अपने पद पर एक वर्ष या उससे भी कम अवधि के लिये रहे।

इस तरह राज्यपालों की कोई निश्चित अवधि नही है। वे कितनी बार अपने पद पर पुन नियुक्त किये जा सकते हैं इस बारे में भी संविधान में कुछ नहीं कहा गया है। राज्यपाल केंद्र सरकार या राष्ट्रपति की प्रसन्नता पर्यन्त अपने पद पर बने रहते हैं।

यदि किसी राज्यपाल की मृत्यु हो जाय या तुरंत दूसरा कोई राज्यपाल नियुक्त न किया जा सके तो उस राज्य के उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश को राज्यपाल के पद पर नियुक्त किया जाता है- राज्यपाल जी० पी० सिह०, एस० डी० ओझा, व्ही० दीक्षित, जी० जी० सोहनी म० प्र० हाईकोर्ट के मुख्य न्यायाधीश थे। इसके अतिरिक्त राज्यपालों के अवकाश पर रहने पर भी राज्य के हाईकोर्ट का मुख्य न्यायाधिपति अपने पद पर रहता है।

मध्यप्रदेश के राज्यपालों का एक संक्षिप्त जीवन परिचय

मध्यप्रदेश के प्रथम राज्यपाल दिनांक 01-11-56 से 13-06-57 तक

डॉ० पट्टाभि सीतारामैया

जन्म 24 नवम्बर, 1880 आन्ध्र राज्य में
शिक्षा बी० ए०, एम० सी० एम०
अभिरूचि लेखन
व्यवसाय चिकित्सक
वैवाहिक स्थिति विवाहित

चिकित्सकीय शिक्षा समाप्त कर आपने सन् 1906 में मछलीपट्टनम शहर मे चिकित्सकीय कार्य छोड़ दिया ताकि पूरा समय आप राजनीति में दे सके। सन् 1916 से 1952 तक अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी

के मेम्बर रहे। सन् 1920-30 और 1934, 1936, 1938, 1939 और 1940-46 तथा 1948 में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की कार्यकारिणी समिति के सदस्य रहे। 1936 में अखिल भारतीय देशी राज्य प्रजा परिषद के अध्यक्ष निर्वाचित हुए।

सन् 1919 से अंग्रेजी साप्ताहिक "जन्मभूमि" का प्रकाशन प्रारम्भ किया। आप देश के स्वतंत्रता संग्राम में अग्रणियों की हैसियत से भाग लेते रहे और कांग्रेस के आन्दोलन के तहत आपने कई बार जेल यात्रा की।

सन् 1948-50 में डॉ० पट्टाभि सीतारामैया भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अध्यक्ष निर्वाचित हुए। सन् 1946 -1949 संविधान सभा के सदस्य रहे और बाद में संसद भी चुने गये थे।

डॉ० पट्टाभि सीतारामैया एक महान देशभक्त, उत्कृष्ट विद्वान और उच्च कोटि के प्रशासक थे। वे एक सिद्धहस्त लेखक भी थे। उन्होंने कई पुस्तकें भी लिखी है जिनमे से नेशनल एज्यूकेशन -1912, इण्डियन नेशनल कांग्रेस, कान्सीट्यूशनस आफ द वर्ल्ड वाई वोट कांग्रेस, गांधी एण्ड गांधीज्म, गांधी एण्ड सोशलिज्म, फाण्डामेंटल आफ इण्डियास पॉलिटिकल प्रावलमस, हिस्ट्री ऑफ कांग्रेस, 2 भाग इत्यादि है। आप तमिल, तेलगू, हिन्दी, कन्नड़, संस्कृत, अंग्रेजी कई भाषाओं के ज्ञाता थे।

सन् 1952 में पुराने मध्यप्रदेश के राज्यपाल नियुक्त हुए तथा दिनांक 1 11 1956 से 13 6 57 नये मध्य प्रदेश के राज्यपाल पद को उन्होंने अंलकृत किये थे।

आपका दिनांक 17 12.1956 को हैदराबाद में देहावसान हो गया।[29]

मध्य प्रदेश के दूसरे राज्यपाल (दिनांक, 14.6.57 से 10.2.1965)

श्री हरि विनायक पाटस्कर

जन्म	. 15 मई, सन् 1892 को इन्द्रपुर, पूना में।
शिक्षा	: बी० ए०, एल० एल० बी० (बम्बई), एल० एल० डी०, जबलपुर, सागर और विक्रम विश्वविद्यालय। आपने न्यू इंग्लिश स्कूल पूना, कार्यसन कालेज, पूना तथा गवर्नमेंट लॉ कॉलेज, बम्बई में शिक्षा ग्रहण की।
विवाह	29 मार्च, 1913 को श्रीमती अन्नपूर्णा बाई के साथ हुआ।
अभिरूचि	. बागवानी, भूमि-सुधार, घूमना।
व्यवसाय	वकालत।

आप बम्बई उच्च न्यायालय में 1917 में और उनके बाद भारत के सर्वोच्च न्यायालय में 1952 में एडवोकेट के हैसियत से कार्य करते रहे।

सन् 1920 से लगातार अनेक वर्षों तक आप अखिल भारतीय कांग्रेस के सदस्य रहे। सन् 1926 में बम्बई विधान परिषद् के सदस्य बने परन्तु 1930 में महात्मा गांधी के आहवान पर विरोध स्वरूप अपना त्यागपत्र देकर विधान परिषद के बाहर आ गये।

उनका सार्वजनिक एवं सामाजिक जीवन दोनों ही बराबर व्यस्त एवं क्रियाशील था। सन् 1921-37लगभग 16 साल तक आप चालीस गांव नगरपालिका के निर्विरोध अध्यक्ष चुने गये थे। 15 वर्षों तक नारायण बैंकट जमखाना चालीस गांव की गवर्निंग बाडी के सभापति रहे। अनेक वर्षों तक चालीस गांव के अंधों के अस्पताल में सभापति रहे। कुष्ट रोगियों और अन्य असहायों और गरीबों का आप हमेशा सहायता करते रहे।

सन् 1942 में स्वतंत्रता आन्दोलन में हिस्सा लेने के चलते आपको जेल की यात्रा करनी पड़ी।

सन् 1937-39 और 1945-52 में बम्बई विधानसभा के सदस्य रहें। उसके बाद सन् 1947 से एक चुने हुए सदस्य के नाते संविधान सभा में 1950 तक सदस्य रहे।

सन् 1952 में देश के प्रथम सामान्य निर्वाचन में लोकसभा के सदस्य के रूप में विजयी होकर सन् 1955 से 1957 तक विधि एवं तदन्नतर नागरिक उड्डयन विभाग के मंत्री पद को सुशोभित करते रहे।

आप अपने जीवनकाल में कई आयोगों तथा समितियों के अध्यक्ष रहे। आपमे गंभीरतम विवादों को हल करने की असाधारण क्षमता थी। आप महाराष्ट्र-मैसूर सीमा विवाद संबंधी चार सदस्यीय समिति के सदस्य थे। आपने आन्ध्र और मद्रास के सीमा विवाद को भी मध्यस्थता की थी।

केन्द्रीय विधि मंत्रित्व काल का उनका ऐतिहासिक "हिन्दुकोडबिल" भारत के विशाल हिन्दू समाज की प्रगति के इतिहास में सदा अमर रहेगा। देश के संविधान निर्माण में उनके विदत्तापूर्ण योगदान की पंक्तियां वो अपने अन्तस्तल में श्री पाटस्कर की स्मृतियां सहा जागृत करती रहेगी।

महामहिम श्री हरि विनायक पाटस्कर 14 6 1957 से 10 2 1965 तक वे मध्यप्रदेश के लोकप्रिय राज्यपाल के रूप में प्रजातांत्रिक परम्पराओं का अनुसरण करते हुए प्रदेश की जनता और सरकार का मार्गदर्शन करते रहे। आप मध्यप्रदेश में सबसे अधिक अवधि तक रहने वाले राज्यपाल थे। राज्यपाल के पद से सेवानिवृत होने के पश्चात् आप पर्वतीय सीमा आयोग के सभापति नियुक्त हुए थे।

अपने जीवन के अंतिम समय में सन् 1967 में आप पूना विश्ववाद्यालय के उपकुलपति पद को गौरवान्वित किये थे।

श्री पाटस्कर समाज के प्रति उनका महत्वपूर्ण सेवाओं के चलते एवं देश के प्रति अमूल्य त्याग के चलते इतने उंचे उठे थे जहां वे भारत के राजनीतिक नभ में एक चमकीला सितारे जैसा चमकते थे। संसदीय मामलों के निष्णात विद्वानों में आपकी गणना थी। एक मूर्धन्य विधिवेत्ता के अतिरिक्त आप एक कुशल प्रशासक, महान

शिक्षा शास्त्री तथा लेखक भी थे। इस प्रकार जीवन को पूर्ण बनाने वाला संभवत कोई भी क्षेत्र उनके व्यक्तित्व से अछूता नहीं रहा। छोटे शब्दों में कहा जा सकता है कि सादा जीवन उच्च चिन्तन के राजनीतिज्ञ का उदाहरण श्री पाटस्कर जी थे। उनका जीवन एक प्यार, सच्चाई और लग्न की प्रतिमूर्ति था जो पूरा चिन्तन में, वाक्य में, और कार्य में अहिंसा के लिए उत्सर्ग था।

माननीय श्री द्वारिका प्रसाद मिश्रा, तदान्दिन मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री के भाषा में श्री पाटस्कर एक आदर्श राज्यपाल थे जिन्होंने महिमामय महत्ती कार्यकाल को अपना ज्ञान और दूरदृष्टि से गरिमामय किए।

उनके इन्ही महान गुणों के कारण भारत सरकार ने उन्हें 1963 में "पदम विभूषण" की राष्ट्रीय उपाधि से अलंकृत किया था।

आपका दिनांक 21 फरवरी 1970 को पूना में स्वर्गवास हो गया।[30]

मध्यप्रदेश के तीसरे राज्यपाल (दिनांक 11.2.1965 से 2.2.1966 तथा 10.2.66 से 7.3.1971तक)

श्री क्यासम्बल्लि चेंगलराव रेड्डी

जन्म 4 मई,1902।

शिक्षा बी० ए०, एल० एल० डी० (मद्रास में)

वैवाहिक स्थिति विवाहित

श्री क्यासम्बल्लि चेंगलर राव रेड्डी ने अपने पढ़ाई खत्म करने के बाद ही राजनीति में कूद पड़े। मैसूर पीपुल्स फेडरेशन के लिए लोगों को संगठित करने में बढ़ चढ़कर हिस्सा लिए। आप मैसूर पीपुल्स फेडरेशन के सन् 1935 से 1937 तक प्रेसीडेन्ट रहे। इसी दर्मियान आप "जनवाणी" एक पत्रिका जो लोगों के अन्दर राष्ट्रीयता फैलाने के लिए चलाया गया था में संपादक के हैसियत में कार्य करते रहे।

सन् 1937-38 तथा 1946-47 में मैसूर कांग्रेस के अध्यक्ष रहे तथा मैसूर राज्य में उत्तरदायित्व पूर्ण शासन की स्थापना हेतु सत्याग्रह किया। इसी बीच आपको चार बार जेल जाना पड़ा।

सन्1944में आप अखिल भारतीय राज्य जनसंघ (ऑल इण्डिया स्टेट पीपुल्स कॉग्रेस) के कार्यकारिणी के सदस्य बने और अन्तर्देशीय खान अधिवेशन जो 1946 में हुआ था उसमें एक प्रतिनिधि के हैसियत से हिस्सा लिया ।

सन् 1947-1952 तक 3 बार लगातार मैसूर राज्य के मुख्यमंत्री रहे । भारतीय संविधान सभा के सन् 1947 से 1950 तक सदस्य रहे । सन् 1952 में मैसूर विधानसभा के सदस्य चुने गये तथा बाद में राज्यसभा के भी सदस्य रहे। सन् 1957 से 1964 तक लोकसभा के सदस्य रहे। स्कूल ऑफ इकानामिक्स

के संस्थापक सदस्य रहे। सन् 1957-61 में आप निर्माण आवास और आपूर्ति मंत्री रहे तथा 1961-62 में उद्योग मंत्री रहे । सन् 1963-64 में संसद की कॉग्रेस पार्टी के उपनेता रहे ।

आपने संयुक्त राज्य अमेरिका, रूस और युनाइटेड किंगडम की यात्रा भी की थी।

दिनॉक 11 फरवरी, 1965 से 7 मार्च, 1971 तक आप मध्यप्रदेश के राज्यपाल के पद को सुशोभित करते रहे।

श्री रेड्डी में उनका विस्तृत मंत्रालय के अनुभव केसाथ उनकी दृढ़ इच्छा शक्ति तथा उनका किसी विषय के ऊपर उठके देखना एवं उनकी सहृदयता देश में किसी को नहीं मिला हो। उनका स्वास्थ मनोदशा तथा सच्चाई के साथ किसी कार्य को करना उनका सभी वर्ग के चाहे वो राजनीतिक आदर्शवाद के भिन्नता क्यों न हो सबके मनको जीत लिया था। उनमें एक आदर्श राज्यपाल के सभी गुण मौजूद थे।

आपका 27 फरवरी, 1976 के देहावसान हो गया ।[31]

मध्यप्रदेश के चौथे राज्यपाल (दिनाँक 8.3.1971 से 13.10.77 तक)

श्री सत्यनारायण सिन्हा

जन्म	: 9 जुलाई,1900 को शम्भूण्डी, जिला दरभंगा बिहार मे हुआ ।
शिक्षा	: विधि स्नातक, मुजफ्फरपुर जिला स्कूल तथा पटना विश्वविद्यालय मे शिक्षा प्राप्त की ।
विवाह	: सन् 1918 में हुआ, एक पुत्र एवं तीन पुत्रियाँ हैं ।
व्यवसाय	: कृषक एवं जमींदार ।

सन् 1920 में आप स्वतंत्रता आन्दोलन में सम्मिलित हुए । सन् 1926-30 में बिहार विधान परिषद के सदस्य रहे । 1930 से 1974 तक दरभंगा जिला कॉग्रेस कमेटी के प्रधान रहे । सन् 1934 में विधानसभा के सदस्य निर्वाचित हुए । सन् 1942 से 1947 तक बिहार प्रदेश कॉग्रेस कमेटी के महामंत्री रहे । सन्1945 में पुनः केन्द्रीय विधानसभा के सदस्य निर्वाचित हुए और सन् 1946 में कॉग्रेस दल के मुख्य सचेतक निर्वाचित हुए। सन् 1948 में सरकारी मुख्य सचेतक के साथ-साथ सभा के नेता के सचिव बनाये गये ।

सन् 1948-52 में संसदीय कार्य के राज्यमंत्री रहे । सन् 1952-67 तक लोकसभा के सदस्य रहे । मई सन् 1962 में मंत्रीमंडल के सदस्य का दर्जा प्राप्त किया। सितम्बर, सन् 1963 से 1964 तक संसदीय कार्य और सूचना तथा प्रसारण मंत्री रहे । जून, सन् 1964 से मार्च 1967 तक संसदीय कार्य और संचार मंत्री रहे। मार्च, सन् 1967 से बिना विभाग के मंत्री रहे । तत्पश्चात् स्वास्थ्य परिवार नियोजन तथा नगरीय विकास मंत्री रहे ।

दिनाँक 9 3.1971 से 13 10 1977 तक आप भारत के इस सबसे बड़े राज्य के राज्यपाल पद की सुशोभित करते रहे ।[32]

मध्यप्रदेश के पाँचवे राज्यपाल (दिनाँक 14.10.1977 से16.8.1978 तक)

श्री निरंजननाथ वाँचू

जन्म : 1 मई, सन् 1910 को सतना में।

शिक्षा : गर्वनमेंट कालेज लाहौर और किंग्ज कालेज, केम्ब्रिज में शिक्षा प्राप्त की, सन् 1934 में आई. ए. एस.।

वैवाहिक स्थिति : विवाहित

अभिरुचि : अध्ययन ।

सन् 1934 में आपने इंडियन सिविल सर्विस में प्रवेश कियातथा बिहार में सब-कलेक्टर के रूप में सेवा प्रारम्भ की । फिर आप उड़ीसा में तैनात हुए । बाद में भारत सरकार के वाणिज्य एवं खाद्यान्न विभाग में नियुक्त हुए । सन् 1948 में आप आर्डीनेन्स फैक्टरियों के महानिदेशक बने । सन् 1948 से 1957 तक सुरक्षा मंत्रालय में संयुक्त सचिव तथा सुरक्षा उत्पादन में मुख्य नियंत्रक नियुक्त हुए । विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के सदस्य रहे । सन् 1948 से 1961 तक वित्त मंत्रालय मे सचिव रहे । आप लौह और इस्पात औद्योगिक विकास विभाग में भी सचिव रहे । सन् 1965 से 1970 तक बोकारो स्टील लिमिटेड के तथा सन् 1968 से 1972 तक नेशनल प्रोडक्टिविटि कौसिल के चेयरमैन रहे । इंडस्ट्रियल कस्टम एण्ड प्राइसेस ब्यूरो के चेयरमैन के रूप में आप सन् 1972 में अवकाश ग्रहण किया ।

आप अप्रैल, 1973 से अक्टूबर, 1977 तक केरल के तथा दिनॉक 14 10 1977 से 16 08 1978 तक मध्यप्रदेश के राज्यपाल के रूप में अपनी महती सेवाएँ देते रहे ।

आप अँग्रेजी, फ्रेंच के अतिरिक्त अनेक भारतीय भाषाओं के ज्ञाता हैं।[33]

मध्य प्रदेश के छठवें राज्यपाल (दिनाँक 17.8.78 से 29.4.80)

श्री चेप्पूदिरा मुथुना पुँनाचा

जन्म : 16 6 1910 में ग्राम उत्तूर, दक्षिण कुर्ग में हुआ ।

शिक्षा : कुर्ग में मरकरा तथा विराजपेट तथा सेंट अलायसिस कालेज, मंगलौर में शिक्षा प्राप्त की ।

वैवाहिक स्थिति : विवाहित, 2 पुत्र एवं 2 पुत्रियाँ ।

आपमें विद्यार्थी जीवन से ही भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन मे रुचि होने के कारण अध्ययन छोड़कर सन् 1930 में स्वतंत्रता आन्दोलन में शामिल हो गये । इस दौरान आपको 1932 तथा 1933 में दो बार जेल

की यात्रा करनी पड़ी । सन् 1940-41 में व्यक्तिगत रूप से सत्याग्रह आन्दोलन में भाग लेने के कारण कारावास हुआ । सन् 1942-44 में भारत छोड़ो आन्दोलन मे नजरबन्द रहे ।

सन् 1933 में कुर्ग जिला काँग्रेस कमेटी के सचिव रहे । सन् 1938 में प्रान्तीय कमेटी की कार्यकारिणी, अखिल भारतीय कॉग्रेस कमेटी के सदस्य तथा कुर्ग डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के लिए निर्वाचित हुए तथा 1941 में उसके अध्यक्ष रहे । सन्1945 में कुर्ग विधान परिषद के सदस्य निर्वाचित हुए । सन् 1945-51 में परिषद के काँग्रेस विधायक दल के नेता रहे । सन् 1947-51 में संविधान सभा के सदस्य तथा अस्थायी संसद के सदस्य रहे । सन् 1952-56 में कुर्ग के मुख्यमंत्री रहे ।

नया मैसूर राज्य निर्मित होने पर 1956 में उद्योग तथा वाणिज्य मंत्री रहे । बाद में गृह तथा उद्योग मंत्री रहे । सन् 1959-63 में भारतीय व्यापार निगम के सभापति रहे ।

सन् 1960 में यूरोप के देशों को जाने वाले भारत सरकार के व्यापार प्रतिनिधिमंडल के नेता रहे । सन् 1961 जापान को जाने वाले राज्य व्यापार निगम के प्रतिनिधि मण्डल के नेता रहे। अप्रैल 1964 में राज्य सभा के सदस्य निर्वाचित हुए तथा 1 से 24 जनवरी, 1966 तक वित्त मंत्रालय के राज्य मंत्री तथा 13 मार्च, 1967 से 1969 तक रेलमंत्री रहे ।

आपने जापान, चोकोस्लोवाकिया, रुमानिया, हंगरी तथा युगोस्लाविया की यात्रा की ।

आपने दिनाँक 17 8 78 से 29 4 80 तक भारत के हृदय मध्यप्रदेश के राज्यपाल पद को गौरवान्वित किया ।[34]

मध्य प्रदेश के सातवें राज्यपाल (दिनाँक 30.4.80 से 25.5.81 तथा 10.7.81 से 14.5.84 तक)

श्री भगवत दयाल शर्मा

जन्म : 26 जनवरी, 1918 को बेरो, जिला रोहतक में हुआ ।

शिक्षा : एम. ए. (बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय), डी.लिट., महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय, रोहतक ।

पिता : पंडित मुरारीलाल जी शर्मा ।

वैवाहिक स्थिति : विवाह - श्रीमती सावित्री देवी जी के साथ, 3 पुत्र और 3 पुत्रियॉं।

अभिरुचि : वाचन और शतरंज, आदिवासी हरिजनों तथा कमजोर वर्गों के कल्याण में विशेष रुचि।

व्यवसाय : ट्रेड यूनियनिस्ट ।

सन् 1941-46 में आपने भारतीय स्वतंत्रता संग्राम मे भाग लिया । आपने 1941 मे एक वर्ष की जेल यात्रा की तथा सन् 1942 में साढ़े तीन वर्ष की जेल यात्रा की ।

सन् 1959-61 में आप क्षेत्रीय भारतीय राष्ट्रीय ट्रेड यूनियन कॉंग्रेस पंजाब, हिमाचल प्रदेश और जम्मू कश्मीर के स्क्रेटरी तथा प्रेसीडेन्ट रहे तथा 1959-65 में भारतीय राष्ट्रीय ट्रेड यूनियन कॉंग्रेस की राष्ट्रीय कार्यकारिणी के सदस्य रहे । सन् 1959 मे भारतीय राष्ट्रीय ट्रेड यूनियन कॉंग्रेस की वर्किंग कमेटी के सदस्य तथा 1960-61 में उसके संगठन सचिव रहे। आपने अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक संघ में भारत का प्रतिनिधित्व किया। सन् 1963 और 1964-66 में आप पंजाब प्रदेश कॉंग्रेस कमेटी तथा 1966 मे हरियाणा प्रदेश कॉंग्रेस कमेटीकेप्रेसीडेन्ट रहे। सन् 1968 में हरियाणा में संयुक्त मोर्चे के नेता निर्वाचित हुए । सन् 1970-71 में अखिल भारतीय (संगठन) कॉंग्रेस कमेटी की वर्किंग कमेटीकेसदस्य रहे । सन् 1962-66 में पंजाब विधानसभा के सदस्य तथा श्रम और सहकारिता के राज्यमंत्री रहे । सन् 1966-67 में हरियाणा राज्य के मुख्यमंत्री रहे।

आप सन् 1968-74 में राज्यसभा के सदस्य रहे । मार्च-दिसम्बर 1977 में लोकसभा के सदस्य रहे। 23 सितम्बर,1977 को आप उड़ीसा के राज्यपाल नियुक्त किए गये। आप उड़ीसा राज्य की अनेक सामाजिक और सांस्कृतिक संस्थाओं के संरक्षक रहे । जगन्नाथ मंदिर की प्रशासनिक कमेटी से सक्रिय रूप से सम्बद्ध रहे। सन् 1957 और 1958 में अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (जिनेवा) स्विट्जरलैण्ड में भारतीय श्रमिकों का दो बार प्रतिनिधित्व किया। सन् 1963-64 में यूनाईटेड किंग्डम कोजाने वाले ट्रेड यूनियनिस्ट के शिष्ट मंडल के सदस्य रहे। आपने स्विट्जरलैण्ड, यूनाईटेड किंग्डम, यू.एस.एस.आर., जर्मनी, अमेरीका तथा अन्य यूरोपीय देशो की यात्रा की ।

दिनाँक 30 4 80 को आपने मध्यप्रदेश के राज्यपाल का पदभार ग्रहण किया और इसी पद में रहते हुए आपने 14 05 84 तक अपनी सेवाएं देते रहे। [35]

मध्य प्रदेश के आठवें राज्यपाल (दिनाँक 15.5.84 से 30 मार्च 1989)

प्रो. के. एम. चांडी

जन्म : 6 अगस्त, 1921 को केरल राज्य के कोट्टयम जिले के पलई नगर में।

शिक्षा : प्रारम्भिक शिक्षा अपने गृहनगर में और महाविद्यालयीन शिक्षा चंगनाचेरी और त्रिवेन्द्रम में प्राप्त की। 1942 में अंग्रेजी भाषा और साहित्य में स्नातकोत्तर उपाधि प्राप्त की ।

वैवाहिक स्थिति : विवाहित ।

व्यवसाय : अध्यापन कार्य ।

अभिरुचि : कृषकों की समस्याओं में गहरी रुचि और उनके निदान के संघर्ष करना ।

उन्होंने राजनीति में 17 वर्ष की उम्र से ही हिस्सा लेना शुरु कर दिया था । उस समय वे चंगनाचेरी में सेंटवर्चमेंन कालेज में इण्टरमीडिएट के विद्यार्थी थे और उन्होंने त्रिवेन्द्रम में राज्य कॉंग्रेस के नेताओं का अभिनन्दन करने वाले विद्यार्थियों पर हुए लाठीचार्ज के विरोध में हड़ताल का नेतृत्व किया था । कुछ और

विद्यार्थियों के साथ उन्हे महाविद्यालय से निकाल दिया गया । किन्तु महाविद्यालय के समक्ष जन सत्याग्रह होने पर उन्हें तथा अन्य विद्यार्थियों को कालेज में वापिस लिया गया । त्रिवेन्द्रम में अध्ययन के दौरान उन्होंने प्रख्यात गांधीवादी श्री जी. रामचन्द्रन के नेतृत्व मे टैगोर अकादमी के गठन में प्रमुख भूमिका निभाई । विद्यार्थियों तथा युवकों के मध्य राष्ट्रवादी आन्दोलन को सक्रिय करने के कारण इस अकादमी कोसन् 1941 में प्रतिबंधित कर दिया गया ।

सन् 1946 में जब वे मीनाचिल तालुक काँग्रेस कमेटी के सचिव थे तब उन्हें राजनीतिक गतिविधि में भाग लेने से प्रतिबंधित कर दिया गया पर वे स्वतंत्रता संग्राम में भाग लेते ही रहे । उन्हें जुलाई 1946 में गिरफ्तार कर लिया गया । जब उच्च न्यायालय ने उनकी जमानत मंजूर कर दी तो उन्हें भारत सरकार के रक्षा कानून के अन्तर्गत बन्दी बना लिया गया और आजादी केएक माह पश्चात् सितम्बर 1947 के अन्त में रिहाई किया गया ।

आप 26 वर्ष की उम्र में राज्य विधानसभा के लिए निर्विरोध निर्वाचित हुए । सन् 1952 और 1954 में आप पुन· विधायक निर्वाचित हुए । आप विधानसभा में कॉग्रेस पार्टी के मुख्य सचेतक थे । आप राज्य के प्रथम योजना मंडल एवं राज्य न्यूनतम वेतन सलाहकार मंडल के भी सदस्य थे।

इन्टक के गठन के पूर्व उन्होंने अनेक श्रमिक संगठनो का गठन तथा नेतृत्व किया।

श्रमिक संघों की गतिविधियो के समर्थन में उन्होंने "तौझिलालजी" नामक साप्ताहिक का भी थोड़े समय केलिए सम्पादन तथा प्रकाशन किया था।

आपने पलई में सेंट थामस कालेज की स्थापना में योग दिया था। इस कालेज में आपने 1950 मे अध्यापन करना शुरु किया और 1968 तक अंग्रेजी के स्नातकोत्तर प्राध्यापक नियुक्त रहे । 1972 में रबर बोर्ड का अध्यक्ष नियुक्त होने पर आपने इस पद से इस्तीफा दिया । आप केरल तथा कोचीन विश्वविद्यालयों की अनेक अकादमिक समितियों, सीनेट और महासभा के सदस्य रहे । आपने अखिल केरल निजी महाविद्यालय शिक्षक संघ के गठन में प्रमुख भूमिका निभाई । आपकी अध्यक्षता के दौरान (1969-1972) निजी महाविद्यालयों के शिक्षकों के हित में दो समझौते हुए ।

(i) अशासकीय महाविद्यालय शिक्षकों को शासकीय महाविद्यालयों के शिक्षकों के बराबर वेतन मिलने लगा

(ii) वेतनका भुगतान शासन द्वारा सीधे किया जाना चाहिए ।

आप 1953 से 1957 तक जिला कॉग्रेस कमेटी के अध्यक्ष, 1963 से 1967 तक केरल प्रदेश काँग्रेसकमेटी के महासचिव और 1967 से 1972 तक इसके कोषाध्यक्ष रहे । आप 1948 से लगातार राज्य काँग्रेस कमेटी के सदस्य और 1963 से लगातार अखिल भारतीय कॉग्रेस कमेटी के सदस्य रहे । 1974-76 तक इलायची मंडल के भी अध्यक्ष रहे । आपके कार्यकाल में इलायची प्लांटेशन अनुसंधान प्रारम्भ हुआ था।

सन् 1978 में राज्य कॉंग्रेस कमेटी के अध्यक्ष का पद ग्रहण के लिए आपने रबर बोर्ड के अध्यक्ष पद से इस्तीफा दिया और केरल में कॉंग्रेस संगठन को सुदृढ़ बनाने का चुनौतीपूर्ण कार्य स्वीकार किया जबकि अनेक लोगों ने श्रीमती गांधी का साथ छोड़ दिया था ।

केरल में बृहत सरकारी संस्थाओं की स्थापना और विकास का श्रेय मुख्य रूप से श्री चांडी को है। आप 1949 से बीस वर्ष तक मीनाचिल तालुका सहकारी संघ के अध्यक्ष रहे । आपने मीनाचिल सरकारी लैड मार्टगेज बैंक की स्थापना की ।

एक कृषक परिवार के होने के कारण श्री चांडी कृषको की समस्याओं में गहरी रुचि लेते रहे हैं और उनके निदान के लिए संघर्ष करते रहे । शासन ने 1962 में उन्हें सरकारी जंगल भूमि मेबसाने वालों की समस्याओंका परीक्षण करने वाली समिति का सदस्य नियुक्त किया था । उनके प्रतिवेदन की सभी वर्गों ने सराहना की थी ।

श्री चांडी ने 1966 में भारतीय रबर उत्पादक संघ की स्थापना की । आपको 1972 में भारत सरकार ने रबर बोर्ड का अध्यक्ष नियुक्त किया । आपके कार्यकाल में (1972 से 1978) तक रबर प्लांटेशन और रबर उद्योग के विकास को गति मिली । भारत में रबर के अनुसंधान के क्षेत्र में उन्होंने महत्वपूर्ण योजनाओं की शुरुआत की थी । रबर के लिए विश्व बैक योजना तैयार करने तथा उसे लागू करवाने का श्रेय भी उन्हें प्राप्त है । कोचीन विश्वविद्यालय में रबर टेक्नोलाजी में बी.टेक. पाठ्यक्रम प्रो. चांडी के योजना के अनुसार किया गया है । श्री चांडी के पहल पर ही भारत ने प्राकृतिक रबर उत्पादक देशों के संघ की सदस्यता ग्रहण की और अन्तर्राष्ट्रीय रबर समुदाय में उल्लेखनीय भूमिका निभानी शुरु की । रबर अध्ययन, रबर उत्पादन, रबर अनुसन्धान आदि के सम्बन्ध में अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों में हिस्सा लेने के लिए उन्होंने लन्दन, कुआलालम्पुर, बैंकाक, सिंगापुर आदि की यात्रा की है । रबर के सम्बन्ध में विश्व बैक परियोजना पर चर्चा करने के लिए आप वाशिगटन भी गये थे ।

श्री के. एम. चांडी ने 15 मई, 1982 को पांडीचेरी के उपराज्यपाल का पदभार संभाले थे। 6 अगस्त, 1983 को गुजरात के राज्यपाल बने थे। मध्यप्रदेश के राज्यपाल का पदभार श्री के. एम. चांडी ने 19 मार्च, 1984 को ग्रहण किया एवं इस पद पर 30 मार्च, 1989 तक आपने अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया । [36]

मध्यप्रदेश के नौवें राज्यपाल (31 मार्च 1989 से 5.2.90 तक)

श्रीमती सरला ग्रेवाल

जन्म : 4 अक्टूबर, 1927 ।
शिक्षा : बी.ए. आनर्स, एम.ए. दर्शनशास्त्र में पंजाब विश्वविद्यालय से, 1952 में आई.ए.एस.।
वैवाहिक स्थिति : विवाहिता ।

श्रीमती सरला ग्रेवाल भारतीय प्रशासनिक सेवा में आने वाली भारत की दूसरी महिला अधिकारी थी । आपने पंजाब प्रदेश के अन्तर्गत अनेक महत्वपूर्ण प्रशासनिक पदों पर कार्य किया । 1956 मे वे शिमला की डिप्टी कमिश्नर बनाई गई और देश मेंइस पद का दायित्व निभाने वाली वे पहली महिला अधिकारी थी ।

आप 1962 में शिक्षा संचालक बनने वाली पहली आई.ए.एस. अधिकारी थीं और इस पद पर रहकर आप प्राथमिक से लेकर हाईस्कूल और विश्वविद्यालयीन स्तर तक शिक्षा प्रशासन के विभिन्न दायित्वों का निर्वाह किया । आपने शिक्षा प्रणाली को माध्यमिक स्तर पर व्यवसाय से जोड़ने की पहल की। बाद में आप रूस में माध्यमिक शिक्षा प्रणाली का अध्ययन करने गयीं । ब्रिटिश कौसिल की छात्रवृत्ति पर दस महीने तक लन्दन स्कूल आप इक्नामिक्स में विकासशील देशों में सामाजिक सेवाओं के स्वरूप का भी आपने गहन अध्ययन किया।

1963 में श्रीमती सरला ग्रेवाल पंजाब सरकार के स्वास्थ्य विभाग की सचिव बनीं । आप के इस कार्यकाल में पंजाब प्रदेश को राष्ट्रीय परिवार कल्याण कार्यक्रम के अन्तर्गत श्रेष्ठ उपलब्धियो के लिए चार सर्वोच्च राष्ट्रीय पुरस्कार प्राप्त हुए । राज्य ने इस दौरान परिवार नियोजन कार्यक्रम के क्षेत्र मे उल्लेखनीय प्रगति और सफलताएँ हासिल की । वे सचिव उद्योग और नागरिका आपूर्ति तथा गृह भी रहीं जिसके अन्तर्गत पुलिस और परिवहन प्रशासन था ।

सन् 1971 से 1974 तीन वर्षों तक पंजाब के विकास आयुक्त के पद पर रहकर अपने जिम्मेदारी का निर्वाह किया । इस दौरान पंजाब प्रदेश में खाद्यान्न उत्पादन का कीर्तिमान निर्मित हुआ और पंजाब देश में पहली बार चावल उत्पादन में महत्वपूर्ण सफलता प्राप्त की । आपने दुग्ध संयंत्रों की स्थापना की दिशा में भी बुनियादी भूमिका निभाई ।

सन् 1974 में आप संयुक्त सचिव और आयुक्त, परिवार कल्याण में रही । आपने 11 नवम्बर,1976 से भारत सरकार के परिवार कल्याण मंत्रालय में अतिरिक्त सचिव और आयुक्त का दायित्व निभाया । आपके कार्यकाल में समूचे देश में परिवार कल्याण गतिविधियो में महत्वपूर्ण वृद्धि हुई । बड़े पैमाने पर विस्तार सेवाओं का जाल बिछाया गया और जनसंचार के विभिन्न माध्यमों से शिक्षाप्रद कार्यक्रम की सहायता से शिक्षित जन समाज के बीच छोटे परिवार के आदर्श को प्रभावी ढंग से अपनाने की दिशा में उल्लेखनीय कार्य हुआ । इस दौरान परिवार नियोजन कार्यक्रम को प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम के साथ प्रभावी ढंग से जोड़ा गया ।

श्रीमती ग्रेवाल ने अनेक महत्वपूर्ण मंचो के अध्यक्ष पद को सुशोभित किया जिसमे विश्व की स्वास्थ्य संगठन, भारतीय चिकित्सा अनुसन्धान परिषद और अन्य संगठन शामिल हैं । आपने जन्म दर नियंत्रण की दिशा में हो रहे नये अनुसंधान और शोध कार्यों से सम्बन्धित विभिन्न सेमीनारों और सभाओं की भी अध्यक्षता की ।

आपने रायल कालेज आप गायनोकोलाजिस्ट्स लंदन में 1979 अतिथि वक्ता के रूप में महत्वपूर्ण भाषण दिए । 1980 में भारत में परिवार कल्याण कार्यक्रम के सन्दर्भ में दिल्ली में आयोजित अन्तर्राष्ट्रीय सेमीनार में मातृ कल्याण और जन्मपूर्व मृत्युदर, जन्म निरोध आदि तकनीकी विषयो पर आपने शोधपरक भाषण दिया था।

श्रीमती सरला ग्रेवाल जी ने विभिन्न राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों में भारत का कुशल प्रतिनिधित्व किया । आपने 1977, 1979 और जनवरी, 1981 में न्यूयार्क में आयोजित संयुक्त राष्ट्र जनसंख्या आयोग के क्रमशः 19 वें, 20 वें, और 21 वें सत्र में भारतीय प्रतिनिधित्व की हैसियत से अपने दायित्व का कुशल निर्वाह किया । 10 अगस्त, 1981 को आप समाज कल्याण मंत्रालय की सचिव बनीं । अपने इस कार्यकाल में आपने समाज कल्याण को विभिन्न नीतियों और योजनाओं को नयी दिशा दी और उनमें बेहतर समन्वय स्थापित किया । इसमें महिला कल्याण, बाल कल्याण और विकलांगों के कल्याण कार्यक्रम शामिल थे। श्रीमती सरला ग्रेवाल ने अक्टूबर 1981 में न्यूयार्क में आयोजित यूनीसेफ एक्जीक्यूटिव बोर्ड के विशेष सत्र में भारत का प्रतिनिधित्व किया । आप 1982-83 सत्र मे यूनीसेफ एक्जीक्यूटिव बोर्ड की कार्यक्रम समिति की सर्वानुमति से अध्यक्ष चुनी गयीं। आपके निर्देशन में महिलाओं के आर्थिक विकास की दिशा में विशेष कार्यक्रम संचालित किए गये ।

श्रीमती सरला ग्रेवाल ने सन् 1982 में सचिव, शिक्षा और संस्कृति बनीं । आपके निर्देशन में संस्कृति के क्षेत्र में पुरातत्व विभाग, संग्रहालयों, थियेटरों और ललित कलाओं की विभिन्न अकादमी में उल्लेखनीय कार्य हुआ ।

श्रीमती सरला ग्रेवाल ने शिक्षा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण परिवर्तन का सूत्रपात किया। विशेष रूप से महिला साक्षरता कार्यक्रम में आपकी भूमिका सराहनीय रही और नयी शिक्षा नीति का प्रारुप तैयार करने में आपने महत्वपूर्ण कार्य किया । आप यूनेस्को की शिक्षा सलाहकार समिति में व्यक्तिगत हैसियत से प्रतिनिधि चुनी गयीं। उन्होंने दो वर्ष तक यूनेस्को के तत्वाधान में आयोजित अनेक क्षेत्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर की सभाओं में कुशल प्रतिनिधित्व किया । जिनेवा में इन्टरनेशनल ब्यूरो आप एजूकेशन द्वारा आयोजित सम्मेलन में आप भारतीय प्रतिनिधि के रूप में सम्मिलित हुई । 14 फरवरी, 1985 में स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मंत्रालय की सचिव बनीं ।

श्रीमती ग्रेवाल 25 सितम्बर 1985 को प्रधानमंत्री की सचिव नियुक्त हुई। इस पद का दायित्व आपने कुशलतापूर्वक निर्वाह किया । मध्यप्रदेश का राज्यपाल मनोनीत होने तक आप इसी पद पर कार्यरत रही ।

महामहिम श्रीमती सरला ग्रेवाल ने मध्यप्रदेश के राज्यपाल पद का कार्यभार 1 मार्च, 1989 से 5 2 90 तक सुशोभित किया था ।[37]

मध्यप्रदेश के दसवें राज्यपाल (6.2.90 से 23.6.93 तक)

कुँअर महमूद अली खाँ

जन्म	:	16 जून, 1920 में ग्राम जोगीपुरा, मेरठ उत्तर प्रदेश ।
पिता का नाम	:	स्व. श्री राव हाकिम अली खाँ ।
शिक्षा	:	बी.ए., एल.एल.बी., आगरा विश्वविद्यालय से ।
वैवाहिक स्थिति	:	विवाहित ।
व्यवसाय	:	कृषि एवं वकालत ।
अभिरुचि	:	ग्रामीण उत्थान, जीवन का अधिकांश समय पिछड़े ग्रामीणों और किसानों में जागृति पैदा करने के कार्यों में व्यतीत । साम्प्रदायिक सद्भाव तथा राष्ट्रीय और भावनात्मक एकता के कार्यों को विशेष महत्व, पुस्तकें पढ़ने का शौक, धार्मिक ग्रन्थों में विशेष दिलचस्पी, भक्ति और सूफी आन्दोलन का जीवन पर गहरा प्रभाव ।
भाषाओं का ज्ञान	:	उर्दू, अँग्रेजी, हिन्दी एवं फारसी आदि कई भारतीय भाषाओं का ज्ञान ।

आप मेरठ की जिला अदालत में सन् 1950 से वकालत आरम्भ की । सन् 1938 में छात्र जीवन से ही महात्मा गॉधी और पंडित जवाहर लाल नेहरु से प्रेरित होकर कॉग्रेस पार्टी में प्रवेश किया । सन् 1943 से कॉंग्रेस सदस्य के रूप में राजनैतिक गतिविधियो में सक्रिय भागीदारी । गढ़मुक्तेश्वर क्षेत्र में सन् 1946 मे हुए झगड़ों के दौरान गढ़मुक्तेश्वर क्षेत्र और हापुड़ के आसपास के क्षेत्र में साम्प्रदायिक सद्भाव बनाये रखने के लिए समर्पित भाव से कार्य किया ।

सन् 1953-57 में मेरठ जिले के प्रसिद्ध स्वतंत्रता सेनानी स्व. कैलाश प्रकाश और प्रसिद्ध काकोरी केस से जुड़े मेरठ जिले के स्वतंत्रता सेनानी स्व. विष्णु शरद दुबलीश से उनका सम्पर्क हुआ और उनके साथ राजनीतिक गतिविधियों में सक्रिय रहे । सन् 1953 मे कॉग्रेस टिकिट पर मेरठ नगरपालिका के चुनाव में प्रत्याशी, सन् 1957 में कॉग्रेस उम्मीदवार के रूप में तत्कालीन मेरठ जिले के दासना विधानसभा क्षेत्र से उत्तर प्रदेश विधानसभा के सदस्य निर्वाचित हुए और वरिष्ठ नेता चौधरी चरण सिंह के सानिध्य में आकर उनके निकट सहयोगी बने । ग्रामीण क्षेत्रों की उन्नति के लिए चौधरी चरण सिह के विचारों और सिद्धान्तों का जीवन पर व्यापक प्रभाव पड़ा ।

सन् 1957-62 में विधाययिनी समिति में प्रतिनिधि तथा इसी अवधि में सिचाई तथा ऊर्जा समिति के सदस्य रहे । सन् 1959-60 में आप उपनिरीक्षकों की चयन समिति के सदस्य रहे ।

सन् 1967 में चौधरी चरण सिह के साथ कॉग्रेस पार्टी छोड़ी और जिला जन कॉग्रेस (बाद में भारतीय क्रांतिदल) के संस्थापक, अध्यक्ष और जन कॉंग्रेस की राष्ट्रीयकार्यकारिणी के सदस्य बने ।

सन् 1968 मे उत्तर प्रदेश राज्य सेवा चयन आयोग का सदस्य मनोनीत किये गये । सन् 1974 मे सक्रिय राजनीति मे पुनः प्रवेश किया और भारतीय क्राति दल की मेरठ जिला शाखा के अध्यक्ष बने । बाद में चौधरी चरण सिह के नेतृत्व वाले भारतीय लोकदल की राष्ट्रीय कार्यकारिणी के सदस्य मनोनीत किए गये ।

सने 1974-77 में जयप्रकाश नारायण द्वारा चलाये गये आन्दोलन में सक्रिय भूमिका निभाये । आपातकाल के समय 26 जून, 1975 से 16 जनवरी, 1977 तक मीसा में बंद रहे ।

सन् 1977 के लोकसभा चुनाव मे कुँअर साहब हापुड़ लोकसभा से सासद निर्वाचित हुए । इस समय उन्होंने जनता पार्टी से टिकट लिया था ।

आप पंचायती राज पर गठित अशेक मेहता समिति के सदस्य रहे । 1977-79 तक शासकीय आश्वासन समिति एवं विधि न्याय और कम्पनी मामलो की परामर्श समिति के सदस्य, राजभाषा समिति के सदस्य रहे । सन् 1979 में भारत सोवियत मैत्री समिति के परामर्श समिति के प्रतिनिधि मंडल का नेतृत्व करते हुए रूस यात्रा किए । सन् 1979 मे रोम मे आयोजित वर्ल्ड-अरब सोलीरिटी काग्रेस मे भारत का प्रतिनिधित्व किए ।

सन् 1979 मे संसद मे जनता संसदीय दल के उपनेता चुने गये । इस दल के नेता मोरारजी देसाई थे। जनता पार्टी के केन्द्रीय संसदीय बोर्ड मे सदस्य नियुक्त किए गये । 1980 मे हापुड़, गाजियाबाद संसदीय क्षेत्र से जनता पार्टी के उम्मीदवार के रूप मे चुनाव लड़ा परन्तु विजयी नही हुए । सन् 1980 के बाद सक्रिय राजनीति से अपने आपको अलग रखा और साम्प्रदायिक सद्भाव के कार्यों तथा सामाजिक एवं सास्स्कृतिक गतिविधियो मे दिलचस्पी लेते रहे । श्री चन्द्रशेखर के नेतृत्व वाली जनता पार्टी के सदस्य बने रहे ।

श्री कुँअर मेहमूद अली इस बीच अलीगढ़ विश्वविद्यालय केसदस्य एवं हज कमेटी के सदस्य रहे ।

समाज सेवा में रुचि रखने वाले श्री कुँअर मेहमूद अली खाँ 6 फरवरी, 1990 से 23 जून, 1993 तक मध्यप्रदेश के राज्यपाल के रूप मे अपनी सेवाएँ निरन्तर प्रदान करते रहे । महामहिम कुँअर मेहमूद अली खाँ सीधे तथा सरल स्वभाव एव मिलनसार व्यक्तित्व के धनी थे तथा मध्यप्रदेश के विकास मे उनकी गहरी रुचि रही ।[38]

मध्यप्रदेश के ग्यारहवें राज्यपाल (24.06.93 से निरन्तर)

मोहम्मद शफी कुरैशी

जन्म	:	24 नवम्बर, 1929 को श्रीनगर मे हुआ ।
शिक्षा	:	बी. ए., श्री अमरसिह कालेज श्रीनगर से, एम.ए., एल एल.बी., अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय से ।
वैवाहिक स्थिति		विवाहित बेगम फातिमा के साथ, दो पुत्र एवं तीन पुत्रियाँ ।
भाषाओं का ज्ञान	:	कश्मीरी, अंग्रेजी, पजाबी, उर्दू, फारसी, अरबी एव हिन्दी भाषा का अच्छा ज्ञान ।

व्यवसाय : वकालत ।

अभिरुचि : अध्ययन, प्राचीन भारतीय इतिहास में आपकी विशेष रुचि है । खेलकूद गतिविधियों मे विशेष दिलचस्पी । आप काश्मीर गोल्फ क्लब, श्रीनगर, अमरसिह, श्रीनगर, दिल्ली जिमखाना क्लब, नई दिल्ली, गोल्फ क्लब के सदस्य और बैडमिन्टन एसोसिएशन आफ इंडिया के अध्यक्ष रहे ।

अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के स्टूडेन्ट केबिनेट के आप 1952 से 1954 तक सदस्य रहे और लॉ सोसाइटी के सचिव रहे । जाग्रफीकल सोसाइटी के आप 1954 में उपाध्यक्ष रहे । जम्मू और काश्मीर स्टूडेन्ट फेडरेशन के अध्यक्ष चुने गये। कॉलेज और विश्वविद्यालय की डीबेटिग सोसाइटी के आप अध्यक्ष रहे ।

जम्मू कश्मीर में आपने राजनैतिक गतिविधियों में सक्रिय भाग लिया । नेशनल कान्फ्रेंस को राष्ट्रीय कांग्रेस में बदलने में आपकी महत्वपूर्ण भूमिका रही और राष्ट्रीय कांग्रेस के जम्मू और काश्मीर प्रदेश के संस्थापक अध्यक्ष बने । आपने जम्मू और काश्मीर उच्च न्यायालय मे वकालत की ।

सन् 1965 में जम्मू और काश्मीर से राज्यसभा के लिए निर्वाचित हुए । आप सन् 1967, 1971 और 1977 के आम चुनावों में अनन्तनाग लोकसभा चुनाव क्षेत्र से निर्वाचित हुए । आप 28 जनवरी, 1966 से 14 फरवरी, 1969 तक केंद्रीय वाणिज्य उपमंत्री, 15 फरवरी, 1969 से 2 मई, 1971 तक केंद्रीय स्टील एण्ड हेवी इंजीनियरिग विभाग के उपमंत्री रहे । आप अक्टूबर 1974 से मार्च 1977 तक केन्द्रीय रेल उपमंत्री रहे और 31 जुलाई, 1979 को केंद्रीय पर्यटन और नागरिक विमानन मंत्री बने ।

विभिन्न प्रतिनिधि मंडल के प्रतिनिधि के रूप में आपने अनेक देशों की यात्राएं की । संसदीय प्रतिनिधि मंडल के सदस्य के रूप में आपने अलजीरिया, मोरक्को, ट्यूनीशिया, सेनेगल, मारीशस और अन्य देशो की यात्राएं की । आपने इंडियन हज डेलीगेशन का नेतृत्व किया और सन् 1973 में सउदी अरब और ईराक की यात्रा की । आपने बुल्गारिया, रोमानिया, लीबिया, हंगरी, बेहरीन, आस्ट्रेलिया, सीरिया, चीन आदि देशों की भी यात्राएं की । आपने दिसम्बर 1991 में मारीशस में आयोजित वर्ल्ड उर्दू कान्फ्रेंस में भारतीय प्रतिनिधि मंडल का नेतृत्व किया ।

आप अखिल भारतीय कॉग्रेस कमेटी के सदस्य, गालिब संस्थान के कोषाध्यक्ष और सचिव, हिन्दुस्तानी अदबी सोसायटी के संरक्षक, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय ओल्ड व्वायज एसोसियेशन के अध्यक्ष तथा नई दिल्ली की क्रेसेन्ट एजुकेशन सोसायटी के संस्थापक अध्यक्ष रहे ।

महामहिम मोहम्मद शफी कुरैशी जी ने बिहार के राज्यपाल के रूप में 19 मार्च, 1991 को शपथ ग्रहण किया । आपने 24 जून, 1993 को मध्यप्रदेश के राज्यपाल पद का कार्यभार ग्रहण किया एवं निरन्तर इस पद को अपनी विशिष्ट सेवाओं के जरिए सुशोभित कर रहे हैं ।[39]

मध्य प्रदेश के राज्यपालों की सामाजिक, शैक्षणिक, प्रशासनिक, राजनैतिक और अन्य पृष्ठभूमि

शिक्षा-दीक्षा :

मध्यप्रदेश के प्रथम राज्यपाल डा. पट्टाभी सीतारमैया आन्ध्रप्रदेश के थे। उन्होंने बी.ए., एम.सी.एम. की चिकित्सा क्षेत्र की शिक्षा ग्रहण की और एक चिकित्सक के रूप में अपना केरियर आरम्भ किया । होमरूल लीग से वे अत्यधिक प्रभावित हुए और 1916 में कांग्रेस के सदस्य बने और उसके बाद व्यावहारिक राजनीति में कूद पड़े । राष्ट्रीय आन्दोलन में आपकी सक्रिय भूमिका को देखकर कांग्रेस ने आपको राज्यपाल के पद पर नियुक्त किया । आपका जन्म आंध्र प्रदेश में हुआ । लेखन और चिकित्सा आपकी अभिरुचि मे शामिल हैं ।

हरिविनायक पाटस्कर मध्यप्रदेश के दूसरे राज्यपाल बी.ए., एल.एल बी (बम्बई) थे और स्कूली शिक्षा (पूना) । आप वकालत के पेशे से राजनीति मे आये । आपने स्वतंत्रता आन्दोलन मे सक्रिय रूप से भाग लिया और महात्मा गॉधी के सहयोगी भी रहे । 1952-57 तक नेहरू मंत्रिमंडल के सदस्य रहे । उसके बाद वे मध्यप्रदेश के राज्यपाल बनाये गये और सबसे अधिक समय तक राज्यपाल के पद पर रहे । आपके अन्य प्रिय विषय थे - बागवानी, भूमि सुधार, वकालत और शिक्षण संस्थाओं मे सक्रिय भूमिका अदा करना ।

श्री क्यासम्बल्लि वेंगलराव रेड्डी ने बी.ए.,एल.एल.बी.(मद्रास) करने के बाद मैसूर (कर्नाटक) की सक्रिय राजनीति में कूद पड़े । वे मैसूर कांग्रेस के अध्यक्ष रहे और राष्ट्रीय आन्दोलन में योगदान दिया । पत्रकारिता, विदेश भ्रमण आपकी अभिरुचियों में से थे । लोकसभा और केंद्रीय मंत्रिमंडल के सदस्य रहे । इसके बाद आप मध्यप्रदेश के राज्यपाल रहे ।

सत्यनारायण सिन्हा मध्य प्रदेश के चौथे राज्यपाल थे । आप बिहार के दरभंगा क्षेत्र के जमींदार थे । आप पटना विश्वविद्यालय के विधि स्नातक थे । सन्1920 से आप राष्ट्रीय आन्दोलन में कूद पड़े । आप 1930-74 तक दरभंगा जिला कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष रहे । आप विधायक और सांसद रहे । आप कांग्रेस संगठन में कई पदों पर रहे । आप केंद्रीय मंत्रिमंडल मे मंत्री भी रहे । 1971-77 तक आप मध्यप्रदेश के राज्यपाल रहे ।

निरंजननाथ वांछू मध्यप्रदेश के सतना जिले के स्नातक । अभिरुचि अध्ययन । आप इंडियन सिविल सर्विस के थे और भारत में राज्य केंद्रीय प्रशासन के विभिन्न पदों पर रहे । आप विश्वविद्यालयों से भी जुड़े रहे। 1977 में मध्यप्रदेश के राज्यपाल बने । आप पाँचवें राज्यपाल थे ।

चेप्पुदिरा मुथना पुनाचा का जन्म कुर्ग (मैसूर-कर्नाटक) में हुआ था । स्नातक । 1930 में स्वतंत्रता आन्दोलन में प्रविष्ट हुए । संविधान सभा के सदस्य रहे । 1952-56 में कुर्ग के मुख्यमंत्री । भारतीय व्यापार

निगम के सदस्य, जापान यूरोप के देशों में भारतीय व्यापार प्रतिनिधिमंडल के साथ राज्यसभा के सदस्य तथा केन्द्रीय मंत्री रहे । आप आठवें राज्यपाल थे ।

भगवत दयाल शर्मा का जन्म अविभाजित पंजाब के रोहतक जिले में । एम. ए., डी. लिट. । अभिरुचि- आदिवासी, हरिजन, कमजोर वर्गों का कल्याण । श्रम संघों में सक्रिया भूमिका । 1941 से कांग्रेस राजनीति में भागीदारी । अंतर्राष्ट्रीय श्रमिक संघ में भारत का प्रतिनिधित्व । उड़ीसा के राज्यपाल रहे । 30 4 80 को मध्यप्रदेश के राज्यपाल । आप सातवें राज्यपाल थे ।

प्रोफेसर के. एम. चांडी मध्यप्रदेश के आठवें राज्यपाल थे । केरल में जन्म । स्नातक । कृषक समस्याओं और अध्यापन में गहरी अभिरुचि । 1939 से राष्ट्रीय आंदोलन में भागीदारी बाद में विधायक बने । दक्षिण के कृषक आन्दोलन में सक्रिय भूमिका अदा की । 1982 में पांडिचेरी, 1983 में गुजरात और 1984 में मध्यप्रदेश के राज्यपाल बने ।

श्रीमती सरला ग्रेवाल मध्यप्रदेश के नौवें राज्यपाल थी । एम.ए. पंजाब विश्वविद्यालय से, आई.ए.एस. (1952) । प्रशासनिक सेवा में आने वाली भारत की दूसरी महिला । विभिन्न प्रशासनिक पदों पर कार्य । उन्होंने महिला साक्षरता कार्यक्रम में भी योगदान दिया । 1985 में प्रधानमंत्री राजीव गाधी की सचिव । 1989 में मध्यप्रदेश का राज्यपाल ।

कुँअर मेहमूद अली खाँ मध्यप्रदेश के दसवें राज्यपाल थे । उत्तर प्रदेश के मेरठ जिल में जन्म । आगरा विश्वविद्यालय के विधि स्नातक । अभिरुचि - ग्रामीण उत्थान, साम्प्रदायिक सद्भाव । सूफी आन्दोलन मे भागीदारी । विधायक । काकोरी केस के उग्रवादियो से सम्पर्क रहा । बाद में किसान नेता चौधरी चरण सिह के सम्पर्क में आये और उनके लोकदल के सदस्य बने । 1977 में हापुड़ के विधायक (जनता पार्टी की टिकट पर) । 1990 में मध्यप्रदेश के राज्यपाल ।

मुहम्मद शफी कुरैशी मध्यप्रदेश के ग्यारहवें राज्यपाल थे । श्रीनगर में जन्में, श्रीनगर और अलीगढ़ मुस्लिम युनिवर्सिटी के विधि स्नातक । कई भारतीय भाषा के ज्ञाता । पेशे से वकील । खेलकूद में रुचि। विद्यार्थी आन्दोलन में भाग । जम्मू कश्मीर की राजनीति में सक्रिय भागीदारी । आपने नेशनल कान्फ्रेंस को कांग्रेस पार्टी में बदलने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की । केद्रीय केबिनेट मे मंत्री । संसदीय प्रतिनिधि मंडल के सदस्य की हैसियत से विभिन्न देशों की यात्रा। वे 1991 में बिहार के भी राज्यपाल थे ।

इस तरह मध्यप्रदेश के राज्यपाल सभी मध्यप्रदेश के बाहर के रहे है और इनकी नियुक्ति में महाराष्ट्र, आन्ध्र, कर्नाटक, केरल, बिहार, उत्तर प्रदेश, पंजाब, हरियाणा, काश्मीर आदि को प्रतिनिधित्व दिया गया है। इससे ये राज्यपाल राज्य की राजनीति में कोई सक्रिय भूमिका अदा नहीं कर सके ।

अधिकांश राज्यपाल उच्च शिक्षा प्राप्त थे । कई भारतीय भाषाओं के भी ज्ञाता थे । अतः उन्होने मध्यप्रदेश के विश्वविद्यालय की गतिविधियों में भी गहरी रुचि अभिव्यक्त की । कई धार्मिक सहिष्णुता का प्रचार करने में जुटे। राजभवन में धार्मिक और सांस्कृतिक कार्यक्रम आयोजित किये जाने लगे ।

कुछ राज्यपाल श्रमिक और कृषक आन्दोलन में गहरी रूचि रखते थे। राज्य में भ्रमण के दौरान वे इन वर्गों से मिलते रहे और इनकी समस्याओं को सुना और इन समस्याओं को प्रदेश की सरकार के सम्मुख रखा। इसी प्रकार कुछ राज्यपालों ने अनुसूचित जातियों, जनजातियों और पिछड़ी जातियों की समस्याओं का ध्यान से सुना।

दो कुशल प्रशासक भी राज्यपाल के पद पर नियुक्त हुए। किन्तु इनका आम जनता से सम्पर्क कम रहा। श्रीमती सरला ग्रेवाल एक सख्त प्रशासक थी। इसलिये कभी-कभी अधिकारियों और मंत्रियो से उनका मतभेद उत्पन्न हो जाया करता था। प्रदेश की जनता राज्यपाल के रूप में सख्त प्रशासक नही किन्तु एक सहद्रय राज्यनीतिज्ञ को देखना पसंद करती थी जो हमदर्दी के साथ उनकी समस्याओं को सुने और इन समस्याओं को राज्य सरकार के सामने रख दे।

राज्यपाल का नाम		किस क्षेत्र से आये
डॉ० पट्टाभी सीतारमैया	-	राजनीति, (कांग्रेस)।
डॉ० हरिविष्णु पाटस्कर	-	राजनीति (कांग्रेस), लोकसभा और नेहरू मंत्रिमंडल के सदस्य।
क्यासम्बल्लि चेंगल राव रेड्डी	-	राजनीति (कांग्रेस), लोकसभा और शास्त्री केबिनेट के सदस्य रहे।
सत्यनारायण सिन्हा	-	राजनीति (कांग्रेस), विधायक, सांसद, इंदिरा मंत्रिमंडल में मंत्री रहे
निरंजन नाथ वांछू	-	भारतीय प्रशासनिक सेवा से।
सी० एम० पुनाचा	-	राजनीति (कांग्रेस), इंदिरा मंत्रिमंडल में मंत्री।
भगवत दयाल शर्मा	-	राजनीति (कांग्रेस) और श्रमिक आन्दोलन।
के० एम० चांडी	-	राजनीति (कांग्रेस), कृषक और श्रमिक आन्दोलन।
श्रीमती सरला ग्रेवाल	-	भारतीय प्रशासनिक सेवा से।
कुंअर मेहमूद अली खां	-	राजनीति (जनता पार्टी), कृषक आन्दोलन, हिन्दू मुस्लिम एकता।
मुहम्मद शफी कुरैशी	-	राजनीति (नेशनल कान्फ्रेंस, कांग्रेस)।

मध्यप्रदेश के दो मुख्यमंत्री राज्यपाल पद पर

मध्यप्रदेश के दो शीर्षस्थ राजनीतिज्ञों - श्री अर्जुन सिह और श्री मोतीलाल वोरा को दो राज्यों का राज्यपाल बनाया गया। ये दोनों ही मध्यप्रदेश के चोटी के राजनीतिज्ञ थे और राजनीतिज्ञ और प्रशासक दोनों ही रूपों में इन्होंने काफी ख्याति अर्जित की थी।

श्री अर्जुन सिह राजनीति विज्ञान में एम० ए० थे और काफी लम्बे अर्से से विधायक पद पर रहे। वे श्यामाचरण मंत्रिमंडल में मंत्री भी रहे थे। 1980-84 के बीच में इंदिरा गांधी के समर्थन से वे मुख्यमंत्री रहे। 1985 में पंजाब में उग्रवाद अपनी चरम सीमा पर था। उस समय पंजाब को सम्हालने के लिये अर्जुन सिह को सर्वथा योग्य समझा गया और उनको पंजाब का राज्यपाल नियुक्त किया गया। अर्जुन सिंह ने राज्यपाल पद पर रहते हुए विख्यात "राजीव-लोंगोवाल" समझौता किया। यह सोचा गया था कि इससे पंजाब मे शान्ति स्थापित हो सकेगी (किन्तु बाद में लोंगोवाल की हत्या कर दी गयी)। बाद मे पंजाब में अधिक समय तक बने रहने में अर्जुन सिह ने अनिच्छा व्यक्त की।

मोतीलाल वोरा दुर्ग (म० प्र०) से एक दीर्घकाल तक विधायक चुने जाते रहे। वे विधायक के अतिरिक्त मध्यप्रदेश के कांग्रेस मंत्रिमंडलों में मंत्री भी रहे। जब अर्जुन सिह को पंजाब का राज्यपाल बनाया गया तो उनके स्थान पर मोतीलाल वोरा को मध्यप्रदेश का मुख्यमंत्री बनाया गया। इसके अतिरिक्त केन्द्रीय केबिनेट मे मंत्री भी रहे। 1993 में उनको उत्तरप्रदेश का राज्यपाल बनाया गया। मोतीलाल वोरा को उत्तरप्रदेश की विशेष स्थिति में राज्यपाल बनाया गया। उत्तरप्रदेश में मुलायम सिह की सजपा और कांशीराम के बहुजन समाजपार्टी का गठबंधन टूटने को था, अंत में 1994 में वह टूट भी गया, मायावती की सरकार बनी जिसे भाजपा का समर्थन प्राप्त था। बाद में मायावती की सरकार से भाजपा ने भी अपना समर्थन वापस ले लिया। इस पर उत्तर प्रदेश में राज्यपाल मोतीलाल वोरा की रिपोर्ट पर राष्ट्रपति शासन लागू हो गया।

इस दौरान राज्यपाल के पद पर मोतीलाल वोरा ने अत्यधिक महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। नरसिहराव की सरकार ने मोतीलाल वोरा की राजनैतिक चातुरी, अनुभव और कुशलता का भरपूर प्रयोग किया। वैसे कांग्रेस की केंद्र सरकार को उम्मीद थी कि मोतीलाल वोरा उत्तरप्रदेश में कांग्रेस की डूबती नैया को बचाने में कुछ कर सकते है किन्तु हवाला कांड में फंसने के कारण उनको इस पद से इस्तीफा देना पड़ा।

समापन और निष्कर्ष

भारतीय संविधान निर्माताओं ने राज्यपाल के पद की दो भूमिकाओं की कल्पना की थी - एक तो वह नाममात्र की कार्यपालिका के रूप में कार्य करेगा और दूसरे वह राष्ट्रपति के एजेंट के रूप में कार्य करेगा। उसकी अर्हताएं इसीलिए इस प्रकार की रखी गई कि वह ऐसा व्यक्ति हो जो राजभवन में ऐशोआराम न करने लगे। उसे एक राजनीति का संजा हुआ खिलाड़ी होना चाहिए। उसे महीने में दो बार राष्ट्रपति (केंद्रीय सरकार) को रिपोर्ट भेजनी होती है। ये रिपोर्ट ऐसे हो कि उसमें राज्य कि राजनीति और प्रशासन की देनन्दिन घटनाओं का सही चित्रण हो। जो दल केन्द्र में सत्तारूढ़ रहती है वह चाहती है कि ऐसे राज्यपाल राज्यों में रखे जाये जो अपने अपने राज्यों का सही चित्रण केंद्र सरकार को पेश कर सकें, विशेषकर यदि केंद्र में एक दल की सरकार हो और राज्यों में दूसरी दल की सरकार हो।

संविधान सभा ने जो व्यवस्थाएं की थी, वे सभी व्यवस्थाएं अब एक के बाद एक टूट रहीं हैं, बिखर रहीं हैं, उनका स्वरूप विकृत होता जा रहा है। क्या संविधान सभा ने यह सोचा था कि राज्यपाल केन्द्र के एजेंट का कार्य करते हुए केंद्र के पक्ष में राज्यों के भीतर ''जासूसी'' करेंगे। वास्तव में अब राज्यपाल यही भूमिका अधिक निभा रहे हैं। राज्यपाल भी यह सोचते हैं कि वे चूंकि राष्ट्रपति (केद्र सरकार) द्वारा नियुक्त किये गये हैं अतएव वे राज्य के मंत्रिमंडल के नियंत्रण से मुक्त है। वे जो रिपोर्ट लिखते है उसे राज्य के मुख्यमंत्री को नही दिखाया जाता है। राज्य के मुख्यमंत्री को इन रिपोर्टों को देखने का कोई अधिकार नही है।

गवर्नरों को विविध क्षेत्रों से लिया गया। सभी अत्यधिक शिक्षित विश्वविद्यालयों महाविद्यालयों के छात्र रहे हैं। वे विज्ञान, समाजविज्ञान, दर्शन, साहित्य या कृषि क्षेत्र के स्नातक रह चुके है। इनमे से कुछ ने प्रशासनिक सेवाओं में काफी ख्याति प्राप्त की है। श्रीमती सरला ग्रेवाल प्रशासनिक सेवाओं से थी।

अपनी जीवनी में गवर्नरों ने नाना विविध रूचियां व्यक्त की है- कृषि, बागवानी, उद्योग, पर्यटन, साहित्य, संगीत, नृत्य आदि-आदि किन्तु वास्तव में इनकी नियुक्ति मंजे हुए राजनीतिज्ञ होने के कारण ही हुई है। राज्यपाल अवश्य ही पूरे राज्य मे भाषण देते हुए फिरते है किन्तु वे अपना अधिकांश समय उद्घाटन समारोहों, पुरस्कार वितरण समारोहों, कला साहित्य विज्ञान की गोष्ठियों में भाषण देते हुए घूमते है। वे सरकार की नीतिचो के विरोध में नहीं बोल सकते, सरकारी नीतियों के पक्ष में ही उनको बोलना पड़ता है।

प्रारम्भ में इंदिरा गांधी के काल तक 1950-84 तक राज्यपाल ''डमी'' होते थे, वे अलंकारिक प्रधान होते थे। उस समय केंद्र सरकार और अधिकांश राज्यों में कांग्रेस का ही बहुमत रहता था। राज्यपाल राजभवनों में आराम की जिदगी व्यतीत करते थे या राज्य भर में सरकारी गैर सरकारी कार्यक्रमों में सरकारी खर्च पर घूमते रहते थे। राष्ट्रपति (केंद्र सरकार) की प्रसन्नता पर्यंत वे पद पर रहते थे।

किन्तु अब स्थितियां बदल चुकी है। राज्यपालों को केंद्र के एजेंट (जिसे लोग आज जासूसी करना कहते हैं) की भूमिका निभानी होती है। उसे अपने सूत्रों से (मंत्रियों के सूत्रों से नही) राज्य भर की तमाम राजनैतिक घटनाओं, राजनैतिक उठापटकों, विशेषकर केंद्र के विरूद्ध चल रही कार्यवाहियो की जानकारी देनी पड़ती है। उसे प्रशासनिक अधिकारियों और पुलिस की गतिविधियो के बाबत भी सारी जानकारी देनी पड़ती है। प्रशासनिक अधिकारी कई केंद्रीय योजनाओं को लागू करने में ढिलाई बरतते है या उनको विकृत ढंग से लागू करते हैं जिससे केंद्रीय सरकार की काफी बदनामी होती है। राज्यपाल इन सबकी जानकारी केद्र सरकार को देते है।

बाबरी मस्जिद कांड के अवसर पर उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश और राजस्थानों के राज्यपालों ने सही भूमिका अदा नहीं की थी ऐसा केन्द्र सरकार का विचार था। इन राज्यपालों को कार-सेवकों और आर० एस० एस० के बारे में सही रिपोर्टिंग देनी थी किन्तु उन्होंने नहीं दिया जिससे केंद्र सरकार बाबरी मस्जिद को बचाने के लिए

समय पर कदम उठा नहीं सका। अतएव अब राज्यपालों की नियुक्ति में केंद्र सरकार अधिक सतर्क रहने लगी है। उसे राज्यों की राजनीति पर कड़ी नजर रखनी पड़ती है और उसी के अनुरूप राज्यपालों की नियुक्ति करनी पड़ती है।

राज्यपालों को काफी अच्छा वेतन, भत्ता, सुविधाएं दी जाती है और ऐसी आशा की जाती रही है कि वे निष्ठापूर्वक अपने पद के कर्त्तव्यों का सम्पादन करेगें। किन्तु भूतकाल में मध्यप्रदेश और राजस्थान के राज्यपालो पर भ्रष्टाचार के आरोप लग चुके है। मध्यप्रदेश के राज्यपाल सत्यनारायण सिन्हा के बाबत प्रकाशित हुआ था कि वे "काजल की कोठरी" में हैं और उन्होंने अपने पद का दुरुपयोग करके गैर कानूनी तरीके से काफी पैसा बनाया। ठेकेदार और उद्योगपति उनसे मिलने उनके राजभवनों में चले आते थे।

मध्यप्रदेश के दो भूतपूर्व मुख्यमंत्री दो राज्यों के राज्यपाल रहे -- श्री मोतीलाल वोरा और थी अर्जुन सिह। इन दोनों पर हवाला कांड में रूपये लेने का आरोप लगा। इसी प्रकार केरल के राज्यपाल श्री शिवशंकर पर भी हवाला कांड में धन लेने का आरोप लगा। मोतीलाल वोरा और पी० शिवशंकर को काफी हीला हवाला करने के बाद अपने पदो सेइस्तीफा देना पड़ा। अतएव संविधान सभा में राज्यपालो से जिस आचरण सम्बन्धी शुचिता की आशा की गयी थी वह वृथा सिद्ध हुई।

फुट नोट्स

खण्ड - I

1. व्ही० पी० मेनन - दि ट्रान्सफर आफ पावर इन इण्डिया, 1947,
   दि इंटीग्रेशन आफ इण्डियन स्टेट्स, 1956
2. Art 366 (22) "Rulers" in relation to an Indian state means the "Prince", chief or other person
3. Art 155 - "The Governor of a state shall be appointed by the president by warrant under his hand and seal "
4. दि इण्डियन एक्सप्रेस, नई दिल्ली, फरवरी 22, 1969
   नेशनल हेराल्ड, नई दिल्ली, 20 मार्च, 1969
5. दि स्टेट्स मैन, कलकत्ता, नवम्बर 11, 1967- "It is perhaps a commendable precaution not only to ensure harmony in relations but maintain prestige and dignity of office " (सम्पादकीय) ।
6. दि इण्डियन एक्सप्रेस, नई दिल्ली, 4 अगस्त, 1967 (सम्पादकीय) ।
7. हिन्दुस्तान स्टेंडर्ड, कलकत्ता, जनवरी 22, 1966
8. दि स्टेट्समैन, नई दिल्ली, 22 जनवरी, 1966
9. दि इण्डियन एक्सप्रेस, 22 जनवरी, 1966
10. दि फ्री प्रेस जर्नल, बम्बई, 24 मार्च, 1964- इस पत्र ने लिखा था —
    "For a government a feeling like this in the ministry is a source of great strength and encouragement "
11. दि इण्डियन जर्नल आफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, नई दिल्ली, मार्च 24, 1964,
    श्री विष्णु सहाय का लेख- "Do Governors govern "
12. वही, श्री विष्णु सहाय ने अपने लेख में इन सब तथ्यों का उल्लेख किया है।
13. दि नेशनल हेराल्ड, नई दिल्ली, मार्च 24, 1969
14. दि इण्डियन एक्सप्रेस, 4 अगस्त, 1967
15. दि स्ट्टेसमैन, मार्च 10, 1971
16. वही, 21 जून, 1950
17. श्री प्रकाश - स्टेट गवर्नर्स इन इण्डिया, दिल्ली, मीनाक्षी प्रकाशन, 1970, पृ० 5
18. दि हिन्दू, मद्रास, जून 8, 1957
19. डॉ० आइवर जेनिंग्स - केबिनेट गवर्नमेंट, केम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रेस, 1961, पृ० 337
    डॉ० अर्थर बेरिडेलकीथ- दि ब्रिटिश केबिनेट सिस्टम, आक्सफोर्ड, आक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, 1952, पृ० 348
20. टाइम्स आफ इंडिया, बम्बई, दिसम्बर 6, 1954

एक सरकारी अधिसूचना में कहा गया—

"The president, in exercise of his powers under Article 160 of the constitution has appointed Shri Mangaldas Pakwasa to discharge the functions of the Governor of Bombay until a permanent appointment is made under Article 155 "

21. टाइम्स आफ इण्डिया, बम्बई, अप्रैल 11, 1968
22. नेशनल हेराल्ड, मार्च 2, 1959
23. दि स्टेट्समैन, कलकत्ता, जून 6, 1970
24. वही, 15 जून, 1970
25. नेशनल हेराल्ड, नई दिल्ली, 3 अप्रैल, 1968
26. वही, 14 मार्च, 1969
27. दि हिन्दुस्तान टाइम्स, नई दिल्ली, जून 13, 1960.
28. दि इण्डियन नेशन, पटना, 16 अप्रैल, 1963 - श्री प्रकाश का लेख।

खण्ड - II

29. अली अशफाक, डॉ० सैयद - भोपाल पास्ट एंड प्रजेंट, भोपाल, जयभारत पब्लिशिंग हाउस इन साइट इतवारा, 1970, पृ०132-33.
30. वही, 160-164,

    मध्यप्रदेश संदेश - मध्यप्रदेश एक दृष्टि, भोपाल, जनसम्पर्क संचालनालय, मध्यप्रदेश सरकार, जुलाई, 1985, पृ० 25

    एम० पी० क्रानिकल, भोपाल, (आंग्ल दैनिक), 12 नवम्बर, 1964
31. अली अशफाक, पृ० 164-166

    एम० पी० क्रानिकल, 11 फरवरी, 1965
32. म० प्र० संदेश, पू० उ०।
33. वही
34. वही
35. वही
36. वही
37. मध्यप्रदेश विधानसभा सदस्य परिचय (नवम्), भोपाल, शासकीय मुद्रणालय, 1991, पृ० IV, V, VI
38. सचिव - विधायिनी, भोपाल, शासकीय मुद्रणालय, मध्यप्रदेश विधानसभा की पत्रिका, 1994
39. वही ।

अध्याय — 5

मध्य प्रदेश में 1962 से 1984 के बीच राज्यपालों की भूमिका

1962-84 के बीच विविध राज्यपाल

इस अवधि में मध्यप्रदेश में निम्न राज्यपाल हुए -

श्री हरि विष्णु पाटस्कर	-	14 8 57 से 10 2 65
श्री के० सी० रेड्डी	-	11 2 65 से 2 8 71
श्री सत्य नारायण सिह	-	8 8 71 से 13 10 77
श्री निरंजन नाथ वांचू	-	14 10 77 से 16 8 78
श्री सी० एम० पुनाचा	-	17 10 78 से 30 4 80
श्री भगवत दयाल शर्मा	-	30 4 80 से 14 5 84

इन राज्यपालों में निरंजन नाथ वांचू लोक सेवक थे। शेष राज्यपाल राजनीति में रह चुके थे और सी० एम० पुनाचा को छोड़कर सभी कॉंग्रेस के मंजे हुए खिलाड़ी थे।

इनमें कोई भी राज्यपाल मध्यप्रदेश का नही था। सभी मध्यप्रदेश के बाहर के थे। संविधान सभा मे बहुमत इस पक्ष में था कि राज्यपालों को राज्य के बाहर का व्यक्ति होना चाहिए। इससे राज्यपाल राज्य की राजनीति से तटस्थ रहकर निष्पक्ष रूप से अपनी भूमिका निभा सकेगा। उसे राज्य की राजनीति में उतनी रुचि नही रहेगी।

समकालीन राजनीति का स्वरूप

1957 से, अर्थात् नये मध्यप्रदेश के बनने के बाद से कॉग्रेस का राज्य की राजनीति पर तृतीय चुनाव अर्थात् 1966 तक पूर्ण बहुमत रहा सर्वप्रथम पंडित रविशंकर शुक्ला के मुख्य मंत्रित्व काल मे पट्टाभि सीतारमैया राज्यपाल रहे। इसके बाद मध्य प्रदेश में तीन कॉंग्रेस मुख्य मंत्री हुए - श्री कैलाश नाथ काटजू, श्री भगवन्त राव मंडलोई और पंडित द्वारका प्रसाद मिश्रा|इनके काल में श्री हरि विनायक पाटस्कर राज्यपाल रहे। इनको विशेष भूमिका अदा करने का अवसर नहीं मिला क्योकि इन मुख्य मंत्रियों का विधानसभा में पूर्ण बहुमत था और कॉंग्रेस दल मध्य प्रदेश की विधान सभा में पूर्ण बहुमत मे था।

किन्तु 1966 के बाद अर्थात् तीसरे निर्वाचन के बाद से स्थिति बदलने लगी। कॉग्रेस पार्टी ने चुनावो में पूर्ण बहुमत खो दिया। जन संघ, समाजवादी पार्टी आदि को भी चुनाओं में काफी सीट मिले। द्वारका प्रसाद के मंत्रिमंडल का पतन हो गया और मध्य प्रदेश में संविद सरकारो का दौर दौरा चलने लगा। गोविंद नारायण

सिह पहले संविद के मुख्यमंत्री हुए और इनके बाद अल्पकाल के लिये राजा नरेशचन्द्र सिह और श्यामाचरण शुक्ला मुख्यमंत्री हुए। कॉग्रेस पुनः पदारुढ़ हुई। पहले श्री पी० सी० सेठी और उनके बाद श्री श्यामाचरण शुक्ल मुख्य मंत्री हुए। इस काल में मध्यप्रदेश के राज्यपाल श्री के० सी० रेड्डी थे।

श्यामाचरण शुक्ल 1972 के बाद (बंगला देश युद्ध के बाद) पुनः निर्वाचित होकर आये। 1975 के बाद श्रीमती इंदिरा गॉधी ने देश व्यापी आन्तरिक संकट काल की घोषणा की। कॉग्रेस की साख बड़ी तेजी से घट रही थी। 1977 के चुनावों में मध्यप्रदेश में कॉग्रेस बुरी तरह पिट गई। केन्द्र में जनता पार्टी पदारुढ़ हुई। वह दो वर्षों तक शासन करती रही। 1977-78 में केन्द्र सरकार द्वारा निरंजन नाथ वांचू नियुक्त किये गये। वे एक अनुभवी प्रशासक रह चुके थे। इसके बाद जनता पार्टी ने सी० एम० पुनाचा को राज्यपाल नियुक्त किया। इस प्रकार 1978, 79 में दो राज्यपाल नियुक्त किये गये। पुनाचा एक मंजे हुए राजनीतिज्ञ थे। इस काल में मध्यप्रदेश में भाजपा के दो मुख्यमंत्री नियुक्त हुए। पहले श्री कैलाश नाथ जोशी और उनके बाद श्री सुंदर लाल पटवा मुख्यमंत्री नियुक्त हुए।

श्री के० सी० रेड्डी एक दबंग व्यक्तित्व वाले राज्यपाल थे। श्री श्यामा चरण को उनकी स्पष्टवादिता के कारण काफी परेशानी हुई। एक बार उन्होंने एक महाविद्यालय के एक समारोह में खुले आम विद्यायकों और राजनीतिज्ञों पर छींटाकशी करते हुए कह दिया था "मैं कुल 10 मिनट में सब कुछ बोलूंगा, दस मिनट में इतना कुछ बोला जा सकता है कि उसके बाद और कुछ बोलने के लिये नही रह जाता। विधायक, सांसद, राजनीतिज्ञ घंटो अनाप शनाप बोलते रहते हैं जिसका कोई अर्थ नही निकलता और न वे उचित संदर्भ में ही बोलते हैं।" इसके आगे उन्होंने अपना भाषण जारी रखते हुए बोला- "आज हर राजनीतिज्ञ को अपने बलबूते पर मुख्यमंत्री या मंत्री बनना चाहिए। चूँकि आपका बाप मुख्यमंत्री है, इसलिये बेटा भी मुख्य मंत्री बने यह कहाँ तक उचित है।" उस समय इस समारोह में मुख्य मंत्री श्यामाचरण उपस्थित थे। श्री रेड्डी ने उन्ही पर व्यक्तिगत कटाक्ष किया था। श्यामा चरण के पिता रविशंकर शुक्ल मध्यप्रदेश के प्रथम मुख्य मंत्री रह चुके थे। इस कटाक्ष पर मुख्यमंत्री श्यामाचरण का चेहरा तमतमा गया। वे दो बार अपने स्थान पर उठ खड़े हुए और राज्यपाल के भाषण में व्यवधान डाला। स्थानीय अखबारों में इसकी रिपोर्टिंग विस्तार से हुई (नवभारत, देशबंधु-10 जनवरी, 1970) ।

संविद शासन काल में भी श्री रेड्डी ने जो भूमिका अदा की उसकी गूँज 1968 के अखिल भारतीय अध्यक्षों के सम्मेलन में सुनाई दी (इसका उल्लेख अगले खंडो में किया गया है)।

1980-84 के बीच काँग्रेस पुनः बहुमत मे सत्तारूढ़ हुई।। श्री अर्जुन सिह मुख्यमंत्री बने। यह काल राज्यपाल भगवत दयाल शर्मा का काल है। राज्यपाल भगवत दयाल शर्मा के काल मे मुख्यमंत्री अर्जुन सिह से उनके सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध रहे।

राज्यपाल व्यवस्थापिका का अभिन्न अंग है -

इस अवधि में राज्यपालों ने राज्य की विधान सभा आमंत्रित, स्थगित और भंग करने में प्रमुख भूमिका अदा की। राज्यपालों ने व्यवस्थापिका की बैठकें बुलाई। राज्यपालों को व्यवस्थापिका की बैठकों का स्थान और समय निश्चित करने का अधिकार है।

राज्यपालों ने राज्य के प्रधान के रूप में प्रत्येक अधिवेशन के आरम्भ में सदनों को सम्बोधित किया। ये भाषण राज्यपालों के न होकर सरकार की नीतियों और कार्यक्रमो पर प्रकाश डालते है। साथ ही राज्यपालो ने विधेयकों को स्वीकृति दी है।

भारतीय संविधान के अनुसार राष्ट्रपति संसद का अभिन्न अंग है। इसी प्रकार से राज्यपाल राज्य के संविधान का अभिन्न अंग है। हमने इंग्लैड की संसदीय प्रणाली का अनुसरण किया है। वहॉ राजा संसद का अभिन्न अंग होता है - "The king in Parliament" उसी प्रकार से भारतीय संविधान के अनुच्छेद 168 (1) में कहा गया है - " For every state there shall be a ligislature which shall consist of the Governor and "

व्यवस्थापिका का गठन

ब्रिटिश संविधानिक परम्पराओं और दृष्टान्तों का अनुसरण करते हुए भारत मे भी राज्य की व्यवस्थापिकाओं के किसी विधेयक को विधि का रूप देने के लिये राज्यपाल के हस्ताक्षर की आवश्यकता होती है।

अनुच्छेद 171 (5) में राज्यपालों को व्यवस्थापिका के गठन की शक्तियॉ प्रदान की गयी है। इस काल में सभी राज्यपालों ने आम चुनाव के बाद राज्यों की व्यवस्थापिकाओं का गठन किया है। चुनाव आयोग विजयी उम्मीदवारों की सूची राज्यपाल के पास भेजता है और राज्यपाल इस सूची पर हस्ताक्षर कर वैधता प्रदान करता है।

राज्यपालों ने एंग्लो इंडियन समुदाय के एक सदस्य को मध्यप्रदेश विधान सभा में मनोनीत किया है। प्रदेश में थोड़े से एंग्लो इंडियन समुदाय के सदस्य बचे हुए थे जो रेलवे या पुलिस मे सेवा करते हुए यहॉ बस गये थे। बाद में इनकी संख्या कम होती गयी और ये दूसरे प्रदेशों को चले गये, भारत छोड़कर बाहर चले गये। अतएव इनको मनोनीत करने की आवश्यकता नहीं हुई। अनुच्छेद 333 में इस समुदाय के प्रतिनिधियों को राज्यपाल द्वारा मनोनीत करने का प्रावधान है। यदि राज्यपाल को लगे कि राज्य की व्यवस्थापिका में इनका पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं तो वह इस समुदाय से कुछ सदस्यों को मनोनीत कर सकता है। बाद में मध्यप्रदेश में राज्पालों को लगा कि इस समुदाय की क्षीण स्थिति को देखते हुए इनको आगे और प्रतिनिधित्व देने की आवश्यकता नहीं है।

अनुच्छेद 341 और 342 में राज्यपाल को यह शक्ति प्रदान की गई है कि वह अनुसूचित जातियो और अनुसूचित जन जातियों के सदस्यों की सूची तैयार करवाये। इस सूची को अंतिम रूप से स्वीकृति ससद के द्वारा दी जायगी। ऐसी सूचियॉ समय-समय पर बनवाई गयी है और राज्यपालों ने जनगणना आयोग को इस सम्बन्ध में समय-समय पर आदेश दिया है। वास्तव में इस सम्बन्ध में आदेश मुख्यमंत्री द्वारा गृह मंत्रालय को दिया जाता है जिस पर राज्यपाल का प्रति-हस्ताक्षर होता है। हरि विनायक पाटस्कर, के० सी० रेड्डी और सत्यनारायण सिहा तीनों राज्यपालों ने अनुसूचित जातियों और जनजातियों के विकास में बहुत अधिक रुचि ली और यह प्रयास किया कि इन जातियों को विधान सभा और मंत्रिपरिषद में तथा अन्य राज्य की सरकारी नौकरियों में अधिकतम प्रतिनिधित्व मिले जिससे इनकी स्थिति में सुधार हो।

1956 में नया मध्यप्रदेश बना था। बरार महाराष्ट्र में चला गया था। मालवा, मध्यभारत (बुंदेलखड), रीवॉ (बघेलखंड) की रियासतें नये मध्यप्रदेश में शामिल की गयी थी। इन नये क्षेत्रों में इंदौर, ग्वालियर, भोपाल को छोड़कर शेष हिस्सों में बड़ी संख्या में आदिवासियों का निवास था। हरिविनायक पाटस्कर पहले राज्यपाल थे जिनको नये मध्यप्रदेश के इन अनुसूचित जानजाति क्षेत्रों का सर्वप्रथम दौरा करने का अवसर प्राप्त हुआ। उन्होंने इन क्षेत्रो में निवास करने वाली जन जातियों से प्रत्यक्ष सम्पर्क किया। ये अत्यधिक पिछड़े क्षेत्र थे, यहॉ की जनजातियॉ - भील, गोंड, कोल और इनकी उपजातियॉ अत्यधिक पिछड़ी अवस्था में थी। ये अभी भी सामन्तवादी अंधकार युग में थीं। न स्कूल, न सड़के, न आवागमन के साधन, न चिकित्सालय। सभ्य जीवन की अन्य बुनियादी आवश्यकताओं जैसे चिकित्सालय, रेल लाइन, बैक, सिचाई के साधन कृषि उपज मंडियॉ आदि की सर्वथा अभाव था। हरिविनायक पाटस्कर संविधान सभा के सदस्य रह चुके थे। संविधान सभा में इन जातियों को आरक्षण देने का समर्थन किया जा चुका था। इस समर्थन देने में श्री पाटस्कर ने अग्रणी भूमिका अदा की थी। उनको संविधान सभा में अभिव्यक्त किये गये विचारों को क्रियान्वित करने का अच्छा अवसर तब प्राप्त हुआ जब वे मध्यप्रदेश के राज्यपाल नियुक्त हुए । यद्यपि राज्यपाल को मंत्रिमंडल को कोई आदेश देने का अधिकार नहीं है, सारी नीतियाँ राज्य मंत्रिपरिषद में निर्धारित की जाती हैं और इन नीतियों को क्रियान्वित करने का कार्य मंत्रिपरिषद का ही होता है, फिर भी राज्यपाल को समय-समय पर परामर्श देने, सुझाव देने का अधिकार है और इस अधिकार का प्रयोग करके ही राज्यपाल ने अनुसूचित जन जातियों के विकास के लिये बहुत से परामर्श दिये।

इसी प्रकार से मध्यप्रदेश में अनुसूचित जातियो की संख्या भी बहुत अधिक है। जहॉ अनुसूचित जन जातियाँ विशेष क्षेत्रों में निवास करती हैं, वहीं अनुसूचित जातियॉ सम्पूर्ण मध्यप्रदेश मे - हर गॉव, हर नगर में फैली हुई है। सवर्णों ने इनसे हर स्थान और काल में सेवा ली है। इनको दास बनाकर रखा गया है। हरिविनायक पाटस्कर ने संविधान सभा में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से संविधान सभा में उस समय हाथ बॅटाया था जब अनुसूचित जातियों को आरक्षण देने और उनके विकास के लिये उठाये जाने वाले कदमों पर चर्चा की जा रही थी।

अतएव जब उनको राज्यपाल के पद पर कार्य करने का अवसर मिला तो उन्होने मध्यप्रदेश के अनुसूचित जातियों के विकास में भी रुचि ली।

इधर गृहमंत्रालय (केंद्र) से भी राज्य को लगातार निर्देश आते रहते है कि राज्यपाल देखे कि इन जातियों के विकास के लिये, इनके आरक्षण के लिये जो प्रावधान संविधान में सम्मिलित किये गये हैं उनका समुचित रूप से क्रियान्वयन हो और इसलिये राज्यपाल सम्बन्धित विभागो को इन निर्देशों को प्रेषित कर देता है।

ऊपर उल्लिखित सभी प्रकार के मनोनयन मुख्य मंत्री के परामर्श से या गृह मंत्रालय के परामर्श पर किये जाते हैं।[1] कुछ स्थितियों में राज्यपाल इस अधिकार का प्रयोग स्वविवेक पर कर सकता है। 1952 में मद्रास राज्य में ऐसी स्थिति उत्पन्न हुई भी।[2] 1960 में तत्कालीन गृहमंत्री ने लोक सभा को सूचित किया था कि केरल विधान सभा में एक एंग्लो इंडियन का मनोनयन किया जाय।[3]

अभिभाषण और निलम्बन

क्या राज्यपाल विधायकों को निलम्बित कर सकता है? मध्यप्रदेश में संविद शासन के दौरान कतिपय ऐसी स्थितियाँ उत्पन्न हुई थी जब विरोधी दलों ने राज्यपाल के अभिभाषण के दौरान बाधा डाली थी। यद्यपि बाधा डालने वाले सदस्यो को निलम्बित नही किया गया किन्तु इस प्रश्न पर विचार अवश्य हुआ। उस समय राज्यपाल के० सी० रेड्डी थे।[4] राजस्थान के राज्यपाल सम्पूर्णानन्द ने सर्वप्रथम कुछ विधायकों को निलम्बित किया था। जब राजस्थान विधान सभा में राज्यपाल अपना भाषण दे रहे थे तो ये सदस्य बारम्बार रुकावटें डालने लगे और राज्यपाल के भाषण के दौरान काफी व्यवधान उत्पन्न किया गया।[5] 26 अप्रैल, 1966 को राज्यपाल सम्पूर्णानन्द ने कुछ विधायकों को इस आधार पर निलम्बित कर दिया गया कि जब बजट पर राज्यपाल अपना अभिभाषण दे रहे थे तो ये सदस्य बारम्बार रुकावटें डालने लगे और राज्यपाल के भाषण के दौरान काफी व्यवधान उत्पन्न किया गया । विरोधी दलों के सदस्यों को निलम्बित कर दिया गया । यह मामला विशेषाधिकार समिति को भेजा गया और विशेषाधिकार समिति ने राज्यपाल के निलम्बन आदेश को वैध ठहराया।

जब मध्यप्रदेश सहित सभी राज्यों में यह मामला किसी न किसी रूप मे उठने लगा तो इन राज्यों ने गृह मंत्रालय से कानूनी राय माँगी और गृह मंत्रालय ने राज्यपाल के निलम्बन आदेश को वैध ठहराया। गृह मंत्रालय ने कहा कि राज्यपाल के अभिभाषण पर व्यवधान उत्पन्न करना असंसदीय है और विधायिका और राज्यपाल दोनों की प्रतिष्ठा को गिराना है। राज्यपाल व्यवस्थापिका का अंग है अतएव उसे मार्शल की सेवाएँ लेने का अधिकार है। राज्यपाल राज्य का प्रतीक है, सदस्यों को उसके प्रति समुचित आदर व्यक्त करना चाहिए।[6]

राजस्थान के राज्यपाल का यह एक अत्यधिक विवादास्पद कदम था। मध्यप्रदेश सहित 1967-70 के दौरान विविध राज्यों में ऐसी स्थितियों उत्पन्न होती रही हैं किन्तु राज्यपालों द्वारा सदस्यों को निलम्बित

(Suspend) नहीं किया गया। पश्चिम बंगाल की राज्यपाल पद्मजा नायडू और मध्यप्रेदश के राज्यपाल के० सी० रेड्डी को भी विधान सभा सम्बोधित करते हुए विशेष कर बजट भाषण के अवसर पर ऐसी अप्रिय स्थितियों का सामना करना पड़ा। श्रीमती पद्मजानायडू ने तो इस टोकाटोकी की बीच अपने भाषण को समाप्त किये बिना ही उस भाषण की प्रति मेज पर रख दी, और वे सदन को छोड़कर चली गयी। इस प्रकार उसी समय उत्तर प्रदेश के राज्यपाल ने भी इस टोकाटोकी के बीच अपने अभिभाषण को बिना पड़े ही मेज पर रख दिया और सदन को छोड़कर चले गये। मद्रास के राज्यपाल ने भारी टोकाटोकी के बीच अपने भाषण को पूरा किया। किन्तु राजस्थान के राज्यपाल की कार्यवाही बेमिसाल थी।

मध्यप्रदेश मे भी इस विषय पर काफी वाद विवाद हुआ। इन विचारो का सारांश इस प्रकार है-

(1) जब राज्यपाल विधानसभा को सम्बोधित करता है तो उसको संवैधानिक स्थिति क्या होती है?

राज्यपाल विधान सभा या राज्यव्यवस्थापिका का अभिन्न अंग (Organic Part) अवश्य है किन्तु वह विधान सभा और विधान परिषद् जैसे अंगों से पृथक है, उसे इनसे भिन्न प्रकृति के कार्य करने होते है। शरीर के अंगों का एक दूसरे से घनिष्ट सम्बन्ध है किन्तु प्रत्येक अंग एक दूसरे से पृथक कार्य करता है, हाथ का कार्य कान नहीं कर सकता, न कान का कार्य हाथ कर सकता है। इसी प्रकार राज्यपाल और विधान सभा के पृथक-पृथक कार्य हैं। राज्यपाल को विधायी क्षेत्र में निम्नलिखित कार्य करने होते है - विधेयकों पर हस्ताक्षर, विधेयकों को पुनर्विचार के लिये विधान सभा में वापस भेजना, विधेयकों को राष्ट्रपति के पास स्वीकृति के लिये भेजना, बजट / मॉगों को पेश करने के लिये स्वीकृति, सदन के प्रारम्भ होने पर अभिभाषण।

किन्तु राज्यपाल को सदस्यों को निलम्बित करने का कोई संवैधानिक अधिकार नहीं दिया गया है।

(2) क्या राज्यपाल जब वह संविधान सभा में अभिभाषण दे रहा हो, तो वह विधान सभा के नियमो से बॅधा हुआ है?

अवश्य ही राज्यपाल संविधान और नियमों से बॅधा हुआ है। उसे सदनों की बैठक समय पर आमंत्रित करनी होती है, सदन की पहली बैठक को सम्बोधित करना होता है। किन्तु संविधान में राज्यपाल द्वारा सदस्यों के निलम्बन का कोई उल्लेख नही किया गया है।

(3) जब राज्यपाल सदनों को सम्बोधित करता है तब राज्यपाल नही अध्यक्ष सदनो की अध्यक्षता करता है। राज्यपाल विधान सभा के किसी बैठक की अध्यक्षता नहीं करता।

(4) राज्यपाल का भाषण सदन की कार्यवाही का अंग है, और इसे सदन के नियमों के अनुसार ही होना चाहिए सदन के नियमों का निर्वचन या अर्थ लगाने का कार्य अध्यक्ष का कार्य है।

(5) राज्यपाल को किसी विधायक को निलम्बित करने का या सदस्यता से हटाने का अधिकार तभी प्राप्त होता है जब कोई सदस्य निर्वाचन आयोग द्वारा आयोग्य घोषित कर दिया जाय । अन्य स्थितियों

में राज्यपाल को ये अधिकार प्राप्त नही है। अध्यक्ष या सदन ही प्रस्ताव पास कर किसी सदस्य को निलम्बित कर सकते हैं और ऐसा वे तभी कर सकते हैं जब कि सदस्य ने सदन के नियमों की अवहेलना की हो।

(6) मार्शल राज्यपाल के अधीन नहीं है। मार्शल अध्यक्ष के अधीन है। इसलिये राज्यपाल मार्शल का प्रयोग नही कर सकता है।

(7) यह भी कहा गया है कि राज्यपाल सदन के विशेषाधिकारो का उल्लंघन नही कर सकता है। जब वह सदन में भाषण दे रहा होता है तो उसे सदनों के नियमों के अन्तर्गत ऐसा करना चाहिए। राज्यपाल सदन की प्रक्रियाओं के नियमों से बॅधा हुआ है। प्रक्रिया के नियम सदन के कार्यों को व्यवस्थित रूप से चलाने और पूरा करने के लिये बने हुए है। साथ ही सदन के अल्पसंख्यकों और बहुसंख्यकों के अधिकारों को सुरक्षित रखने के लिये बनाये गये है। पुराने ब्रिटिश इतिहास का उदाहरण देकर इस कार्य का समर्थन नही किया जा सकता- उस समय राजी या रानी ने अवश्य ही हाउस आफ कामन्स के कुछ सदस्यों को निलम्बित किया था। किन्तु आज के लोकतंत्रीय युग में पुराने निरंकुश राजाओं और रानियों के अधिकारों को समर्थन नही दिया जा सकता। ब्रिटेन मे भी राजमुकुट में तानाशाही अधिकारों का घोर विरोध हुआ था और कहा गया कि राजमुकुट को सदन के विशेषाधिकारों का आदर करना चाहिए। सर हेनरी मेन ने कहा था - "Liberty is secreted in the inter stices of procedure "

राज्य विधान सभा को आमंत्रित (Summon) करना

अनुच्छेद 174 (1) के अनुसार राजत्यपाल को विधान सभा आमंत्रित करने का अधिकार है। दो सत्र के बीच 6 माह से अधिक का समय नहीं होना चाहिए राज्यपाल ही विधान सभा आमंत्रित करने की तिथि और स्थान निश्चित करेगा।

सर थामस एरस्किन ने सत्र की व्याख्या की है। उनका अनुसरण करते हुए भारत में राज्यों के लिये यह कहा जा सकता है कि यह अधिकार सामान्य स्थितियों में मुख्यमंत्री का है - वह राज्यपाल को विधान सभा की बैठक आमंत्रित करने के लिये परामर्श देते है। 7

1967 के चुनावों के बाद राज्यपाल के अन्य शक्तियों के सदृश्य सदन आमंत्रित करने की शक्ति अत्यधिक विवादस्पद शक्ति हो गयी है।

मध्यप्रदेश में राज्यपाल के० सी० रेड्डी के काल मे इस सम्बन्ध मे कई बार विवाद उठा। 15 मार्च, 1969 को मुख्यमंत्री राज्यपाल से मिले। राज्यपाल ने मुख्य मंत्री को परामर्श दिया कि वे शक्ति परीक्षण के लिये राज्य विदान सभा की बैठक आमंत्रित करने का परामर्श तत्काल देवे। विधान सबा आमंत्रित करने का परामर्श देने के बजाय मुख्य मंत्री ने राज्यपाल को विधान सभा भंग करके चुनाव कराने का परामर्श दिया क्योंकि उनके मत में राज्य में राजनैतिक स्थिति अत्यधिक अस्थिर हो चुकी थी और राज्य में स्थायित्व के लिये मध्यावधि

चुनाव ही एकमात्र विकल्प हो सकता था। किन्तु राज्यपाल का यह मत था कि कॉंग्रेस का उस समय बहुमत था, वहीं दूसरी ओर संयुक्त विधायक दल, जिसने जोड़-तोड़ के आधार पर बहुमत बनाया था, अपना बहुमत खो दिया था। इसलिये राज्यपाल ने मुख मंत्री गोविन्द नारायण सिह को कहा के वे शक्ति परीक्षण के लिये विधान सभा आमंत्रित करने का परामर्श दें।[8]

इस समय अन्य राज्यों में भी इस विषय पर बहुत अधिक वाद विवाद हुआ।1967 के बाद अजय मुकर्जी की सरकार से दल बदल होने लगा और उसके अनुयायियो की संख्या घटने लगी। इस पर श्री धरमवीर ने मुख्यमंत्री श्री अजय मुकर्जी को कहा कि वे विधानसभा की बैठक बुलाकर उसमें शक्ति परीक्षण करायें। राज्यपाल और मुख्यमंत्री के बीच इस पर एक लम्बी चर्चा हुई।[9]

12 मार्च 1967 को राज्यपाल विश्वनाथ दास ने श्री सी० बी० गुप्ता को मुख्यमंत्री नियुक्त किया और साथ ही 17 मार्च को राज्य विधान सभा की एक बैठक आमंत्रित की। राज्यपाल ने कहा कि वे चाहते है कि विधान सभा की बैठक आरम्भ होते ही सरकार को शक्ति परीक्षण में बहुमत प्राप्त करना चाहिए।[10]

पंजाब में अध्यक्ष श्री जोगिदर सिह मान ने पंजाब में गितरोध उत्पन्न होने पर कहा था कि विधान सभा का सत्रावसान करने और आमंत्रित करने मे राज्यपाल को मुख्यमंत्री के परामर्श पर कार्य करना होता है किन्तु विधान सभा भंग करने में उसे अपने स्वविवेक से कार्य करना होता है। इससे पंजाब में एक संविधानिक गतिरोध उत्पन्न हो गया। पंजाब के राज्यपाल श्री डी० सी० पवाटे ने मान की कार्यवाहियों के कारण उत्पन्न गति रोध से बचने के लिये एक परोक्ष तरीका अपनाया। इस बीच अध्यक्ष मान ने विधान सभा की बैठक को 2 माह के लिये स्थगित कर दिया था जिससे कि उनके विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव पारित न किया जा सके। इस पर राज्यपाल ने 12 मार्च को विधान सभा का सत्रावसान (Prorogation) कर दिया।उसने 18 मार्च, 1968 को बजट पर विचार करने के लिये विधान सभा को आमंत्रित किया। पंजाब विधान सभा के सचिव ने कहा कि जब राज्यपाल सत्रावसान की सूचना सदन को दे देता है तो पुनः सत्र आमंत्रित करने के लिये किसी सूचना की आवश्यकता नहीं होती । किन्तु श्री मान ने यह विचार व्यक्त किया कि राज्यपाल ने जो बिना सूचना दिये सदन को बैठक आमंत्रित की और उस बैठक में बजट पारित करवाया वह पूर्णतया अवैध, असंवैधानिक और मान्य संसदीय परम्पराओं के विरुद्ध है। इसके बाद पंजाब उच्च न्यायालय ने पंजाब विधान सभा द्वारा पारित धन विधेयक को अवैध घोषित कर दिया। इससे स्थिति विषम हो गयी। इस पृष्ठभूमि में मुख्य मंत्री श्री लक्ष्मण सिह गिल ने कहा कि उन्होनें राज्यपाल को यह परामर्श दिया कि वे 20 मई को विधान सभा की एक बैठक बुलायें। उच्च न्यायालय के निर्णय के संदर्भ मे राज्यपाल द्वारा बैठक बुलाये जाने की वैधता पर शंका व्यक्त की जाने लगी।[11]

हरियाणा, उत्तर प्रदेश में भी इस सम्बन्ध मे विवाद उत्पन्न हुआ। जब वंशीलाल मुख्यमंत्री थे तब राज्यपाल द्वारा विधान सभा आमंत्रित करने की माँग की गयी थी। किन्तु वंशीलाल ने विरोधी दल के विधायकों की माँग इस आधार पर ठुकरा दी कि सरकार का विधान सभा में बहुमत है।

"Lame duck session" या विधान सभा का लंगड़ा अधिवेशन आमंत्रित करके भी कभी-कभी शक्ति परीक्षण कराया जा सकता है या अन्य कार्यों को सम्पादित किया जता सकता है। उत्तरप्रदेश के राज्यपाल श्री बी० गोपाल रेड्डी ने विधान सभा के विविध दलों के नेताओं की एकबैठक इसी उद्देश्य से बुलायी थी।[12]

मध्यप्रदेश सहित इन सभी राज्यों ने राज्यपालों के विधायिका आमंत्रित, स्थगित और भंग करने के अधिकार को चुनौती दी। इन सब राज्यों में विशेषकर मध्यप्रदेश, पश्चिम बंगाल और पंजाब के गैर कॉंग्रेसी मुख्यमंत्रियों ने राष्ट्रपति जाकिर हुसैन से शिकायत की और उनसे प्रार्थना की गयी कि वे अनुच्छेद 143 के तहत राज्यपाल के संविधानिक अधिकारों का उच्चतम न्यायालय से परीक्षण कराये। राष्ट्रपति ने इस पत्र को गृह मंत्री को भिजवा दिया।[13]

गृहमंत्री श्री यशवन्त राव चव्हाण ने लोकसभा में कहा कि इस विषय पर महान्यायवादी और वैधानिक सलाहकारों से परामर्श लिया जा चुका है। गृह मंत्रालय मे इसके लिये एक विशेष ''सेल'' की स्थापना की जा चुकी है। मध्यप्रदेश सहित इन राज्यों के मुख्यमंत्रियों ने 7 बिन्दुओं पर परामर्श मॉगा था -

(i) बिना विधान सभा का मत जाने क्या राज्यपाल को सरकार बर्खास्त करने का अधिकार है?

(ii) यदि राज्यपाल को यह संदेह हो जाय कि सरकार ने अपना बहुमत खो दिया है, तो क्या केवल इसी सूचना पर राज्यपाल अपने व्यक्तिगत निर्णय में सरकार को बर्खास्त कर सकता है?

(iii) राज्यपाल को संविधान के अनुसार मुख्यमंत्री के परामर्श से ही विधान सभा को आमंत्रित करने का अधिकार है, ऐसी स्थिति में क्या राज्यपाल मुख्यमंत्री पर दबाव डाल सकता है कि वह विधानसभा आमंत्रित करने का परमार्श दे?

(iv) क्या यदि मुख्यमंत्री राज्यपाल के कहने पर भी विधान सभा आमंत्रित करने का परामर्श न दे तो राज्यपाल इसको संविधान का उल्लंघन कह कर सरकार को बर्खास्त कर सकता है?

(v) यदि मुख्यमंत्री राज्यपाल के परामर्श को न माने तो क्या राज्यपाल अनुच्छेद 356 का सहारा लेकर राज्य में राष्ट्रपति शासन की सिफारिश कर सकता है?

(vi) क्या, जब तक सरकार का बहुमत है, राज्यपाल का मुख्यमंत्री के परामर्श को अमान्य करने का अधिकार है?

(vii) यदि मुख्यमंत्री यह परामर्श दे कि विधान सभा भंग कर दी जाय तो क्या राज्यपाल इस परामर्श को इस आधार पर अमान्य कर सकता है कि सरकार का विधान सभा में बहुमत नहीं रह गया है?

कॉंग्रेस संसदीय मंडल की बैठक में कॉंग्रेस पार्टी ने भी इस समय अपनीदलीय दृष्टि से इस पर विचार किया था। किन्तु इसे मध्यप्रदेश सहित अन्य राज्यों की विरोधी दलों वालों सरकार ने अमान्य कर दिया था।

इन राज्यपालों ने कुछ वैकल्पिक कदम भी सुझाये जिनमे कहा गया कि वर्तमान राज्य सरकारों (जो उनके मत मे बहुमत खो चुकी है) को बर्खास्त कर देना चाहिए और विधान सभा को भंग करके नया निर्वाचन कराना चाहिए। या फिर विधान सभा को अल्पकाल के लिये स्थगित कर देना चाहिए (Suspend) और इस बीच एक नयी सरकार बनाने की सम्भावना का परीक्षण करना चाहिए। यह भी सुझाव दिया गया कि वर्तमान सरकारों को भंग करके विरोधी दल के अन्य नेताओं को मुख्य मंत्री बनाना चाहिए। लोकसभा में भी इस विषय पर वाद विवाद हुआ।[14]

राज्य व्यवस्थापिका का सत्रावसान

अनुच्छेद 174 (2) (a) में कहा गया है कि राज्यपाल समय-समय पर विधान सभा का सत्रावसान कर सकेगा (Prorogation)।

यह शख्ति भी राज्यपाल का स्वविवेकी अधिकार नहीं है। सामान्य स्थितियों में राज्यपाल को इस शक्ति का उपयोग मुख्य मंत्री के परामर्श से ही करना चाहिए। एक पुराने मामले में (वीर भ्रदैया,1950 - मद्रास) यह निर्णय दिया गया था कि इस विषय को अदालत में भी चुनौती नहीं दी जा सकती किन्तु यह मामला 1967 के चुनावों के बाद अत्यधिक विवादास्पद हो गया ।

मध्यप्रदेश में श्री के० सी० रेड्डी के काल में सत्रावसान को लेकर विवाद

20 जुलाई, 1967 को राज्यपाल ने विधान सभा का सत्रावसान कर दिया था इस पर जोर दार विवाद हुआ। संसद में यह मामला मधुलिमये, डॉ० राममनोहर लोहिया और अन्यो के द्वारा उठाया गया। लोकसभा अध्यक्ष ने गृहमंत्री श्री चव्हाण को आदेश दिया कि वे इस विषय पर तथ्य एकत्रित करे। गृहमंत्री ने निम्न तथ्य पेश किये। इस समय लगभग सभी कॉंग्रेस सदस्यों ने दल बदल किये। बाद मे इनमें से दो सदस्यों ने कहा कि उनसे जबर्दस्ती हस्ताक्षर लेकर दल बदल कराया गया है। ऐसे माहौल में मुख्य मंत्री ने राज्यपाल को परामर्श दिया कि विधान सभा का सत्रावसान कराया जाय और माहौल को सुधारने दिया जाय। राज्यपाल ने मुख्यमंत्री के परामर्श पर विधान सभा का सत्रावसान कर दिया। श्री चाव्हाण ने कहा कि इस बीच स्थिति में स्थिरता आ जाय तभी बजट आदि पारित करने के लिये विधान सभा की बैठक आमंत्रित की जाय। इसके विपरीत श्री हुकुम चंद कछवई और श्री कुँवर लाल गुप्ता ने राज्यपाल की इस कार्यवाही को "लोकतंत्र की हत्या" निरूपित किया।

लोकसभा में यह मामला श्री मधु लिमये द्वारा एक स्थगन प्रस्ताव के माध्यम से उठाया गया। स्थान प्रस्ताव के शब्द इस प्रकार थे-"Failure of the central government to prevent prorogation of the Madhya Pradesh Assembly by the Governement"

(मध्यप्रदेश विधानसभा का सरकार द्वारा सत्रावसान करने को रोकने मे केंद्रीय सरकार की विफलता)।[15] श्री लिमये के अनुसार राज्यपाल का कार्य लोकतंत्र और संविधान की भावना के खिलाफ है। यह कहा गया कि राज्यपाल की कार्यवाही के कारण बजट पास कराना कठिन हो गया है। कानून मंत्री श्री गोविंद मेनन ने कहा कि राज्यपाल द्वारा स्थगन की कार्यवाही सर्वथा वैधानिक है।

प्रोफेसर रंगा ने कहा कि केन्द्र सरकार राज्यपाल के माध्यम से राज्यो के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप कर रही है। मध्यप्रदेश के राज्यपाल को न केवल मुख्यमंत्री किन्तु विरोधी दल के नेता से भी परामर्श लेना था। श्री एच० एन० मुकर्जी ने कहा कि गृहमंत्रालय राज्यों के क्षेत्र मे हस्तक्षेप कर रहा है।

श्री सुरेन्द्र नाथ द्विवेदी ने कहा कि अनुच्छेद 174 के अनुसार स्थगन (Adjournment) और सत्रावसान (Prorogation) में स्पष्ट भेद है। इन दोनों के सम्बन्ध मे राज्यपाल के अधिकारों का स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया है। दैनन्दिन स्थगन का अधिकार अध्यक्ष का अधिकार है; इसी प्रकार सत्रवसान में राज्यपाल को मुख्यमंत्री का परामर्श मानना होता है। सत्रावसान का अर्थ है कि उस अधिवेशन की कार्यसूची का विधान सभा ने सम्पूर्ण कर लिया है और सरकार के लिये और कोई कार्य नहीं बचा है। इसलिये सामान्य स्थितियो में राज्यपाल को इन दोनों क्षेत्रों में कोई स्वविवेकी अधिकार नही है। अतएव वर्तमान में राज्यपाल ने अपने क्षेत्राधिकार का उल्लंघन किया है।

इसके विपरीत श्री हनुमंथैया और श्रीमती तारकेश्वरी सिहा ने राज्यपाल के कार्यों का समर्थन किया। श्रीमती तारकेश्वरी सिंहा ने कहा कि अनुच्छेद 163 (2) और अनुच्छेद 174 (2) के अनुसार राज्यपाल ने अपने क्षेत्राधिकार का ही अधिकार किया है।

गृहमंत्री श्री चव्हाण ने इस बात से इंकार किया कि उन्होंने राज्यपाल को कोई निर्देश दिया है। उन्होंने कहा कि संविधान में राज्यपालों की भूमिका के संबंध में स्पष्ट निर्देश दिये गये है। श्री चव्हाण ने महाराष्ट्र के महाधिवक्ता श्री एच० एम० भीखई द्वारा प्रकाशित भारतीय संविधान नामक पुस्तक से उद्धरण देते हुए कहा कि संविधान में केवल 3 अनुच्छेद हैं जिनके अनुसार राज्यपाल को राष्ट्रपति के एजेंट के रूप में कार्य करना पड़ता है। ये अनुच्छेद - 239(2), 200, 356. अन्य क्षेत्रों में राज्यपाल मुख्यमंत्री के परामर्श को मानने के लिये बाध्य है। इन विषयो में वह नाममात्र की कार्य-पालिका के रूप में कार्य करता है।[16] इसका प्रतिरोध करते हुए डॉ० राममनोहर लोहिया ने कहा कि ऊपर लिखित दो कार्यों के अतिरिक्त राज्यपाल को एक तीसरी प्रकार की शक्ति है - वह अपने स्वविवेक से कार्य करता है। श्री जे. बी. कृपलानी ने कहा कि शिष्टाचार और

सौजन्य के नाते राज्यपाल को अध्यक्ष से परामर्श लेना था। प्रो० रंगा ने कहा कि राज्यपाल का कार्य "दुर्भावना ग्रस्त" (Malafide) था। श्री मधुलिमये ने तीन अनुच्छेदों (355, 164, 203) को अपने पक्ष में उद्धृत करते हुए कहा कि राज्यपाल और केंद्रीय सरकार दोनों ने संविधान का अतिक्रमण किया है।

25 जुलाई, 1967 को श्री चंद गोयल ने लोकसभा में गृहमंत्री की गलत बयानबाजी के खिलाफ एक विशेषाधिकार प्रस्ताव पेश किया। इस प्रस्ताव में गृहमंत्री पर यह आरोप लगाया गया कि उन्होंने कहा था कि उनकी राज्यपाल से बातचीत नहीं हुई थी, किन्तु वस्तु स्थिति यह है कि उनकी राज्यपाल से बाचचीत हुई थी। हिन्दुस्तान टाइम्स नामक समाचार पत्र से उद्धृत करते हुए श्री गोयल ने कहा कि राज्यपाल ने गृहमंत्रालय से मध्यप्रदेश विधान सभा का सत्रावसान करने के पूर्व विचार-विमर्श किया था और गृहमंत्री से परामर्श लिया था। श्री रेडडी को हिन्दुस्तान टाइम्स में उद्धृत करते हुए कहा गया था कि मुख्यमंत्री और राज्यपाल के बीच क्या बातचीत हुई इसका खुलासा नही किया जा सकता किन्तु उन्होंने केन्द्रीय सरकार से संविधान के मुताबिक परामर्श लिया था।इसी आशय का कथन टाइम्स आफ इंडिया में भी उद्घृत किया गया था। श्री मधुलिमये ने भी इसी बात पर बल दिया कि मध्यप्रदेश के राज्यपाल को दिल्ली में आकर दो तीन दिनों तक ठहरकर कॉग्रेस नेताओं, मंत्रियो और गृहमंत्री से वार्तालाप नहीं करनी थी। यदि श्री रेड्डी अपने को संविधानिक प्रधान बताते है तो उनको भोपाल में ही रहना था। श्री मधु लिमये ने आगे कहा कि जब मुख्य मंत्री राज्यपाल को विधान सभा भंग करने का परामर्श दे रहे हैं तो राज्यपाल को विधान सभा का सत्रावसान करने का कोई अधिकार नहीं था।[17]

राज्य सभा में मध्यप्रदेश में उत्पन्न संविधानिक संकट पर एक ध्यानकर्षण प्रस्ताव पेश हुआ। गृह मंत्रालय के राज्य मंत्री श्री विद्याचरण शुक्ल ने मध्यप्रदेश संविधानिक संकट पर राज्यपाल से प्राप्त संदेश को राज्य सभा के पटल पर पेश किया। श्री विमल कुमार ने राज्यपाल की कार्यवाही को पक्षपात पूर्ण बतलाया। उन्होने कहा कि विधान सभा में मतदान न करवाकर, विधान सभा का सत्रावसान करके राज्यपाल ने कांग्रेस पार्टी को मदद पहुँचायी है। अकबर अली खान ने राज्यपाल के कार्य का समर्थन किया। श्री राजनरायण ने अनुच्छेद 155 और 163 को उद्धृत करते हुए कहा कि राज्यपाल ने संविधान का उल्लंघन किया और पक्षपात पूर्ण ढंग से कार्य किया है। राज्यपाल को मुख्यमंत्री के परामर्श से कार्य करना चाहिये। इस सम्बन्ध में श्री राजनारायण ने दुर्गादास बसु की भारतीय संविधान से उदाहरण पेश किये। अनुच्छेद 174 के अनुसार बजट राज्यपाल की स्वीकृति से विधान सभा में पेश होता है और उस पर चर्चा की तिथियाँ भी राज्यपाल द्वारा निर्धारित की जाती है। राज्यपाल ने अपनी पक्षपातपूर्ण कार्यवाही से संविधान का अपमान किया है और ऐसे राज्यपाल को तुरन्त पद से अलग कर दिया जाना चाहिए। जब सदन की बैठक हो रही है तो उस पर अध्यक्ष का नियंत्रण होना चाहिए किन्तु राज्यपाल ने बैठक के बीच में अध्यक्ष को सत्रावसान का संदेश भेज दिया। यह राज्यपाल द्वारा क्षेत्राधिकार का उल्लंघन है।[18]

श्री बांका बिहारी दास ने कहा कि संविधान में डॉ० अम्बेडकर ने कहा था कि राज्यपाल के "कार्य" और "कर्त्तव्य" दोनो हैं (Governor might have functions but they have also duties)। जब राज्यपाल कोई संवैधानिक कार्य करता है तो वह मुख्यमंत्री के परामर्श से ऐसा करता है। किन्तु यह नहीं भूल जाना चाहिए कि राष्ट्रपति के एजेंट के रूप में इनके देश के प्रति भी कुछ कार्य हैं। उसका सबसे महत्वपूर्ण कर्त्तव्य है वह संविधान की रक्षा करे। यही कर्त्तव्य राज्यपाल का स्वविवेकी अधिकार है न कि कांग्रेस पार्टी के अधिकारों की रक्षा करना। राज्यपाल ने वैकल्पिक मंत्रिमंडल का गठन न करवाकर विधान सभा का सत्रावसान करवा दिया और ऐसा करके उन्होने "लोकतंत्र की हत्या कर दी।"

भूतपूर्व संसद सचिव एम० एन० कौल ने अनुच्छेद 174(2) पर अपने विचार व्यक्त किये। संविधान निर्माताओं ने इस अनुच्छेद के तहत राज्यपाल को जो अधिकार दिये हैं वे अत्यधिक व्यापक है। राज्यपाल अपने अधिकारों का किस प्रकार से प्रयोग करेगा इस सम्बन्ध मे संविधान ने कोई दिशा निर्देश नहीं दिये है और न उसके अधिकारों की कोई सीमा ही निर्धारित की है। इस क्षेत्र मे राज्यपाल को कोई स्वविवेकाधीन नहीं है। यदि ऐसा होता तो संविधान में इसका उल्लेख होता है। राज्यपाल को मुख्यमंत्री के परामर्श को अमान्य करने का स्वविवेकी अधिकार देना एक खतरनाक सिद्धान्त है। उसको समय लेने का या विलंब का अधिकार (To take time or delay) है। उसे मुख्यमंत्री को किसी विषय पर पुनर्विचार करने के लिये कहने का अधिकार है। वह अपने प्रभाव का उपयोग कर सकता है। किन्तु उसे मंत्रिमंडल के किसी निर्णय या आदेश पर हस्ताक्षर करने से इंकार करने का कोई अधिकार नहीं है। राज्यपाल मंत्रिमंडल को बर्खास्त कर सकता है, किन्तु जिस मुख्यमंत्री की वह नियुक्ति करता है उसे विधान सभा में बहुमत प्राप्त होना चाहिए। किन्तु ये सब कार्य अत्यधिक जटिल है और इन शक्तियों का प्रयोग उस अत्यधिक सावधानी से करना चाहिए अन्यथा वह एक संविधानिक संकट को जन्म दे सकता है। श्री कौल के अनुसार राज्यपाल और मुख्यमंत्री के बीच वार्ता, मुख्यमंत्री ने राज्यपाल को जो परामर्श दिया ये सब बातें गुप्त होती है, उनको सार्वजनिक रूप से व्यक्त नही किया जा सकता। गृह मंत्री इनका संसद में जिक्र नही कर सकता है। किन्तु राज्यपाल को राज्य की राजनैतिक और सांविधानिक स्थिति पर सही रूप से विचार करके ही गृहमंत्रालय को प्रतिवेदन भेजना चाहिए। राज्यपाल का प्रतिवेदन एक संतुलित प्रतिवेदन होना चाहिए इसमें राज्यपाल को इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि संतुलित संसदीय प्रक्रिया क्या है। सारांश में राज्यपाल को संसदीय लोकतंत्र की परम्पराओं और प्रक्रियाओं का रक्षक होना चाहिए। जब मुख्यमंत्री संसद भंग करने का परामर्श देता है तो राज्यपाल को इस परामर्श पर संतुलित ढंग से विचार करके ही कोई कार्यवाही ही करना चाहिए। मध्यप्रदेश के राज्यपाल ने ऐसा ही किया।[19]

श्री कौल ने इस अवसर पर पंडित नेहरु और अध्यक्ष मावलाकर का कहना था कि संसद का सत्रवसान वर्ष में एक बार होना चाहिए इससे सरकार को मनमाने अध्यादेश जारी करने का अधिकार नहीं मिलेगा। ब्रिटिश संसदीय परम्परा ऐसी ही है। इससे सरकार की स्वेच्छाचारिता पर अंकुश लगता है। किन्तु नेहरू अपना

हाथ बँधा नहीं रखना चाहते थे। वे सरकार को अध्यादेश जारी करने की खुली छूट देना चाहते थे। भारत की स्थितियाँ ऐसी थी कि इसमें अधिक अध्यादेश जारी करने की आवश्यकता थी। संसद का एक बार सत्रावसान करने से सरकार के अध्यादेश जारी करने के अधिकार सीमित हो जाते। इस तरह एक से अधिक बार सत्रावसान करने की परम्परा चल निकली।

इसके बाद श्री कौल ने सत्रावसान (prorogation) और संसद भंग किये जाने (dissolution) में अंतर बतलाया । वर्तमान संसदीय प्रक्रिया के तहत सत्रावसान एक प्रक्रियात्मक साधन या तरीका (Procedural device) है किन्तु संसद भंग करना कई अवसरों पर एक राजनैतिक हथियार (political weapon) है । भूपेश गुप्ता ने खड़े होकर कहा कि इस समय सत्रावसान एक राजनैतिक षडयंत्र (Political connivance) है । ब्रिटेन में सत्रावसान को इसलिये आवश्यक समझा गया कि वहाँ संसद का अधिवेशन लगभग साल फर फैल जाता है और संसदीय समय सारिणी, विधेयकों, प्रस्तावो, संशोधनो से अटकी रहती है या जाम हो जाती है और सत्रावसान का तरीका अपनाकर (जैसे एक स्पंज या डस्टर को ब्लैकबोर्ड पर फेरकर सब कुछ लिखा मिटाकर फिर से नये सिरे से लिखा जाता है)।नया सत्र फिर से नये टाइम टेबल या कार्यक्रम से आरम्भ किया जाता है । इसीलिये सत्रावसान एक प्रक्रियात्मक प्रसाधन है । किन्तु मध्यप्रदेश मे राज्यपाल श्री के. सी. रेड्डी ने इस प्रक्रियात्मक साधन का एक राजनैतिक हथियार के रूप में प्रयोग किया और इसलिये राज्यपाल की कार्यवाही का समर्थन नहीं किया जा सकता । उस समय विधान सभा का सत्र चल रहा था, बजट की मांगो पर चर्चा चल रही थी और 30 सदस्य दलबदल कर सरकार के विरोध मे बैठ गये । इससे सरकार अस्थिर हो गयी । राज्यपाल ने सरकार की इस अस्थिरता को रोकने के लिये सत्रवसान के साधन का प्रयोग किया अतएव सत्रावसान एक प्रकार के राजनैतिक हथियार के रूप में प्रयोगित हुआ ।

एम. डी. मनी ने डा. अम्बेडकर को उद्धृत करते हुए वहाँ के राज्यपाल को पहले विधान सभा की नब्ज टटोलकर देखना था कि क्या वास्तव मे सत्रावसान की आवश्यकता है । यदि नही तो इस प्रक्रिया का राजनैतिक प्रयोग करके राज्यपाल ने अपने को दलीय राजनीति के दलदल में फँसा लिया ।

गृह मंत्रालय के राज्यमंत्री श्री गोविंद मेनन ने कहा कि राज्यपाल का कदम संविधानिक था; सदन का सत्रावसान थोड़े समय के लिये ही किया गया था ।

श्री भूपेश गुप्ता ने कहा कि राज्यपाल का आचरण विवादस्पद रहा है - राज्यपाल को सत्रावसान करने के पूर्व अध्यक्ष से परामर्श ले लेना था । बिना अध्यक्ष से पूछे राज्यपाल को कैसे पता लगा कि विधान सभा अपने कार्य को ठीक से पूरा नहीं कर सकेगी? भूपेश गुप्ता ने कहा कि राज्यपाल ने धोखाधड़ी करके अध्यक्ष को दरकिनार कर विधानसभा का सत्रावसान कर दिया । वास्तव में राज्यपाल ने सत्रावसान के अधिकार का राजनैतिक ढंग से प्रयोग करके अध्यक्ष के क्षेत्राधिकार में नाजायज हस्तक्षेप किया । राज्यपाल ने अनुच्छेद 175

और विधान सभा नियम संख्या 20 (मध्यप्रदेश) का सरासर उल्लंघन करके अध्यक्ष को सत्रावसान का संदेश भेज दिया और अध्यक्ष को आदेश दे दिया कि वह इस संदेश को विधान सभा में पढ़ दे । यह एक प्रकार से संविधान और विधान सभा नियमों का सरासर उल्लंघन है । जब विधान सभा का अधिवेशन चल रहा था और कार्यों को तेजी से निपटाया जा रहा था तो राज्यपाल को सत्रावसान का संदेश नही भेजना था । श्री गुप्ता ने सर थामस एरस्किन में की विख्यात पुस्तक से ब्रिटिश परम्परा को उद्धृत करते हुए (पृ. 278-80) कहा कि ब्रिटेन में इस तरह से विधान सभा का भरपूर सत्र चलते हुए अध्यक्ष के माध्यम से राजमुकुट संदेश भेजकर सत्रावसान नहीं कर सकता है ।

श्री त्रिलोकीनाथ ने भी राज्यपाल की कार्यवाही को असंवैधानिक कहा क्योकि राज्यपाल ने ऐसे मुख्यमंत्री का परामर्श या सुझाव माना जिसने सदन मे अपना विश्वास खो दिया था ।

गृहमंत्री श्री चाव्हाण वाद विवाद का समापन करते हुए कहा कि राज्यपाल को सामान्य स्थितियों मे मुख्यमंत्री का परामर्श मानना ही चाहिए । किन्तु संविधान मे कुछ अनुच्छेद ऐसे है जिनमें राज्यपाल को मुख्यमंत्री के परामर्श को मानने या न मानने की छूट दी गयी जैस अनुच्छेद 200, 239, 356 । श्री चाव्हाण ने श्री कौल के इस विश्लेषण से अपनी असहमति व्यक्त की कि सत्रावसान एक प्रक्रियात्मक साधन है और भंग करने का अधिकार एक राजनैतिक साधन है । भंग करना भी एक प्रक्रियात्मक साधन है जैसे विधान सभा को 5 वर्ष बाद भंग कर दिया जाता है । सत्रावसान का जिस ढंग से ब्रिटेन मे प्रयोग होता है वैसा भारत मे नही । सत्रावसान के बाद संसद में जितने भी विधेयक, संकल्प, प्रस्ताव, संशोधन बच जाते हैं वे स्वयमेव रद्द हो जाते हैं किन्तु भारत में सदनों के सत्रावसान के बावजूद् विधेयक रद्द या समाप्त नही होता । वह दूसरे अधिवेशन में सदन के पटल पर रखा जाता है । श्री चाव्हाण ने कहा कि केन्द्र ने राज्यपाल को कोई परामर्श नहीं दिया था । राज्यपाल ने कहा था कि वे केन्द्र से तभी परामर्श करते हैं जब संविधान उन्हें परामर्श लेने को कहता है और इस अवसर पर राज्यपाल ने केन्द्र से कोई परामर्श नहीं लिया था । राज्यपाल ने मुख्यमंत्री से ही परामर्श लिया था ।

मध्यप्रदेश विधान सभा के अध्यक्ष श्री काशीप्रसाद पांडे ने विधान सभा में यह जानकारी दी कि राज्यपाल ने अनुच्छेद 174 (2-a) के तहत विधान सभा का सत्रावसान किया । संविद के मुख्यमंत्री श्री गोविद नारायण सिंह और उपमुख्यमंत्री श्री वीरेंद्र कुमार सखलेचा ने राज्यपाल को सत्रावसान का परामर्श दिया था । इसके बाद दलबदल के कारण संविद सरकार का पतन हो गया ।

लोकसभा में भी मध्यप्रदेश के राज्यपाल की कार्यवाहियों की आलोचना हुई ।[20]

श्री मधुलिमये ने अपने कागजों को फाड़ते हुए कहा कि राज्यपाल पर निन्दा प्रस्ताव लगाना चाहिए।

प्रजा समाजवादी दल के श्री नाथ पाई ने राज्यपाल को राष्ट्रपति द्वारा वापस बुलाये जाने का प्रस्ताव रखा। किन्तु ये दोनों प्रस्ताव रद्द कर दिये गये ।

प्रोफेसर एन० जी० रंगा ने कहा कि राज्यपाल ने पक्षपात ढंग से कार्य करके राज्यपाल के पद और मर्यादा को क्षति पहुँचाई है। राज्यपाल को कामचलाऊ सरकार (क्योकि उसने अपना बहुमत खो दिया था) के परामर्श को मानकर सदन का सत्रावसान नहीं करना था। द्रविड़ मुनेत्र कड़गम के श्री ईरा मेजियान, सी० पी० एम० के श्री आनन्द नाम्बियार, जन संघ के श्री अटल बिहारी बाजपेयी ने राज्यपाल द्वारा सत्रावसान के कार्य को असंवैधानिक बतलाया और कहा कि राज्यपाल राज्य की राजनीति में उलझ रहे है। श्री बाजपेई ने कहा कि श्री रेड्डी बीमारी का बहाना बनाकर सो गये और दलों के नेताओं से मिलने से इंकार कर दिया, जवकि राष्ट्रपति को सोते से उस समय उठाया गया जब केन्द्रीय मंत्रिमंडल में फेर बदल हो रहा था। इस प्रकार राज्यपाल रेड्डी की बीमारी वास्तव में राजनैतिक बीमारी थी, शारीरिक नहीं।

अन्य राज्यों में सत्रावसान

पश्चिम बंगाल, उड़ीसा, उत्तर प्रदेश, पंजाब, मद्रास आदि मे भी सत्रावसान की प्रक्रिया का नाजायज फायदा उठाया गया और उसका राजनैतिक और असंवैधानिक ढंग से प्रयोग किया गया। 30 नवम्बर, 1967 को पश्चिम बंगाल में, 23 मार्च, 1971 को उड़ीसा में, 7 मार्च, 1968 को पंजाब में, 21 नवम्बर, 1972 को मद्रास में राजनैतिक ढंग से सत्रावसान किया गया।[21]

पंजाब राज्य बनाम सतपाल डांग का ऐतिहासिक मुकदमा[22]

पंजाब और हरियाणा राज्य के दो अध्यादेशों पर राज्यपाल ने हस्ताक्षर किये थे। इन अध्यादेशों की वैधता को उच्चतम न्यायालय में चुनौती दी गयी। इसके पूर्व पंजाब उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश मेहर चंद और अन्य न्यायाधीशों ने इन अध्यादेशों और अधिनियमों को अवैध घोषित कर दिया था। इसमें दल बदल के कारण युनाइटेड फ्रंट की सरकार बनी, जिसके मुख्यमंत्री गुरनाम सिह थे। इस समय लेफ्टिनेट जोगिदर सिह मान और डॉ० बलदेव सिंह को क्रमशः अध्यक्ष और उपाध्यक्ष निर्वाचित किया गया था। पुनः दल बदल के कारण श्री लक्ष्मण सिह गिल मुख्यमंत्री बने (पंजाब जनता पार्टी) कॉग्रेस का इनको समर्थन प्राप्त था। बजट अधिवेशन के अंतिम दिन अध्यक्ष श्री मान के विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव पेश हुआ। काफी हो-हंगामा हुआ। इस बीच बिना बजट को पारित किया अध्यक्ष श्री मान ने विधान सभा का स्थगन कर दिया और ऐसा करने में उन्होंने नियम 105 (2) का हवाला दिया।,

बजट पास करना निहायत जरूरी था। स्थिति में राज्यपाल ने 11 मार्च 1968 को विधान सभा का सत्रावासन कर दिया। (अनुच्छेद 172 (2) (a) (3))। इसकी प्रति सरकारी गजट में प्रकाशित करने के साथ

ही साथ विधान सभा के सचिव और अध्यक्ष को भी भेज दी गयी। 13 मार्च 1968 को राज्यपाल ने अध्यादेश नं० 1, 1968 जारी किया । अनुच्छेद 174(3) के तहत राज्यपाल ने पंजाब विधान सभा आमंत्रित की (अनुच्छेद 174(3) 18 मार्च 1968 की तिथि विधान सभा की प्रथम बैठक के लिये निर्धारित की गयी। अनुच्छेद 175 (2) (4) के तहत राज्यपाल ने यह निर्देश दिया कि विधान सभा बजट पर विचार करें।

गुरनाम सिंह ने अपना औचित्य प्रस्ताव पेश किया और कहा कि राज्यपाल को सत्रावसान के दौरान विधान सभा आमंत्रित करने का अधिकार नहीं है। काफी वाद-विवाद के बाद 14 3 1968 के राज्यपाल के आदेश को अवैध घोषित कर दिया गया और श्री मान ने कहा कि विधान सभा वर्तमान में उनके आदेश मे 2 माह के लिये सत्रावसान की स्थिति मे है। श्री मान सदन छोड़कर चले गये। उनकी जगह पर उपाध्यक्ष ने आसन ग्रहण किया। शोरगुल के बीच उन्होंने यह निर्णय दिया कि श्री मान का आदेश अवैध है और राज्यपाल के आदेश के तहत विधान सभा की कार्यवाही जारी रहनी चाहिए। मुख्यमंत्री ने प्रस्ताव पेश करके बजट पास करवा लिया। इसके बाद अध्यक्ष श्री मान के विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव पेश किया गया और पारित किया गया और सदन को 5 अप्रैल 1968 तक के लिये स्थगित कर दिया गया।

इसके बाद विधेयको को विधान परिषद में इस प्रमाण पत्र के आधार पर कि वे धन विधेयक है भेज दिया गया। कुछ सदस्यों ने आपत्ति की कि धन विधेयक अध्यक्ष का विधेयकों पर अध्यक्ष का हस्ताक्षर होना चाहिए। किन्तु विधान परिषद के सभापति ने इस आपत्ति को अमान्य कर दिया और विधेयक पर विचार कर राज्यपाल के पास हस्ताक्षर के लिये भिजवा दिया। राज्यपाल ने विधेयकों पर हस्ताक्षर कर दिया।

पंजाब उच्च न्यायालय में दो याचिकाएँ दायर की गयी। ये याचिकाएँ पंजाब विधान सभा के विधायक सत्यपाल डांग द्वारा दायर की गयी थी। न्यायधीश कपूर ने वाद विवाद का समापन करते हुए कहा कि सत्रावसान 18 मार्च से प्रभावशाली हुआ था। इसलिये सत्रावसान के पहले विधान सभा को आमंत्रित करना अवैध था। इस तरह सत्रावसान और सदन को आमंत्रित किया जाना दोनों अवैध कार्य वाहियॉं थीं। इसलिये सदन का स्थगन किये जाने के बावजूद यह मानना चाहिए कि सदन का "अधिवेशन चल रहा था" और इस तर्क के अनुसार चूँकि सदन का अधिवेशन चल रहा था, अतएव अध्यादेश पारित करना संविधान के प्रति धोखाघड़ी बरतना था। 18 मार्च को अध्यक्ष ने जो निर्णय दिया था उसके विरुद्ध न्यायालय में अपील नहीं हो सकती थी। अध्यादेश अवैध था। अध्यक्ष को धन विधेयक पर हस्ताक्षर कर उसे प्रमाणित करना पड़ता है, उपाध्यक्ष को इस सम्बन्ध में कोई अधिकार नहीं है। इस प्रकार उपाध्यक्ष का धन विधेयको पर हस्ताक्षर करके प्रमाणित करने का कार्य भी अवैध था। इस तरह सम्पूर्ण धन विधेयक अवैध था।

मामले की अपील सुप्रीम कोर्ट में हुई। सुप्रीम कोर्ट के अनुसार अध्यक्ष ने 2 माह के लिये विधान सभा स्थगित कर दिया था। इस बीच 31 मार्च तक बजट पारित किया जाना नितान्त आवश्यक था अन्यथा सारा

प्रशासनिक कार्य और गतिविधियॉ रुक जाती । अतएव राज्यपाल के सामने विधान सभा का सत्रावसान कर उसे बजट पारित करने के लिये पुनः आमंत्रित करना नितांत आवश्यक था। राज्यपाल ने अनुच्छेद 209 (7) और 213 (6) के तहत अध्यादेश जारी किया यद्यपि राज्यपाल तभी अध्यादेश जारी कर सकता है जब विधान सभा का अधिवेशन नहीं चल रहा है, किन्तु अध्यक्ष ने 2 माह तक के लिये विधान सभा स्थगित करके ऐसी स्थिति उत्पन्न कर दी थी जिससे सिवाय अध्यादेश जारी करके बजट पारित करवाने के अतिरिक्त कोई चारा नहीं था। 31 मार्च के बाद कोई धन विधेयक पारित नहीं किया जा सकता था। इस तरह राज्यपाल को जल्द से जल्द कार्यवाही करके विधान सभा का अधिवेशन कराकर बजट को पास करवाना था। इस तरह राज्यपाल ने उस समय की स्थिति के संदर्भ में समुचित कार्यवाही ही की। सुप्रीम कोर्ट ने कहा कि सच है कि जब विधान सभा को अध्यक्ष ने स्थगित कर दिया था, तो विधान सभा का अधिवेशन चल रहा है ऐसा मान लेना चाहिए और ऐसी स्थिति में राज्यपाल को सत्रावसान का आदेश देने का अधिकार नही था। किन्तु अध्यक्ष ने दो माह की आवश्यकता से अधिक लम्बी अवधि के लिये विधान सभा को स्थगित कर देना और अध्यक्ष का उद्देश्य बजट पास नहीं होने देना था। इस तरह अध्यक्ष का उद्देश्य ही व्यवस्था और लोककल्याण के विरुद्ध था। किन्तु राज्यपाल का सत्रावसान का आदेश नियम विरुद्ध होने के बावजूद सद्उद्देश्यों पर आधारित था और जनकल्याण के लिये था। समय समाप्त हो रहा था (Time was running out) और राज्यपाल को इस संविधानिक बाधा को मिटाकर 31 मार्च के पूर्व बजट को पारित करवाना था। राज्यपाल को सत्रावसान के माध्यम से विधान सभा आमंत्रित करके बजट पास करवाने का कोई चारा नही था।

वादी ने यह प्रश्न उठाया था कि सत्रावसान की प्रतियाँ या सूचना सदस्यों को वितरित नही की गयी जो अनुच्छेद 174 (2) (3), विधान सभा की प्रक्रिया के नियम 7 का उल्लंघन है। किन्तु सुप्रीम कोर्ट ने यह निर्णय दिया कि चूंकि सत्रावसान के आदेश का प्रकाशन सरकारी गजट मे किया जा चुका था अतएव राज्यपाल ने अपना दायित्व पूरा कर दिया। गजट में प्रकाशित होना ही विधायकों और जनता की सूचना के लिये पर्याप्त है।

वादी ने अध्यादेश की वैधता को भी चुनौती दी थी। किन्तु सुप्रीम कोर्ट ने कहा कि सत्रावसान के बाद राज्यपाल को अध्यादेश जारी करने का अधिकार अनुच्छेद 209 और 213 के अन्तर्गत प्राप्त होता है और राज्यपाल ने इन अनुच्छेदों के अंतर्गत ही अध्यादेश जारी किया, इसलिये अध्यादेश वैध है।

अनुच्छेद 209 (7) का उद्देश्य बजट और वित्तीय कार्यों को समय के भीतर समाप्त करना है। अध्यक्ष ने जो 2 माह का स्थगन आदेश जारी किया वह संविधान के इस अनुच्छेद के विपरीत था। राज्यपाल ने सत्रावसान और उसके बाद विधान सभा आमंत्रित करवा कर इस अनुच्छेद की रक्षा की। अनुच्छेद 209 (7) के अंतर्गत राज्यपाल ने जो अध्यादेश जारी किया उसका भी उद्देश्य लोकतंत्र और संविधान की रक्षा करना था, इसलिये यह अध्यादेश भी वैध था। इसी तरह सुप्रीम कोर्ट ने उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश के इस

विचार का समर्थन किया (यद्यपि बहुमत से अन्य न्यायाधीशों ने मुख्य न्यायाधीश के विचार को अमान्य कर दिया था) कि अध्यादेश की धारा 3 अनुच्छेद 189 (4) का उल्लंघन नही करती। इसलिये अध्यादेश वैध है।

अध्यक्ष के अनुसार 18 मार्च को सत्रावसान करना अवैध था चूँकि उसके पूर्व ही उसने विधान सभा स्थगित कर दिया था। किन्तु सुप्रीम कोर्ट ने अपने निर्णय में कहा कि 11 मार्च को विधान सभा स्थगित की गयी थी और उसे 14 मार्च को पुनः आमंत्रित किया गया था।

अध्यक्ष ने अध्यादेश को अवैध घोषित किया था और कहा गया कि औचित्य के प्रश्नों (Point of order) का निर्णय केवल अध्यक्ष के द्वारा ही किया जा सकता है। सुप्रीम कोर्ट ने इस तर्क को रदूद करते हुए कहा कि अध्यादेश को रदूद करने का अधिकार अध्यक्ष का न होकर विधान सभा सदस्यों का है। इन सदस्यों ने बहुमत से प्रस्ताव पास करके अध्यादेश को रदूद करना था। किन्तु ऐसा नहीं किया गया अतएव अध्यादेश वैध था।

उपाध्यक्ष का यह निर्णय उचित था कि अध्यादेश वैध था, अध्यक्ष का स्थगन आदेश अध्यादेश के कारण अवैध था, अतएव सदस्यों को बिना अध्यक्ष के आदेश की परवाह किये सदन की कार्यवाही को जारी किया। उपाध्यक्ष के इस निर्णय को किसी ने, यहॉ तक कि विरोधी सदस्यो ने भी चुनौती नही दी अतएव अध्यदेश को विधान सभा में मान्य किया गया, विधानसभा की कार्यवाही वैध थी। सुप्रीम कोर्ट ने यह निर्णय दिया कि अध्यक्ष ने संविधान और नियमों के विरुद्ध कार्य किया।

सुप्रीम कोर्ट ने यह भी निर्णय दिया कि उपाध्यक्ष ने विधानसभा की कार्यवाही का जिस तरह से संचालित किया वह वैध था। विधान सभा ने कार्य सूची के प्रत्येक विषय और वित्तीय कार्यों को नियमानुसार पूरा किया।

अंतिम विषय जिस पर सुप्रीम कोर्ट ने निर्णय दिया वह यह कि धन विधेयको पर उपाध्यक्ष द्वारा हस्ताक्षर वैध था। अध्यक्ष ने अवैध रूप से 2 माह के लिये विधान सभा की कार्यवाही स्थगित की और वे सदन के सारे महत्वपूर्ण कार्यों को अधूरा छोड़कर चले गये। नियमानुसार जब अध्यक्ष अनुपस्थित हो तो उपाध्यक्ष अध्यक्ष की आसंदी पर बैठता है और उसे अध्यक्ष की सारी शक्तियॉ प्राप्त होती है। अतएव धन विधेयक पर उपाध्यक्ष का हस्ताक्षर वैध था क्योंकि उसने अध्यक्ष के रूप में कार्य किया। सर थामस एरस्किन ने (सुप्रीम कोर्ट के अनुसार) ने अपनी पुस्तक में कई उदाहरण दिये है जिसमें उपाध्यक्षों ने धन विधेयकों पर हस्ताक्षर किये हैं अनुच्छेद 212(1) में विधान सभा की कार्यवाही की वैधता को चुनौती नही दी जा सकती यदि उसने अपनी कार्यवाही को नियमानुसार निपटाया है।

सुप्रीम कोर्ट ने अपने निर्णय में उच्च न्यायालय के निर्णय को निरस्त करते हुए राज्यपाल की कार्यवाही को वैध ठहराया। सुप्रीम कोर्ट ने कहा कि पंजाब में राजनीतिज्ञों और विधायको ने घोर अराजकतापूर्ण स्थिति उत्पन्न कर दी थी। इंग्लैण्ड में ऐसी स्थिति स्टुअर्टो के काल में उत्पन्न हुई थी। राज्यपाल ने बड़े कठोर कदम

उठाये। किन्तु बिना कठोर कदम उठाये राज्य का बजट पारित नही होता और राज्य मे एक अभूतपूर्व स्थिति उत्पन्न हो जाती। सुप्रीम कोर्ट ने अँग्रेज निबंधकार बेकन को उद्धृत करते हुए कहा कि असाध्य बीमारियो के लये कड़वी औषधियाँ ही कारगर सिद्ध होती हैं, कष्टदायक कदम उठाने पड़ते हैं। (Noremedies Cause so much pain as are efficacious)।[23]

मध्यप्रदेश सहित अन्य राज्यों में विधान सभा का भंग किया जाना

अनुच्छेद 174 (b) के अनुसार राज्यपाल समय-समय पर व्यवस्थापिका भंग कर सकता है। सामान्य स्थितियों में यह राज्यपाल का स्वविवेकी अधिकार नही है। वह इस अधिकार का मुख्यमंत्री के परामर्श से उपयोग करता है।

किन्तु राज्य में आपात स्थिति की घोषणा पर राज्यपाल को केन्द्र सरकार के परामर्श से विधान सभा भंग करना होता है।

राज्यपाल कई कारणों से व्यवस्थापिका भंग करने के लिये मुख्यमंत्री के परामर्श को अमान्य कर सकता है। 1967 के बाद देश की अस्थिर राजनैतिक स्थिति में मुख्यमंत्रियो ने विधान सभा भंग करने मध्यावधि चुनाव का परमामर्श दिया था, किन्तु कुछ अवसरों पर राज्यपालों ने इन परामर्शों को मानने से इंकार कर दिया।

इस तरह भारतीय संविधान के अंतर्गत राज्यपालों ने इस अधिकार का निम्न प्रकार से उपयोग किया गया है—

1 राज्यपाल मुख्यमंत्री के परामर्श से विधान सभा भंग कर सकता है;

2 राज्य में संवैधानिक आपात की उद्घोषणा के बाद केन्द्र सरकार के परामर्श से राज्यपाल विधान सभा भंग कर सकता है;

3 राज्यपाल इस अधिकार का प्रयोग अपने स्वविवेक (in his discretion) पर कर सकता है और ऐसा करते हुए वह मुख्य मंत्री से परामर्श नहीं लेगा;

4 वह मुख्यमंत्री से परामर्श तो ले सकता है किन्तु इस परामर्श को मानने के लिये वह अपने व्यक्तिगत निर्णय (individual Judgment) का प्रयोग करते हुए मुख्यमंत्री के परामर्श को मान भी सकता है और नही भी मान सकता।

केरल उच्च न्यायालय ने एक मामले मे यह निर्णय दिया था कि विधान सभा का गठन होने के बाद उसे कभी भंग किया जा सकता है, इसके लिये कोई समय निर्धारित नहीं है। किन्तु बसु ने इस निर्णय में असहमति व्यक्त की है। सामान्यता 5 वर्ष की अवधि पूर्ण होने पर ही विधान सभा भंग की जा सकती है। इस सम्बन्ध में अनुच्छेद 172, 174 और जनप्रतिनिधित्व कानून 1951 की धारा 73 लागू होती है।[24]

1967 के पूर्व सामान्य तथा विधान सभा को 5 वर्ष की अवधि पूर्ण करने पर या जब राज्य मे संविधानिक आपात लगाया जाता था, भंग किया जाता था। 1967 के पूर्व ट्रावनकोर कोचीन के राज्य का ही एकमात्र उदाहरण दिया जा सकता है जब मुख्यमंत्री ने राज्यपाल को विधानसभा भंग करने का परामर्श दिया था और राज्यपाल ने इंकार कर दिया था। यह 1955 की बात है किन्तु 1953 में राज्य में विधान सभा भंग करने के परामर्श को राज्यपाल ने स्वीकार किया था। 1955 में सरकार की हार होने पर मुख्यमंत्री ने विधान सभा भंग करने का परामर्श दिया था किन्तु राज्यपाल ने इस परामर्श को न मानते हुए विरोधी दल के नेता को मुख्यमंत्री बनाया था।[25]

इस सम्बन्ध में मध्यप्रदेश में द्वारिका प्रसाद मिश्र के मुख्यमंत्री के कार्यकाल मे मुख्यमंत्री ने परामर्श दिया था कि यदि उनका मंत्रिमंडल विधान सभा में पराजित हो जाता है तो वे विधान सभा भंग करने का परामर्श देंगे और राज्यपाल इस परामर्श को मानने के लिये बाध्य होगे। इससे पूरे देश में एक जोरदार विवाद उत्पन्न हो गया। इस सम्बन्ध में भारत सरकार के कानूनी और गृहमंत्रालय ने विरोधी विचार व्यक्त किये। श्री मिश्र के पदत्याग ने पूरे राज्य को एक अस्थिरता की स्थिति में डुबा दिया। कई काग्रेस विधायकों मे कॉग्रेस हाईकमाड के निर्देशों को विरुद्ध पदत्याग करने की धमकी दी थी। ये सभी विधायक चाहते थे कि विधान सभा भंग कर मध्यावधि चुनाव कराया जाय।

मिश्र के बाद राजा नरेश चंद्र को मुख्य मंत्री बनाया गया उन्होंने भी थोड़े दिन बाद ही पद से इस्तीफा दे दिया और राज्यपाल को विधान सभा भंग कर मध्यावधि चुनाव का परामर्श दिया। राज्यपाल ने इस परामर्श पर विचार करने के लिये कुछ समय लिया। 21 मार्च को राज्यपाल ने अपना निर्णय देते हुए राजा के परामर्श को अमान्य कर दिया। श्री रेड्डी ने मध्यप्रदेश के राज्यपाल की हैसियत से राजा के परामर्श को मानने से इंकार करने के कारणों पर विस्तार से प्रकाश डाला। राज्यपाल श्री रेड्डी ने कहा कि उन्होंने राजा नरेश चंद्र सिह के इस परामर्श पर कि मध्यप्रदेश विधान सभा को भग कर नया निर्वाचन कराया जाय, गम्भीरता से विचार किया है, तथा इस सम्बन्ध में संविधान के सभी पहलुओं की जाँच की है। श्री रेड्डी ने कहा कि यह निर्विवाद है कि सामान्य स्थितियों में राज्यपाल मंत्रिमंडल के परामर्श को मानने के लिये बाध्य है किन्तु उसे यह भी देखना होता है कि राज्य का शासन स्थायी ढंग से चले। यदि कुछ तत्व राज्य की व्यवस्था को अस्थिर कर देते है तो राज्यपाल अपने स्वविवेक से कार्य करेगा। श्री रेड्डी ने कहा कि उन्होंने राजा को मुख्यमंत्री बनाकर विधान सभा में शक्ति परीक्षण के लिये कहा था। किन्तु राजा ने विधान सभा की बैठक न बुलाकर इस्तीफा देते हुए विधान सभा भंग करने का परामर्श दिया। यह सर्वथा अनुचित था। यह सर्वविदित है कि काँग्रेस अभी विधान सभा में जन निर्देश प्राप्त सबसे बड़ा दल था। संयुक्त विधायक दल का अस्तित्व जोड़-तोड़ के कारण था। जब काँग्रेस राज्य को स्थायी और बहेतर शासन दे सकती है तो फिर प्रदेश मे राष्ट्रपति शासन क्यों लागू किया जाय और मध्यावधि चुनाव का भार जनता पर क्यों थोपा जाय।

संयुक्त विधायक दल के नेता श्रीमती विजयाराजे सिंधिया ने कहा कि राज्यपाल ने राज्य में पक्षपात पूर्ण ढंग से कॉंग्रेस को गद्दी पर बैठाया है।

21 फरवरी,1968 को पश्चिम बंगाल के मुख्य मंत्री डा० प्रफुल्ल चन्द्र घोष ने अपना इस्तीफा राज्यपाल श्री धरमवीर को सौंप दिया और साथ ही विधान सभा भंग करने का परामर्श दिया। राज्यपाल ने इस परामर्श को स्वीकार कर लिया।

25 फरवरी,1968 को उत्तर प्रदेश के राज्यपाल ने केन्द्र सरकार को प्रदेश मे राष्ट्रपति शासन स्थापित करने की सिफारिश की। मुख्यमंत्री श्री चरण सिह ने मंत्रिमंडल भंग कर मध्यावधि चुनाव कराने का परामर्श दिया था जिसे राज्यपाल श्री रेड्डी ने अस्वीकार कर दिया। श्री रेड्डी का मत था कि राष्ट्रपति शासन लागू होने पर राज्य में स्थिरता होगी और इससे कोई राजनैतिक दल स्पष्ट बहुमत प्राप्त कर सकेगा। इससे मध्यावधि चुनाव की आवश्यकता नहीं रह जायेगी।

इसके विपरीत पंजाब के अध्यक्ष जोगिदर सिह मान ने अपने ऐतिहासिक निर्णय में यह विचार व्यक्त किया था कि अनुच्छेद 174(2) के अनुसार राज्यपाल मुख्यमंत्री के परामर्श को मानने के लिये बाध्य है। उन्होंने इस सम्बन्ध में ब्रिटिश विद्वान डायसी और ब्रिटिश परम्पराओं का उल्लेख करते हुए कहा कि वहॉ राजा के अब कोई विशेषाधिकार नहीं है और सारे अधिकार जनता में निहित है। जनता अपने निर्वाचित प्रतिनिधियों के माध्यम से कार्य करती है। भारत में तो मुख्यमंत्रियों और राज्यपाल के सम्बन्धों का लिखित रूप से उल्लेख किया गया है। अतएव उसे यहॉ किसी प्रकार के विशेषाधिकार प्राप्त नही हो सकते ।

केरल मे मुख्यमंत्री श्री अधूत मेनन ने विधान सभा भंग करने के अधिकार का दूसरे रूप में प्रयोग किया उन्होंने अपने सहयोगी आर. एस. पी. दल को बिना बताये राज्यपाल को परामर्श देकर विधन सभा भंग करवा लिया। इससे आर. एस. पी. को दल बदल करने और सरकार गिराने का अवसर नहीं मिला। वे सरकार भंग कराकर नया चुनाव कराना चाहते थे। जिससे उनके दल को स्पष्ट बहुमत प्राप्त हो जाय उन्होंने 1 अगस्त,1970 को अपने पद से त्यागपत्र दे दिया। सरकार भंग कर दी गयी और दो माह के लिये राष्ट्रपति शासन लागू कर दिया गया।

9 जनवरी, 1970 को उड़ीसा के मुख्यमंत्री आर० एन० सिग देव ने राज्यपाल को परामर्श दिया कि वे सरकार भंग कर राज्य में मध्यावधि चुनाव करवायें। राज्यपाल ने उनको काम चलाऊ सराकर के मुख्य मंत्री के रूप में बने रहने को कहा किन्तु श्री सिंग देव ने इंकार कर दिया। इस पर राज्यपाल ने राज्य में राष्ट्रपति शासन लागू करने की सिफारिश दी। पंजाब के राज्यपाल श्री डी० सी० पवाटे ने मुख्यमंत्री श्री प्रकाश सिह बादल के परामर्श पर विधान सभा को भंगकर राष्ट्रपति शासन लागू करने का परामर्श दिया। उनका कहना था कि पंजाब की स्थिति अनिश्चित थी। इसमें थोड़े से निर्दलीय या दलबदलू विधायक दल बदल करके राजनैतिक

वातावरण को गंदा कर रहे थे। राज्यपाल ने कहा कि उन्होंने सभी पहुलों पर विस्तार से विचार विमर्श करके, विशेषकर 1967-68 के लक्ष्मण सिह गिल मंत्रित्व मंडल के अनुभवों के आधार पर उन्होने विधान सभा को भंग कर दिया और राष्ट्रपति शासन लागू करने की मॉग की। इस पर पंजाब विधान सभा मे भारी हो हंगामा हुआ। कई ने राज्यपाल की बर्खास्तगी की माँग की।वैधानिक विशेषज्ञों के अनुसार पंजाब राज्यपाल को राज्य विधान सभा भंग करने का वैधानिक अधिकार था। राज्यपाल के लिये यह जरूरी नहीं था कि वह केन्द्र से इस विषय पर परामर्श करे। उसे राजनीतिक स्थिति का आकलन करने में अपने स्वविवेकी और व्यक्तिगत निर्णय दोनों का प्रयोग करने का अधिकार था। उसे यह भी अधिकार था। कि वह "आया राम गया राम" की स्थिति को रोकने के लिये अपने स्वविवेक का प्रयोग करे। श्री फ्रैक एंथानी ने लोक सभा। मे कहा कि राज्यपाल पवाटे अपनी स्वविवेकी अधिकारों और व्यक्तिगत निर्णयो को शक्तियों का प्रयोग करते हुए पंजाब की राजनीति से "आया राम गया राम" की राजनीति की गंदगी को दूर करने के लिये कार्य किया इसलिये उनका कार्य प्रशंसनीय है।

इसके विपरीत लोक सभा के भूतपूर्व सचिव श्री एम० एन० कौल ने राज्यपाल द्वारा विधान सभा भग किये जाने की कार्यवाही को जल्दबाजी में उठाया गया कदम बताया। क्योंकि जिस रोज विधान सभा भंग की गयी उसके दूसरे दिन ही विधान सभा की बैठक होने वाली थी और उसमे बादल सरकार के विरुद्ध निश्चित रूप से अविश्वास का प्रस्ताव पास किया जाता। राज्यपाल को इस शक्ति परीक्षण के लिये रुकना था और इस शक्ति परीक्षण के बाद ही कोई कदम उठाना था श्री कौल ने कहा कि राज्यपाल को केन्द्र सरकार से परामर्श भी लेना था।

एक दूसरे विधि विशेषज्ञ डॉ० एल० एन० सिधवी ने कहा कि वैधानिक रूप से राज्यपाल को केन्द्र सरकार से परामर्श लेने की आवश्यकता नहीं है। यद्यपि उसकी नियुक्ति केन्द्र सरकार द्वारा की जाती है, उसे अपने स्वविवेक और व्यक्तिगत निर्णय के आधार पर कोई निर्णय लेना होता है। श्री सिधवी ने कहा कि ऐसा प्रतीत होता है कि राज्यपाल ने वर्तमान स्थिति पर ठीक से विचार नहीं किया है और जल्दबाजी मे प्रकाश सिह बादल के परामर्श को मानकर विधान सभा भंग कर दिया। राज्यपाल उस मुख्यमंत्री का परामर्श मानने के लिये बाध्य नहीं है जिसने अपना बहुमत खो दिया है। प्रकाश सिग बादल शक्ति परीक्षण के लिये तैयार नहीं थे, उनमें विधान सभा का सामना करने का साहस नहीं था।

श्री आनन्द नारायण मुल्ला, एक दूसरे विख्यात वकील ने कहा, कि राज्यपाल को विधान सभा भग करने का अधिकार है। यदि राज्यपाल यह सिद्ध कर सकें कि उनको नही मालूम था कि बादल सरकार ने अपना बहुमत खो दिया, तभी उनके द्वारा विधान सभा भंग करने की कार्यवाही का समर्थन किया जा सकता है। किन्तु यदि राज्यपाल को यह मालूम था कि प्रकाश सिह बादल ने अपना बहुमत खो दिया है, तो उन्होंने

अवश्य जल्दबाजी में कदम उठाकर विधान सभा भंग कर दिया है। राज्यपाल को बादल के कथन पर विश्वास न कर स्वयं कोई कदम उठाना था।

इस विषय पर संसद और उसके बाहर कुछ ने राज्यपाल का समर्थन किया और कुछ न विरोध। यह कहा गया कि गृहमंत्री श्री यशवंत राव चव्हाण ने मध्यप्रदेश के राज्यपाल श्री के० सी० रेड्डी को उस समय पूर्ण समर्थन दिया जब उन्होंने मुख्यमंत्री के परामर्श पर मध्यप्रदेश विधान सभा को भंग कर दिया था। पंजाब के कुछ नेताओं ने राज्यपाल की कार्यवाही को गलत बतलाया। लोकसभा के सदस्य सतपाल कपूर ने कहा कि पंजाब के राज्यपाल को वापस बुला लेना चाहिए क्योंकि उन्होने संविधान का उल्लघन किया है। इनके अनुसार अनुच्छेद 174 (b) का विरले स्थितियों में ही प्रयोग करके विधान सभा भंग करना चाहिए। अनुच्छेद 356 ऐसी स्थितियों के लिये बेहतर सिद्ध हुआ है और अब तक लगभग 21 बार राष्ट्रपति शासन लागू किया जा चुका है।

राज्यपाल श्री धवन ने मुख्यमंत्री अजय मुकर्जी के परामर्श पर 25 जून, 1971 को पश्चिम बंगाल विधान सभा को भंग कर दिया। राज्यपाल को लिखे अपने पत्र में मुख्य मंत्री ने कहा कि उन्होंने दो कारणों से राज्यपाल को राज्य विधान सभा भंग करने का परामर्श दिया था - (i) शरणार्थियो का आगमन; (ii) राज्य मे अभूतपूर्व अवस्यवस्था की स्थिति।

4 जून 1971 को डी० एम० के० के मुख्यमंत्री ने राज्यपाल को परामर्श दिया कि विधान सभा भग कर दी जाय। आज तक ऐसी बहुमत की स्थिति में किसी सरकार ने विधान सभा भंग करने का परामर्श नही दिया था। 235 सदस्यों वाली विधान सभा में डी० एम० के० के 137 सदस्य थे। राज्यपाल को दिये गये परामर्श में यह कहा गया ता कि समाजवादी और धर्मनिरपेक्ष नीतियों से सम्बन्धित यो''जनाओं का लागू करने के लिये जन निर्देश लिया जाना नितांत आवश्यक था। राज्यपाल ने काफी सोच विचार के बाद विधान सभा भंग करने के परामर्श को मान लिया।

हरियाणा के राज्यपाल ने 21 जनवरी 1972 को विधान सभा भंग कर दिया। ऐसा उन्होंने मुख्यमंत्री वंशीलाल के परामर्श पर किया। वंशीलाल ने कहा कि चुनाव हो जाने तक उनकी सरकार काम चलाऊ सरकार के रूप मे कार्य करती रहेगी।

राज्यपाल को सदन या सदनों को सम्बोधित करने का अधिकार

राजस्थान में 1966 में इस सम्बन्ध में एक महत्वपूर्ण मामला घट चुका था, पिछले खण्ड में इसका जिक्र किया जा चुका है।

अनुच्छेद 175 (1) के अनुसार राज्यपाल को सदन या सदनो को सम्बोधित करने का अधिकार है और इसके लिये वह विधायकों को उपस्थित रहने को कह सकता है।

इसके अतिरिक्त वह समय-समय पर सदन या सदनो को संदेश भिजवा सकता है। सदन या सदनों को राज्यपाल द्वारा भेजे गये संदेश पर विचार करना होता है (अनुच्छेद 175 (2))। चुनाव के तत्काल बाद प्रथम अधिवेशन के प्रथम दिन और प्रतिवर्ष प्रथम अधिवेशन के प्रथम दिन राज्यपाल सदन या सदनों को सम्बोधित करेगा (अनुच्छेद 176(2)) ।

मध्यप्रदेश विधान सभा के नियम इन सम्बन्धो में इस प्रकार है -

(1) अनुच्छेद 176 के अनुसार सदन को सदन को सम्बोधित करना ।

(2) राज्यपाल का अभिभाषण समाप्त होने पर इसकी एक प्रति सदन के पटल पर रखी जायगी ।

(3) इसके बाद राज्यपाल के अभिभाषण पर धन्यवाद प्रस्ताव पेश किया जायेगा जिसके पक्ष और विपक्ष में चुने हुए लोग सदन में बोलेगे। इस सम्बन्ध में विधिवत ढंग से एक प्रस्ताव पास कर समय और तिथि निर्धारित की जायगी जब सदस्य राज्यपाल के अभिभाषण के पक्ष या विपक्ष मे बोलगें। बोलते हुए सदस्य राज्यपाल के प्रति अपना सम्मान अभिव्यक्त करेंगे।

(4) प्रस्ताव पर बोलने के लिये अध्यक्ष द्वारा समय निर्धरित किया जायेगा।

(5) इस प्रस्ताव के विरूद्ध कोई संशोधन प्रस्ताव पेश किया जा सकेगा।

(6) औपचारिक कार्यों को छोड़कर अन्य सभी कार्यो की तुलना मे धन्यवाद प्रस्ताव पर वाद-विवाद को प्राथमिकता दी जायगी।

(7) विधान सभा द्वारा प्रस्ताव को संशोधन सहित या बिना संशोधन के पारित किये जाने पर उसे अध्यक्ष राज्यपाल के समझ पेश करेगा।

(8) राज्यपाल द्वारा जो उत्तर दिया जाय उसे अध्यक्ष विधान सभा मे पेश करेगा।

मध्यप्रदेश के इन राज्यपालों ने सदस्यो को शपथ दिलाकर सदन का अधिवेशन आरम्भ किया। विधान सभा का अधिवेशन (Sesion) सदस्यों द्वारा शपथ लेने के बाद बैठने से आरम्भ होता है। सदन की बैठक तब तक आरम्भ हुई नही कही जायेगी जब तक कि सदस्यों ने शपथ ग्रहण नहीं किया। इसलिये यदि राज्यपाल के अभिभाषण के लिये कोई अवधि रखी जाय (विधान सभा के सचिव द्वारा निर्धारित तिथि) तो इस अधिवेशन आरम्भ होने की तिथि पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता (अनुच्छेद 176 (1))। किन्तु विधान सभा की कार्यवाही तभी आरम्भ होती है जिस दिन राज्यपाल ने अपना अभिभाषण दिया। इस प्रकार का निर्णय अनुच्छेद 176 (1) पर उच्च न्यायालय ने हबीबुल्ला बनाम पश्चिम बंगाल 1965 के मामले में दिया था। किन्तु यदि राज्यपाल के अभिभाषण पर विधान सभा में हुल्लड़ या हंगामा हो तो अदालत कुछ भी नहीं कर सकती है (अनुच्छेद 212 (1)) ।

मध्यप्रदेश सहित देश के प्रायः सभी विधान सभाओं में कई अवसरों पर राज्यपाल के अभिभाषण पर हुल्लड़ होते रहे है। विरोधी दलों ने राज्यपालों के अभिभाषणों मे हुल्लड़ किया है, अवरोध उत्पन्न किया है। विरोध दल वाले यह भूल जाते हैं कि राज्यपाल का अभिभाषण सरकार की नीतियो को अभिव्यक्त करता है, इसमें राज्यपाल का कोई हाथ नहीं होता। पश्चिम' बंगाल में मार्च, 1969 में धरमवीर के अभिभाषण पर बड़ा हंगामा हुआ। उस समय मुख्यमंत्री श्री अजय मुकर्जी थे।

सदस्यों द्वारा शपथ

अपना स्थान ग्रहण करने के पूर्व सदस्य राज्यपाल के सम्मुख विधिवत् शपथ लेंगे। ये सत्यनिष्ठा से प्रतिज्ञा करेंगे (अनुच्छेद 188) ।

विधेयकों को स्वीकृति - राज्यपाल का वीटो या निषेध का अधिकार

राज्यपालो को इस क्षेत्र में अधिकार अनुच्छेद 200 में उल्लिखित है - जब कोई विधेयक राज्यपाल के सम्मुख पेश किया जाता है तो वह निम्न में से कोई भी कदम उठा सकता है मध्यप्रदेश के राज्यपालों ने यही किया है -

(1) वह विधेयक पर हस्ताक्षर करके उसको तुरन्त विधि बनने दे सकता है, या

(2) वह यह कह सकता है कि विधेयक को सदनो के पुनर्विचार के लिये भेजा जाय, और इस सम्बन्ध में एक संदेश भी भेज सकता है और यदि इस बार भी व्यवस्थापिका ने विधेयक को पारित कर दिया तो राज्यपाल को उस विधेयक पर हस्ताक्षर करना होगा।

(3) राज्यपाल विधेयक को राष्ट्रपति के विचार के लिये सुरक्षित रख सकता है। कुछ विशेष प्रकार के विधेयक जैसे उच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार को प्रभावित करने वाले विधेयक राष्ट्रपति के विचार के लिये अनिवार्य रूप से सुरक्षित रखे जाते है। इसके अतिरिक्त निम्न विधेयक भी राज्यपाल द्वारा राष्ट्रपति के विचार के लिये सुरक्षित रखे जा सकते हैं -

   (i) वे विधेयक जो संविधान के किसी प्रावधान या संसद के किसी कानून के विरुद्ध हों ।

   (ii) वे विधेयक जो संघीय क्षेत्र का उल्लंघन करते हों ।

   (iii) वे विधेयक जो जनकल्याण के विरूद्ध है।

इस तरह भारतीय संविधान में निश्चित रूप से केन्द्रीकरण की प्रवृत्ति व्याप्त है। भूतकाल में राज्यो के निम्न विधेयकों को राष्ट्रपति ने अवैध घोषित कर दिया था - केरल शिक्षा विधेयक 1951, केरल कृषि सम्वन्ध विधेयक 1957, मध्यप्रदेश पंचायत विधेयक 1956 ।

क्या राज्यपाल द्वारा विधेयकों को राष्ट्रपति के विचारार्थ सुरक्षित रखने की व्यवस्था उचित है? श्री सिह ने इस व्यवस्था का समर्थन किया है । देश में नित्य हो रहे दल बदल और अव्यवस्था के कारण मनमाने

विधेयकों को पास करने की प्रवृत्ति पर इस प्रावधान के द्वारा अंकुश लगाया जा सकेगा। इसके विपरीत श्री एस. सी. दास और श्री मंगल ने इस प्रावधान की आलोचना करते हुए कहा है कि इससे संघ राज्यों में बिगाड़ आयेगा और केंद्र सरकार का राज्यों के क्षेत्र में प्रभुत्व बढ़ता जायेगा। गृह मंत्रालय के अनुसार प्रतिवर्ष राज्यो के लगभग 100 से अधिक विधेयक राष्ट्रपति के विचारार्थ रोक लिये जाते है। इन विधेयकों की गृह मंत्रालय छानबीन करता है इस शक्ति का प्रयोग करके गृह मंत्रालय राज्यों को अपने नियंत्रण में रखता है। 24

राज्यपाल को निम्न अनुच्छेदों के अन्तर्गत राज्य के बजट को तैयार करवाने और उसको पेश करवाने का अधिकार है - अनुच्छेद 202 - 207 ।

मध्य प्रदेश सहित कुछ राज्यों में बजट सत्र के अवसर पर गत्यावरोध उत्पन्न हो चुका है।

राज्यपाल के अध्यादेश पारित करने के सम्बन्ध में अधिकार

अनुच्छेद 213 में कहा गया है कि जब विधान सभा का अधिवेशन न हो रहा हो तो राज्यपाल को अध्यादेश पारित करने का अधिकार है। यह राज्यपाल का स्वविवेकी अधिकार न होकर राज्य सरकार का अधिकार है और राज्यपाल को मंत्रिमंडल के परामर्श से ही कार्य करना चाहिए। इस अध्यादेश को विधान सभा की बैठक प्रारम्भ होते हो पेश किया जायेगा और यह अध्यादेश यदि पहले ही रद्द न कर दिया जाय तो यह अधिवेशन आरम्भ होने के अधिक से अधिक 6 सप्ताह तक ही जारी रहेगा।

जिन क्षेत्रों या विषयों के लिये राज्यपाल को विधेयक को राष्ट्रपति के विचार के लिये रखने का अधिकार है उन क्षेत्रों मे अध्यादेश जारी नहीं किया जा सकता। इस प्रकार राज्यपाल केवल राज्यसूची में आने वाले विधेयकों के लिये अध्यादेश जारी कर सकता है। समवर्ती सूची मे अध्यादेश जारी करने के लिये कई सीमाएँ है और संघ सूची और अवशिष्ट विषयों में वह अध्यादेश जारी कर ही नही सकता।

राज्यपाल द्वारा अध्यादेश जारी करवाने के पूर्व राज्य सरकार को इस बारे में आश्वस्त हो जाना चाहिए कि स्थितियाँ ऐसी है जिसमें अध्यादेश का जारी किया जाना अनिवार्य है।

इस अवधि में पाटस्कर से लेकर 1980 तक सभी राज्यपालों को अध्यादेश जारी करने की आवश्यकता पड़ी और विधान सभा में और उसके बाहर राज्यपालों ने इन अध्यादेशों की कड़ी आलोचना भी की।

राज्यपालों की शक्तियों को सीमित करने और निश्चित करने के लिये अध्यक्षों की अपील

मध्यप्रदेश सहित अन्य राज्यों में राज्यपालों द्वारा शासन में और विधायी प्रक्रिया में अधिकाधिक नाजायज हस्तक्षेप किये जाने के कारण विधान सभा अध्यक्षों (Speakers) ने अपनी नाराजगी जाहिर की। 7 अप्रैल 1968 को अध्यक्षों के सम्मेलन में यह सुझाव दिया गया कि ऐसी परम्पराएँ बनने दी जाय जिससे राज्यपाल को व्यवस्थापिका आमंत्रित करने, स्थगित करने, सत्रावसान और भग करने में विवाद का सामना न करना पड़े।

मध्यप्रदेश में संविद शासन काल मे राज्यपालों के अपने अधिकारो के मनमाने प्रयोग पर बहुत सी आपत्तियॉ उठाई गई थी, अतएव इस सम्मेलन में यह निर्णय लिया गया -

(I) विधान सभा आमंत्रित करने व सत्रावसान करने में राज्यपाल मुख्यमंत्री से परामर्श ले। मुख्यमंत्री को इस सम्बन्ध में अध्यक्ष से परामर्श लेना चाहिए। आमंत्रण और सत्रावसान की तिथियॉ मुख्यमंत्री अध्यक्ष के बीच हुई बैठकों में तय होना चाहिए। मतभेद की स्थिति में मुख्य मंत्री का निर्णय अंतिम होगा। किन्तु यदि विधान सभा आमंत्रित करने में बहुत अधिक विलम्ब हो और अधिकाश सदस्य चाहते हो कि विधान सभा आमंत्रित कर शीघ्र ही शक्ति परीक्षण कराया जाय तो राज्यपाल मुख्य मंत्री से परामर्श कर विधान सभा आमंत्रित करेगा और मुख्यमंत्री द्वारा परामर्श ने किये जाने पर भी स्वविवेक से इस कार्य को करेगा।

(II) इस बात का निर्णय करने के लिये कि मुख्यमंत्री ने अपना बहुमत खो दिया है अथवा नहीं शक्ति का परीक्षण विधान सभा में ही होना चाहिए।

राज्यपाल और न्यायपालिका

संविधान में राज्यपाल को कुछ न्यायिक शक्तियॉ प्रदान की गयी है। ये अधिकार राज्यपाल द्वारा केन्द्र के एजेंट के रूप में या राज्य की मंत्रिपरिषद के परामर्श पर प्रयोग में लाये जाते हैं -

(i) उन मामलों में जिन तक राज्य की कार्यपालिका को किसी अपराधी को क्षमा प्रदान करने, दंड को स्थगित करने,दंड की विशेषता आदि को बदल देने का अधिकार है।

(ii) उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति ।

(III) हाइकोर्ट और अधीन्सथ न्यायालयों के कार्यालीन स्टाफ की छुट्टी स्वीकृत करना और सेवा शर्ते निर्धारित करना। अनुच्छेद 217 के अनुसार हाइकोर्ट के न्यायाधीशों की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जायेगी। इस कार्य में राष्ट्रपति निम्न का परामर्श लेगा -

  (I) भारत का मुख्य न्यायाधीश ।

  (II) राज्य का राज्य का राज्यपाल ।

  (III) उस उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायाधीश।उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीशों की नियुक्ति में राष्ट्रपति केवल (I) और (II) से परामर्श करेगा।

पाटस्कर से लेकर के० सी० रेड्डी, सत्य नारायण सिहा, निरंजन नाथ वांचू सी० एम० पुनाचा - इन सभी राज्यपालों ने इस शक्ति के प्रयोग में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। यद्यपि इन राज्यपालों को इस अधिकार के उपयोग में मुख्यमंत्रियों से परामर्श लेना होता है, किन्तु राज्यपाल के परामर्शों और राज्यपाल के उम्मीदवारों की मुख्यमंत्री ने अवहेलना भी नहीं की है। संविधान सभा ने इस बात का विरोध किया था कि उच्च न्यायालय

के न्यायाधीशों की नियुक्ति में राज्यपाल से परामर्श लेना शक्ति पृथक्करण के सिद्धान्त के विरुद्ध होगा और इससे राज्य के उच्च न्यायालयों की स्वतंत्रता प्रभावित होगी। श्री के० टी० शाह ने इस विचार का समर्थन किया था। कृष्णचंद्र शर्मा ने श्री शाह का समर्थन किया था। श्री पी० एस० देशमुख चाहते थे कि राष्ट्रपति न केवल राज्यपाल से ही परामर्श ले वरन राज्य के मुख्यमंत्री से भी परामर्श ले।

प्रारूप समिति ने डॉ० अम्बेडकर के नेतृव्य में राज्यपाल से परामर्श लेने को उचित ठहराया था। यह अधिकार राज्यपाल का स्वविवेकी अधिकार नहीं है, उसे राज्य के मुख्य मंत्री के परामर्श से कार्य करना है।[25]

अनुच्छेद 161 में राज्यपाल को क्षमा प्रदान करने आदि से सम्बन्धित अधिकार दिये गये है। इस सम्बन्ध में के० एम० नानावटी बनाम बम्बई राज्य का विख्यात मामला है।[26] मध्यप्रदेश के राज्यपालों को इस शक्ति के प्रयोग के अवसर नही मिले है; क्योंकि इस प्रकार के मुकदमे उनके सामने नही आये।

कभी-कभी राज्यपालों के आदेश से राज्य सरकार राजनैतिक बंदियों की एक मुश्त रिहाई भी कर सकती है। इसमें निर्णय मंत्रिपरिषद का होता है। फरवरी 21, 1968 को पश्चिम बंगाल के राज्यपाल धर्मवीर ने युनाइटेड फ्रंट के कई बंदियों को रिहा करने के आदेश दिये थे जिनको प्रफुल्ल चन्द्र घोष की सरकार के आदेश से बंदी बनाया गया था।[27] मध्यप्रदेश के राज्यपालो को इस अधिकार के प्रयोग का कोई अवसर नही हुआ।

राज्यपाल के कार्यपालिका सम्बन्धी शक्तियाँ

अनुच्छेद 154 (1) में कहा गया है कि राज्यपाल राज्य की कार्यपालिका शक्ति राज्यपाल में निहित होगी और इस शक्ति का वह सीधे प्रयोग कर सकेगा या अपने अधीन अधिकारियों के द्वारा इसके अतिरिक्त राज्यपाल की शक्तियों का उल्लेख अनुच्छेद 164, 165, 166 में भी उल्लेखित है।

अनुच्छेद 166 (1) में कहा गया है कि राज्यपाल मंत्रियों की नियुक्ति करेगा। किन्तु किसी राज्यपाल ने सामान्य स्थितियों में इस अधिकार का स्वविवेक मे प्रयोग नही किया है। 1960-84 के बीच अधिकाश अवसरों पर कॉग्रेस का बहुमत रहा। अतएव राज्यपाल को बहुमत दल के नेता को ही मुख्यमंत्री पद पर नियुक्त करना पड़ा। संविद शासन काल मे अवश्य ही राज्यपाल के० सी० रेड्डी ने मुख्य मंत्रियों की नियुक्ति मे अपने स्वविवेक का प्रयोग किया। 1978-79 में भाजपा के सत्तारुढ़ होने पर प्रथम बार श्री कैलाश जोशी को मंत्री बनाया गया और दूसरी बार श्री सुदंरलाल पटवा को। इस अवसर पर राज्यपाल श्री पुनाचा ने अपने स्वविवेक का प्रयोग किया।

अनुच्छेद 166(3) में कहा गया है कि राज्यपाल प्रशासन चलाने के लिये सुविधाजनक नियम बनायेगा। वह मंत्रियों के बीच काम का बंटवारा करने के लिये नियम बनायेगा यह अधिकार राज्यपाल का कोई स्वविवेकी अधिकार नहीं है। मुख्य मंत्री ही मंत्रियों की नियुक्ति करता है और उनके बीच विभागों का बॅटवारा करता है।

अनुच्छेद 164 के अनुसार मंत्री लोग राज्यपाल की प्रसन्नता पर्यंत अपने पद पर रहेगे। किन्तु इसका वास्तविक अर्थ है-

(I) जब तक मंत्रिपरिषद का विधान सभा में बहुमत है।

(II) जब तक मुख्यमंत्री चाहे तभी तक कोई मंत्री अपने पद पर बना रहता है। इस क्षेत्र में किसी राज्यपाल ने कोई हस्तक्षेप नहीं किया।

अनुच्छेद 154 (1) के अनुसार राज्यपाल संविधान के अनुसार आचरण करेगा (In accordonce with this constitution) राष्ट्रपति के सदृश्य राज्यपाल राज्य का प्रधान है किन्तु वह नाममात्र का प्रधान है वास्तविक कार्यपालिका शक्ति मुख्य मंत्री और मंत्रिपरिषद में निहित है।

यदि राष्ट्रपति या राज्यपाल कोई ऐसा आचरण करें जो संविधान के प्रतिकूल है तो उनको पद से हटाया है राष्ट्रपति पर महाभियोग चलाकर हटाया जा सकता है और राज्यपाल को राष्ट्रपति हटा सकता है।[28]

राष्ट्रपति और राज्यपाल का यह नैतिक कर्त्तव्य है कि वे संविधान की रक्षा करे "Moral duty to preserve protect and defend the constitution" हाल में राज्यपाल थामस को नागालैड से इसी कारण हटाया गया था (देखिये इसके बाद का अध्याय)।

राज्यपाल "राज्य का प्रधान" (Head of the state) है। राज्यपाल एक रबर स्टाम्प या नाममात्र की कार्यपालिका है । उसका कोई वास्तविक शक्तियॉ नहीं के बराबर है। सारी शक्तियॉ मुख्यमंत्री में निहित हैं। बहुत कम क्षेत्रों में वह स्वविवेकी अधिकार का प्रयोग कर सकता है। अनुच्छेद 163 (1) में कहा गया है कि जहॉ राज्यपाल को इस संविधान के अन्तर्गत अपने स्वविवेक में कार्य करना है उन विषयों को छोड़कर शेष क्षेत्रों में राज्यपाल को अपने कार्यों का सम्पादन करने में सहायता पहुँचाने के लिये एक मंत्रिमडल होगी जिसका प्रमुख मुख्यमंत्री होगा। इस प्रकार राज्यपाल के कार्यों को दो भागों मे विभाजित किया जा सकता है -

(I) राज्यपाल के वे कार्य जिन्हें वह मंत्रिमंडल की सहयता और परामर्श से सम्पन्न करता है ।

(II) वे कार्य जिनको राज्यपाल अपने स्वविवेक से (In his discretion) पूरा करता है।

अनुच्छेद 183 (2) के अनुसार उपरलिखित बातों पर यदि राज्यपाल और मंत्रिमंडल में विवाद हो कि उसे कौन सा कार्य मंत्रियों के परामर्श से करना है और कौन सा कार्य अपने स्वविवेक में करना है, तो राज्यपाल का निर्णय अंतिम होगा। इस सम्बन्ध मे कोई विवाद नहीं किया जा सकता है कि राज्यपाल को ऐसा निर्णय नहीं लेना था या कि अमुक विषय पर अपने स्वविवेक से कार्य नहीं करना था।

अनुच्छेद 163 (3) के अनुसार मंत्रियों ने राज्याल को क्या परामर्श दिया इस विषय पर जानकारी प्राप्त करने के लिये आदलतो का कोई क्षेत्राधिकार नही होगा।

राष्ट्रपति शासन लागू होने पर (1978 में थोड़े समय के लिये मध्यप्रदेश मे ऐसा शासन लागू किया गया था) ही विधान सभा के साथ-साथ मंत्रिमंडल को भी भंग कर दिया जायेगा। किन्तु सामान्य स्थितियो में यदि विधानमंडल भंग की जाय तो मंत्रिमंडल कार्यवाहक मंत्रिमंडल के रूप में चलती रहेगी क्योकि राज्यपाल को परामर्श देने के लिये एक मंत्रिमंडल का होना जरूरी है।

श्री के० सी० रेड्डी जब राज्यपाल रहे तो मार्च 1971 को सर्वोच्च न्यायालय ने एक मामले में यह निर्णय दिया कि अनुच्छेद 74 जिसके अनुसार "केन्द्र में एक मंत्रिमंडल होना ही चाहिए" (There shall be a council of ministers at the centre) एक आदेशात्मक प्रावधान है और राष्ट्रपति बिना मंत्रिमंडल की सहायता और परामर्श के कार्य नही कर सकता।

मध्यप्रदेश में 1967-69 के बीच जो संविद सरकार गठित हुई उनमे पूर्ण बहुमत किसी दल को प्राप्त नहीं था। अतएव राज्यपाल श्री के० सी० रेड्डी ने सबसे बड़े दल जिसे, अन्य दलों का भी समर्थन प्राप्त था, के नेता गोविद नारायण सिह को मुख्यमंत्री बनाया। शीघ्र ही विधान सभा मे उनका बहुमत समाप्त हो गया और थोड़े दिन के लिये राजा नरेश चन्द्र सिह की सरकार बनी। उसके बाद कॉग्रेस पुनः बहुमत मे लौटी और श्री श्यामा चरण शुक्ल मुख्य मंत्री बने। इस तरह मध्यप्रदेश में पहली बार अल्पदलीय सरकारें बनी चूँकि किसी भी एक दल को बहुमत प्राप्त नही था।

यह विशुद्ध ब्रिटिश परम्परा के विरुद्ध है। ब्रिटिश संसदीय प्रणाली मे पूर्ण बहुमत प्राप्त दल ही सरकार बनाती है। वहाँ संविद या Coalitions अपवाद स्वरूप हैं और आपात काल जैसे युद्ध काल (द्वितीय महायुद्ध) में ही वहाँ संविद या सर्वदलीय कोलीशन सरकार बनी और युद्ध की समाप्ति पर चर्चिल की इस कोलीशन सरकार को समाप्त कर दिया गया और पुनः बहुमत वाली लेबर पार्टी ने सरकार बनाया।

जब मध्यप्रदेश में संविद सरकार बनी तो राज्यपाल श्री के० सी० रेड्डी को अपने स्वविवेकी अधिकारों के उपयोग का अवसर मिला। उन्होंने सबसे बड़े दल जो पूर्ण बहुमत में नहीं था के नेता श्री गोविन्द नारायण सिंह को मुख्यमंत्री बनाया किन्तु शीघ्र ही उनके विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव पारित होने के कारण उनको इस्तीफा देना पड़ा और राजा नरेशचन्द्र सिह ने सरकार बनाने का अपना दावा पेश किया यद्यपि उनका भी विधान सभा मे बहुमत नहीं था। राजा नरेशचन्द्र सिह कुल 7 दिन तक मुख्यमंत्री रहे और विधान सभा का सामना किये बिना ही उन्होंने अपना इस्तीफा दे दिया। अतएव श्री के० सी० रेड्डी ने श्री श्यामाचरण शुक्ल को मुख्य मंत्री बनाया जो किसी तरह सरकार की गाड़ी खींच ले गये। 1971 में पुनः चुनाव हुए और श्री प्रकाश चंद्र सेठी मुख्य मंत्री बने वे विधान सभा के काँग्रेस दल के नेता चुने गये।

इस स्वविवेकी अधिकार का प्रयोग सर्वप्रथम 1952 के बाद मद्रास राज्य में किया। 1952 के चुनाव के बाद मद्रास विधानसभा में किसी दल को बहुमत नहीं मिला था। मद्रास विधान सभा में दलगत स्थिति इस

प्रकार थी- काँग्रेस 152, साम्यवादी दल 62, कृषक मजदूर प्रजा पार्टी 35, समाजवादी 13, कृषि कर लोक पार्टी -15, स्वतंत्र 62, जस्टिस पार्टी -1, फार्वार्ड ब्लाक-3, कामनवील पार्टी-6 तामिलनाडु टायलर्स पार्टी (तमिलनाडु श्रमजीवी दल) 19, मुस्लसिम लीग 5 । मद्रास विधान सभा की कुल संख्या 375 थी। उस समय मद्रास के राज्यपाल श्री श्री प्रकाश थे। उनको मंत्रिमंडल गठन का कार्य असम्भव सा लगा। उन्होने अपने पूर्ववर्ती राज्यपाल और मुख्यमंत्री से परामर्श लिया। किन्तु वे भी कोई परामर्श नही दे सके। कुछ लोगों ने यह परामर्श दिया कि वे संविधानिक आपात की घोषणा के लिये राष्ट्रपति को लिखे, जिससे राज्य में राष्ट्रपति शासन लागू किया जा सके। किन्तु श्री प्रकाश नहीं चाहते थे कि राज्य में राष्ट्रपति शासन लागू हो। उनका यह विचार था कि सबसे बड़े दल को सराकर बनाने के लिये आमंत्रित किया जाय। यह दल कुछ स्वतंत्र और अन्य दलों के सहयोग से सरकार बनाये । इसके बाद स्थिति और जटिल हो गयी। विधान सभा के कई दलो ने मिलकर युनाईटेड डेमोक्रेटिक फ्रंट का निर्माण किया जिसमें 166 सदस्य थे। इसके नेता श्री टी. प्रकाशन ने सरकार बनाने का अपना दावा आगे बढ़ाया। किन्तु राज्यपाल उनको मुख्यमंत्री नही बनाना चहाते थे। श्री प्रकाश ने कहा कि यदि यह नई पार्टी कॉग्रेस मंत्रिमंडल को परास्त कर देती है तभी वे युनाईटेड डेमोक्रेटिक फ्रट को मंत्रिमंडल बनाने के लिये आमंत्रित करेगे। इस समय कॉग्रेस ही सबसे बड़ी पार्टी थी।

किन्तु श्री प्रकाश की सबसे बड़ी कठिनाई यह थी कि कॉग्रेस दल का कोई मान्य नेता नहीं था, दल में नेता पद के लिये प्रतियोगिता छिड़ी हुई थी। अधिकांश काँग्रेस मंत्री और मुख्य मंत्री चुनाव हार चुके थे। चक्रवर्ती राजगोपालाचारी राज्यपाल से मिले । किन्तु वे न तो विधान सभा के सदस्य थे और न विधान सभा का चुनाव ही लड़ना चाहते थे। राज्यपाल अवश्य ही राजा जी को एक मौका देना चाहते थे।

राज्यपाल के इस कार्य को मद्रास उच्च न्यायालय में चुनौती दी गयी। श्री प्रकाश ने यह तर्क दिया कि उन्हें प्रयत्नों के बावजूद कोई परामर्श या सहायता नहीं मिली । इसीलिये उन्होने यह निर्णय लिया।

न्यायाधीशों ने दो आधारो पर मामले पर विचार किया - (i) क्या राज्यपाल ने संविधान प्रदत्त शक्तियो का प्रयोग करते हुए राजगोपालाचारी को मनोनीत किया है। (ii) क्या राज्यपाल अनुच्छेद 171(3), (4) , (5) के अंतर्गत इस प्रकार से बिना मंत्रिमंडल के परामर्श से इस प्रकार का मनोनयन कर सकता है।

अदालत ने राममूर्ति के तर्कों को अमान्य करते हुए मामले को खारिज कर दिया। न्यायाधीशो ने कहा कि प्रतिवादी का मामले से कोई प्रत्यक्ष या परोक्ष सम्बन्ध नहीं है। यद्यपि अनुच्छेद 226 के अन्तर्गत न्यायालय तब अवश्य हस्तक्षेप कर सकता है जब उनके ध्यान मे यह बात लायी जाय कि संविधान के विपरीत शासन आचरण करके जनहित को प्रभावित कर रही है। इस प्रतिवेदन में यह सिद्ध करने का प्रयास नहीं किया गया है कि राज्यपाल का कोई कार्य असंवैधानिक है। यह मॉग की जानी थी कि राजगोपालाचारी को मंत्रिमंडल गठित करने के लिये आमंत्रण देने का राज्यपाल का कार्य अवैधानिक था।[29]

मद्रास के राज्यपाल ने संविधान के अनुरूप आचरण किया। राज्य के प्रधान का यह कर्त्तव्य है कि वह देखे कि राज्य का शासन संविधान के अनुरूप चले। जब तक कोई दल सरकार चलाने को तैयार रहता है तब तक शासन में कोई रिक्तता नहीं होनी चाहिए। ब्रिटेन में राजमुकुट ने इस भूमिका को बखूबी निभाया है।

इसी आधार पर राज्यपाल के० सी० रेड्डी ने मध्यप्रदेश में 1968-69 के बीच श्री गोविद नारायण सिंह और राजा नरेश चंद्र सिह को मुख्य मंत्री बनाया।

राज्यपाल उस व्यक्ति को भी मुख्यमंत्री बना सकता है जो राज्य के विधान सभा का सदस्य नहीं है किन्तु जिसे राज्य का बहुमत दल अपने नेता के रूप में स्वीकार करता है। 1954 मे कामराज नादर, बाद मे उत्तर प्रदेश में चन्द्रभान गुप्ता को इन राज्यों के राज्यपालो द्वारा मुख्य मंत्री बनाया गया यद्दिप ये विधान सभा के सदस्य नहीं थे। 6 माह के भीतर ये अपने-अपने राज्यों में चुनाव लड़कर विधान सभा के 1967 में बी० पी० मंडल ने बिहार के मुख्यमंत्री पद की दावेदारी इस आधार पर की उनके पक्ष में बिहार विधान सभा के 318 सदस्यों में से 185 सदस्यों का बहुमत था। किन्तु बी० पी० मंडल विधान सभा के सदस्य नहीं थे। राज्यपाल ने इस विषय पर महाधिवक्ता से परामर्श मॉगा। महाधिवक्ता ने कहा कि इसके पूर्व 6 माह तक मंडल बिहार के मंत्री रह चुके थे और उस समय वे विधान सभा के सदस्य नहीं थे, और अब भी वे सदस्य नही है। अतएव महाधिवक्ता ने कहा कि वे अब तब तक मुख्यमंत्री नहीं बन सकते जब तक कि वे विधान सभा के सदस्य नही बन जाते।

राज्यपाल ने हमेशा ही इस नियम का पालन नहीं किया है कि व्यवस्थापिका में सबसे बड़े दल (बहुमत प्राप्त दल नहीं) को ही मंत्रिमंडल बनाने का अवसर दिया। 1960 में केरल के राज्यपाल श्री पट्टम थानू पिल्ले, जो प्रजा समाजवादी दल के नेता थे, को मुख्यमंत्री बनाया यद्यपि पट्टम थानू पिल्ले का दल सबसे बड़ा दल नही था। उस समय दलगल स्थिति इस प्रकार थी - कॉग्रेस 63, प्रजा समाजवादी दल-20, मुस्लिम लीग-11, साम्यवादी (भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी)-3, आर० एस० पी०-1, स्वतंत्र-21 राज्यपाल का यह गणित था कि प्रजा समाजवादी दल को गैर कांग्रेसी दलों का समर्थन प्राप्त होगा। श्री राव के अनुसार ऐसी स्थिति में राज्यपाल King maker बन जाता है, क्योंकि ऐसी स्थिति मे किसी दल का स्पष्ट बहुमत नही होता है।[30] मध्यप्रदेश में संविद सरकार के काल में रज्यपाल के० सी० रेड्डी को इस प्रकार के Kingmaker की भूमिका अदा करने का अवसर मिला था।

मध्यप्रदेश में संविद काल में राज्यकाल की इस आधार पर आलोचना की गयी थी कि वे कॉग्रेस दल के होने के कारण कॉग्रेस या केन्द्र सरकार के एजेंट के रूप में कार्य कर रहे है।

मध्यप्रदेश में राज्यपाल को संविद काल को छोड़कर मुख्य मंत्रियो की नियुक्त में स्वविवेकी अधिकार नही मिले है क्योकि प्रत्येक बार बहुमत दल निर्वाचित होकर आता रहा है। यह दल कॉग्रेस ही रहा है किन्तु 1977-79 में जन संघ सत्तासीन रहा।

राज्यपालों की भूमिका अन्य राज्यों में

मंडल (बिहार) के मामले में महान्यायवादी ने यह परामर्श दिया था कि राज्यपाल को यह देखना चाहिए कि 6 माह के भीतर ही मुख्यमंत्री या अन्य मंत्री चुनाव जीतकर विधान सभा का सदस्य बन जाय। महान्यायवादी ने उस समय कहा था कि यदि ऐसा नहीं कहा जाता तो यह संविधान के प्रति धोखाधड़ी है (Froud on the Constitution) । बी० पी० मंडल और उनके समर्थक काँग्रेस दल ने काफी हल्ला मचाया और कहा कि एक व्यक्ति जो विधान सभा का सदस्य नहीं है किन्तु जिसके पीछे विधान सभा का बहुमत है मुख्यमंत्री पद की पात्रता रखता है। किन्तु महान्यायवादी और महाधिवक्ता दोनो का मत था कि इस विषय पर राज्यपाल का निर्णय ही अंतिम होगा।[31]

श्री प्रकाश ने भी अपना मत व्यक्त करते हुए कहा कि राज्यपाल का पद संविधानिक संकट में अपनी समुचित भूमिका निभाने में है।[32] मुख्यमंत्रियो को सामान्यतया विधान सभा के सदस्यो से नियुक्त किया जाता है किन्तु इनको विधान परिषद के सदस्यों से भी नियुक्त किया जा सकता है। 1952 मे बम्बई के राज्यपाल ने मोराराजी देसाई को मुख्यमंत्री नियुक्त किया जो विधान परिषद् के सदस्य थे। मोरारजी देसाई पिछले आम चुनावों में पराजित हो चुके थे। कई विद्वानों के अनुसार विधान परिषद् के सदस्यो को मुख्यमंत्री पद पर नियुक्त करना लोकतंत्रीय परम्पराओं के प्रतिकूल है, किन्तु श्री प्रकाश जैसे राज्यपालो ने इसका समर्थन किया है।

किन्तु इस प्रथा का तो बिल्कुल ही समर्थन नहीं किया जा सकता कि वे लोग जो आम चुनाव हार गये है, वे भी मुख्यमंत्री पद के प्रत्याशी बन सकते हैं और उनको भी राज्यपाल पिछले दरवाजे से मुख्यमंत्री नियुक्त कर सकता है। उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री टी० एन० सिह मनिराम क्षेत्र मे चुनाव हार चुके थे फिर भी उनको मुख्यमंत्री बनाया गया। बाद मे वे आम चुनाव भी हार गये। उत्तर प्रदेश के राज्यपाल श्री गोपाल रेड्डी ने इस सम्बन्ध मे अपना असमर्थता व्यक्त की।

चतुर्थ निर्वाचनों के पूर्व मंत्रिमंडल का गठन

एम० व्ही० पायली के अनुसार यदि प्रत्येक निर्वाचन के बाद प्रत्येक राज्य मे एक दल का बहुमत को जिसका एक मान्य नेता हो, तो फिर मंत्रिमंडल के निर्माण में कोई कठिनाई नहीं होगी और राज्यपाल को अपने स्वविवेकीधीन शक्तियों के उपयोग का कोई अवसर नहीं मिलेगा। ऐसी स्थिति चतुर्थ निर्वाचन के पूर्व थी। काँग्रेस का अधिकांश राज्यों में बहुमत था।[33]

1952 के आम चुनावों में ट्रावनकोर कोचीन और मद्रास राज्य में किसी दल को भी बहुमत नहीं मिला। 1957 के आम चुनावों के बाद दो राज्यों में - केरल और उड़ीसा - किसी दल को बहुमत नही मिला। ऐसी परिस्थितियों में इन राज्यों में संविद सरकारें या मिश्रित सरकारें (Alliances and Coalitions) बनी और

राज्यपालों की भूमिका और उनके पद का महत्व बढ़ गया उनको अपने स्वविवेकी शक्तियों के प्रयोग का अवसर मिला।

उड़ीसा में 14 महीनों के भीतर दो बार राज्यपाल को अपने स्वविवेकी अधिकारो के प्रयोग का अवसर मिला। 1952 के आम चुनावों के तुरन्त बाद ऐस स्थिति उत्पन्न हुई। 140 सदस्यीय उड़ीसा राज्य विधान सभा में दलीय स्थिति इस प्रकार थी - कांग्रेस 67, समाजवादी 10, साम्यवादी (भारतीय) 7, फार्वार्ड ब्लाक (एम) 1, गणतंत्र परिषद 31, इंडिपैडैंट पीपल्स पार्टी 3, स्वतंत्र 21 । विरोधी दल संघटक मिश्रित या संविद सरकारों के जोड़ तोड़ में लगे थे और राज्यपाल पर दबाव डाल रहे थे कि उनको सरकार बनाने दिया जाय। किन्तु राज्यपाल ने कॉग्रेस दल को ही सरकार बनाने के लिये आमंत्रित किया। कुछ स्वतत्र सदस्य जो ढुलमुल प्रकृति के थे और अवसर का लाभ उठाना चाहते थे उन्होंने कॉग्रेस का साथ दिया। विरोधी दलों ने राज्यपाल के इस निर्णय की आलोचना करते हुए कहा कि वे कॉग्रेस का पक्षपात कर रहे है।

1957 के आम चुनावों के बाद उड़ीसा मे दलीय स्थिति इस प्रकार थी- कॉग्रेस 56, गणतंत्र परिषद 51, उड़ीसा विधान सभा की कुल संख्या 140 थी। राज्यपाल बाय० एन मुखथानकर ने दोनो दलों के नेताओं से चर्चा की। दोनों दलों ने मंत्रिमंडल बनाने का अपना दावा पेश किया। किन्तु राज्यपाल ने कॉग्रेस के नेता हरे कृष्ण महताब को मंत्रिमंडल बनाने के लिये आमंत्रित किया।

1958 में श्री महताब ने राज्यपाल को अपनी सरकार का इस्तीफा सौप दिया क्योंकि उनकी सरकार के विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव पारित हो गया था। विधान सभा के विविध दलो से और कॉग्रेस हाइकमांड से बातचीत करने के बाद राज्यपाल इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि कॉग्रेस में अभी भी सबसे अधिक सदस्य हैं और उन्होंने कहा कि श्री महताब अपना इस्तीफा वापस ले ले। इस प्रकार गणतंत्र परिषद जिसकी संख्या 51 थी और जो द्वितीय स्थान पर थी उसे सरकार बनाने का अवसर नहीं मिला - वास्तव में राज्यपाल को इस दल को भी अवसर देना था और सरकार बनाने के लिये आमंत्रित करना था। यह स्पष्ट था कि राज्यपाल ने केन्द्रीय सरकार या कॉग्रेस हाइकमांड के दबाव में आकर ऐसा निर्णय लिया । इस प्राकर राज्यपाल पर पक्षपात का दोषारोपण किया गया। प्रोफेसर रंगा ने लोकसभा में राज्यपाल को अशिष्टता बरतने और कॉग्रेस के प्रति पक्षपात बरतने का दोषी सिद्ध किया। उनका कहना था कि नियमानुसार द्वितीय बहुसंख्यक गणतंत्र परिषद् को नियमानुसार सरकार बनाने के लिये आमंत्रित करना था।[34]

राज्यपालों ने हमेशा ही इस नियम का पालन नहीं किया है कि व्यवस्थापिका में सबसे बड़े दल (बहुमत प्राप्त दल नही) को ही मंत्रिमंडल बनाने का अवसर दिया जाय। 1960 में राज्यपाल ने श्री पट्टम थानू पिल्ले, प्रजा समाजवादी दल के नेता को मुख्यमंत्री बनाया यद्यपि पट्टम थानू पिल्ले का दल विधान सभा में सबसे बड़े दल नहीं था। उस समय दलगत स्थिति इस प्रकार थी- कॉग्रेस 63, समाजवादी दल 20, मुस्लिम लीग 11,

साम्यवादी(भारतीय) 3, आर० एस० पी० 1, स्वतंत्र 2 ,राज्यपाल का यह गणित था प्रजा समाजवादी दल को गैर कॉंग्रेस दलों का समर्थन प्राप्त होगा। श्री राव के अनुसार ऐसी स्थिति में राज्यपाल "King Maker" बन जाता है, क्योंकि ऐसी स्थिति में किसी दल का स्पष्ट बहुमत नहीं होता है।[35]

जब विधान सभा में सबसे बड़ा दल सरकार बनाना नहीं चाहता तो राज्यपाल को अत्यधिक कठिन स्थितियों का सामना करना पड़ता है। 1957 में मुख्यमंत्री डा० गोपीचंद भार्गव की सरकार ने इस्तीफा दे दिया, कॉग्रेस का कोई सदस्य सरकार का नेतृव्य करने को तैयार नहीं था। यह इसलिये कि कॉग्रेस ने स्पष्ट निर्देश दे दिये थे कि जब तक कोई मान्य नेता तैयार नहीं होता तब तक कॉग्रेस को सरकार चलाने का अधिकार नही है। ऐसी परिस्थितियों में राज्यपाल सरकार गठन नहीं कर सकता था।

कभी-कभी राज्यपाल विधान सभा के सबसे बड़े दल को मंत्रिमंडल गठित करने के लिये कुछ अपरिहार्य कारणों से आमंत्रित भी नही कर सकता।

1965 के मध्यवर्ती चुनावो में वामपंथी साम्यवादी दल को सबसे अधिक मत मिले थे। किन्तु सुरक्षा नियमों के तहत इनके बहुत से नेता जेल में बद थे, सरकार इनको सुरक्षा के कारण जेल से रिहा नही करना चाहती थी जिससे कि ये विधान सभा की कार्यवाही में भाग नहीं ले सकते थे। अतएव राज्यपाल ने इस दल को मंत्रिमंडल बनाने के लिये आमंत्रित नहीं किया।

1967 में राजस्थान मे कॉग्रेस के नेता मोहनलाल सुखड़िया और उत्तरप्रदेश के कॉग्रेस के नेता श्री चंद्रभान गुप्ता को राज्यपालों ने सरकार बनाने के लिये आमंत्रित किया । राज्यपालों के इस कार्य की बहुत अधिक आलोचना हुई। इन दोनों राज्यों में कॉंग्रेस और विरोधी दल की संविद ने सरकार बनाने के अपने दावों को पेश किया। दोनों को यह उम्मीद थी कि ढुलमुल स्वतंत्र सदस्यो का उन्हें समर्थन मिल जायेगा। राज्यपालों पर यह दोषारोपण किया गया कि वे काग्रेस दल के होने के कारण कॉंग्रेस के प्रति पक्षपात कर रहे हैं साथ ही इन प्रान्तों में कॉग्रेस की सरकार बनाने के लिये भी केंद्र में कॉग्रेस दल का दबाव बढ़ रहा था।[36]

1953 में पश्चिम बंगाल के मुख्यमंत्री डा० बी० सी० राय यूरोप की यात्रा पर गये तो उन्होंने राज्यपाल को परामर्श दिया कि वे एक कार्यकारी मुख्यमंत्री (acting chief Minister) की नियुक्ति करें। इस परामर्श के आधार पर राज्यपाल ने एक कार्यकारी मुख्यमंत्री की नियुक्ति की। किन्तु यह प्रक्रिया इसके बाद बहुत कम अपनायी गयी है।

जब किसी मुख्यमंत्री की मृत्यु होती है, राज्यपाल सामान्यतया एक ''कामचलाऊ सरकार'' (Caretaker Government) की नियुक्ति करता है। किन्तु जब डॉ० बी० सी० राय का निधन हुआ तो राज्यपाल कु० पद्मजा नायडू ने सबसे वरिष्ठ मंत्री को ''कार्यकारी मुख्यमंत्री ''(Acting Chief Minister)" नियुक्त किया। उनके इस कार्य की आलोचना की गयी कि उनको वास्तव में एक काम चलाऊ सरकार की ही नियुक्ति करनी

थी क्योंकि राज्यपाल बिना विधायकों की अनुमति के कार्यकारी सरकार का गठन नहीं कर सकती है। किन्तु कुछ विद्वानों के अनुसार कार्यकारी और कामचलाऊ मुख्यमंत्री में कोई अंतर नही है, क्योंकि दोनों ही स्थितियों में पुराने मंत्रिमंडल के मंत्री बने रहते हैं जब तक कि पुनः विधान सभा मे नये नेता का चुनाव नहीं हो जाता जो नये मंत्रिमंडल का गठन करता है। ऐसी अवस्थाओं में राज्यपाल अपने व्यक्तिगत निर्णय (Indivicual Judgement) से सरकार का गठन करता है । ऐसे अवसरों पर राज्यपाल को भूतपूर्व मंत्रिमंडल के सदस्यों से दल और दल के प्रमुख लोगो (विधान सभा) में परामर्श भी लेना चाहिए ।[37]

मंत्रियों की नियुक्ति

अनुच्छेद 164 में मंत्रियों से सम्बन्धित और भी प्रावधान है। अनुच्छेद 164 (1) के अनुसार मुख्य मंत्री की नियुक्ति राज्यपाल करेगा, और अन्य मंत्रियों की नियुक्ति राज्यपाल मुख्य मंत्री के परामर्श से करेगा। मुख्यमंत्री और अन्य मंत्री राज्यपाल की प्रसन्नता पर्यन्त अपने पदों पर रहेंगे। इस अनुच्छेद मे यह भी कहा गया है कि बिहार, मध्यप्रदेश और उड़ीसा के राज्यपालों को यह देखना है कि इन राज्यो मे आदिम जाति कल्याण का एक मंत्री होगा। यही मंत्री अनुसूचित जातियों और पिछड़ी जातियो के कल्याण के कार्य को भी देखेगा।

अनुच्छेद 164(2) में कहा गया है कि मंत्रिपरिषद राज्य की विधान सभा की सामूहिक रूप से उत्तरदायी होगा।

अनुच्छेद 164(3) मे कहा गया है कि मंत्री शपथ लेकर ही अपना कार्य भार सम्भालेगा। राज्यपाल शपथ दिलाते समय संविधान के रक्षक और गुप्तता की शपथ दिलायेगा जिसका प्रारूप तृतीय सूची में दिया गया है। मुख्यमंत्री द्वारा अपने मंत्रिपरिषद् के सदस्य की सूची राज्यपाल को पेश की जाती है उस समय राज्यपाल मुख्यमंत्री से यह सिफारिश कर सकता है कि वह एकाध नाम इस सूची में जोड़े या एकाध आपत्तिजनक नाम इस सूची से हटा दे। किन्तु ये सिफारिशें सुझाव के रूप में हो सकती है, या मात्र सूचनाओं के रूप में होती हैं। इनका मानने या न मानने के लिये मुख्यमंत्री स्वतंत्र है। प्रारम्भ में जब काँग्रेस की केंद्र और राज्यों मे सरकार होती थी तो राज्यपालों के परामर्श पर मुख्यमंत्री ध्यान भी देते थे। किन्तु समय के बीतने के साथ केन्द्र और राज्य दोनों जगह कॉग्रेस का प्रभाव घटने लगा और राज्यपाल भी अलग-अलग दलों या क्षेत्रों से नियुक्त किये जाने लगे। इससे राज्यपालों का यह परामर्श देने का कार्य भी लगभग समाप्त हो गया है, साथ ही उनका प्रभाव भी घट गया है।

मुख्यमंत्री और मंत्री विधान सभा के बाहर से भी राज्यपाल द्वारा नियुक्त किये जा सकते है किन्तु उनको छः माह के भीतर चुनाव लड़कर विधान सभा का सदस्य बन जाना चाहिए।

संविधान में मंत्रिपरिषद की बर्खास्तगी (Dismissal of a minister) का उल्लेख नहीं है

जब तक कोई मंत्रिपरिषद व्यवस्थापिका में अपना बहुमत रखता है तब तक राज्य पाल को उसको बर्खास्त करने या पदच्युत करने का अधिकार नहीं है।

किन्तु राष्ट्र की सुरक्षा के आधार पर 1953 में जम्मू और काश्मीर के सदर-ई-रियासतने शेख अब्दुल्ला की सरकार को बर्खास्त किया था। यह स्थिति "असाधारण" स्थिति थी और इसकी कल्पना संविधान में नहीं की गयी है।

यही उद्देश्य उस राज्य में राज्यपाल की रिपोर्ट पर राष्ट्रपति शासन लागू करके की जा सकती है। केरल की साम्यवादी सरकार (मुख्यमंत्री नाम्बूद्रीपाद) का केरल विधान सभा मे पूर्ण बहुमत था किन्तु वहाँ शासन व्यवस्था विफल हो गयी इस आधार पर मंत्रिमंडल भंग करके राष्ट्रपति शासन लागू किया गगया। इसी प्रकार से श्री धर्मवीर ने 9 माह पुराना अजय मुकर्जी की सरकार को बर्खास्त कर दिया था जिसका विधान सभा में बहुमत था। यह देश भर में एक विवाद का विषय बन गया ।

राज्यपाल उस समय मंत्रिमंडल भंग या बर्खास्त कर सकता है जब उसे विश्वास हो जाय कि मंत्रिमंडल का विधान सभा में बहुमत नहीं रह गया है।

राष्ट्रीय सुरक्षा के अतिरिक्त राज्यपाल मंत्रियों को भ्रष्टाचार, पक्षपात या घोर अनैतिकता के आधार पर भी बर्खास्त कर सकता है। अनुच्छेद 164 (1) में कहा गया है कि मंत्रिगण राज्यपाल की प्रसन्नता पर्यन्त अपने पद पर बने रहते हैं। राज्यपाल ऊपरल्लिखित कारणों के आधार पर मंत्रियो को पद से बर्खास्त कर सकता है या हटा सकता है। बिहार के राज्यपाल ने मंत्रियों के विरुद्ध भ्रष्टाचार के आरोपों की जाँच के लिये एक अध्यादेश जारी करके लोकायुक्त नियुक्त करने का निर्णय लिया था। इस पर दो राज्य मंत्रियों ने धमकी दी थी कि यदि ऐसा लोकायुक्त नियुक्त किया जाता है तो वे राज्यपाल को अपने पद पर बने रहना मुश्किल कर देंगे। राज्यपाल ने बम्बई में प्रेस संवाददाताओं को सम्बोधित करते हुए कहा कि उन्होने मुख्य मंत्री से कहा है कि इन दोनों मंत्रियों को मंत्रिपरिषद में सम्मिलित न किया जाय जब तक कि वे लिखित में माफी मॉगे। अंत में जब मंत्रियों ने लिखित में माफी मॉगी तभी इनको मंत्रि परिषद में सम्मिलित किया गया । श्री भंडारे ने कहा कि मंत्रिपरिषद पर काफी दबाव डालकर ही इस लोकयुक्त विधेयक को पास किया गया।[38]

किन्तु राज्यपाल भंडारे का प्रेस को फोरम बनाकर सार्वजनिक रूप से मंत्रियों की आलोचना करना भी उचित नही समझा गया। राष्ट्रपति गिरी भी भंडारे के इस आचरण से संतुष्ट प्रतीत नहीं हुए; उन्होंने कहा कि राजत्यपाल को सार्वजनिक रूप से मंत्रियों की आलोचना नही करनी चाहिए वरन राज्यपाल को अपनी भूमिका परदे के पीछे रहकर ही निभाना चाहिए। राज्यपाल को अपने संविधानिक दायित्वो को चुपचाप पूरा करने का प्रयत्न करना चाहिए।[39]

इस सम्बन्ध में यह प्रश्न उठता है कि क्या राज्यपाल को उस मंत्रिपरिषद् को भंग करने का अधिकार है जिसकी विधान सभा में किसी विषय पर हार हो गयी है। मंत्रिपरिषद् को भंग करने के पूर्व राज्यपाल कई बातों पर विचार करेगा। क्या मंत्रि परिषद् की हार ऐसे विषय पर हुई है जिसे राज्यपाल अल्प महत्व का समझता है, या विरोधी दल जिसे अल्प महत्व का समझता है। मंत्रिमंडल की हार कभी किसी विषय को अधिक महत्वपूर्ण न समझने के कारण हो सकती है - सरकार के कई सदस्य सदन मे अनुपस्थित रह सकते हैं, सदन के परिसर में घूमते रह सकते हैं, गपशप करते रह सकते हैं क्योंकि वे यह मानते हैं कि कोई विषय जिस पर बहस चल रही है उतने महत्व का नही है। राज्यपाल इन सब बातों को तौलकर ही मंत्रिपरिषद् भंग करने का कोई निर्णय लेगा। ब्रिटेन में अति साधारण मामलों पर रैम्से मैकडोनाल्ड की सरकार की 10 बार हार हुई किन्तु राजमुकुट ने मैकडोनाल्ड सरकार को इस्तीफा देने के लिये नहीं कहा। इसी तरह 1964-65 में हेराल्ड विलसन की सरकार अति सामान्य मामलो पर कई बार पारजित सरकार को भंग नहीं किया और न उसे इस्तीफा देने के लिये कहा। कई बार तकनीकी कारणों से सरकार की हार हो जाती है किन्तु इसे मंत्रिपरिषद् के विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव नहीं माना जाता जैसी श्रीमती इंदिरा गॉधी का प्रिवी पर्स विधेयक लोक सभा में तो पारित हो गया किन्तु उसे राज्य सभा में 2/3 बहुमत नहीं मिला। इसी तरह बिहार मे गफूर सरकार एक बार पराजित हुई थी किन्तु इसे गफूर सरकार के प्रति अविश्वास का विषय नही माना गया।

राज्यपाल किसी मंत्रिपरिषद को भ्रष्टाचार के आरोप के आधार पर पद से इस्तीफा देने को कह सकता है। ऐसे अवसरों पर राज्यपाल राष्ट्रपति के एजेंट के रूप में कार्य करता है। पंजाब के प्रताप सिह सरकार के विरुद्ध विरोधी दलों ने भ्रष्टाचार के आधार पर राष्ट्रपति को शिकायत की थी। राष्ट्रपति ने इस शिकायत को प्रधानमंत्री को भेज दिया। प्रधान मंत्री ने इन आरोपो की जॉच के लिये एक आयोग बैठा दिया। इस आयोग की रिपोर्ट के आधार पर पंजाब के राज्यपाल ने श्री कैरो को इस्तीफा देने के लिये कहा। इसी प्रकार 1964 में उड़ीसा के विरोधी दलों ने मुख्य मंत्री वीरेन मित्र के विरुद्ध राष्ट्रपति को शिकायत की कि मित्र मंत्रिपरिषद भ्रष्टाचारी है। केन्द्र सरकार ने सी० बी० आई० द्वारा जॉच करायी और यह पाया गया कि वास्तव में यह सरकार भ्रष्ट है। अतएव उसे राज्यपाल के माध्यम से इस्तीफा देने के लिये कहा गया।

इन आरोपों की जाँच में राज्यपाल की कोई प्रत्यक्ष भूमिका नहीं होती है किन्तु उसे राष्ट्रपति के ऐजेंट के रूप में समय-समय पर रिपोर्ट भेजनी होती है। इन रिपोर्टों में भ्रष्टाचार से सम्बन्धित बातो की जानकारी दे सकता है।

किसी मंत्री को राज्यपाल मुख्यमंत्री के परामर्श पर पद से हटा सकता है। 1964 में महाराष्ट्र के मुख्यमंत्री के परामर्श पर मद्यनिषेध मंत्री डी० जैड० पलामपगार को राज्यपाल ने पद से हटा दिया। श्री पलामपगार ने गैर कानूनी तरीके से अपनी पत्नी को तलाक दे दिया था, पत्नी ने मुख्यमंत्री से शिकायत की थी । कई बार मुख्यमंत्री के परामर्श पर अनैतिक कार्यों की जाँच के लिये राज्य आयोग स्थापित करा सकता है- इसी जॉच

का भार उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के स्तर के व्यक्ति को सौपा जा सकता है। राज्यपाल कोई कदम उठाने के पूर्व केन्द्रीय सरकार को भी सूचित कर सकता है। किन्तु यह भी कि राज्यपाल को इन मामलो में अनावश्यक हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए और सक्रिय राजनीति से दूर रहना चाहिए।

मंत्रिमंडलीय संकटों के समय राज्यपाल की मध्यस्थ के रूप में भूमिका

यदि मुख्यमंत्री और उसके सहयोगी मंत्री में या मंत्रिपरिषद के दो या दो से अधिक मंत्रियो के बीच कोई विवाद उत्पन्न हो तो राज्यपाल उस विवाद में हस्तक्षेप कर सकता है या उस विवाद को निपटाने में पहल कर सकता है। उत्तरप्रदेश में जब चन्द्र भान गुप्ता मुख्यमंत्री थे और अल्गूराय शास्त्री वन मंत्री थे तब दोनों में कॉग्रेस पार्टी के संगठनात्मक मामलों पर उग्र विवाद छिड़ गया । श्री गुप्ता ने अल्गू राय शास्त्री को पद से इस्तीफा देने के लिये कहा। किन्तु श्री शास्त्री ने मुख्य मंत्री के इस कदम के खिलाफ आवाज उठाना आरम्भ किया। उसे 4 अन्य मंत्रियों ने सहयोग दिया। राज्यपाल ने इस विवाद के निपटारे का प्रयास किया। वे दिल्ली गये और वहॉ कई प्रभावशाली कॉंग्रेस के सदस्यों से मिले। इसके अतिरिक्त उनकी मुख्यमंत्री और वन मंत्री से कई वार्ताऍं हुई। अंत में श्री शास्त्री को पद से इस्तीफा देना पड़ा इस भूमिका को निभाते हुए राज्यपाल और मुख्यमंत्री के सम्बन्ध भी बिगड़े । किन्तु राज्यपाल को इस प्रकार राजनीति में सक्रिय भूमिका भी नही निभानी चाहिए। भारतीय संविधान के कुछ टीकाकारों का यह मत है कि राज्यपाल को मंत्रिपरिषद् के अन्दरुनी मामलों में दखल नहीं देना चाहिए।[40]

इस सम्बन्ध में उत्तर प्रदेश की एक दूसरी उल्लेखनीय घटना है। 1964 मे मुख्यमंत्री ने विधि विभाग के एक कर्मचारी की सेवानिवृत्ति की अवधि बढ़ा दी किन्तु इस विषय पर उन्होंने विधि मंत्री की अनुमति नही ली और विधि मंत्री से कोई परामर्श भी नही किया। इस पर विधि मंत्री श्री अली जहीर ने पद से इस्तीफा दे दिया। राज्यपाल ने मुख्यमंत्री और विधि मंत्री दोनों से बातचीत की ओर श्री जाहीर को समझाया कि वे अपने पद सेइस्तीफा ने दे। बाद में राज्यपाल के समझाने बुझाने से श्री अली जाहीर ने अपना इस्तीफा वापस ले लिया कर्मचारी की बढ़ी हुई अवधि को भी घटा दिया गया।

राज्यपाल के स्वविवेकी अधिकार

अनुच्छेद 163 मे कहा गया है कि राज्यपाल अपने "स्वविवेकी अधिकारों" (Discretionary Powers) के उपयोग मे मुख्यमंत्री से परामर्श लेने के लिये बाध्य नहीं है और यदि वह परामर्श लेता भी है तो उस परामर्श को मानने के लिये बाध्य नही है। इस सम्बन्ध में राज्यपाल "राज्य सरकार" से पृथक अस्तित्व रखता है। सामान्य स्थितियों में राज्यपाल के कोई स्वविवेकी अधिकार नहीं होते और वह राज्य के प्रधान (head of the state) या नाममात्र की कार्यपालिका (nominal executive) रूप मे कार्य करता है। वह मुख्यमंत्री के परामर्श से कार्य करता है किन्तु कतिपय स्थतियॉ ऐसी है जहॉ राज्यपाल को स्वविवेकी अधिकार

प्राप्त है। इन क्षेत्रों में राज्यपाल राज्य सरकार के रूप में नही वरन एक पृथक पदाधिकारी के रूप मे कार्य करता है। वह राज्य सरकार का प्रधान या नाममात्र की कार्यपालिका के रूप मे कार्य नहीं करता। सर्वोच्च न्यायालय ने एक मुकदमें में निर्णय दिया कि ऐसे अवसरों पर राज्यपाल मुख्यमंत्री के परामर्श से कार्य नही करता। उसे संविधान में कुछ ऐसे स्वविवेकी अधिकार दिये गये हैं जो राज्य सरकार के दायरे से पृथक है।[41]

इससे यह निष्कर्ष नहीं निकालना चाहिए कि राज्यपाल अपने मंत्रियों से परामर्श न ले। उसे परामर्श लेना चाहिए, किन्तु उसे, जैसा श्री राव ने विचार व्यक्त किया है अपने स्वविवेकी अधिकारो का विवेकपूर्ण ढंग से, सोच विचार कर प्रयोग करना चाहिए।[42]

राज्यपालों के कुछ व्यक्तिगत विशेषधिकार (Personal Prorogatives) है और इन व्यक्तिगत विशेषाधिकारों से राज्यपाल को स्वविवेकी अधिकार प्राप्त होते है। ब्रिटिश राजमुकुट के समान ही भारतीय राष्ट्रपति और राज्यपाल के भी स्वविवेकी अधिकार है।

आंग्ल संविधान की पुरातन शास्त्रीय दृष्टि से व्याख्या करते हुए बेजहाट ने कहा कि सामान्य स्थितियों में रानी के निम्न अधिकार है- "परामर्श का अधिकार, उत्साहित करने का अधिकार और खतरो से आगाह करने का अधिकार एक बुद्धिमान राजा इससे अधिक अधिकारो की मांग नहीं करेगा।"[43] साथ ही इतना सब कर चुकने के बाद एक राज्यपाल को अंतत: अपने मंत्रिपरिषद का परामर्श मानना ही चाहिए। ये सब अधिकार राजा के है किन्तु इनमे उसे मंत्रिमंडल के परामर्श से कार्य करना पड़ता है। भारत में राज्यपालों ने भी इन अधिकारों का उपयोग किया है। उन्होंने मुख्यमंत्री को समय-समय पर अपना बहुमूल्य परामर्श दिया है। उन्होंने मुख्यमंत्रियों को कुछ कार्यों को न करने का भी परामर्श दिया है अर्थात् इन कार्यों को करने के खतरों से आगाह किया है। साथ ही उन्होंने इस बात पर भी जोर दिया है कि राज्यपाल उनसे महत्वपूर्ण मसलों पर परामर्श लेते रहे और जिन लोककल्याणकारी कार्यों को सरकार कर रही है उनके बाबत वे राज्यपाल को अवश्य ही सूचित करें। उदाहरण के लिये उत्तर प्रदेश में अयोध्या में राममंदिर पर राज्यपाल और मुख्यमंत्री के बीच अवश्य ही चर्चा हुई होगी और राज्यपाल ने मुख्यमंत्री कल्याण सिह को इन कार्यों के खतरों से अवश्य ही सूचित किया होगा, मध्यप्रदेश में भी राज्यपाल ने मुख्यमंत्री को "भूख से मृत्यु" पर अवश्य ही परामर्श दिया होगा।

किन्तु ये सब अधिकार राज्यपाल के निजी या स्वविवेकी अधिकार नहीं है। इन शक्तियों का प्रयोग राज्यपाल मंत्रिमंडल के परामर्श से करता है। किन्तु ब्रिटिश राजमुकुट के ही सदृश्य भारतीय राज्यपाल के भी कतिपय अधिकार है जिनका प्रयोग वह मुख्यमंत्री के परामर्श में नहीं करता वरन अपने स्वविवेक से करती है। ब्रिटेन में रानी के तीन मुख्य स्वविवेकी अधिकार गिनाये गये हैं -

(i) मंत्रियों की बर्खास्तगी (Dismisal of ministers)

(ii) संसद भंग करना (Dissolution of Parliament)

(iii) पियर्स बनाना (Creation of peers)

रानी के ही सदृश्य भारत में भी राज्यपालों के निम्न स्वविवेकी अधिकार गिनाया जा सकते हैं -

(i) मंत्रिमंडलों के गठन के पूर्व एक मुख्य मंत्री का चुनाव;

(ii) मंत्रिमंडल की बर्खास्तगी ;

(iii) विधान सभा भंग करना ;

(iv) मुख्य मंत्रीद्वारा प्रशासकीय और विधायी मामलों पर सूचित किया जाना राज्यपाल को इन मामलो पर सूचना प्राप्त करने का अधिकार है ;

(v) यदि किसी मंत्री ने किसी विषय पर निर्णय ले लिया है किन्तु जिसे मंत्रिपरिषद के समक्ष नहीं रखा गया है तो ऐसे मामले पर मुख्यमंत्री को मंत्रिमंडल की बैठक बुलाने और चर्चा करने को कहना;

(vi) राज्य की व्यवस्थापिका द्वारा पारित विधेयक को पुनर्विचार के लिये व्यवस्थापिका को वापस भेजना;

(vii) किसी विधेयक को राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिये भेज देना;

(viii) कुछ अध्यादेशों पर हस्ताक्षर करने के पूर्व राष्ट्रपति की अनुमति लेना;

(ix) राज्य में संविधानिक लागू करने के लिये राष्ट्रपति से परामर्श लेना

(x) आसाम के अनुसूचित जनजाति क्षेत्रों के बारे में कतिपय स्वविवेकी अधिकार;

(xi) महाराष्ट्र के राज्यपाल को विदर्भ और मराठावाड़ के विकास के लिये कुछ विशेषाधिकार सौंपे गये है। इसी प्रकार आंध्रप्रदेश और पंजाब के राज्यपाल को क्षेत्रीय समिति से सम्बन्धित कतिपय विशेष दायित्व सौंपे गये है।

(xii) नागालैंड का राज्यपाल को नागालैन्ड में शान्ति और व्यवस्था स्थपित करने के लिये कतिपय विशेषाधिकार सौंपे गये हैं।

जब नागालैड राज्य का विधेयक संसद में पेश किया जा रहा था तो लोक सभा के प्रजा समाजवादी दल के सदस्य हेम बरुआ ने इस प्रावधान पर आपत्ति की थी कि जब नागांलैड का राज्य बनाया जा रहा है तो शान्ति व्यवस्ता का कार्य नागालैंड की विधान सभा को सौपा जाना चाहिए न कि राज्यपाल को। पंडित नेहरू ने कहा कि नागालैंड की विशेष स्थिति है और शान्ति व्यवस्था स्थापित करने का दायित्व राज्यपाल को ही सौपा जाना चाहिए। राज्यपाल राष्ट्रपति या केन्द्रीय सरकार के एजेट के रुप में कार्य करेगा।[44]

राज्यपाल को सूचना देने का मुख्यमंत्री का कर्त्तव्य

अनुच्चेद 167 में मुख्यमंत्री के राज्यपाल के प्रति कुछ कर्त्तव्यो को गिनाये गये है -

1 मुख्यमंत्री को मंत्रिमंडल के सभी विधायी प्रस्तावो और प्रशासन सम्बन्धी निर्णयो से राज्यपाल को अवगत कराना होता है।

2 प्रशासन और विधायन सम्बन्धी उन सभी मामलों पर जिन पर राज्यपाल जानकारी प्राप्त करना चाहता है, सूचित करना।

3. यदि किसी विषय पर किसी मंत्री ने कोई निर्णय ले लिया हो जिस पर मंत्रिमंडल ने विचार नहीं किया हो तो उस विषय को मुख्यमंत्री को मंत्रिमंडल की बैठक मे रखने के लिये कहना।

किन्तु ये सब राज्यपाल की शक्तियां न होकर सूचनाएं प्राप्त करने के अधिकार है। इन सूचनाओं के आधार पर राज्यपाल मुख्यमंत्री को सद्परामर्श दे सकता है, फिर चाहे मुख्यमंत्री उन्हे माने या न माने। इससे सामुहिक उत्तरदायित्व के सिद्धान्त को भी बल मिलता है। क्योंकि मंत्री लोग अपने विभाग से सम्बन्धित कुछ अति महत्वपूर्ण बातों को ही मंत्रिमंडल की बैठकों में पेश करते। शेष मामलों मे वे स्वतंत्र होते है। इन शेष मामलों में भी यदि राज्यपाल को लगे कि कोई मामला मंत्रिमंडल की बैठको में रखा जाना चाहिए तो राज्यपाल मुख्यमंत्री को इस सम्बन्ध में कह सकता है। ब्रिटिश संविधानिक परम्परा भी इस व्यवस्था का समर्थन करती है। डॉ० अम्बेडकर ने संविधान सभा में कहा था कि स्वतंत्रता के पूर्व भी प्रान्तों में राज्यपालों को ये अधिकार प्राप्त थे। मंत्रालयों के कार्य के नियमों (Rules of business) में इस प्रक्रिया का उल्लेख था। उनकों प्रति सप्ताह अपने कार्यों, निर्णयों, प्रस्तावों आदि का संक्षेप तैयार करके राज्यपाल को भेजना पड़ता था और यदि राज्यपाल यह सोचता कि मामले पर मंत्रिमंडल में और अधिक विचार होना है तो वह मुख्यमंत्री को उस विषय को मंत्रिमंडल में रखने के लिये कह सकता था।

राज्यपाल मुख्यमंत्री को "रूल्स आफ एक्जीक्यूटिक बिजिनेस" के तहत निम्न मामलो को मंत्रिमंडल में विचारार्थ रखने के लिये कह सकता है-

(1) क्षमादान, दंड को कम करने, दंड की विशेषता को बदल देने आदि से सम्बन्धित मामले (अनुच्छेद 161)

(2) राज्य की शान्ति व्यवस्था को प्रभावित करने वाले मामले।

(3) अनुसूचित जाति, जनजाति और पिछड़ी जाति के हितों को प्रभावित करने वाले मामले।

(4) मामले जो केंद्र सरकार, अन्य राज्य सरकार, उच्च या उच्चतम न्यायालय के क्षेत्राधिकार को प्रभावित करते हैं।

(5) राज्यपाल के निजी मामले या राजभवन को प्रभावित करने वाले निर्णय।

(6) राज्य लोक सेवा आयोग को प्रभावित करने वाले मामले।

(7) अनुसूचित क्षेत्रों से सम्बन्धित मामले।

राज्यपाल और मंत्रिमंडल में सहयोग

राज्यपाल का दुहरा दायित्व है- एक राज्य सरकार के प्रति और दूसरे केंद्र सरकार के प्रति। राज्यपाल राष्ट्रपति का एजेंट है और उसे राज्य के मामलों से सम्बन्धित सभी बातों की जानकारी राष्ट्रपति को देनी चाहिए। अखबारों में इन बातों पर टिप्पणी हुई थी कि जब 1960 मे आसाम में साम्प्रदायिक दंगा हुआ था तो राज्यपाल ने केन्द्र सरकार को सही सूचना समय पर नहीं दी थी। इसी प्रकार 1957-59 में जब श्री रामकृष्ण राव केरल के राज्यपाल थे तो उन्होंने साम्यवादी सरकार के कार्यों की पूरी सूचना केंद्र सरकार को नहीं दी थी। राज्यपाल को प्रति पखवाड़े राष्ट्रपति को अपने राज्य के बारे में सूचना देनी होती है। यह रिपोर्ट राज्यपाल की निजी रिपोर्ट होती है जिसको तैयार करने में मुख्यमंत्री या अन्य मंत्री का कोई हाथ नहीं होता।

1965 में राज्यपालो के वार्षिक सम्मलेन में कुछ राज्यपालों ने यह शिकायते की कि उनके मंत्रिमंडलों ने राज्य सरकार के कतिपय महत्वपूर्ण मामलों पर कोई परामर्श नही लिया। उनकी यह भी शिकायत थी कि जब मंत्रिमंडल ने कोई महत्वपूर्ण निर्णय लिया तो उसकी जानकारी उन्हें अखबारो के माध्यम से ही मिलती थी। श्रीमती विजया लक्ष्मी पंडित जब महाराष्ट्र की राज्यपाल थी तो उन्होंने इसी प्रकार की शिकायत की थी। पंडित जवाहरलाल नेहरू ने मुख्य मंत्रियों को कहा था कि वे राज्यपालों को वरिष्ट राजनीतिज्ञो के रूप में सम्मान दें। श्री लाल बहादुर शास्त्री ने मुख्य मंत्रियों को हिदायत दी थी कि वे अपने राज्यपालों से अक्सर परामर्श लेते रहे।[45] इसी प्रकार के विचार भूतपूर्व राज्यपाल श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी ने भी व्यक्त किये। श्री मुंशी के अनुसार राज्यपाल संविधान का रक्षक है और वह केंद्र और राज्य के बीच की कड़ी भी है। साथ ही श्री मुंशी ने यह विचार व्यक्त किया कि राज्यपाल और मंत्रिमंडल के बीच मधुर सम्बन्ध स्थापित होना चाहिए। महाराष्ट्र में जब श्रीमती विजया लक्ष्मी पंडित राज्यपाल थी तो उनके मंत्रिमंडल से सम्बन्ध अत्यधिक बिगड़ गये थे। यद्यपि अन्य राज्यों में ये सम्बन्ध मधुर थे। मध्यप्रदेश के राज्यपाल पट्टाभी सीतारमैया का अपने मंत्रिमंडलीय सहयोगियों से मधुर सम्बन्ध था। पश्चिम बंगाल में मुख्यमंत्री डॉ० बी० सी० राय और राज्यपाल कुमारी पद्मजा नायडू के बीच घनिष्ट सम्बन्ध था। उत्तर प्रदेश के राज्यपाल और मुख्यमंत्री श्रीमती सुचेता कृपलानी के बीच घनिष्ठ सम्बन्ध था। श्रीमती विजया लक्ष्मी पंडित ने एक लेख में (पूर्व उद्धृत) लिखा है कि यदि दोनों के बीच घनिष्ट सम्बन्ध हो तो राज्यपाल राज्य प्रशासन में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकता है। इसी प्रकार के विचार पंजाब के भूतपूर्ण राज्यपाल श्री गैडगिल ने व्यक्त किये। डॉ० कैलाश नाथ काटजू ने विभिन्न पदों पर कार्य किया था- मुख्यमंत्री, राज्यपाल, केंद्रीय मंत्री। उन्होने भी कहा कि राज्यपाल का पद एक महत्वपूर्ण पद है। यदि मंत्रियों को यह लगने लगे कि राज्यपाल प्रशासन में हस्तक्षेप करने मे कोई रूचि नही रखता है तो मंत्री

लोग भी उससे परामर्श लेने में नहीं हिचकेंगे। भूतपूर्व राज्यपाल श्री व्ही० व्ही० गिरी ने भी यही विचार व्यक्त किया है।

श्री विष्णु सहाय कई राज्यों में राज्यपाल रह चुके थे।[46] श्री सहाय के अनुसार तृतीय निर्वाचन तक कांग्रेस का अधिकांश राज्यों में बहुमत था, उस समय राज्यपालों की कोई विशेष भूमिका नहीं थी। किन्तु चौथे निर्वाचन में स्थिति बदल गई और राज्यपालों को महत्वपूर्ण भूमिका अदा करनी पड़ी। उत्तरप्रदेश में जब श्री होमी मोदी राज्यपाल थे तो उनको इस बात का दुख था कि राज्य का मंत्रिमंडल उनसे कोई परामर्श नही लेता। एक बार श्री मोदी ने रेडियों पर सुना कि "राज्यपाल ने अमुक मंत्री को नियुक्त किया"। पंडित पंत ने कहा था कि राज्यपाल तो निष्क्रियता का ही प्रतीक है। किन्तु तृतीय निर्वाचन के बाद स्थिति बदल गई है।

मध्यप्रदेश के राज्यपाल की वास्तविक भूमिकाएं

अब तक हमने मध्यप्रदेश के राज्यपालों की संविधानिक भूमिकाओं का अध्ययन किया। इन भूमिकाओं में राज्यपाल या कि मुख्यमंत्री और मंत्रिपरिषद के परामर्श से कार्य करता है या अपने स्वविवेक से। कभी कभी राज्यपालों और मुख्यमंत्रियो के बीच उग्र विवाद भी उत्पन्न हुए है। श्री के० सी० रेड्डी का कार्यकाल इसी प्रकार का था। राज्यपाल सत्यनारायण सिहा के कार्यकाल में भी मुख्यमंत्री से कुछ विवाद हुए। अखबारों में प्रकाशित होता रहा कि "राज्यपाल काजल की कोठरी में।"।

इन भूमिकाओं को नजर अंदाज कर दिया जाय तो राज्यपाल उन कार्यों को करते है जो मंत्रिपरिषद के पूरक के रूप में होते हैं। इनका श्रेय मंत्रियों को ही मिलता है। हर मुख्यमंत्री चाहता है कि राज्यपाल इन कार्यों को करे। इनसे मुख्यमंत्री और राज्यपाल मे शक्ति का संघर्ष नही होता, वरन वे एक दूसरे के पूरक के रूप में कार्य करते हैं।

इन कार्यों का अध्ययन निम्न शिर्षकों के अंतगर्त किया जा सकता है-

(1) केंद्र और राज्यों के बीच की कड़ी के रूप में।

(2) उद्घाटन समारोह और सांस्कृतिकार्य।

(3) सामाजिक कार्य।

(4) अल्पसंख्यकों और कमजोर वर्गों को आशवस्त करना।

(5) कुलाधिपति (Chancellor) के रूप में विश्वविद्यालयों से सम्बन्धित कार्यों को करना।

केंद्र और राज्यों के बीच की कड़ी के रूप में - गवर्नरों के सम्मेलन

दिल्ली में प्रतिवर्ष गवर्नरों के सम्मेलन होते हैं। इन सम्मेलनों का उद्घाटन राष्ट्रपति करते हैं। इन सम्मेलनों में प्रधानमंत्री गृहमंत्री और कुछ अन्य केन्द्रीय मंत्रियों के भी भाषण होते है। इन अवसरों पर राज्यपालो

ने अपने-अपने राज्यों की समस्याओं पर प्रकाश डाला है। साथ ही संक्षेप में उनकी राज्य की कानून और व्यवस्था की स्थिति, आर्थिक स्थिति, सामाजिक सद्भावना है या नही इन बातों पर राज्यपालो ने प्रकाश डाला है। इससे केन्द्रीय सरकार को राज्यों की स्थिति के बारे में जानने का अवसर मिलता है।

इसके अतिरिक्त राज्यपाल दिल्ली का अक्सर दौरा करते हैं - महीने में एक बार तो करते ही हैं। इस अवसर पर वे राज्य सरकार के विविध विभागों की समस्याओं को लेकर विविध मंत्रियों से मिलते है। इस तरह मुख्यमंत्री और अन्य मंत्रियों की ओर से बहुत से मामलों में राज्यपाल पहल करते है। केन्द्र में अन्य मंत्रियों की तुलना में राज्यपाल की बात सम्मानपूर्वक सुनी जाती है। मंत्रियों की तुलना मे राज्यपालो को अधिक समय दिया जाता है। राज्यपाल दलीय नेता रह चुके होते हैं। इसलिये जिस काम में मुख्यमंत्री या अन्य मंत्रियों को केन्द्र से करवाने में कठिनाई होती है, उन कार्यों को कई अवसर पर राज्यपाल की पहल पर आसानी से करवा लिया जाता है।

इसके अतिरिक्त राज्यपाल प्रति पखवाड़े राज्य की स्थिति के बारे मे केन्द्र सरकार को विस्तार से रिपोर्ट भेजते हैं। जिसमें वे अपने राज्य की प्रमुख राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक, प्रशासनिक घटनाओं का जिक्र करते हैं। मंत्रिपरिषद में विवाद, व्यवस्थापिका में विविध समस्याओं को लेकर हंगामा, राज्य में दलों की गतिविधियां, आन्दोलन आदि पर विस्तार से प्रकाश डाला जाता है। इन रिपोर्टो का उद्देश्य केन्द्र सरकार को उस राज्य के बारे में पूरी जानकारी देना है।

पट्टाभि सीतारमैया, हरिविनायक पाटस्कर, के० सी० रेड्डी, सत्यनारायण सिहा और अन्य राज्यपालो ने ऊपर उल्लेखित भूमिकाओं का सफलतापूर्वक निर्वहन किया है। इस प्रकार से वे राज्य मे केन्द्र सरकार के एजेन्ट या "केन्द्र-राज्य के बीच कड़ी के रूप में कार्य करते रहे है।"

उद्घाटन समारोह और सांस्कृतिक कार्य

मुख्यमंत्री और मंत्री कुछ महत्व के उद्घाटन समारोहों में भाग लेते है और शेष में वे राज्यपालों को भेज देते हैं। मध्यप्रदेश के 45 जिलों में ये उद्घाटन समारोह होते रहते है। राज्यपाल का काफी समय इन उद्घाटन समारोहों में व्यतीत होता है। खेलकूद, वैज्ञानिको के सम्मेलन, साहित्यकारों के सम्मेलन, महिलाओं के सम्मेलन, पुरस्कार वितरण, मेलों के उद्घाटन, निर्माण कार्यों का शिलान्यास आदि में राज्यपालो ने भाग लिया है।

राज्यपालों की पत्नियों ने भी इन कार्यक्रमो में भाग लिया है। वृक्षारोपण कार्यक्रम, साक्षरता, महिलाओं के संगठन, आदि के उद्घाटन इन्हीं के द्वारा किये जाते हैं।

कोई प्रदर्शनी उद्घाटित करना हो तो राज्यपाल को मुख्यमंत्री भेज देते है। मुख्यमंत्री और क्षेत्र के मंत्री उन सब उद्घाटनों को स्वयं निपटा देते हैं जो वोट की राजनीति से सम्बन्धित हो और मतदाताओं को प्रभावित करते हैं। शेष स्थलों में वे राज्यपाल को भेज देते हैं।

गवर्नर स्वयं भी कुछ कार्यों मे रूचि रखते है जैसे - वृक्षारोपण, खेल सगठन, साहित्य गोष्ठियों, समाज सुधार। ऐसे कार्यक्रमों में वे स्वयं शामिल होते हैं। राज्य के 45 जिलो में से अधिकांश में राज्यपाल अपनी पूरी अवधि में इन समारोहों और गतिविधियों में राज्य के प्रमुख की हैसियत से भाग लेते रहते है।

मंत्रियों की तुलना में राज्यपाल का प्रदेश की जनता अधिक सम्मान करती है क्योंकि ये दलबंदी में नही पड़ते। वैसे राज्यपाल प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से राज्य सरकार की नीतियो के समर्थन में ही बोलते हैं।

मध्यप्रदेश के सभी राज्यपालों ने इन कार्यक्रमों और गतिविधियो में भाग लिया है। पट्टाभि सीतारैमया, हरिविनायक पाटस्कर, के० सी० रेड्डी और सत्यनारायण सिहा अपने पद पर अधिक समय के लिये रहे, इसलिये इनको इन कार्यों में योगदान का अधिक अवसर मिला।

सामाजिक कार्य

राज्यपालों ने कमजोर वर्गों के विकास में बहुत अधिक रूचि ली है विशेषकर अनुसूचित जाति, जनजाति, पिछड़ी जातियों के विकास में। पुराने मध्यप्रदेश में इन जातियो का प्रतिशत उतना अधिक नही था। उस समय बरार मध्यप्रदेश में सम्मिलित था और बरार मे इन जातियों की जनसंख्या नगण्य है। बाद मे बरार के हट जाने से और नये मध्यप्रदेश में मालवा, बघेला, भोपाल, बुंदेलखंड, आदि की रियासते शामिल होने के कारण इन जातियों का प्रतिशत बहुत अधिक हो गया। इनके विकास को प्राथमिकता दी जाने लगी। केन्द्र सरकार इनके विकास को प्राथमिकता दे रही थी। गवर्नर को केन्द्र सरकार के गृहविभाग और अन्य विभागों से इन जातियो के विकास के लिये समय समय निर्देश आते रहते है। वह इन निर्देशों को सम्बन्धित विभागों को भिजवा देता है। किन्तु इनको क्रियान्वित करना या न करना इन विभागों का कार्य है। राज्यपाल का सचिवालय इन निर्देशों को फाइल करता जाता है।

शिकायतों को प्राप्त करने का अंतिम केन्द्र

जब प्रदेश के नागरिक विभागों, मंत्रियों मुख्यमंत्री को लिखते हुए हार जाते है तो अंत में थककर वे राज्य के प्रधान के रूप में, राज्य के प्रतीक के रूप मे राज्यपाल को लिखते है। यद्यपि राज्यपाल इन पर सीधे कार्यवाही तो नहीं कर सकता हैं, वह अपनी टिप्पणियों के साथ इनको विभागो को भिजवा देता है। जब राज्यपाल की टिप्पणी सख्त होती है तब अवश्य विविध विभाग इन पर ध्यान देते है।

साम्प्रदायिक दंगे और महिलाओं के विरुद्ध अत्याचार

राज्यपाल प्रदेश में साम्प्रदायिक दंगे होने पर व्यक्तिगत रूचि लेता है और मुख्यमंत्री और गृह विभाग से सीधे जवाब तलब करता है। केन्द्र सरकार का गृहविभाग भी इस अवसर पर बहुत अधिक चितित रहता है और अपने सारे आदेश और निर्देश सीधे राज्यपाल को भेजता है।

मध्यप्रदेश में जबलपुर, सागर, भोपाल, इन्दौर इन साम्प्रदायिक दंगों के केंद्र रहे है। वैसे 1960-84 के बीच राज्यपालों को अपनी भूमिका अदा करने मे विशेष कठिनाई नहीं हुई। किन्तु बाबरी मस्जिद कांड के बाद कुंअर महमूद अली खान को यह सारा झेल झेलना पड़ा।

महिलाओं के विरुद्ध अत्याचार को रुकवाने में राज्यपाल के साथ-साथ उनकी श्रीमती भी चिन्तित हो जाती हैं और गृह विभाग को कठोर रवैया अपनाने का आदेश देते हैं।

मेलों में भगदड़

मध्यप्रदेश में कुम्भ (प्रयाग) के बाद उज्जैन के मेले में भारी भीड़ रहती है। राज्यपाल के लिये भी यह चिता का विषय रहता है। राज्यपाल भगवत दयाल शर्मा ने इस क्षेत्र मे कड़ा रूख अपनाया था। 1996 में राज्यपाल मुहम्मद शफी कुरैशी के काल में ऐसी भगदड़ मची थी और मेले मे कई लोग मरे और घायल हुए।

कुलाधिपति के रूप में भूमिका

राज्यपाल अपने प्रदेश के सभी विश्वविद्यालयों के चान्सलर या कुलाधिपति होते हैं। विश्वविद्यालयो की गतिविधियों और कार्यवाहियों में प्रत्येक राज्यपाल ने व्यक्तिगत रूचि दर्शायी है। विश्वविद्यालयों के अधिनियमों में, अध्यादेशों में राज्यपाल को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है।

परीक्षाएं समय पर हों, परीक्षाओं में नकल न हो, प्रश्न पत्रों का लीकेज न हो, विश्वविद्यालयों के परीक्षा विभाग में भ्रष्टाचार, गड़बड़ियां न हो यह देखने का कार्य सर्वप्रथम कुलपति का है और कुलपति राज्य के मत्रियों को नहीं वरन् सीधे कुलाधिपति को उत्तरदायी होते है। यदि मंत्रि कुलपति के विरुद्ध हो किन्तु कुलाधिपति उसका पक्ष ले रहे हों तो उस कुलपति के विरुद्ध कुछ नही किया जा सकता, अवश्य ही सरकार उस कुलपति को अन्य तरीकों से तंग कर सकती है जैसे अनुदान रोक देना।

विद्यार्थी यूनियनों ने कुलपति के विरुद्ध सीधे राज्यपाल को शिकायते की है। विद्यार्थियो का जत्था सीधे भोपाल के राजभवन की दौड़ लगाता है। ये कुलाधिपति से मिलकार अपने पक्ष में आश्वासन या समर्थन प्राप्त ही कर लेते हैं।

राज्यपाल को विश्वविद्यालयों की बैठकों में लिये गये निर्णयों में पुनर्विचार करवाने का, कभी कभी निर्णयों को रद्द करवाने का अधिकार है। राज्यपाल एकीकृत समिति (Integrated committee) का अध्यक्ष होता है। इस समिति में प्रदेश के सभी कुलपति बैठते है। समिति में शैक्षणिक मामलो पर विचार होता है- पाठयक्रम, शिक्षा वर्ष का कैलेडर, वार्षिक दीक्षान्त समारोह (Convocation), शिक्षा के स्तर में सुधार आदि पर विचार किया जाता है।

मध्यप्रदेश में पट्टाभि सीतारमैया के काल में प्रदेश का एकमात्र विश्वविद्यालय नागपुर विश्वविद्यालय था। उसके कार्यों और गतिविधियों में राज्यपाल ने खुलकर भाग लिया, इसके बाद सर हरीसिंग गौर विश्वविद्यालय सागर में बना (1947)। तब भी पुराना मध्यप्रदेश ही चल रहा था। उस समय भी पट्टाभि सीतारमैया ही राज्यपाल थे। नये मध्यप्रदेश के प्रथम राज्यपाल हरिविनायक पाटस्कर बने। नये मध्यप्रदेश में रविशंकर विश्वविद्यालय रायपुर, जबलपुर विश्वविद्यालय (1963), इंदौर, ग्वालियर, उज्जैन विश्वविद्यालय बने। इस समय के० सी० रेड्डी राज्यपाल बने। श्री पाटस्कर और के० सी० रेड्डी इन विश्वविद्यालयों मे सक्रिय रूप से भूमिका निभाते रहे। श्री वांचू और चांडी तथा श्री भगवत दयाल शर्मा ने भी विश्वविद्यालयों मे शैक्षणिक गतिविधियों परीक्षाएं आदि सफलतापूर्वक और शान्तिपूर्वक चलती रही।

राज्यपालों के भ्रष्टाचार - मध्यप्रदेश के राज्यपाल सत्यनारायण सिंहा "काजल की कोठरी में"

1974 में मधु लिमये ने संसद मे आरोप लगाया था कि मोहन लाल सुखाड़िया सदृश्य कई राज्यपालो ने तस्करों से सांठ-गांठ कर प्रयास किया है।

इसी अवधि में मध्यप्रदेश के राज्यपाल सत्यनारायण सिहा पर भ्रष्टाचार और पक्षपात के कई आरोप खुले आम प्रेस में और विधानसभा में लगाये गये थे। रायपुर से प्रकाशित एक प्रमुख पत्र नवभारत ने अपने सम्पादकीय में लिखा था कि "राज्यपाल काजल की कोठरी के बाहर या भीतर" श्री सत्यनारायण सिन्हा ने इन समाचार पत्रों में प्रकाशित इस आरोप का खण्डन किया है कि स्टेट बैक की भोपाल शाखा ने राजभवन मे आकर उनके नाती के लिये लाखों के छोटे नोटों को बड़े नोटों में बदला। सत्यनारायण सिहा ने कहा था कि उनका नाती बिहार में उद्योग लगाने वाला था अतएव उन्होने स्टेट बैंक को राजभवन मे आकर बड़े नोट देने के लिए कहा था। श्री सिन्हा ने कहा कि वे बिहार के एक धनी घराने से सम्बन्धित है और उनके लिये दो लाख जुटाना कोई बड़ी बात नही है।[47]

नवभारत के श्री गोविन्द लाल वोरा ने इस विषय पर अपने सम्पादकीय मे लिखा है कि राज्यपाल श्री सत्यनारायण सिंहा नोटों की बदलाहट को लेकर चक्कर मे पड़ गये है। सार्वजनिक जीवन मे रहने वाले व्यक्ति को हर प्रकार के संदेह से ऊपर रहना चाहिए। फिर राज्यपाल सदृश्य पद पर आसीन व्यक्ति के विरुद्ध तो उंगली भी नहीं उठनी चाहिए। सार्वजनिक जीवन में लोगों ने अपना सर्वस्व न्यौछावर कर दिया, ऐसे उदाहरण हैं। सम्पादक ने सुझाव दिया कि अब वे चूंकि विधानसभा और लोकसभा में विवादों के घेरे में आ गये है इसलिये उन्हें अपनी सम्पत्ति का पूरा पूरा ब्यौरा देना चाहिए। श्री सिहा ने बड़ा भौड़ा स्पष्टीकरण दिया है- उन्होंने अपना शाही जीवन, जमींदारी चाल और शान शौकत का उल्लेख किया है। किन्तु सार्वजनिक जीवन के उच्च पद पर रहकर उन्हें जनता के अनुरूप होना चाहिए। यदि वे ऐसा नही करते तो यह "युग भावनाओं" के विरुद्ध है। यदि शान शौकत करनी है तो फिर सार्वजनिक जीवन से अवकाश ले ले उन्होंने ठीक से अपनी

स्थिति के बारे में सार्वजनिक स्पष्टीकरण देना चाहिए। जो राज्यपाल के प्रतिष्ठित पद पर बैठा है उसे उस पद के अनुकूल आचरण करना चाहिए।

यह बात यहाँ तक बढ़ी कि राज्यपाल के विरुद्ध महाभियोग चलाने पर जोर दिया गया। मध्यप्रदेश साम्यवादी दल के उपनेता श्री सुधीर मुकर्जी ने 30 मार्च, 1975 को कम्यूनिस्ट पार्टी की ओर से प्रदेश के राज्यपाल श्री सत्यनारायण सिहा के विरुद्ध "महाभियोग" की सम्भावना का संकेत देते हुए कहा कि राज्य विधानसभा और लोकसभा के कम्यूनिस्ट सदस्य राज्यपाल के विरुद्ध एक आरोप पत्र प्रस्तुत कर सकते है। राज्यपाल को हटाये जाने की मांग करते हुए उन्होंने उन पर पक्षपात और भ्रष्टाचार के आरोप लगाये। श्री सिहा ने जबलपुर विश्वविद्यालय के कुलपति श्री ठाकुर को भ्रष्टाचार के आरोप से वचाने का प्रयास किया। उन पर लाखों के नोटों की अदला-बदली का आरोप है। राज्यपाल श्री सिहा को प्रदेश मे ठेकेदारों को ठेका दिलाने के लिए सरकार पर दबाव डालते हुए देखा गया था। उन्होंने अपने निवास पर स्टेट बैंक अधिकारियो को बुलाकर नोटों को बदलवाया जो सरासर बैंक नियमो का उल्लंघन है। राज्यपाल ने भोपाल में 4 करोड़ की लागत से बन रहे बहुमंजिला सरकारी भवन का ठेका अपने एक ठेकेदार को दिलाने के लिये दबाव डाला।

श्री मुकर्जी ने कहा कि राज्य के विश्वविद्यालय के राज्यपाल कुलाधिपति है। इस पद पर रहते हुए उन्होंने संदिग्ध भूमिका निभाई।[48]

समापन

इस अध्याय में राज्यपाल को व्यवस्थापिका का अभिन्न अंग माना गया है। व्यवस्थापिकाओं के सदस्यों का शपथ ग्रहण, यह देखना कि अनुसूचित जातियों और जनजातियों, एंग्लो इंडियनो को पर्याप्त संरक्षय मिले, विधानसभा में सत्रारम्भ पर अभिभाषण, बजट अभिभाषण, सदन आमंत्रित, स्थगित और भंग करना, साधारण और वित्त विधेयकों पर हस्ताक्षर करना आदि अधिकार सम्मिलित है। इनमें सदन आमंत्रित, स्थगित और भंग करने के अधिकार अत्यधिक विवादास्पद रहे है। संसद में राज्यपालो के कार्यों पर चर्चा हुई और उनकी कड़ी निन्दा की गयी। श्री के० सी० रेड्डी का कार्यकाल अत्यधिक तूफानी कार्यकाल था। इसी अवधि में राज्यपाल के सदनों को सम्बोधन करते हुए काफी व्यवधान डाला गया।

इसी प्रकार से राज्यपाल द्वारा विधानसभा भंग करने का अधिकार भी अत्यधिक विवादास्पद रहा।

इन राज्यपालों ने कार्यपालिका शक्तियों का प्रयोग करते हुए बहुत से विवादो को जन्म दिया। विशेषकर मुख्यमंत्री नियुक्त करने की शक्ति को लेकर संविद शासन काल में काफी विवाद हुआ। भारत मे संसदीय प्रणाली स्थापित होने के कारण राज्यपाल कार्यपालिका का भी अभिन्न अंग है। उसे यह देखना चाहिए कि प्रदेश का

शासन संविधान के अनुसार चले। राष्ट्रपति के सदृश्य राज्यपाल भी संविधान का रक्षक होता है और राष्ट्रपति के एजेट के रूप में कार्य करता है। राज्यपाल राज्य का प्रधान है।

राज्यपाल के कतिपय अधिकार स्वविवेकी अधिकार होते हैं और अधिकांश शक्तियो का प्रयोग वह मंत्रियों के परामर्श से करता है।

मंत्रिमंडलीय संकटों और मंत्रियों के बीच विवाद उत्पन्न होने पर राज्यपाल मध्यस्थ की भूमिका अदा करता है। अपने स्वविवेकी अधिकारों का प्रयोग करते हुए राज्यपाल कुछ विधेयकों को राष्ट्रपति के परामर्श के लिये सुरक्षित रख सकता है।

इस अवधि मे राज्यपालों की अन्य भूमिकाओं मे साम्प्रदायिक दगो, महिलाओं पर अत्याचार, अजा, अजजा पर अत्याचारों को रोकना सम्मिलित है। राज्यपाल विश्वविद्यालयों के कुलाधिपति होने हैं। इस क्षेत्र में इस काल के मध्यप्रदेश के सभी राज्यपालों ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। राज्यपाल श्री सत्यनारायण सिहा पर भ्रष्टाचार के आरोप लगे और यह कहा गया कि राज्यपाल के पद पर आसीन व्यक्ति को अपना जीवन और आचरण शुद्ध रखना जिससे दूसरे उनका अनुकरण कर सकें।

फुट नोट्स

1. श्री प्रकाश पृ० 40-43 (पू० उ०)
2 टाइम्स आफ इंडिया, 15 मार्च 1952
3 वही, 19 नवम्बर,1960
4 नवभारत, 1966-68 की फाइलें, इस काल में पश्चिम बंगाल, राज्यस्थान, बिहार आदि की तरह मध्यप्रदेश में भी काफी हंगामें हुए, और ऐसे उपद्रवी सदस्यों के निलम्बन पर चर्चा भी हुई।
5 जेना, बी० बी०- "गवर्नर्स राइट टू सस्पेंड एम० एल० एज०", जर्नल आफ कान्स्टीटयूशनल एंड पार्लियामेटरी स्टडीज, भाग-2, अप्रैल, जून, 1967
6 वही
7. मेसर थामस एरस्किन - पार्लियामेटरी प्रैक्टिस, लंदन, 1924, पृ० 85 —

"A session is the period of time between the meeting of partiament Whether after a prorogation or dissolution, or its prorogation The period between the prorogation of parliament and its reassembly is termed recess "

8. दि टाइम्स आफ इंडिया, बम्बई, 13 मार्च, 1969, पृ०।
9 वही, 12 नवम्बर 1967, पृ०।
10 वही, 22 नवम्बर, 1967,पृ०।
11. दि हिन्दुस्तान टाइम्स, 2 मार्च, 1967, पृ०।
12. वही, पृ० 10
13 दि इंडियन एक्सप्रेस, 7, 8 नवम्बर, 1967 पृ०।
14. लोकसभा डिबेट्स, 20 जुलाई, 1967, फोर्थ सीरिज, भाग 7 काल्स 13298, 13412, 13415
15 वही, कालम्स 13491-93, 13496
16 सीरवई, एच० एम० - दि कान्स्टीटयूशनल ला आफ इंडिया, बम्बई 1970, पृ० 356
17. हिन्तुस्तान टाइम्स, 21 जुलाई 1967, पृ०। दि टाइम्स आफ इंडिया, 21 जुलाई 1967, पृ०।
18 राज्य सभा के डिबेट्स 24 जुलाई,1967, कालम्स 115-19(भाग LXI,No 1)

19 श्री कौल ने कहा- "After full consideration of the letter of the chief minister and circumstances assessing the requirement of correct parliament pratice, the assembly session for the present was prorogued in the interest of proper working of parliamentary democracy "

20 लोक सभा डिबेट्स, 20 जुलाई, 1967

21 दि टाइम्स आफ इंडिया, बम्बई, 2 दिसम्बर 1967, 25 मार्च 1967, 8 मार्च 1968, 23 नवम्बर 1972

22 आल इंडिया रिपोर्टर (ए० आइ० आर०) सुप्रीम कोर्ट, 903, 23 नवम्बर 1972

23 बसु दुर्गा दास - कमेन्टरी आन दि कान्स्टीटयूशन आफ इंडिया, कलकत्ता, एस० सी० सरकार, 1967, भाग3

आबू बनाम यूनियन आफ इंडिया, 1951 नवम्बर, 1967

24 सिंह, पुरुषोत्तम - गवर्नर्स आफिस इन इंडिपेडेंट इंडिया, नवयुग साहित्य मंदिर बैधनाथ देवघर, बिहार, 1968, पृ० 207.

दास, एस० सी० - "दि पवार आफ असेट एंड प्रेसीडेन्ट्स रोल इन इंडिया" दि इंडियन जर्नल आफ पोलिटिकल साइंस, अक्टूबर दिसम्बर 1961, पृ० 325

गंगल एस० सी०- "एन एप्रोच टू इंडियन फेडरलिज्म" पोलिटिकल साइंस क्वार्टर्ली, जून 1962, पृ०261

25 संविधान सभा के वाद विवाद, भाग 10, पृ० 219-258, 666, 722

ला कमीशन- भारत सरकार, 14 वीं रिपोर्ट, भाग 1, पृ० 71, 1958

26 एस० सी० आर०, 1961, 1, पृ० 526

ए० आइ० आर०, 1961, भाग 48 पृ० 112

27 दि इंडियन एक्सप्रेस, नई दिल्ली, 23 फरवरी, 1968

28 बसु दुर्गादास (पू० उ०), पृ० 256

29. आल इंडिया रिपोर्टर, 1953, मद्रास 94.

30 डॉ० व्ही० के० राव- पार्लियामेंटरी डेमीक्रेसी आफ इंडिया, कलकत्ता, दि वर्ल्ड प्रेस, (पी०) लिमिटेड, 1961, पृ० 283

31 दि इंडियन नेशन, पटना, सितम्बर 13, 1967

32 दि हिन्दुस्तान स्टेंडर्ड, कलकत्ता, अगस्त 10 1962- श्री प्रकाश का एक लेख -

"The Governor are there to act in crisis "

33 पायली, एम० व्ही०- कान्स्टीटयूशनल गवर्नमेंट इन इंडिया, बम्बई एशिया पब्लिशिंग हाउस, 1965, पृ० 519

34 लोकसभा के वाद विवाद, द्वितीय सीरीज, भाग 51, 1961, कालम्स 3883-84

35 राव, डॉ० व्ही० के०- पृ० (पू० उ०)

36 दि स्टेट्समैन, कलकत्ता, दिसम्बर 1, 1967, पृ० 1

37 डॉ० सिह, पुरुषोत्तम, पृ० 98

38 टाइम्स आफ इंडिया, बम्बई, अक्टूबर 9, 1973, पृ० 1

39 वही, नवम्बर 24, 1973, पृ० 1

40 शुक्ला, व्ही० एन०- कमेंटेरीज आन दि कान्स्टीटयूशन आफ इंडिया, लखनऊ, 1960, पृ० 241

41 ए० आइ० आर, 1952, सुप्रीम कोर्ट, पृ० 153

"Now though the terms "state government" appearing in an enactment means the government of the state, there is no provision of low which equates the term governor with the state government of which he happens to be the head On the contrapy the constitution invests him with certain functions and powers which are separate from his government "

42 दि इंडियन रिव्यू, मद्रास, का एक लेख- 'दि पावर्स आफ दि प्रेसीडेंट आफ, इंडिया," फरवरी 1961, पृ० 60

43. बेजहाट वाल्टर- इंग्लिश कान्स्टीट्यूशन, लंदन वर्ल्ड क्लासिक्स, 1928, पृ० 67

"The right to be consulted, the right to encourage, the right to warn A sagacions king would want no more-and, she must be in the last resors give way to the advice of the cabinet "

44 लोकसभा के वाद विवाद, थर्ड सीरीज, भाग 7, 1962, कालम 4554

45 दि हिन्दुस्तान टाइम्स, नई दिल्ली, 27 12 65

46 दि इंडियन जर्नल आफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, भाग XVI, जुलाई - सितम्बर 1970 का एक लेख "गवर्नर्स रोल इन इंडियन एडमिनिस्ट्रेशन"

47. नवभारत, 25 मार्च 1976

लोकसभा के वाद विवाद, 1974,थर्ड सीरीज, भाग 6 कालम 2345

48 वही, 30 मार्च 1975

अध्याय — 6

मध्यप्रदेश में 1985 से 1996 तक राज्यपालों की भूमिका

1985-96 के बीच राज्यपाल

1985-1996 के बीच मध्यप्रदेश में निम्न राज्यपाल हुए- के० एम० चांडी (15 5 84 - 31 3 89), श्रीमती सरला ग्रेवाल (31 3 89 से 6 2 90), कुँअर महमूद अली खान(6 2 90 से 23 6 93), मुहम्मद शफी कुरैशी (24 6 93 से अब तक).

इनमें चांडी और सरला ग्रेवाल दोनों प्रशासक थे, शेष दो कुअर महमूद अली खान और मुहम्मद शफी कुरैशी मंजे हुए राजनीतिज्ञ थे। कुँअर महमूद अली खान चौधरी चरण सिह के अनुयायी थे और मुहम्मद शफी कुरैशी कॉग्रेस के थे।

1985-89 के बीच राजनीति

1985 में, श्रीमती इंदिरा गाँधी की मृत्यु के बाद श्री राजीव गॉधी प्रधानमंत्री बने। 1989 तक कॉंग्रेस का बहुमत रहा। श्री चांडी इस अवधि में मध्यप्रदेश के राज्यपाल बने वे प्रशासन से राजनीति में आये थे। उनका उस काल के मध्यप्रदेश के मुख्य मंत्रियों से अच्छी पटरी बैठी। इनके बीच किसी प्रकार का गत्यावरोध उत्पन्न नहीं हुआ। इस काल में मध्यप्रदेश मे दो मुख्य मंत्री हुए-श्री अर्जुन सिह और श्री मोतीलाल वोरा। बाद में 1989 में मोतीलाल वोरा को केंद्रीय केबिनेट में ले लिया गया और श्री श्यामाचरण शुक्ला मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री बने।[1]

इस काल में बोफोर्स आदि घपलों के कारण कॉंग्रेस की साख बहुत गिर गयी। 1989 के चुनावो में कॉग्रेस केंद्र में पराजित हुई। केंद्र में जनता दल की सरकार आयी। उसने मध्यप्रदेश सहित अन्य कॉग्रेस शासित राज्यों को भंग कर वहॉ राष्ट्रपति शासन लागू किया। 1989 में सरला ग्रेवाल मध्यप्रदेश की राज्यपाल बनी। वे एक कुशल और सख्त प्रशासनिक अधिकारी थी। राष्ट्रपति शासन के दौरान उन्होने मध्यप्रेदश का शासन चलाया। किन्तु अपनी सख्ती के कारण वे एक लोकप्रिय राज्यपाल नही बन सकी।

1991 में भाजपा चुनाव जीतकर आयी। श्री सुन्दर लाल पटवा मध्यप्रदेश के राज्यपाल बने। चौधरी चरण सिंह के पुत्र अजीत सिंह इस समय कॉग्रेस में आ गये थे। उनके प्रभाव से नरसिहा राव की सरकार ने जनता दल के श्री महमूद अली खान को राज्यपाल बनाया। वे एक मंजे हुए राजनीतिज्ञ थे।

1992 में बाबरी मस्जिद कांड के कारण भाजपा सरकार बर्खास्त कर दी गयी। और मध्यप्रदेश में राष्ट्रपति शासन लागू किया गया। राष्ट्रपति शासन के दौरान महमूद अली खान ने केद्र के एजेंट के रूप मे मध्यप्रदेश का शासन चलाया (1992-93 के बीच राष्ट्रपति शासन पर अगले खंड मे विस्तार से प्रकाश डाला गया है)।[2]

1993 में पुनः निर्वाचन हुए। काँग्रेस सत्ता में आई। श्री दिग्विजय सिह मुख्यमंत्री बने। 23 6 93 को मोहम्मूद शफी कुरैशी मध्यप्रदेश के राज्यपाल बने।[3]

1989-96 के बीच मध्यप्रदेश के राज्यपालों की भूमिका

इस अवधि में राज्यपालों ने व्यवस्थापिका के अभिन्न अंग के रूप मे कार्य किया। राज्यपालो और मुख्यमंत्रियों के बीच किसी प्रकार का गत्यावरोध उत्पन्न नहीं हुआ। उन्होंने मुख्य मंत्रियो के परामर्श के अनुसार ही विधान सभा के बैठकों को आमंत्रित, स्थगित और भंग किया। उन्होंने चुनावो के बाद विधान सभाओं के चुने हुए सदस्यों को शपथ दिलायी। उन्होने कमजोर वर्गों- अनुसूचित जातियों, जनजातियों को पर्याप्त महत्व दिया जा रहा है या नही इस बात का ध्यान रखा और अपने सरकार को लागातार सचेत करते रहे कि वे यह देखें कि महिलाओं, मुस्लिमों, ईसाईयों, अनुसूचित जातियों पर कोई अत्याचार न हो। अनुसूचित जातियों और जनजातियों की सूचि को दुरूस्त करने के लिये उन्होंने समय-समय पर जनगणना आयोग को निर्देश दिये। मध्यप्रदेश में इन जातियों की संख्या चालीस प्रतिशत से अधिक हो चुकी है। अब इस प्रदेश में एंग्लों इंडियन सम्प्रदाय की संख्या नगण्य है। लगभग सभी मध्यप्रदेश को छोड़कर चले गये हैं अतएव अब उनके आरक्षण की आवश्यकता नहीं रह गयी है। राज्यपालों के प्रत्येक अधिवेशन आरम्भ होने पर अभिभाषण होते रहे हैं और संविद काल (1967-69) के सदृश्य इस अवधि में विरोधी दल के सदस्यो ने राज्यपाल के अभिभाषण पर किसी प्रकार की टोका-टोकी या गत्यावरोध उत्पन्न नही किया। सरकारी दल और विरोधी दल दोनों ने राज्यपाल का आदर किया है। सत्रावसान या विधान सभा भंग करने को लेकर भी किसी प्रकार का विरोध व्यक्त नहीं किया गया। ऐसा विरोध केवल दो बार व्यक्त किया गया- एक बार 1989 मे और दूसरी बार में 1992 में। 1989 में श्यामाचरण शुक्ल की सरकार बहुमत में थी किन्तु जब केंद्र मे जनता दल चुनकर आयी तो उसने शुक्ल सरकार को भंग करके राष्ट्रपति शासन लागू कर दिया। दूसरी बार 1992 मे बाबरी मस्जिद तोड़े जाने पर सुन्दर लाल पटवा की सरकार को केन्द्र सरकार ने भंग करके मध्यप्रदेश में राष्ट्रपति शासन लागू किया गया। 1992 में तो भाजपा ने हाईकोर्ट में मामला दायर कर दिया।

राज्यपालों ने विधेयकों पर अपने हस्ताक्षर कर उनको विधि का रूप दिया। कुछ विधेयक अवश्य राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिये सुरक्षित रखे गये।

अवश्य ही इस काल में भी राज्यपालों की शक्ति को सीमित करने के लिये विरोधी दलों ने चर्चाएँ की।

राज्यपालों की कार्यपालिका शक्तियों की विवेचना की जा चुकी है। इस काल के राज्यपालों ने भी इन्हीं शक्तियों का उपभोग किया। राज्यपाल राज्य के प्रधान है और देश में संसदीय प्रणाली लागू होने के कारण वे कार्यपालिका के अभिन्न अंग भी है। राज्यपालों ने मुख्य मंत्रियों और अन्य मंत्रियो को समय-समय पर परामर्श दिया है। श्री चांडी और श्रीमती ग्रेवाल कुशल प्रशासक रह चुके हैं। इन्होंने अपने दायित्व का (संविधान के रक्षक) निर्वहन किया है। कुछ विषयों मे अवश्य राज्यपालों ने अपने स्वविकी अधिकारो का पालन किया है।

राज्यपाल प्रति पखवाड़े अपने राज्य की स्थिति पर रिपोर्ट देते रहे हैं। किन्तु 1989 में जब श्यामाचरण शुक्ल की सरकार को भंग कराया गया तो श्री चाँडी से इस सरकार को भंग करने के लिये रिपोर्ट मांगा गया। 1992 में दिसम्बर माह के पूर्व राज्यपाल कुँअर महमूद अली खाँ की कोई रिपोर्ट भाजपा सरकार के विरूद्ध नहीं गयी थी। किन्तु केन्द्र ने दिसम्बर माह में उनको भाजपा सरकार के विरूद्ध रिपोर्ट लिखकर राष्ट्रपति शासन लागू करने को सिफारिश करने को कहा।

इस काल में कुछ मंत्रियों को मुख्य मंत्रियों के परामर्श से पद से हटाया गया। [4]

इस काल में राज्यपालों को लेकर कतिपय अप्रिय घटनाएँ घटीं

इनमें तमिलनाडु में राज्यपाल रेड्डी और मुख्यमंत्री जयललिता के बीच भारी विवाद उत्पन्न हुए। ये दोनों एक दूसरे को दुश्मन समझते रहे। नरसिहा राव की सरकार भी यही चाहती थी। दोनो ने एक दूसरे पर भ्रष्टाचार तक के आरोप लगाये।

दूसरा उदाहरण नागालैण्ड का है। 22 4 92 को नागालैंड और मणिपुर में राज्यपालों की भूमिका को लेकर विपक्ष और सत्तारूढ़ दल के बीच लोकसभा में जोरदार विरोध हुआ। विपक्ष का आरोप था कि केन्द्र सरकार राज्यपालों की रिपोर्ट पर मनमाने ढंग से फैसला कर रही है। इससे जहाँ राज्यपाल के पद की अवमानना हो रही है वहीं उत्तरपूर्वी राज्यों में लोगों का लोकतंत्र मे विश्वास डगमगा गया है। उनका आरोप था कि केन्द्र नें नागालैंड में राज्यपाल की रिपोर्ट के विपरीत राष्ट्रपति शासन लागू कर दिया गया जबकि मणिपुर में अपने दल की सरकार को बहुमत सिद्ध करने का समय देने के लिये राज्यपाल की रिपोर्ट के आधार पर विधान सभा बैठक स्थगित कर दी गयी है।

गृहमंत्री एस० बी० चव्हाण और सत्तारूढ़ दल की जवाबी आरोप था कि नागालैड के मुख्य मंत्री वामूजो ने मंत्रिमंडल की बैठक के बिना ही विधान सभा भंग करने की सिफारिश कर दी। उन्होंने कहा कि दूसरी तरफ मणिपुर के राज्यपाल चितामणि पाणिग्रही की इस रिपोर्ट को मानने का कोई कारण नहीं था, विधान सभा की बैठक कराये जाने पर सदन में हिसा हो सकती है। विरोधी दलों ने सरकारिया आयोग की दुहाई देते हुए कहा कि राज्यपालों का पद, उनके अधिकार और केंद्र राज्य सम्बन्धों पर नेय सिरे से विचार होना चाहिए।

राष्ट्रपति या राज्यपालों का यह नैतिक कर्त्तव्य है कि वे इस संविधान की रक्षा करें (Moral duty to preserve, protect and defend the constitution) यदि राष्ट्रपति या राज्यपाल कोई ऐसा कार्य करें जो संविधान के प्रतिकूल है तो उनको पद से हटाया जा सकता है- राष्ट्रपति को महाभियोग चलाकर हटाया जा सकता है और राज्यपालों को राष्ट्रपति हटा सकता है (यह मत दुर्गादास बसु का है)

हाल में राज्यपाल थामस को नागालैंड में इसी कारण हटाया गया था (Dismissed) क्योंकि राष्ट्रपति के मत मे उन्होने संविधान की रक्षा नही की थी और केन्द्र सरकार के अनुसार उन्होने संविधान का प्रतिकूल आचरण किया था। राष्ट्रपति श्री आर० वेंकटरामन ने कड़ा कदम उठाते हुए 11 अप्रैल 1992 को नागालैड के राज्यपाल एम० एम० थामस को बर्खास्त कर दिया। यह एक अप्रत्याशित कदम था। 1991 के जून में केन्द्र में श्री नरसिहा राव को इंका सरकार के सत्तारूढ़ होने के बाद किसी राज्य के राज्यपाल की बर्खास्तगी का यह पहला मामला है। उन पर कई आरोप लगाये गये थे जैसे उन्होने बिना राष्ट्रपति को सूचित किये नागालैंड विधान सभा भंग कर दी थी। साथ ही वामुजो को कार्यकारी मंत्री बना रहने दिया था। श्री थामस पर नागालैड के मुख्य सचिव एस० एस० अहलूवालिया के विरूद्ध सी० बी० आई० जॉच न कराने का भी आरोप था, इस जॉच का आदेश केन्द्रीय गृहमंत्रालय ने दिया था। इस सम्बन्ध में राष्ट्रपति भवन से श्री थामस को हटाये जाने का कोई कारण नहीं दिया गया था केवल यही कहा गया था- ''राष्ट्रपति को यह आदेश देते हुए प्रसन्नता होती है कि डॉ० थामस अब नागालैंड के राज्यपाल नहीं रहेंगे और उनके स्थान पर कार्य करने के लिये राष्ट्रपति ने आसाम के राज्यपाल श्री लोकनाथ मिश्रा को नागालैंड का भी राज्यपाल नियुक्त किया है।'' श्री लोकनाथ मिश्रा तब तक आसाम के राज्यपाल के रूप में कार्य करते रहेंगे जब तक कि उनका उत्तराधिकारी नियुक्त नही कर दिया जाता।[5]

राज्यपाल और विश्वविद्यालय की राजनीति

राज्यपाल विश्वविद्यालयों के चान्सलर या कुलाधिपति होते हैं। कुछ विषयों में शिक्षा मंत्री या मुख्यमंत्री के परामर्शनुसार राज्यपाल कार्य करते है किन्तु शिक्षामंत्री और मुख्य मंत्री इस क्षेत्र में, जब तक उनका कोई निजी हित न हो, किसी की नियुक्ति करना न हो, तब तक राज्यपाल को स्वविवेक (in his discretion) से कार्य करने देते हैं और राज्यपाल विश्वविद्यालयों के अधिकांश मामलों में स्वविवेक से हो कार्य करते हैं।

विभिन्न विश्वविद्यालयों के अधिनियमों में चान्सलर की शक्तियों और कार्यों का उल्लेख किया गया है। वह विश्वविद्यालःयों के कन्वोकेशेन्स में प्रमुख अतिथि होता है। विश्वविद्यालय एक्जीक्यूटिव (कार्यकारिणी) और एकेडेमिक काउन्सिल (विद्वत परिषद्) के निर्णयों में परिवर्तन करने के लिये कह सकता है। वह कुलपति और रजिस्ट्रार की नियुक्ति करता है। वह यह देखता है कि विश्वविद्यालयो मे शैक्षणिक केलेडर को ठीक से क्रियान्वित किया जाय और परीक्षाएँ समय पर हों।

कुँअर महमूद अली खॉ ने विश्वविद्यालयों की गतिविधियों में काफी रुचि ली थी। मुहम्मद शफी कुरैशी भी काफी रुचि ले रहे हैं। विद्यार्थी यूनियन शिकायतें लेकर सीधें राज्यपाल तक पहुँचतें हैं। इसी प्रकार विश्वविद्यालय में अजा, अजजा और पिछड़े वर्ग के काफी कर्मचारी होते है। ये भी अपनी शिकायतें लेकर राज्यपाल के पास पहुँच जाते है, चूँकि इनको संविधान के अन्तर्गत ही आरक्षण मिला हुआ है अतएव राज्यपाल इन शिकायतों पर पूरा-पूरा ध्यान देते हैं और कुलपतियो को इन शिकायतो के निराकरण के लिये आदेश देते हैं। कुलपतियों की एक समन्वय समिति (Integration Committee) होती है जिसकी अध्यक्षता राज्यपाल करते हैं। इस समिति में विश्वविद्यालयों के विकास से सम्बन्धित मामलो पर विचार होता है और निर्णय लिये जाते है जिनको कुलपतियों को अपने अपने विश्वविद्यालयों में लागू करना होता है। मध्यप्रदेश में अब बहुत से विश्वविद्यालय हो गये हैं- सागर, रविशंकर (रायपुर), इंदौर, उज्जैन, ग्वालियर, भोपाल, जबलपुर, धासीदास (बिलासपुर), रीवॉ। अतएव राज्यपाल का कार्य क्षेत्र और उनकी व्यस्ता भी बढ़ चुकी है।[6]

राज्यपाल और आधुनिकीकरण

राज्यपाल विज्ञान, टेक्नालॉजी के सम्मेलन उद्घटित करते है और इस तरह प्रदेश को आधुनिकीकरण की ओर ले जाने में मदद करते हैं। 28 11 92 को मध्यप्रदेश के राज्यपाल कुँअर मेहमूद अलीखॉ ने भोपाल में इंस्टीटयूट आफ इंजीनियर्स की प्रदेश शाखा द्वारा आयोजित कम्प्यूटर इंजीनियरिंग के राष्ट्रीय सम्मेलन का उद्घाटन करते हुए विकास कार्यक्रमों को गतिशील बनाने के लिये कम्प्यूटर प्रणाली का उचित माहौल बनाने का आह्वान किया। उन्होंने कम्प्यूटर प्रणाली को बढ़ावा देने के लिये आवश्यक प्रशिक्षण पर भी जोर दिया। कार्यक्रम की अध्यक्षता पर्यटन विज्ञान और टेक्नालॉजी मंत्री श्री बृजमोहन अग्रवाल ने की। भोपाल में आयोजित इस कार्यक्रम में श्रम शक्ति नियोजन मंत्री श्री ननकीराम कॅवर विशेष अतिथि के रूप मे उपस्थित थे।

कुँअर मेहमूद अली खॉ ने देश की सामाजिक और आर्थिक तरक्की में इंजीनियरो की भूमिका का उल्लेख करते हुए कहा कि आजादी के बाद देश को मजबूत बनाने में साइंस और टेक्नालॉजी के क्षेत्र में बहुत काम हुए है। उन्होंने कहा कि तेज गति से चल रही इंसान की जिन्दगी को टेक्नालॉजी ने बहुत से साधन और सुविधाएँ दी है और इसमें कम्प्यूटर हमारे लिये फायदेमंद सिद्ध हुआ है। उन्होने कहा कि आज का युग कम्प्यूटर युग है और कम्प्यूटरों के विस्तार की हर क्षेत्र में गुँजाइश है।

इस सम्बन्ध में उन्होंने उल्लेख किया कि मध्यप्रदेश प्राकृतिक संसाधनो से भरपूर है और इसके दोहन की योजनाओं को कारगर बनाने में कम्प्यूटर बहुत ही सार्थक सिद्ध होगा। राज्यपाल खॉ ने इंजिनियरों से आग्रह किया कि वे तकनीकी ज्ञान और अनुभव का पिछड़े इलाकों की तरक्की मे उपयोग करें और निर्माण के मामलें में आत्म निर्भर बनने का संकल्प लें।

राज्यपाल ने कहा कि यह संगोष्ठी देश और प्रदेश के लिये अत्यधिक उपयोगी है। आज के वैज्ञानिक युग में जितने भी अविष्कार किये जाये कम है। इस मायने में हमारे वैज्ञानिकों और इंजीनियरों को आने वाले समय की मॉग को ध्यान में रखकर अभी से ऐसे आविष्कार करना होगा जिससे सामान्य जीवन के हर पहलू को विज्ञान से जोड़ा जा सके।

आज सूचनाओं का संग्रहण और सम्प्रेषण महत्वपूर्ण पहलू है। श्री खॉ ने कहा कि हम इसके अनुरूप अपने प्रदेश में सुविधाएँ नही उपलब्ध करा पाये है। आज हिन्दी में कम्प्यूटरो की अधिक माँग है। जिसका उपयोग व्यापारी और नागरिकगण आसानी से कर सकते हैं।[7]

मुहम्मद शफी कुरैशी ने भी ऐसे सम्मेलनो मे भाग लिया। यदि राज्यपाल ऐसे समारोहों में भाग लेता रहे तो वह प्रान्त और राष्ट्र के आधुनिकीकरण में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकता है।

शान्ति का माहौल और विकास को गति देने के सार्थक प्रयास-राज्यपाल द्वारा शान्ति और सहानुभूति का मरहम लागाया जाना

15 दिसम्बर 1992 को मध्यप्रदेश में राष्ट्रपति शासन लागू हो गया। राज्यपाल कुँअर महमूद अली खान ने प्रशासन की बागाडोर सम्हालते ही समाज में शान्ति का माहौल बनाने और प्रदेश के विकास को गति देने के सार्थक प्रयास किये है। इस दृष्टि से उन्होने भोपाल, जबलपुर, इंदौर, उज्जैन सहित अन्य नगरों में जाकर शान्ति बनाने की अपील की है। उन्होंने उपद्रव ग्रस्त क्षेत्रो का भ्रमण किया और प्रशासनिक अधिकारियो की बैठकें लीं।[8]

राज्यपाल कुअॅर मेहमूद अली खॉ ने अपने 16 दिसम्बर के दूरदर्शन सदेश (भोपाल केंद्र) में कहा कि भारत वर्ष एक महान देश है और इसकी सभ्यता दुनिया मे सबसे पुरानी है। यह सभ्यता गौतम बुद्ध, महावीर, गुरूनानक, संत कबीर, मलिक मुहम्मदजायसी, संत रविदास, मीराबाई, सूफी हजरत शेख मोहनुद्दीन चिश्ती, रहमत उल्लाह अलह, ख्वाजा निजामुद्दीन औलिया और बहुत से सन्तो ने हमें दी है। वह सभ्यता हमें प्यार मोहम्बबत, भाईचारा, इंसानियत, अहिंसा, त्याग, दान आदि का सबक सिखाती है। जब तक यह दुनिया रहेगी, तब तक वह जिदा रहेगी, और हम उसी के बल पर उसी की रोशनी से न सिर्फ भारत वर्ष को ही नहीं बल्कि सारी दुनिया वालों को रोशनी देते रहेंगे। हमने दी भी है। हमारे पास जो सबसे बड़ी बात है वह है हमारी संस्कृति जिसका मूल मंत्र अहिसा है। आज उस आयने पर गर्द छा गयी है। उसको साफ करना है। हमें निराश नहीं होना है। हमें उन तत्वों का मुकाबला करना है जो हमारी पुरानी सन्स्कृति से खिलवाड़ करते हैं। अपने मामूली फायदे के लिये उन्होंने नागरिकों को यकीन दिलवाया कि भारत वर्ष की सन्स्कृति की, प्यार-मोहब्बत भाईचारे की जड़े इतनी मजबूत हैं कि उनको कोई उखाड़ नहीं सकता। जिन भाईयों का जान माल का नुकसान

हुआ है उनको हमें प्यार का मलहम लगाना है। उनको हर तरह से मदद करना है। जहॉ तक धर्म का नाम है, धर्म तो प्यार, मोहब्बत, मानव सेवा का ही नाम है।

उन्होंने कहा कि इन्सानी फितरत में बदले की भावना है। इसलिये हमारे ऋषि, मुनियो ने और पैगम्बरों ने बदले की भावना को दबाने के लिये कहा। श्री खॉ ने महावीर, गौतम को उद्धृत करते हुए कहा "क्षमा करो", इसी तरह कुरान शरीफ में भी ऐलान है कि- "बलकाज़िमीनल गेज वल आलीन अनियास वल्लाहू याहिब्बुल मुहसिनीत।" अर्थात् जो लोग गुस्से को जब्त करते हैं, और लोगों की गलतियो को माफ करते हैं वही अल्ला मियॉ के दोस्त है। श्री खॉ ने अपने संदेश में कहा कि कर्तव्यनिष्ठा से जिम्मेवारी का निर्वहन करें।[9]

इसी प्रकार मुहम्मद शफी कुरैशी जो 1993 में मध्यप्रदेश के राज्यपाल बने भोपाल, इंदौर, ग्वालियर, उज्जैन, जबलपुर, रीवॉ, विलासपुर, रायपुर के अपने तौर पर इन्ही बातो को दुहराया। उन्होने सम्पूर्ण प्रदेश में सद्भावना और भाईचारे के संदेश को दुहराया। उन्होने विभिनन सम्प्रदायों के बीच शान्ति, सद्भावना आदि पर बल दिया।

राहत, पुर्नवास, विकास के कार्यों को करते हुए लोगों के जख्मों पर मरहम लगाना है

राज्यपाल कुँअर मेहमूद अली खॉ ने 16 दिसम्बर 1992 को वल्लभ भवन मे राज्य शासन के वरिष्ट अधिकारियों को सम्बोधित करते हुए प्रदेश के विकास में कर्तव्य और निष्ठा से अपनी जिम्मेदारियों के निर्वहन का आह्वान किया। उन्होंने कहा कि मध्यप्रदेश प्राकृतिक संसाधनों से समृद्ध है तथा यहॉ के अधिकारियों ने निष्ठा और समर्पण से अपनी एक अलग छबि बनाई। इस अवसर पर राज्यपाल के सलाहकार श्री अजीत सिह और श्री अरुण कुमार पण्डया भी उपस्थित थे।

राज्यपाल ने बाबरी मस्जिद कांड का उल्लेख करते हुए कहा कि इस दौर जो घटना क्रम हुआ वह काफी दुखद है लेकिन इससे निराश होने की आवश्यकता नही है। राज्यपाल ने कहा कि यह वक्त ऐसा है जिसमें हमें प्रभावित लोगों के जख्मों पर मरहम लगाना है तथा राहत और पुर्नवास के कार्यों को मुस्तैदी से चलाना है। उन्होंने आशा व्यक्त की कि प्रशासन और जनता के सहयोग से जो काम किया जायेगा उससे निश्चित ही लोग अपने दुख दर्द भूल जायेंगे और समाज मे एकता, प्रेम और सद्भाव का परम्परागत शानदार माहौल कायम हो सकेगा।

प्राथमिकताएँ

भोपाल के वर्तमान हालात के संदर्भ में राष्ट्रपति शासन लागू होने के तुरन्त बाद राज्यपाल कुँअर मेहमूद अली खॉ ने महसूस किया कि दो प्रक्रियाओं को प्राथमिक्ताएँ दी जायें। प्रथम, पीड़ितों को राहत देने के लिये साधन पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हों और दूसरे जितना जल्दी हो भोपाल के आम नागरिकों के लिये शहर और

प्रदेश का माहौल सामान्य हो सके। जन सुविधाएँ तथा रोजमर्रा की आवश्यकताएँ पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हों। इन प्राथमिकताओं को दृष्टिगत रखते हुए कर्फ्यू की अवधि में क्रमशः पर्याप्त कटौती की गयी। यह निर्णय लिया गया कि यदि कानून और व्यवस्था सम्बन्धी कोई अन्य सम्बन्धी कोई अन्य समस्या उत्पन्न नही होती तो शीघ्र ही दिनका कर्फ्यू लगभग समाप्त कर दिया जायगा।[10]

राहत और उपचार कार्यों का जायजा

राज्यपाल ने 20 दिसम्बर को भोपाल के दंगा पीड़ितो के राहत और उपचार के लिये संचालित कार्यों का जायजा लिया और प्रभावितों को समुचित सुविधाएँ मुहैया कराने के लिये अधिकारियों को निर्देशित किया।

राज्यपाल भोपाल के तुलसी नगर स्थित जयप्रकाश नारायण अस्पताल, भेल स्थित राहत शिविर, हमीदिया अस्पताल और दंगा प्रभावित बस्तियों, इंदिरा नगर और राजीव नगर गये और वहाँ चल रहे राहत और उपचार कार्यों के बारे में पूछताछ की। करीब तीन घंटे के भ्रमण के दौरान राज्यपाल के सलाहकार श्री ब्रह्मा स्वरूप , श्री अजीत सिंह, श्री अरुण कुमार पाण्डेय और मुख्य सचिव निर्मला बुच एवं वरिष्ट अधिकारी साथ थे।बाद में राज्यपाल भेल के कस्तूरबा अस्पताल गये और वहाँ भरती घायलो से बातचीत की। उन्होने घायलों को सान्त्वना दीं और उनके शीघ्र स्वास्थ्य लाभ की कामना की।

कृषि क्षेत्र में रुचि

सामान्यतया राज्यपाल कृषि जैसे विषय पर कम ही बोलते हैं क्योकि इसका सम्बन्ध ग्रामीण वोट की राजनीति से होता है और इनमें जो बोलना होता है वह मंत्रियों के द्वारा ही बोला जाता है। किन्तु यदि राज्यपाल सरकार की नीतियों के समर्थन में बोलता है तो उसे बोलने दिया जाता है क्योकि इससे मंत्रियों को ही लाभ-होता है। राष्ट्रपति शासन के दौरान तो राज्यपाल सभी विषयों पर खुलकर बोलते है।

कृषि सम्बन्धी एक बैठक को राज्यपाल ने रायपुर में सम्बोधित किया। इस अवसर पर राज्यपाल के सलाहकार श्री अजीत सिह पहले से ही रायपुर पहुँच गये थे। वैसे यह सब अचानक हुआ। इससे समूचा जिला प्रशासन एकाएक सक्रिय हो उठा और राज्यपाल के स्वागत की तैयारियों मे व्यस्त हो गया। निम्न विभागों के कार्यों का अवलोकन किया गया- जल संसाधन विभाग, लोकनिर्माण विभाग, औद्योगिक केन्द्र विकास निगम, विक्रय कर, नगर निगम, रायपुर विकास प्राधिकारण, नगर निवेश, उद्योग विभाग, राष्ट्रीय राजमार्ग तथा लोकस्वास्थ्य यांत्रिकी विभाग, राष्ट्रीय राजमार्ग तथा लोक स्वास्थ्य अभियांत्रिकी विभाग।इस अवसर पर श्री ए० डी० मोहिले तथा जिलाधीश श्री विरदी भी शामिल थे।[11]

इसी प्रकार श्री मोहम्मद शफी कुरैशी ने कृषकों के एक सम्मेलन को बिलासपुर मे सम्बोधित किया। उन्होंने कहा कि कृषक देश की अर्थव्यवस्था की रीढ़ है। कृषकों की उन्नति के बिना प्रदेश की उन्नति नही हो सकती।उन्होंने कहा कि कृषकों को आधुनिक तौर तरीके अपनाना चाहिए।[12]

राजनैतिक संस्करण और राज्यपाल रंगारंग रावत नाचा महोत्सव का राज्यपाल द्वारा शुभारम्भ

राज्यपाल प्रदेश में चल रहे विविध सान्स्कृतिक कार्यक्रमों में भाग लेते है। इस प्रकार राज्य के राजनैतिक संस्कारण में उनकी प्रत्यक्ष या परोक्ष भूमिका होती है। यदुवंशी रावत नाचा महोत्सव का शुभारम्भ विलासपुर के लाल बहादुर शास्त्री शाला प्रांगण में राज्यपाल कुऑर महमूद अली खान द्वारा 14 11 92 की शाम को किया गया। राज्यपाल का स्वागत रावत नाचा महोत्सव के आयोजक व नवयुवक यादव समाज के पदाधिकारियों ने किया।[13]

इस अवसर पर जिले सहित दुर्ग, राजनांद गॉव, भाटापारा, भिलाई आदि स्थानों से रंगबिरंगी पारम्परिक वेश भूषा से आये विभिन्न नर्तक दलों ने बाजा गाजा तथा दोहा के साथ नृत्य प्रस्तुत किया। संध्या 4 बजे प्रारम्भ इस महोत्सव में सौ से भी अधिक नर्तक दलो ने बाजा गाजा तथा दोहा के साथ नृत्य प्रस्तुत किया। इस महोत्सव में सौ से भी अधिक नर्तक दलों ने अपने नृत्य कला का प्रदर्शन करते हुए छत्तीसगढ़ के इस सान्स्कृतिक धरोहर के प्रति अपनी प्रतिबद्धता प्रस्तुत की। खचाखच दर्शकों से भरे लाल बहादुर शास्त्री शाला का प्रागंण देर रात तक पारम्परिक बाधों तथा नर्तक दलों के दोहों से गुंजायमान होता रहा। राउत नाचा महोत्सव का आनन्द लेने शहर के अलावा जिले के ग्रामीण अंचलों के महिला, पुरुष व बच्चों के साथ पारम्परिक वेश-भूषा में झुंड के झुंड दोपहर से ही महोत्सव स्थल पर एकत्रित होना शुरू हो गये थे।

राज्यपाल कुँअर महमूद अली खान ने महोत्सव उद्घाटन के पश्चात् अपने सम्बोधन में प्राचीन सान्स्कृतिक धरोहरों को अमूल्य बतलाया तथा ऐसे धरोहरों की रक्षा के लिये इस तरह के आयोजन बिना किसी बाधा या व्यवधान के प्रतिवर्ष होने के लिये उन्होंने अपनी शुभकामनाऍ दीं। इस अवसर पर महोत्सव के संरक्षक पूर्व मंत्री श्री बी० आर० यादव, संयोजक कालीचरण यादव, जिला नवयुवक यादव समाज के अध्यक्ष भरत लाल यादव, सोमनाथ यादव आदि ने राज्यपाल महोदय का स्वागत किया। इस मौके पर परम्परागत महोत्सव आयोजकों द्वारा प्रकाशित पत्रिका का विमोचन मुख्य अतिथि (कुँअर महमूद अली खान) द्वारा किया गया। कार्यक्रम का दूरदर्शन तथा रेडियों पर फिल्यांकन व प्रस्तुतीकरण के लिये दूरदर्शन तथा आकाशवाणी से भी टीमें आयी हुई थी।

इस अवसर पर कुँअर मेहमूद अली खॉ ने कहा कि रावत नाचा महोत्सव जैसे आयोजन दिलों से मनमुटाव मिटाते हैं। साल भर या साल दर साल चली आ रही दुश्मनी, अलगॉव दूर करने मे ये महोत्सव महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। एक दूसरे के साथ मस्त होकर नाचते हुए (अधिकांश नर्तक मदिरा का सेवन करते है), वे एक दूसरे से वैर भाव भूल जाते है। तरह-तरह के दोहा पढ़ते हुए 'जौहार' 'जोहार' करते हुए वे एक दूसरे के करीब आते जाते हैं।

कुअॅर महमूद अली खॉ ने कहा कि ऐसे महोत्सवों में केवल यादव समाज को ही नही अन्य सभी जातियो और वर्गों को भाग लेना चाहिए। इससे जाति भेद, ऊॅचनीच, छुआ-छूत आदि का भेद भाव मिटता जाता है। इस तरह राज्यपाल ने कहा कि ऐसे महोत्सव राजनीतिक और सामाजिक एकत्रीकरण (Political and Social unification) के महत्वपूर्ण साधन हैं।

राज्यपाल ने ग्रामीणों से आग्रह किया कि वे अपनी लोक सन्स्कृति की रक्षा करने के अलावा बच्चो की पढ़ाई, खेलकूद तथा तन्दुरुस्ती पर भी ध्यान दें तभी देश की तरक्की होगी। इस तरह राज्यपाल ऐसे सान्स्कृतिक कार्यक्रमों के माध्यम से लोगों के ज्ञानात्मक (Cognitive), रागात्मक (affectative) मूल्याकनात्मक (evaluative) अभिमुखीकरण (Orientation) को समृद्ध बनाते हैं। राज्यपाल जैसा व्यक्ति जब राउत नाचा महोत्सव के माध्यम से ग्रामीणों, नगरीय जनों को आमोद प्रमोद के माध्यम से राजनैतिक व्यवस्था मे सक्रिय योगदान (POlitical Participation) का उपदेश देते है तो वे प्रदेश को राजनैतिक व्यवस्था को मजबूत करने की भूमिका अदा करते है।

श्री बिसाहू राम यादव ने राज्यपाल का स्वागत करते हुए कहा कि रावत नाचा महोत्सव स्वस्फूर्त आयोजन है। लोग बिना सरकारी नियंत्रण, निर्देशन या सहायता के ऐसे आयोजनों को अपने बलबूते पर अपने ढंग से करते हैं। राज्यपाल खाँ ने भी स्वीकार किया कि ऐसे आयोजन इसलिये क्षेत्र की सान्स्कृतिक पहचान व संरक्षण के लिये आवश्यक हैं।

राज्यपाल ने स्वीकार किया कि ऐसे अवसरों पर उनको जनता के विविधवर्गों से मिलने, उनसे बातचीत करने का अवसर मिलता है। इस अवसर पर सत्तारूढ़ दल के गण्यमान्य लोग तो उनसे मिलते है और क्षेत्र की समस्याओं से उनको परिचित कराते ही है, विरोधी पक्ष के लोग भी तथा जनता के गण्यमान्य प्रतिनिधि भी उनसे मिलते हैं। कई हित बद्ध और दबाव समूहों से उनको ज्ञापन मिलते है। इन ज्ञापनों को और विविध वर्गों से हुई वार्ता को वे सरकार के सामने रखते हैं।

बिसाहू राम यादव ने राज्यपाल को यादव समाज के प्रमुख लोगो से मिलवाया। यादव समाज गॉव मे पशुपालन के अतिरिक्त खेती धंधा भी करते हैं। वे पिछड़े समाज के लोग है। इनका पिछड़ा पन दूर करने के लिये सरकार को महत्वपूर्ण भूमिका अदा करनी चाहिए।

मुहम्मद शफी कुरैशी ने भी बिलासपुर के इस विख्यात राउत नाचा के वार्षिक समारोह मे भाग लिया। उन्होंने भी इस सम्बन्ध में भावुक होकर अपने उद्‌गार व्यक्त किये और इसे एक महत्वपूर्ण सान्स्कृतिक विरासत माना जिसे आने वाली यादव पीढ़ी को और आगे बढ़ाना चाहिए।[14]

राज्यपाल बस्तर के आदिवासियों के बीच

24 अप्रैल 1993 को महमूद अली खॉ ने बस्तर के आदिवासियों की समस्याओं को सुना। उन्होने भोपाल में श्रमजीवी पत्रकार संघ के प्रतिनिधियों को आश्वस्त किया कि बस्तर में नक्सलवादियो से कथित सम्पर्क के आरोप में आतंकवादी एवं विध्यवन्सकारी गतिविधि रोकथाम अधिनियम (टाडा) के तहत गिरफ्तार एक स्थानिय पत्र के संवाददाता प्रेमराज जैन को भी चिकित्सा सुविधाएँ उपलब्ध करायी जायेगी।[15]

मोहम्मद शफी कुरैशी भी कई बार जगदलपुर गये। उन्होंने भी गरीबी और भ्रष्टाचार हटाने को कहा, इनके हटने पर ही नक्सलवादी समस्या पर काबू किया जा सकता है।[16]

राज्यपाल गुरूधासी दास की जयंती पर गिरौदपुरी में

राज्यपाल मुहम्मद शफी कुरैशी सतनामियों के पावन तीर्थ बलौदा बाजार कसडोल के निकट बारनवापारा के धने जंगलों में स्थित गिरौदपुरी गये। यहॉ सतनामियों का वार्षिक मेला भरा करता है। यहॉ सम्पूर्ण छत्तीसगढ़ के सतनामी (अनुसूचित जाति) के लोग सम्मिलित होते हैं। छत्तीसगढ़ मे इनकी सख्या दुर्ग, राजनांद गाँव, रायपुर बिलासपुर, रायगढ़ जिलों में कुल जनसंख्या का लगभग 20 प्रतिशत है। इस तरह यह एक विशाल वोट बैंक है।सरकार चाहती है कि उसकी इस विशाल वोट बैक पर पकड़ पनी रहे। राज्यपाल ने यहॉ जाकर सरकारी नीतियों (दिग्विजय सिंह सरकार की) का समर्थन किया और कहा कि सरकार सतनामियों के विकास के लिये सब कुछ करेगी और गुरू धासीदास के मंदिर का जीर्णोद्धार करेगी।[17]

आकाल सूखा बाढ़ के समय भूमिका

इन प्राकृतिक विपदाओं के समय राज्यपाल क्षेत्रों में जाते हैं और लोगो को सरकार की ओर से आश्वस्त करते हैं कि सरकार पीड़ित लोगों के उद्धार के लिये कृत संकल्प है।

समापन

1985-1996 के बीच राज्यपालों के पद और भूमिका में तेजी से बदलाव

संविधान में और संविधान सभा में वाद-विवाद के दौरान राज्यपाल के पद से जिन कार्यों को करने और भूमिकाओं को अदा करने की आशायें की गई थी वे इस प्रकार थीं-

(1) राज्यपाल केंद्र सरकार का प्रतिनिधि या एजेंट होगा;

(2) वह केन्द्र और राज्य के बीच कड़ी के रूप में कार्य करेगा।

(3) वह "संविधानिक प्रधान" (Constitutional figurehead) के रूप में कार्य करेगा।

(4) राज्यों से अस्थिरता उत्पन्न होने पर वह केंद्र को रिपोर्ट देगा। वैसे सामान्यतया उसे पखवड़े में या महीने में एक रिपोर्ट भेजनी चाहिए।

(5) राज्यों में संविधानिक संकट उत्पन्न होने पर वह अनुच्छेद 356 के तहत गृह मंत्रालय के नियंत्रण, निर्देशन में कार्य करेगा और इस कार्य के लिये उसके सलाहकार नियुक्त होगे।

किन्तु भारतीय संविधान का जिस रूप में विकास हुआ है और जिस दिशा मे विकास हुआ है उसके कारण राज्यपाल के पद में आमूल परिवर्तन होने लगा है-

(1) राज्यपाल केन्द्र की "ऑख और कान" के रूप में कार्य करते है। इसे विरोधी दल "सत्तारूढ़ दल के पक्ष में जासूसी करना" भी कहते है। विरोधी दलों के मत मे राज्यपाल केद्र का जासूस है।

(2) राज्यपाल संघवाद की कड़ी नही रह गया है। संघवाद का स्वरूप विकृत होता जा रहा है। राज्यों की स्वायत्ता पर कुठाराघात करने में केंद्र नहीं चूकता । आये दिन अनुच्छेद 356 का प्रयोग या दुरूपयोग किया जा रहा है। राज्यपाल केन्द्र की तानाशाही की कड़ी के रूप में कार्य करते है।

(3) संविधान निर्माताओं ने जिस संसदीय प्रणाली की कल्पना की थी वह प्रणाली भारत मे अपनी जड़े नहीं जमा सकी है।

हमने ब्रिटेन से संसदीय प्रणाली के मूल तत्व ग्रहण किये है। जेनिग्स लास्की आदि विद्वानों के अनुसार इस प्रणाली में एक बहुमत दल होता है और एक विरोधी दल होता है। यह सरकार बहुमत और विरोध के बीच चलती है। इन 45 वर्षों में भारत शनैः शनैः ब्रिटिश संसदीय प्रणाली से दूर हटता जा रहा है- भारत मे भविष्य में केंद्र में जोड़ तोड़ की सरकारें (Coalitions) बनाने की अधिक सम्भावना है। इसका प्रभाव राज्यपाल के पद पर पड़ रहा है। नरसिहा राव की सरकार भाजपा को नाराज करना नही चाहती। इसका नतीजा यह हुआ कि जनता दल के काल के राज्यपाल कुँअर महमूद अली खॉ स्पष्ट रिपोर्ट नही भेज सके ऐसी रिपोर्टों के अभाव में अयोध्या कांड घटित हुआ और शिव सेना, विश्व हिन्दू परिषद, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ आदि उग्र हिन्दूवादी संस्थाओं ने अपनी जड़े जमा लीं।

(4) दूसरी ओर राज्यों में गैर कॉग्रेसी सरकारें भी बनती रहेंगी। केन्द्र और राज्यों मे अक्सर विवाद छिड़ेगा। कॉंग्रेस को सहिष्णुता का परिचय देना होगा और राज्यपालो का अनुच्छेद 356 के तहत मनमाने प्रयोग करना बंद करना होगा। कब तक राज्यपालों से इस प्रकार की रिपोर्ट ली जाती रहेगी। इससे भारतीय संघवाद का स्वरूप तो विकृत हो ही चुका है।

(5) सरकारिया आयोग ने भी कुछ अच्छे सुझाव दिये थे- किन्तु तेजी से बदलती परिस्थितयों में ये सुझाव अव्यावहारिक होते जा रहे हैं - इनमे से कुछ सुझावों पर पहले विचार किया जा चुका है। आयोग ने यह भी सुझाया है कि -

(अ) राज्यपालों को यथासम्भव पॉच वर्षों तक रहने दिया जाय किन्तु आज एक मुश्त राज्यपालों को हटाने की बात चल रही है; और राज्यपालों ने घबराकर और अपमान से वचने के लिये स्वयं इस्तीफा दे दिया।

(ब) राज्यपालों को केन्द्र और राज्यों के बीच कड़ी के रूप में कार्य करना चाहिए। व्यवहार में राज्यपालों ने केंन्द्र के आदेशों का पालन करते हुए इस कड़ी को कमजोर ही किया है।

(स) चुनावों में हारे हुए या असन्तुष्टों को राज्यपाल के पद पर नियुक्त नही करना चाहिए।कॉग्रेस ने भूतकाल में ऐसे ही लोगों को नियुक्त किया । एक प्रतिष्ठित आंग्ल दैनिक ने कॉग्रेस के इन तौर तरीकों की कड़ी आलोचना की है।[18]

1985-96 के बीच राज्यपालों में से दो ऐसे राज्यपाल हुए जो प्रशासन के क्षेत्र से आये थे। श्रीमती सरला ग्रेवाल बहुत सख्त प्रशासक थीं। राज्यपाल रहते हुए उन्होंने सचिवालय और राज्य की नौकरशाही पर कड़ा नियंत्रण रखा। इससे मंत्रियों को भी अपना काम काज चलाने में अत्यधिक कठिनाई हुई। अतएव उनको इस पद पर अधिक समय तक नही रखा गया।

राज्यपालों ने "संविधानिक प्रधान" या रबर स्टाम्प के रूप मे अपनी भूमिका का सही तौर पर निर्वहन किया। उन्होंने विधान सभा आमंत्रित, स्थगित, भंग किया, सत्रावसान किया और मुख्यमंत्री के परामर्श से इन कार्यों को किया।इसी प्रकार मुख्यमंत्री के परामर्श से उन्होंने विधेयकों पर हस्ताक्षर किये।कुछ विधेयकों को अवश्य ही राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिये सुरक्षित रखा गया।

1992 में मध्यप्रदेश में राज्यपाल मेहमूद अली खाँ के कार्यकाल में राष्ट्रपति शासन लागू किया गया। इस विषय पर अगले अध्याय में विस्तार से प्रकाश डाला गया है।

फुट नोट्स

1. मध्यप्रदेश संदेश, प्रकाशन शाखा, सूचना तथा प्रकाशन संचालनालय भोपाल (पाक्षिक)। नवम्बर 1986 और 1983
2. नवभारत, रायपुर, 16 दिसम्बर 1992 पृ०1
3. वही, 24 6 93 पृ०1
4. वही, 7-17 दिसम्बर 1993
5. दि हिन्दुस्तान टाइम्स, नई दिल्ली, 12 अप्रैल 1992 पृ०1
6. नवभारत,6 नवम्बर, 1993 पृ० 12
7. वही 29 11 92 पृ० ।
   अमृत संदेश, रायपुर 29 11 92
8. देशबंधु, रायपुर, 16 दिसम्बर 1992
9. मोहम्मद शफी कुरैशी का 16 दिसम्बर का दूरदर्शन का संदेश (भोपाल केन्द्र) मध्यप्रदेश संदेश जनवरी 1993 (प्रथम पखवाड़ा) में प्रकाशित
10. देशबंधु, 22 दिसम्बर 1992 पृ०1
11. नवभारत, 30 जनवरी 1993 पृ०1
12. नवभारत बिलासपुर, 20 11 95
13. लोकस्वर, बिलासपुर, 16 11 92 पृ०1
14. वही, 17 11 94
15. दण्डकारण्य समाचार, जगदलपुर, 24 अप्रैल, 1993 पृ०1
16. वही, 25 जनवरी, 1994 पृ०1
17. नवभारत 20 12 94 पृ०1
18. हिन्दुस्तान टाइम्स, 23 जनवरी, 1993-

"The progressive devaluation of the office is as much due to the fall in the calibre of the incumbents as the present dissatisfaction that does not envisage any role to the Governors in the growth of Cooperative federalism the excmsion of nun of distinction from polities and the failure of politicians to look beyond the next election are no reason why the same should bot engulf Raj Bhawan "

अध्याय — 7

राज्य में संविधानिक आपात - अनुच्छेद 356 और मध्य प्रदेश के राज्यपाल की भूमिका

संविधान सभा में वाद विवाद

यदि कोई राज्य आपातकाल की अवस्था से गुजर रहा है तो उस अवस्था मे आपात का सामना करने के लिये एकीकृत, त्वरित और प्रभावी कदम उठाने की आवश्यकता है। संविधान के सामान्य अवस्थाओं से निपटने के प्रावधान उस समय कारगर सिद्ध नहीं होते । इस स्थिति से निपटने के लिये सविधान सभा मे जिन प्रावधानों पर वाद विवाद हुआ वे अत्यधिक महत्व के और साथ ही अत्यधिक विवादास्पद प्रावधान थे। इन प्रावधानों पर बहुत अधिक विवाद हुआ, उसी समय कई सदस्यो ने आगाह किया था कि राज्यपाल और केंद्र के इतने व्यापक अधिकार देने से भारतीय लोकतंत्र विकृत हो जायगा और देश मे तानाशाही स्थापित हो जाने की भी आशंका होगी ।

9 जून, 1947 को प्रान्तीय संविधान समिति ने राज्यपालों के आपातकालीन अधिकारों की विवेचना की । 10 जून को प्रान्तीय संविधान समिति (Provincial Consitution Committee) और संघीय संविधान समिति (Union Constitution Committee) ने इस विषय पर सयुक्त रुप से विचार किया । इस बैठक में यह निर्णय लिया गया कि यदि राज्यपाल अपने राज्य में शान्ति और व्यवस्था को गम्भीर खतरा महसूस करे तो वह राष्ट्रपति को इस सम्बन्ध में प्रतिवेदन भेज सकता है । गवर्नर के इस प्रतिवेदन पर राष्ट्रपति अर्थात् केंद्रीय सरकार आगे की कार्यवाही करेगा । प्रान्तीय संविधान समिति ने इस सम्बन्ध मे अपनी सहमति व्यक्त की । यह भी निर्णय लिया गया कि यह अधिकार गवर्नर की स्वविवेकी शक्ति के अन्तर्गत आयेगा। अर्थात् जब गर्वनर इस प्रकार का रिपोर्ट भेजेगा तो वह मंत्रिमंडल से परामर्श नहीं लेगा ।[1] प्रान्तीय संविधान समिति चाहती थी कि राज्यपाल पहले अपने विशेष उत्तरदायित्वो को पूरा करने के लिये प्रान्तीय व्यवस्थापिका से इस सम्बन्ध में एक विधेयक पारित करने का प्रयास करें, किन्तु यदि प्रान्तीय व्यवस्थापिका इस प्रकार का प्रस्ताव पारित न करे, तभी राज्यपाल एक रिपोर्ट तैयार करके राष्ट्रपति को भेजे। फिर राष्ट्रपति गवर्नर के इस रिपोर्ट के आधार पर विशेष आपातकालीन व्यवस्था करे।

सरदार वल्लभ भाई पटेल ने कहा कि इसका यह अर्थ नहीं है कि गवर्नर मंत्रियों के परामर्श की अवहेलना कर सकता है या उनके परामर्शों के विरुद्ध कार्य करेगा। प्रान्तीय समिति का यह आशय है कि गवर्नर केवल राष्ट्रपति को रिपोर्ट भेजेगा कि शान्ति और व्यवस्था की दृष्टि से प्रान्त की स्थिति अति गम्भीर है । प्रान्तीय

समिति यह नही चाहती थी कि इस अधिकार का उपयोग करते हुए गवर्नर और मन्त्रिमडल मे अनबन हो जाय। किन्तु बाद में समिति को भी लगा कि चूँकि प्रशासन पर मंत्रियो का ही नियंत्रण रहेगा। अतएव यदि गवर्नर इस दिशा में कोई भी कदम उठाता है तो इसमें उसमें और मंत्रिमंडल में मतभेदों का उभरना अवश्यम्भावी है। अतेवं गवर्नर केवल राष्ट्रपति को स्थिति के बाबत स्पष्ट रिपोर्ट तैयार करके दे दे और कदम उठाना और न उठाना राष्ट्रपति (केंद्रीय सरकार) के ऊपर छोड़ दे । इसलिये ऐसी स्थिति में प्रान्तीय समिति ने यह निर्णय लिया कि गनर्वर को केवल राज्य की स्थिति का आकलन करके राष्ट्रपति के रिपोर्ट भेजने का सीमित अधिकार दिया जाया । [2]

4 नवम्बर 1948 को संविधान सभा में आपातकालीन उपबंधों को प्रस्तुत करते हुए डा० अम्बेडकर ने कहा कि अब तक विश्व भर में जिन संघीय प्रणालियों की स्थापना की गई है उनमें संघ की विशुद्ध प्रकृति अर्थात् विकेंद्रीकरण की प्रकृति को बनाये रखा गया है। इन संघ व्यवस्थाओं मे हर हालत में हर स्थिति में विकेन्द्रीकरण बना ही रहेगा । स्थितियाँ कुछ भी हों संघ की इस विकेंद्रीय प्रकृति मे कोई परिवर्तन नहीं किया जा सकता । किन्तु भारतीय संविधान का जो प्रारूप बनाया गया है, उसमें संघात्मक और एकात्मक दोनों विशेषताओं का समावेश किया गया है । डा अम्बेडकर ने कहा कि सामान्य स्थितियों मे भारतीय सविधान एक संघीय व्यवस्था की स्थापना करेगा । किन्तु आपातकाल में यह एकात्मक व्यवस्था में परिवर्तित हो जायगा। आपातकाल में राज्यों की सम्पूर्ण संवैधानिक व्यवस्था पर राष्ट्रपति का नियंत्रण स्थापित हो जायगा और राष्ट्रपति अपने एजेंट राज्यपाल के माध्यम से उस राज्य का संविधान चलायेगा। [3]

प्रारूप समिति (Drafting Committe) और विशेष समिति (Special Committee) में राज्यपाल और केन्द्र सरकार की भूमिकाओं पर विस्तार से विवाद हुआ। विशेष समिति की बैठक 11 अप्रैल 1948 को हुई । चूँकि तय हो चुका था कि हम अमेरिका केसदृश्य विशुद्ध विकेंद्रीकृत संघीय प्रणाली की स्थापना नहीं करेंगे अतएव राज्यपालों का निर्वाचन भी नही कराया जायगा । इसलिये राज्यपाल के स्वविवेकी अधिकारों (Discretionary power) को संविधान से हटा दिया जायेगा ।

23 जुलाई, 1949 को प्रान्तो के मुख्यमंत्रियों की बैठक हुई । बहस का मुद्दा यह था कि क्या जब किसी राज्य में संविधानिक तंत्र टूट चुका हो तो उस राज्य में शासन चलाने का स्वविवेकी अधिकार राज्यपाल को दे दिया जाय, या राज्यपाल राष्ट्रपति के नियंत्रण निर्देशन मे राज्य का शासन चलाये या संसद उस राज्य के लिये स्वयं कानून बनाये और राज्य को व्यवस्थापिका के अधिकारों को अपने हाथो में ले ले और बाद में वह इन अधिकारों को राष्ट्रपति को सौप दे ।

गोविन्द वल्लभ पन्त नहीं चाहते थे कि राज्यपाल नेतृत्व की भूमिका अदा करे । उसे कोई स्वविवेकी अधिकार न दिये जायें, अन्यथा वह एक निरंकुश शासक बन जायेगा और संविधान के लोकतंत्रीय स्वरूप को

विकृत कर देगा । किन्तु यदि राज्यपाल राष्ट्रपति के एजेंट के रूप में कार्य करे तो उसके विरुद्ध यह आपत्ति नहीं उठाई जा सकेगी । लगभग सभी सदस्य चाहते थे कि संविधान के प्रारूप के अनुच्छेद 188 को हटाकर उसके स्थान पर किसी अन्य अनुच्छेद का प्रावधान किया जाय। गृह मंत्रालय ने भी इसी प्रकार का नोट तैयार करके भेजा था । अतएव संविधान सभा के सभापति डा. राजेन्द्र प्रसाद ने प्रारूप समिति का प्रान्तों के मुख्यमत्रियो और अन्य सदस्यों की आलोचनाओं को ध्यान में रखकर अनुच्छेद 188 में समुचित संशोधन करने की सिफारिश की । संयुक्त प्रान्त के मुख्य मंत्री और अन्य मुख्यमंत्रियों ने यह विचार व्यक्त किया कि राज्यपाल को कोई स्वविवेकी अधिकार न प्रदान किये जाये, वह राष्ट्रपति के नियंत्रण और निर्देशन मे कार्य करे । श्री टी. टी. कृष्णमाचारी ने कहा कि विधि निर्माण का अधिकार संसद को मिलना चाहिए न कि राज्यपाल को । किन्तु अल्लादी कृष्णस्वामी अयूयर ने इस विचार से अपनी असहमति व्यक्त करते हुए कहा कि इससे संसद का कार्यभार बहुत अधिक बढ़ जायेगा । उसे राज्यो के लिये भी कानून बनाना होगा । ताजामुल हुसैन, जयप्रकाश नारायण आदि ने भी इस विषय पर अपने विचार व्यक्त किये । इन वाद विवादों के संदर्भ प्रारूप समिति ने अनुच्छेद 188 को हटाकर उसके स्थान पर अन्य प्रकार से प्रावधान करने का आश्वासन दिया । संविधान के प्रारूप में अनुच्छेद 278, 278 ए में संशोधन किया गया । [4]

डा. अम्बेडकर ने वाद विवाद का आरम्भ करते हुए कहा कि उन्होने पहले ही यह स्पष्ट कर दिया है कि अनुच्छेद 188 हटा दिया जायगा । उन्होंने इस बात का स्मरण दिलाया कि सदन इस बात के लिये राजी हो गया था कि ऐसी कोई व्यवस्था की जाय जिससे जब राज्यों की संविधानिक मशीनरी विफल हो जाय तो ऐसी अवस्था से निपटने के लिए हमारे संविधान में विशेष प्रावधान होना चाहिए । 1935 के अधिनियम में धारा 93 में ऐसी स्थिति से निपटने की व्यवस्था की गई थी। उस व्यवस्था का अनुसरण करते हुए संविधान के प्रारूप में ऐसी व्यवस्था की गई थी कि किसी प्रान्त का राज्यपाल यह अनुभव करे कि उस प्रान्त की संविधानिक व्यवस्था टूट चुकी है, और वह संविधानों के प्रावधानो के अनुसार नहीं चलाई जा सकती तो राज्यपाल ऐसी उद्घोषणा (Proclamation) करके उस प्रान्त के प्रशासन को अपने हाथो मे लेकर 15 दिनों तक चलायेगा । उसके बाद वह राष्ट्रपति को सूचित करेगा कि चूँकि उस प्रान्त का प्रशासन विफल हो चुका है, और उसने उस प्रान्त के प्रशासन को अपने हाथ मे ले लिया है, तब फिर राज्यपाल अनुच्छेद 188 के अनुसार राष्ट्रपति को रिपोर्ट भेजेगा और इस रिपोर्ट के प्राप्त होने पर राष्ट्रपति अनुच्छेद 278 के अनुसार आगे कार्यवाही करेगा । प्रारम्भिक योजना इसी प्रकार की थी । [5]

डा. अम्बेडकर ने आगे कहा कि राज्यों के संकट के अवसर पर राज्यपाल को 15 दिन तक स्वविवेक और स्वेच्छा से राज्य का शासन चलाने देकर कोई लाभ नहीं है क्योंकि हम चाहते है कि ऐसी स्थितियों में राज्य का शासन राष्ट्रपति ही चलाये । राष्ट्रपति को जिस दिन से राज्यपाल उसे सूचित करता है कि राज्य का शासन संविधान के अनुसार नहीं चल रहा है, उसी दिन से उस राज्य के शासन की बागडोर अपने हाथ में ले लेनी

चाहिए । चूँकि संविधान सभा के सदस्य इस बात से सहमत हैं कि राज्यो मे संविधानिक विफलता की स्थिति में यह राष्ट्रपति का ही उत्तरदायित्व बनता है कि वह राज्य के शासन की बागडोर प्रारम्भ से ही अपने हाथो में लें ले, अतएव अनुच्छेद 188 की कोई उपयोगिता या आवश्यकता नहीं रह जाती । इसलिये प्रारूप समिति ने यह निर्णय लिया है कि वह अनुच्छेद 188 को निकाल दे ।

इसके बाद डा. अम्बेडकर ने अनुच्छेद 277-ए को विचार के लिये प्रस्तुत किया । उन्होंने कहा कि संविधान सभा के बहुत से लोग इस विचार के हैं कि इस अनुच्छेद की कोई आवश्यकता नही है । किन्तु इस अनुच्छेद की कई कारणों से आवश्यकता है । डा. अम्बेडकर ने कहा कि केन्द्र को राज्यो के क्षेत्र में हस्तक्षेप के कई अधिकार देने के बावजूद राज्य सरकारें अपने क्षेत्र मे स्वायत्त है । इसलिये यदि केन्द्र सरकार को राज्यों में हस्तक्षेप करने का वैधानिक दायित्व या कर्त्तव्य उत्पन्न होता है तो उस स्थिति के लिये हमें स्पष्ट रूप से संविधानिक प्रावधान करना होगा और प्रारूप समिति ने इसी उद्देश्य के लिये दो अनुच्छेदों का प्रावधान किया है - 278 और 278-A । साथ ही जिससे यह धारणा न बने कि केन्द्र जानबूझकर या निरंकुश रूप से राज्यों के क्षेत्र में हस्तक्षेप कर रही है, प्रारूप समिति ने अनुच्छेद 277-A का प्रावधान किया है । इस अनुच्छेद के अनुसार संघ सरकार के दो महत्वपूर्ण कर्त्तव्य हैं - एक राज्यों का बाह्य आक्रमण और आन्तरिक अव्यवस्था से रक्षा करना और दूसरे राज्यों के संविधानिक तंत्र के विफल होने पर उस राज्य के शासन को अपने हाथो मे ले लेना । इसी तरह की व्यवस्था अमेरिका, आस्ट्रेलिया आदि के संविधानों में है । डा. अम्बेडकर ने कहा कि हमने केवल इस बात को स्पष्ट रूप से लिख दिया है कि राज्यों के संविधानिक तत्र के विफल होने पर उस राज्य का संविधान राष्ट्रपति द्वारा चलाया जायेगा। यह केन्द्र का अधिकार नही है, वरन् उसका संविधानिक उत्तरदायित्व है । यह केन्द्र का हस्तक्षेप नहीं होगा, यह केन्द्र की निरंकुशता नही होगी, यह केन्द्र की मनमानी नहीं होगी । प्रान्तों के क्षेत्र में समय पर हस्तक्षेप करना केन्द्र सरकार का एक परम दायित्व है जिसे केन्द्र सरकार को ठीक से निभाना है।[6]

डा. अम्बेडकर के अनुसार इन अनुच्छेदो के द्वारा जो परिवर्तन किये गये है वे इस प्रकार के हैं - (i) राष्ट्रपति को तभी कोई कार्यवाही करनी है जब उसे राज्यपाल की रिपोर्ट प्राप्त हो जाय। इस सम्बन्ध में वह "अन्यथा" स्वविवेक पर भी कार्य कर सकता है । (ii) अनुच्छेद 277-A मे राष्ट्रपति का यह कर्त्तव्य (duty) और दायित्व (obligation) है कि राज्य के संविधानिक तंत्र के विफल होने पर वह तत्काल कार्यवाही करे । (iii) राज्यपाल यदि रिपोर्ट न भी दे तो भी राष्ट्रपति कोई कदम उठा सकता है, यदि वह अपने कर्त्तव्यों और उत्तरदायित्वों के सम्पादन में ऐसा करना उचित समझे । यदि राष्ट्रपति को अपने आप यह सूचना प्राप्त हो जाय या ऐसी सूचना उसके पास लगातार इकट्ठी होती जाय कि राज्यपाल के रिपोर्ट न मिलने के बावजूद किसी राज्य की स्थिति इतनी बिगड़ चुकी हो कि उस राज्य का संविधानिक तंत्र विफल हो चुका हो तो राष्ट्रपति स्वविवेक और स्वयं की पहल पर उस राज्य के संवैधानिक तंत्र के विफल होने की घोषणा करके राष्ट्रपति

शासन लागू कर सकता है (इस सम्बन्ध में हाल का उदाहरण दिया जा सकता है, जब बाबरी मस्जिद के ढहाये जाने के बाद तीन राज्यों में राष्ट्रपति शासन लागू कर दिया गया, यद्यपि इन राज्यों के राज्यपालों ने ऐसी कोई रिपोर्ट नहीं दी थी । बाद में केन्द्र सरकार ने इन राज्यों के राज्यपालो को रिपोर्ट भेजने का आदेश दिया) । (IV) एक महत्वपूर्ण परिवर्तन अनुच्छेद 278 के द्वारा यह किया गया कि या पार्लियामेंट या संसद अन्य किसी संस्था को कानून निर्माण का अधिकार प्रतिविहित (प्रदत्त) (delegate) कर सकती है । पुराने अनुच्छेद मे यह व्यवस्था थी कि राज्य के लिए कानून निर्माण का कार्य संसद द्वारा ही किया जना था । किन्तु संसद पर विधायन का कार्यभार इतना अधिक होता है कि शायद वह राज्यों के लिये कानून निर्माण के लिये समय न निकाल सके । इसलिये नये अनुच्छेद में यह व्यवस्था की गयी है कि संसद चाहे तो राज्यो के लिये स्वयं कानून बनाये या इस अधिकार को अन्य किसी संस्था को डेलीगेट कर दे । (V) ऐसी उद्घोषणा केवल दो माह तक चलेगी और उसके बाद समाप्त हो जायेगा । किन्तु यदि दो माह की समाप्ति के पूर्व पार्लियामेंट संकल्प पारित कर इसकी अवधि को आगे बढ़ा दे, तो यह उसके बाद 2 माह तक चलेगी । इस प्रकार दो-दो माह मे बढ़कर इसकी अवधि अधिकतम 3 वर्ष के लिये बढ़ायी जा सकेगा उसके बाद न तो संसद और न राष्ट्रपति इस अवधि को आगे बढ़ा सकते हैं ।

अनुच्छेद 278-A में संसद प्रान्त के लिये कानून बना सकती है या यह अधिकार राष्ट्रपति या अन्य किसी अधिकारी को डेलीगेट कर सकती है । यह नयी व्यवस्था पहले नही थी । [7]

अनुच्छेद 278-A एक सामान्य प्रक्रियात्मक परिवर्तन है । केन्द्र द्वारा बनाये गये कानूनों को लागू करने का अधिकार केन्द्रीय सरकार के अधिकारियों और कर्मचारियो को या फिर राज्य सरकार के अधिकारियों और कर्मचारियों को या दोनों को दिया जा सकता है ।

अनुच्छेद 278-A (I) (c) नया वाक्यांश है इसमें प्रान्त के लिये राष्ट्रपति द्वारा बजट पारित करने का प्रावधान है । पुराने अनुच्छेद में प्रान्त के लिये बजट बनाने और उसे स्वीकृति प्रदान करने की कोई व्यवस्था नहीं थी । यदि संसद का अधिवेशन न हो रहा हो तो राष्ट्रपति राज्य की संचित निधि में से खर्च करने की स्वीकृति दे सकता है ।

अनुच्छेद 278-A (I) (d) स्वयं में स्पष्ट है, जब संसद का अधिवेशन न हो रहा हो और किसी राज्य में राष्ट्रपति शासन लागू किया गया हो तो राष्ट्रपति को उस राज्य के शासन को चलाने के लिये अध्यादेश जारी करने का अधिकार है । ऐसा राष्ट्रपति अनुच्छेद 102 के अन्तर्गत कर सकता है । ऐसा अध्यादेश सामान्य स्थितियों में केन्द्र के लिये जारी किया जाता है, किन्तु राज्य में राष्ट्रपति शासन लागू होने पर ऐसा अध्यादेश राष्ट्रपति द्वारा राज्य के लिये भी जारी किया जा सकता है । [8]

इसके बाद संविधान सभा में विस्तार से वाद विवाद हुआ । श्री हरिविष्णु कामथ ने कहा कि राज्यपालों को स्वविवेकी अधिकार बिल्कुल नहीं मिलने चाहिए । उन्होंने कहा कि अनुच्छेद 277-A में राज्यों को बाह्य आक्रमण, आन्तरिक अव्यवस्था से बचाने और संवैधानिक तंत्र के विफल होने की स्थिति में राष्ट्रपति के जो दायित्व निर्धारित किये गये हैं, उनसे वे पूर्णतया सहमत हैं किन्तु वे इस बात से सहमत नहीं है कि जब तक आन्तरिक अव्यवस्था या गड़बड़ी का बहाना बताकर केन्द्र सरकार राज्यो के क्षेत्र मे हतक्षेप करे । शान्ति और व्यवस्था स्थापित करने का कार्य राज्य सरकार का है, केन्द्र का नही, केन्द्र का हस्तक्षेप तभी आरम्भ होना चाहिए जब किसी राज्य पर वाह्य आक्रमण का भय हो और जिसमें पुलिस की सहायता के लिये जल, थल, नभ सेना की आवश्यकता पड़े । अनुच्छेद 277 गलत दिशा निर्देश देता है, केन्द्र को क्या राज्य में होने वाली हर गड़बड़ी को रोकने के लिये हस्तक्षेप करना चाहिए? तब फिर राज्य स्वायत्त इकाइयां कहां रह जायेंगी? श्री कामथ ने डा. अम्बेडकर की उस समय भी आलोचना की जब उन्होंने कहा कि राज्यपाल की रिपोर्ट न मिलने पर भी राष्ट्रपति अपनी पहल पर राज्यों में हस्तक्षेप कर सकता है । यह केद्र की घोर तानाशाही प्रवृत्ति का परिचायक है । कामथ ने कहा कि हम हाल में अंग्रेजो की दासता से मुक्त हुए है। केन्द्रीकरण के नाम पर अंग्रेजों ने लोगों की आजादी, प्रान्तों की स्वायत्तता छीन ली थी और आज फिर से संविधान सभा में डा अम्बेडकर और उनके साथ कांग्रेस का एक बड़ा वर्ग केन्द्र सरकार को निरंकुश अधिकार प्रदान करना चाह रहा है । इन अनुच्छेदों को इस प्रकार से तोड़ा मरोड़ा जा रहा है कि राज्यो की स्वायत्तता और नागरिकों की आजादी छिन जायेगी ।

श्री हरिविष्णु कामथ ने डा. अम्बेडकर और कतिपय अन्य नेताओं के इस प्रयास को "संविधानिक अपराध" (Constitutional Crime) कहा । हम संविधान, संविधान की लोकतंत्रीय और संघात्मक भावना के साथ खिलवाड़ कर रहे हैं । केंद्रीय सरकार को राज्यों के क्षेत्र में हस्तक्षेप के इतने व्यापक अधिकार नही देना चाहिए । मंत्रिमंडल का बहुमत समाप्त हो जाना, मंत्रिमंडल के विरुद्ध विधान सभा में अविश्वास प्रस्ताव का पास हो जाना कोई संविधानिक तंत्र की विफलता नहीं है । इसका समाधान लोकतंत्रीय तरीके से ही होना चाहिए । ऐसी अवस्था में राज्यपाल को विधान सभा भंग करके नये निर्वाचन का आदेश देना चाहिए । यह प्रक्रिया स्वस्थ लोकतंत्रीय प्रक्रिया है ।

श्री कामथ ने टी.टी. कृष्माचारी को उद्धृत करते हुए कहा कि जर्मनी मे जो संकटकालीन प्रावधान थे उनसे भारतीय संविधान निर्माताओं ने प्रेरणा ली है, और संविधान के प्रारूप में ये प्रावधान जर्मनी के वेईमार (weimar) संविधान से मिलते जुलते हैं । वेईमार संविधान में संकट काल का सामना करने के लिये ऐसे ही प्रावधान रखे गये थे । हरिविष्णु कामथ ने कहा कि इन्हीं प्रावधानों की सहायता से हिटलर वेईमार गणतंत्र की हत्या कर सका और वह जर्मनी का तानाशाह बन बैठा । [9]

प्रोफेसर शिबन लाल सक्सेना ने इस बात से प्रसन्नता व्यक्त की प्रारुप समिति और डा. अम्बेडकर अनुच्छेद 128 को समाप्त कर रहे हैं । उनकी राय में राज्य के संविधानिक तंत्र की विफलता की उद्घोषणा करने का अधिकार राज्यपाल को कदापि नहीं दिया ज सकता, यह अधिकार राष्ट्रपति का है । श्री सक्सेना ने कहा कि अनुच्छेद 278 के अंतर्गत हम राष्ट्रपति को बहुत अधिक शक्ति दे रहे है । राष्ट्रपति को राज्यपाल से रिपोर्ट मिलने पर या अन्यथा वह राज्य में संविधान की विफलता की उद्घोषणा कर सकता है । यदि राष्ट्रपति को यह जानकारी प्राप्त हो जाय (चाहे राज्यपाल रिपोर्ट दे या न दे) कि किसी राज्य का शासन संविधान के अनुसार नहीं चलाया जा सकता है तो वह ऐसी उद्घोषणा करके उस राज्य का संविधान अपने हाथो में ले सकता है। अनुच्छेद 277-A में कहा गया है कि संसद का यह दायित्व होगा कि वह वाह्य आक्रमण अथवा आन्तरिक अव्यवस्था या "गड़बड़ियॉ" (Internal dısturbance) से उस राज्य की रक्षा करे । किन्तु यह शब्द "गड़बड़ियॉ" बहुत व्यापक शब्द है । अनुच्छेद यह नहीं कहता कि राज्य में अराजकता (chaos) या गम्भीर आपात (Grave emergency) के उत्पन्न होने पर ही संसद ऐसा कर सकता है । वह किसी सामान्य गड़बड़ी या अव्यवस्था के आधार पर भी ऐसा कर सकती है । इसलिये जो अधिकार अनुच्छेद 278 के अन्तर्गत दिये गये हैं, वे बहुत ही व्यापक हैं। शिबनलाल सक्सेना ने यह स्वीकर किया कि यह अनुच्छेद इस दृष्टि से उचित है कि भारतीय संसद ही अंतिम और सर्वोच्च विधायनी शक्ति है और वह एक सम्प्रभु विधायिनी संसद है जिसे देश के किसी भाग के लिये कानून बनाने का अधिकार है । राष्ट्रपति को केवल दो माह तक का किसी राज्य के शासन को चलाने का अधिकार दिया गया है । इसके बाद उस उद्घोषणा को संसद मे रखना होगा और इसके लिये स्वीकृति प्रात करनी होगी । संसद से स्वीकृति प्राप्त करने के बाद ही इस घोषणा की अवधि और आगे बढ़ाई जा सकती है । इस आधार पर वे अपने मित्र हरिविष्णु कामथ का पूर्ण समर्थन नही कर सकते और न इस अनुच्छेद की पूरी तरह आलोचना करने के लिये ही तैयार है । किन्तु श्री शिबन लाल सक्सेना ने यह भी स्वीकार किया कि वे सोचते हैं कि इस अनुच्छेद के द्वारा हम राज्यो की स्वायत्तता को समाप्त कर रहे है । इससे राज्यों की स्वायत्तता एक दिखावटी स्वायत्तता मात्र रह जायेगी । श्री सक्सेना ने आगे कहा कि ये अनुच्छेद 1935 के अधिनियम की हूबहू नकल है जिसकी राष्ट्रीय आन्दोलन के दौरान कड़ी आलोचना की गई थी और आज हम फिर उन्हीं प्रतिक्रियावादी प्रावधानों को अपनाकर राज्यों की स्वायत्तता को कम कर रहे है। श्री शिबन लाल सक्सेना ने कहा कि "Otherwise" अन्यथा शब्द को हटा देना चाहिए । राष्ट्रपति को राज्य में संविधानिक तंत्र की विफलता की घोषणा तभी करनी चाहिए जब राज्यपाल से इस सम्बन्ध में रिपोर्ट प्राप्त हो जाय, अन्यथा नहीं । राज्यपाल राष्ट्रपति का मनोनीत अधिकारी है, उस पर राष्ट्रपति को विश्वास रखना चाहिए कि वह राज्य की स्थिति के बारे में सही रिपोर्ट देगा । यदि राज्यपाल सही रिपोर्ट नहीं देता है, तो राष्ट्रपति को उसको हटाकर दूसरे राज्यपाल की नियुक्ति का अधिकार है । यदि राज्यपाल केंद्र सरकार का विरोधी हो जाता है, केंद्र के विरोध में कार्य करने लगता है तो राज्यपाल को उसे हटाने का अधिकार है, किन्तु

जब तक राज्यपाल रिपोर्ट न दे, राष्ट्रपति को उस राज्य में संविधानिक आपात की उद्घोषणा का अधिकार नही है। यदि राष्ट्रपति संसद और गवर्नर ऐसी आपात की उद्घोषणा करके किसी राज्य के शासक बन बैठते है तो फिर प्रान्तीय स्वायत्तता और संघ व्यवस्था का कोई अर्थ नही रह जाता है। यदि प्रारूप समिति का उद्देश्य देश में एकात्मक शासन और एकात्मक संविधान की स्थापना करना है तो अलग बात है । किन्तु जब हम संघीय व्यवस्था की स्थापना करने जा रहे हैं तो हमें राज्यों को सम्मानित स्थिति प्रदान करनी चाहिए । हमें राज्यों को स्वायत्तता प्रदान करनी चाहिए ।

शिब्बन लाल सक्सेना ने कहा कि दो-दो माह करके आपात काल की अवधि अधिकतम 3 वर्ष तक बढ़ायी जा सकती है और ऐसा राष्ट्रपति द्वारा राज्यपाल के रिपोर्ट पर या स्वयं के सूचना स्रोतों, जिनमें सी. आई. डी. जैसी भोंडी जासूसू की संस्था भी हो सकती है, से सूचना इकट्ठा कर उस राज्य के लिये आपात काल की उद्घोषणा की गई है । इन तीन वर्षों तक राज्य का मंत्रिमंडल और राज्य के विधान सभा को भग कर दिया जायगा । राज्य की जनता द्वारा कोई चुनी हुई सरकार नही रहेगी, सारी लोकतंत्रीय व्यवस्था पर केन्द्रीय सरकार काबिज रहेगी। इस तरह उस राज्य में 3 वर्षों से भी अधिक समय तक केन्द्र सरकार की निरंकुशता छायी रहेगी । उस राज्य में लोकतंत्र संघीय व्यवस्था और राज्यो की स्वायत्तता समाप्त हो जायेगी।

इसलिये लोकतंत्रीय व्यवस्था को कायम रखने के लिये यह जरूरी है कि उस राज्य में आपात की तत्काल उद्घोषणा के बाद निर्वाचन की घोषणा होनी चाहिए और निर्वाचन के परिणाण आते ही राज्य में संविधानिक आपात को समाप्त कर दिया जाना चाहिए । इसलिए अनुच्छेद के इस प्रावधान (4) को हटा दिया जाना चाहिए जिससे कि किसी राज्य में 3 वर्ष तक केन्द्र का नाजायज शासन कायम न रहे । संविधान सभा का दायित्व है कि वह राज्यों में लोकतंत्र को बनाये रखे । यदि राष्ट्रपति अर्थात् केन्द्र सरकार तीन-तीन वर्ष तक किसी राज्य में अपना वर्चस्व स्थापित किये रहे, मनमाने शासन करती रहे तो फिर राज्यो की स्वायत्तता संघीय व्यवस्था और लोकतंत्र की दफना देना ही बेहतर होगा । प्रोफेसर शिबन लाल सक्सेना ने पश्चिम बंगाल का उदाहरण दिया जहाँ यही सब कुछ हुआ । उन्होंने कहा कि उनके विचारों का समर्थन करने वालों मे न केवल हरिविष्णु कामथ जैसे लोग है किन्तु ढेर सारे लोग ऐसे विचारों के है । डा. गोविद वल्लभ पंत और हृदयनाथ कुंजरू ने भी इस विचार का समर्तन किया है और उन्होंने इस सम्बन्ध मे एक संशोधन भी पेश किया है । [10]

इसके बाद कर्नल बी. एच. जैदी (रामपुर, बनारस) ने अपने विचार व्यक्त किये । उन्होंने कहा कि संविधान सभा के अधिकांश सदस्य वकील होने के कारण बाल की खाल उधेड़ने में लगे हुए है । उन्होने जार्द बर्नाड शा को उद्धृत करते हुए कहा कि संविधान सभा के अधिकांश सदस्य बहुत भला व्यक्ति होना एक खतरनाक बात है । इसी प्रकार से किसी देश के लिये अत्यधिक लोकतंत्रीय होना भी खतरनाक है । इससे देश में विघटन का खतरा बढ़ जाता है । भारत में भूतकाल में विच्छेद की समस्या प्रमुख रही है । प्रान्तीय क्षेत्र में केन्द्र के प्रति अक्सर विद्रोह की भावना पनपती रही है। इस कारण भारत में एक शक्तिशाली राष्ट्रीयता

की भावना विकसित नहीं हो सकी है । राष्ट्रपति को राज्यपालों को निकालने की आवश्यकता नही है किन्तु प्रान्तों की अराजकता पर अंकुश लगाने की आवश्यकता है । प्रान्तो की हालत कभी-कभी इतनी बदतर हो जाती है कि केन्द्र के हस्तक्षेप के बिना अन्य कोई चारा नहीं रह जाता । राष्ट्रपति और अन्य किसी संस्था के तब तक निरंकुश होने की आशंका नही है जब तक कि लोग अपने अधिकारो के प्रति जागरूक है और इन अधिकारों के लिये संघर्ष करना जानते हैं । 11

डा. पी. एस. देशमुख (सी. पी. और बरार) ने कहा कि इन अनुच्छेदों पर डा. अम्बेडकर विस्तार से वाद विवाद कराये जाने की आवश्यकता महसूस करते है । प्रथम प्रारूप में जैसी स्थिति थी, जो प्रावधान किये गये थे, उनमें यहॉ आमूल परिवर्तन किया जा रहा है । सबसे मुख्य परिवर्तन यह है कि हमने किसी प्रान्त के राज्यपाल के हाथ में राज्य के संवैधनिक तंत्र की विफलता पर कोई स्वविवेकी अधिकार नहीं छोड़े हैं, हमने सारे अधिकार राष्ट्रपति और संसद में केन्द्रित किये है और राज्यपाल को केवल प्रान्त की स्थिति पर रिपोर्ट करने के लिये कहा है । इसलिये यह व्यवस्था न केवल संघात्मक नहीं है, वरन् यह व्यवस्था अव्यावहारिक भी है । इससे कोई प्रशासनिक लाभ मिलने की गुंजाइश नही है । इस व्यवस्था के अतर्गत हम संसद का कार्यभार बहुत ज्यादा बढ़ा देंगे । वैसे ही वर्तमान में संसद का कार्यभार बहुत अधिक है । श्री देशमुख ने कहा कि वे एकात्मक संविधान और केन्द्रीकृत व्यवस्था के समर्थक हैं । किन्तु वर्तमान संविधान न संघात्मक है, न एकात्मक, यह दोनों की खिचड़ी है । श्री देशमुख ने कहा कि आप राज्य के मंत्रिमंडल और व्यवस्थापिका सभी को भंग करके सारे अधिकार राष्ट्रपति और संसद को देना चाहते है, जो उचित नहीं है ।

इस पर श्री महावीर त्यागी ने प्रश्न किया कि राज्यपाल तो निर्वाचित नहीं होगा, वह राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत किया जायेगा । इस पर डा. देशमुख ने कहा कि इससे तो राज्यपाल का महत्व और अधिक बढ़ जाता है । इसलिये भी राष्ट्रपति को राज्यपाल में और अधिक विश्वास रखना चाहिए कि स्वयं राष्ट्रपति ने उसकी योग्यता के कारण उसे मनोनीत किया है । वह यदि निर्वाचित होता हो वह केद्र से स्वतंत्र होकर कार्य करता किन्तु वह मनोनीत अधिकारी होने से मनमाने कार्य नहीं करेगा । वह स्थिति का सही आकलन करने के बाद राष्ट्रपति को प्रान्त के बारे में रिपोर्ट देगा । राज्यपाल को प्रान्तो में गड़बड़ी अव्यवस्था होने पर स्थिति को सुधारने का पूरा-पूरा अवसर मिलना चाहिए, और उसकी रिपोर्ट के आधार पर ही राष्ट्रपति को राज्य के संवैधानिक तंत्र के विफल होने की घोषणा करनी चाहिए । राज्यपाल को प्रान्त की स्थिति की जानकारी, राष्ट्रपति या संसद की तुलना में बहुत अधिक होती है । वह प्रान्त के राजनीतिक जीवन मे उठा पटक को नजदीक से देखता है । राष्ट्रपति या संसद राज्य की राजनीति से दूर होते है ।

श्री देशमुख ने कहा कि व्यावहारिक दृष्टि से भी इस सुझाव मे ढेर सारी कठिनाईयॉ है । किसी प्रान्त के शासन में ढेर सारी दिक्कतें उठती है, कभी-कभी इन कठिनाईयों का समाधान करना अत्यधिक कठिन होता है । यदि राज्यपाल को स्वयं संविधानिक तंत्र की विफलता की घोषणा करने का अधिकार न दिया जाये तो

वह केवल राष्ट्रपति को यह रिपोर्ट देकर चुप बैठ जायगा कि उस राज्य का संविधानिक तत्र विफल हो गया है और राज्य में संविधानिक तंत्र लागू किया जाय । इसके बाद उस प्रान्त का शासन चलाने की जिम्मेदारी राष्ट्रपति की हो जाती है और उस राज्य के लिये कानून बनाने का कार्यभार संसद पर पड़ता है, और पार्लियामेंट के सैकड़ों सदस्य मिलकर जब उस प्रान्त के बारे में विचार करने लगते है तो वाद विवाद के दौरान जो वाक युद्ध आरम्भ होता है, वह दृश्य ही निराला होता है । स्थिति बड़ी निराशाजनक बन जाती है । यह व्यवस्था विवेकपूर्ण नहीं है । श्री देशमुख ने कहा कि हरिविष्णु कामथ ने बड़ी उग्र भाषा का प्रयोग किया है । फिर भी उनके कथन में सार है, इसलिये वे उनके भाषण से, उनके तर्कों से बहुत दूर तक सहमत है । श्री देशमुख ने यह विचार व्यक्त किया कि "Otherwise" शब्द गलत है । राज्यपाल को उस राज्य की स्थिति का पूरा आकलन करने देना चाहिए और राज्यपाल की रिपोर्ट के आधार पर ही राष्ट्रपति को संविधानिक तंत्र की विफलता का आपात घोषित करना चाहिए । बिना राज्यपाल की रिपोर्ट के यदि राष्ट्रपति उस राज्य मे कूद पड़े और जल्दबाजी में वहाँ आपात की घोषणा कर दे तो यह पूर्णतया अवाछित और अनुचित होगा।

अनुच्छेद 277-A का कहना है कि केन्द्र सरकार का दायित्व है कि वह यह देखे कि किसी राज्य का संविधानिक तंत्र विफल तो नहीं हुआ है और उस राज्य को आन्तरिक अव्यवस्था और वाहृय आक्रमण से सुरक्षा प्रदानकरे । किन्तु इन उद्देश्यों के लिये राज्य की शासन व्यवस्था को भंग करने की क्या आवश्यकता है । इसलिये प्रारूप समिति ने अनुच्छेद 278 का सहारा लेकर किसी राज्य के संविधानिक तंत्र की विफलता को घोषित करके उस राज्य को राष्ट्रपति शासन मे लाने की व्यवस्था की है और राष्ट्रपति को व्यापक अधिकार दिये हैं । 1935 के संविधान में धारा 93 के द्वारा राज्यपाल को ऐसे अधिकार दिये गये थे । अब राज्यपाल से इन अधिकारों को छीनकर राष्ट्रपति और संसद को दिये जा रहे है । व्यावहारिक दृष्टि से राष्ट्रपति और संसद का भार बहुत अधिक बढ़ जायगा विशेषकर तब जब एक से अधिक राज्यो मे राष्ट्रपति शासन लगाया जाय। इतने राज्यों के लिये राष्ट्रपति को कानून बनाना होगा और इनका शासन राष्ट्रपति को चलाना होगा । क्या राष्ट्रपति और संसद के लिये इतना अधिक भार उठाना सम्भव हो सकेगा ? यहॉ श्री देशमुख ने श्री जैदी के विचारों से अपनी सहमति व्यक्त की है कि हमें अधिक व्यावहारिक होना चाहिए । 1935 के अधिनियम की धारा 93 इन वर्षों में गवर्नरों द्वारा सफलता पूर्वक क्रियान्वित होती रही । द्वितीय महायुद्ध की अस्त-व्यस्तता के बावजूद गवर्नर जनरल और केन्द्रीय व्यवस्थापिका को किसी प्रान्त का शासन अपने हाथों में लेने की आवश्यकता नहीं रही । इन प्रान्तों का शासन गवर्नर मजे में चलाते रहे ।

इसलिये श्री देशमुख ने कहा कि सर्वप्रथम संवैधानिक तंत्र की विफलता की घोषणा होने पर राज्यपाल उस राज्य का शासन चलाये । राष्ट्रपति और संसद इसमे किसी प्रकार का हस्तक्षेप न करे । जब प्रान्तीय शासन की स्थिति बहुत अधिक बिगड़ चुके तभी राष्ट्रपति और संसद को हस्तक्षेप करना चाहिए । उसी समय अनुच्छेद 278 लागू किया जाय तो किसी को कोई आपत्ति नही होगी ।

डा. अम्बेडकर ने कहा था कि अमेरिका और आस्ट्रेलिया के संविधानो मे भी ऐसी ही व्यवस्था है । किन्तु देशमुख ने अम्बेडकर का खंडन करते हुए कहा कि इन देशों के संविधान मे संकटकाल (emergency) का कोई प्रावधान नहीं है । डा. अम्बेडकर यह आश्वासन देना चाहते थे कि केन्द्र राज्यों के क्षेत्र में हस्तक्षेप नहीं करेगा किन्तु हमारे पूरे संविधान में ही इस प्रकार का आश्वासन निहित है । हमें अलग से आश्वस्त करने की आवश्यकता नहीं है । यदि इस संविधान को सफलता पूर्वक चलना है तो प्रान्तो की स्वायत्तता का सम्मान करना ही होगा, चाहे उस सम्बन्ध में हम स्पष्ट आश्वासन दें या न दें । यदि केन्द्र ही संविधान की मान्यता का आदर नहीं करेगा तो फिर कौन संविधान का आदर करेगा । इसलिये डा. अम्बेडकर विदेशी संविधानो का उदाहरण देकर आश्वस्त करने का प्रयास कोई मायने नहीं रखता । किन्तु श्री देशमुख कहते है कि डा. अम्बेडकर इन संविधानों से कोई ऐसे उदाहरण नहीं दे सके जो अनुच्छेद 277-A, 278 से मेल खाये । अमेरिका और आस्ट्रेलिया के संविधानों में ऐसे प्रावधान नहीं है। भारतीय सविधान में ही इनकी सर्वप्रथम व्यवस्था की गई है। इन अनुच्छेदों के द्वारा हम प्रान्तीय व्यवस्थापिकाओं और प्रान्तीय मंत्रिमंडलों के अधिकारो को छीन ले रहे हैं । ऐसी व्यवस्था अच्छे प्रशासन में सहायक नहीं हो सकती।[12]

इसके बाद श्री राजबहादुर (युनाइटेड स्टेट्स आफ मत्स्य) ने अपने विचार रखे। उन्होंने अनुच्छेद 277 और 278 का समर्थन करते हुए कहा कि राज्य की रक्षा सम्पूर्ण राष्ट्र का दायित्व है । वह किसी संस्था या व्यक्ति विशेष का दायित्व नहीं है । फिर उन्होंने अव्यवस्था या गड़बड़ी (disturbance) और बलवा, विप्लव या विद्रोह (chaos) में अन्तर स्थापित करने का प्रयत्न किया । इनके बीच कोई स्पष्ट अन्तर स्थापित नहीं किया जा सकता है । कोई सामान्य अव्यवस्था या गड़बड़ी यदि समय पर न रोकी जाय तो वह एक विद्रोह या बलवे में परिणत हो सकती है । इसलिये किसी भी प्रकार की गड़बड़ी के प्रति केन्द्र सरकार को नजर रखना चाहिए और समय रहते हस्तक्षेप करना चाहिए जिससे वह एक बेसम्हाल विद्रोह का रूप धारण न कर ले । श्री राजबहादुर नें कहा कि कामथ ने बड़े हल्के-फुल्के ढंग से आलोचना की है किन्तु कोई रचनात्मक सुझाव नहीं दिया है । हमें अवश्य ही इन रचनात्मक सुझावों का स्वागत करना चाहिए । हमें यह भी मानना चाहिए कि राज्यों का संवैधानिक तंत्र न केवल अव्यवस्था, आंतरिक संकट आदि से टूट सकता है, वरन् उसके और बहुत से कारण हो सकते है । फ्रान्स में आये दिन सरकारें बदलती रहती है, ऐसी स्थिति में राष्ट्रपति को तब तक शासन की बागडोर अपने हाथ में ले लेनी चाहिए जब तक कि राज्य का शासन फिर से व्यवस्थित ढंग से न चलने लगे । इसी प्रकार किसी प्रान्त में वित्तीय व्यवस्था टूट सकती है । न्यू फाउन्डेलैंड का ताजा उदाहरण हमारे सामने है । इस प्रान्त की आर्थिक स्थिति चरमरा गयी थी, जिसके कारण उसे सहायता के लिये ब्रिटिश सरकार को अपील करनी पड़ी थी । ब्रिटिश संसद ने हस्तक्षेप किया, सहायता और न्यूफाउन्डलैड अपने पैरों पर खड़ा होकर अपनी इच्छा से केनाडा का एक प्रान्त बना ।

श्री राजबहादुर ने कहा कि कामथ का राष्ट्रपति के प्रति संदेह निरर्थक है । राष्ट्रपति हमारे ब्बीच से ही होगा, हम ही उसका चुनाव करेंगे। जहां कामथ ने कहा कि ये अनुच्छेद लुकाछिपी के प्रयास है, वास्तविकता को ढाँपने के प्रयास हैं, वहीं राजबहादुर ने कहा कि इसके बिल्कुल विपरीत ये अनुच्छेद हमारे लोकतंत्र की रक्षा के लिये हैं। संकट काल में लोकतंत्र और नागरिक स्वाधीनता की रक्षा के लिये यह आवश्यक है। श्री राजबहादुर ने कहा कि राष्ट्रपति को न केवल राज्यपाल से रिपोर्ट मिलने पर किन्तु अन्य स्त्रोतो से सूचना प्राप्त होने पर उस राज्य में संविधानिक तंत्र के विफल होने की घोषणा करने का अधिकार है । यह अवश्य है कि ऐसी स्थिति में राष्ट्रपति मंत्रिपरिषद के परामर्श से कार्य करेगा । इसलिये यह शब्द "Otherwise" जरूरी है । संविधान में हमें ऐसी व्यवस्था करनी चाहिए कि किसी भी आसन्न संकट का सामना किया जा सके । [13]

इसके बाद श्री अल्लादी कृष्णस्वामी अय्यर (मद्रास-सामान्य) ने अपने विचार व्यक्त किये । उनके अनुसार इस अनुच्छेद को इसलिये रखा गया है जिससे संघ सरकार संविधान की रक्षा करने के अपने दायित्व को निभा सके। इसलिये यदि इस दायित्व को समझा जाये तो कोई यह नही कह सकेगा कि संघ प्रान्तीय सरकारों के क्षेत्र में हस्तक्षेप कर रहा है क्योंकि प्रान्तों का संविधान अंततः संघ संविधान का ही एक अंग है । वाह्य आक्रमण, आन्तरिक अव्यवस्था और राज्यों के संविधानों की विफलता मे संघ सरकार का न केवल अधिकार है, वरन् दायित्व भी है कि वह ऐसी स्थिति में समुचित कदम उठाये । संघ उस समय हस्तक्षेप नही करेगा जब किसी राज्य का शासन उत्तरदायी शासन के सिद्धान्तों के अनुसार चलाया जा रहा है । संयुक्त राज्य अमेरिका में प्रान्तों या संघ की इकाईयों को पूर्ण स्वायत्तता प्रदान की गई है, किन्तु वहॉ भी वाह्य आक्रमण या आन्तरिक अव्यवस्था की स्थिति में संघ सरकार का अधिकार और कर्त्तव्य है कि वह राज्यो को इन स्थितियों में सुरक्षा प्रदान करे । संविधानिक तंत्र की विफलता में भी वह राज्यों के क्षेत्र में हस्तक्षेप करेगा । किन्तु संघ सरकार दैनन्दिन बातों में राज्य के क्षेत्र मे हस्तक्षेप नहीं करेगा । उन्होंने इस अनुच्छेद की प्रक्रिया पर विस्तार से प्रकाश डालते हुए डा. अम्बेडकर का समर्थन किया। [14]

इसके बाद श्री बी. एम. गुप्ते (बम्बई-सामान्य) ने अपने विचार व्यक्त किये और श्री कामथ और श्री सक्सेना का समर्थन करते हुए अनुच्छेद 188 को समाप्त करने के लिये कहा । उन्होने कहा कि फ्रान्स और भारत की तुलना नहीं की जा सकती । फ्रान्स एक पूर्ण वयस्क लोकतंत्र है और भारतीय लोकतंत्र एक नवजात शिशु है और शैशवावस्था में लोकतंत्र को समर्थन देने की बहुत अधिक आवश्यकता है । अनुच्छेद 278 का बहुत सोच समझकर प्रयोग होना चाहिए और इस बात का प्रयास होना चाहिए कि इन असाधारण शक्तियों के प्रयोग की कोई आवश्यकता ही न रह जाय । [15]

श्री के संथानम (मद्रास - सामान्य) ने कहा कि अनुच्छेद 278 और 278-A संविधान के अत्यधिक महत्वपूर्ण अंश हैं, यद्यपि कई आलोचक इन्हें संविधान का घृणास्पद अंश भी कहते है क्योंकि इनकी तुलना 1935 के अधिनियम की धारी 93 से की जाती है। इस अधिनियम में राज्यपालो को स्वविवेकी अधिकार

दिये गये थे । अनुच्छेद 188 में भी यही प्रावधान था । अब इन प्रावधानों को समाप्त किया जा रहा है । कृष्णस्वामी अय्यर ने यह स्पष्ट करने का प्रयास किया कि राष्ट्रपति स्वविवेक से कार्य नहीं करेगा । वरन् वह अपने मंत्रिपरिषद के परामर्श से कार्य करेगा । इसलिये अनुच्छेद 278 और 278-A मे लोकतंत्र को समाप्त करने की कोई बात नहीं है, इन अनुच्छेदों के अन्तर्गत राज्य की व्यवस्थापिका, कार्यपालिका का स्थान केन्द्रीय कार्यपालिका और केन्द्रीय व्यवस्थापिका (संसद) ले लेते है और केन्द्रीय कार्यपालिका और संसद दोनों ही उतनी लोकतंत्रीय संस्थाएं हैं, जितनी कि राज्य की कार्यपालिका और व्यवस्थापिका । अतएव इन अनुच्छेदों के लागू होने पर लोकतंत्रीय व्यवस्था प्रभावित नहीं होती । इसके अतिरिक्त हमे यह नहीं भूलना चाहिए कि संसद और केन्द्रीय मंत्रीमंडल में राज्य के प्रतिनिधि होते हैं । जिस राज्य में संविधानिक आपात लागू होगा, उस राज्य के ये प्रतिनिधि उस राज्य के हितों की रक्षा करेंगे । इस प्रकार राज्य के प्रतिनिधियों से उस राज्य के शासन को नही छीना । वे संसद और केन्द्रीय मंत्रिमंडल के माध्यम से राज्य का संविधान चलाते ही रहते है । परिवर्तन केवल यही होता है कि राज्य में संविधानिक तंत्र की विफलता की स्थिति राज्य के विधानमण्डल और मंत्रिमंडल के प्रतिनिधि अन्य राज्यों के प्रतिनिधियों के साथ मिलकर उस राज्य का शासन चलाते हैं । यही एक बंधन है जो संवैधानिक आपात के अवसर पर लागू होता है और यह बंधन आवश्यक भी है क्योंकि उस राज्य का संवैधानिक तंत्र विफल हो गया है । इसलिये यह कहकर इन अनुच्छेदों की आलोचना नही की जा सकती कि ये लोकतंत्र को समाप्त करने के लिये हैं। अनुच्छेद 278 और 278-A तभी लागू होगा जब किसी राज्य का संविधानिक तंत्र विफल हो गया हो । इन अनुच्छेदों के लागू होने पर भी राज्य का लोकतंत्रीय ढॉचा बना रहेगा । अन्य आधारों पर इन अनुच्छेदों की आलोचना की जा सकती है ।

श्री के. संथानम ने इसके बाद उन परिस्थितियो पर विचार किया, जिनके आधार पर इन अनुच्छेदों को लागू किया जा सकता है । सर्वप्रथम, किसी राज्य मे शासन भौतिक रूप से अस्त-व्यस्त हो सकता है । राज्य में कानून और व्यवस्था बुरी तरह प्रभावित हो सकती है । ऐसी अवस्था में प्रान्तीय सरकार चल ही नहीं सकता। ऐसी स्थिति में केवल केन्द्रीय सरकार ही चल सकती है । इस आधार पर यदि राष्ट्रपति शासन लागू कर दिया जाय तो उसकी आलोचना नहीं हो सकती । ऐसी अवस्था में राष्ट्रपति शासन जरूरी हो जाता है । दूसरी अवस्था राजनैतिक विफलता है - अर्थात् कोई मंत्रिमंडल स्थायी शासन नही दे सकता । आये दिन यदि सरकारें गिरती जायें तो संविधानिक संकट उत्पन्न हो जाता है और ऐसी स्थिति में राष्ट्रपति शासन लागू करने की आवश्यकता होती है । सामान्य स्थितियों में यदि एक के बाद दूसरे मंत्रिमंडल का पतन होता जाये तो सीधा तरीका यही है कि विधान सभा को भंग कर नया चुनाव कराया जाये और इसके बाद भी यदि कोई मंत्रिमंडल बहुमत में न आये तो फिर सरकार और विधान सभा को भंग कर राष्ट्रपति शासन लागू कर देना चाहिए । इन स्थितियों में संविधानिक परम्पराएँ (conventions) बनने देना चाहिए । एक महत्वपूर्ण परम्परा यह है कि हमें इन अनुच्छेदों को लागू करने के पूर्व विधान सभा को भंग कर देना चाहिए । किन्तु इसका

अनुच्छेद के रूप में संविधान में लिखना नहीं चाहिए । क्योंकि कई अवस्थाओं में राज्य मे केन्द्र सरकार के निर्देशन और नियंत्रण में चुनाव कराने की आवश्यकता हो सकती है और थोड़े समय के लिये उस राज्य के शासन को केन्द्र द्वारा चलाने की आवश्यकता हो सकती है। इसी प्रकार राज्य मे आर्थिक आपात की स्थिति उत्पन्न हो सकती है । इसमें भी केन्द्र सरकार हस्तक्षेप कर सकती है । इस अवस्था में उपयुक्त परम्पराओं को विकसित होने देना चाहिए।

इसके बाद पंडित हृदयनाथ कुंजरू ने अपना वक्तव्य दिया। उन्होने इस बात पर प्रसन्नता जाहिर की कि अनुच्छेद 188 को निरस्त किया जा रहा है। यह अनुच्छेद उत्तरदायी शासन के विरुद्ध था। श्री कुंजरू ने कहा कि यदि राज्य में कई छोटे मोटे दल हैं और किसी दल का बहुमत नही है तो विधान सभा भंग कर नया निर्वाचन करने के बाद भी यदि किसी दल को स्पष्ट बहुमत न मिले तो ऐसे राज्य मे राष्ट्रपति शासन लागू करना ही होगा। कुछ विशेष परिस्थितियो में केन्द्र सरकार को राज्यो के क्षेत्र मे हस्तक्षेप करने का अधिकार दिया गया है। निम्न अनुच्छेदों के अन्तर्गत केन्द्र सरकार राज्यो के क्षेत्र मे हस्तक्षेप कर सकती है- 275, 276, 277-A,किन्तु कुंजरू कहते हैं कि आये दिन केन्द्र सरकार को राज्यो के क्षेत्र मे हस्तक्षेप करने का अधिकार नहीं है, इससे राज्यों की स्वायत्तता समाप्त हो जाती है। राज्य सरकारें नगरपालिकाओं की हालत खराब होने पर हस्तक्षेप कर सकते है, किन्तु केन्द्र इस प्रकार से राज्यों के क्षेत्र मे हस्तक्षेप नही कर सकते। राज्य सरकारों की तुलना नगरपालिकाओं से नहीं की जा सकती। श्री कुंजरू ने कहा कि यदि किसी दल का राज्य में बहुमत नही है और कोई सरकार स्थायी रूप से नही चल पा रही है तो सरकार और विधान सभा भग कर नया निर्वाचन कराना चाहिए। निर्वाचकों को यह महसूस होना चाहिए कि स्थिर सरकार प्रदान करना उन्ही का कार्य है न कि केन्द्रीय सरकार का। इस चुनाव के द्वारा निर्वाचकों का प्रशिक्षण होगा। किन्तु यदि बार-बार केन्द्र सरकार राज्यों में संवधानिक अस्थिरता या आपात का बहाना बनाकर राज्यों के क्षेत्र मे हस्तक्षेप करने लगें तो निर्वाचक राजनैतिक रूप से उदासीन हो जायेगे। वे सब केन्द्र सरकार के भरोसे छोड़ राजनीति से अलग हो जायेगे।

हृदय नाथ कुंजरू ने कहा कि लोगों ने राजनैतिक सहभागिता, राजनैतिक जागृति के संस्कार डालने का कार्य केन्द्र सरकार का है। इसके लिये केन्द्र के कर्णधारों में साहस का होना अति आवश्यक है। इसलिये अनुच्छेद 277 A, 278, 278 A जिस पर हम वाद-विवाद कर रहे है, की कोई आवश्यकता नहीं है। इन अनुच्छेदों के रखने का अर्थ है कि हम लोकतंत्रीय व्यवस्था को चलाने की क्षमता नही रखते और लोकतंत्र की दृष्टि मे हम अभी शैशवास्था में है। अनुच्छेद 275 और 276 में सभी बाते समाविष्ट है और इनका उपयोग करके केन्द्रीय सरकार प्रान्तों के क्षेत्र में जब चाहे तब हस्तक्षेप कर सकती है। इसके बाद राज्य की संविधानिक तंत्र की विफल की घोषणा करके कोई लाभ नहीं है और अनुच्छेद 278, 278 -A की कोई आवश्यकता नही है। ये अनुच्छेद संविधान की मूलभूत भावना के विरुद्ध है और इनको रखने से प्रान्तीय मतदाताओं में उत्तरादायित्व की भावना पनप नहीं पायेगी।[16]

श्री कुंजरू ने कहा कि राज्यों को स्वायत्तता प्राप्त है और वे अपने-अपने क्षेत्र में प्रयोग करने, कार्य करने के लिये स्वतंत्र है, इसमें केन्द्र को हस्तक्षेप नही करना चाहिए। इस पर श्री कृष्णाचारी ने पूछा कि उस स्थिति में क्या होगा जब कोई राज्य की सरकार केन्द्र द्वारा अनुच्छेद 275 और 276 के अन्तर्गत उठाये गये कदमों का विरोध करने लगे और इस प्रकार वह प्रान्त संविधान का खुले आम उल्लंघन करने लगे। पंडित हृदयनाथ कुजंरू ने कहा कि कोई प्रान्त ऐसा नहीं कर सकता क्योंकि वह पूर्णतया असंवैधानिक और गैर कानूनी कदम होगा। उस अवस्था में केन्द्र सरकार को राज्य सरकार के क्षेत्र में तुरन्त हस्तक्षेप करने और कार्य वाही करने के पर्याप्त अधिकार होंगे। और अति विषम स्थितियों में वह उस राज्य के विरूद्ध सेना का भी प्रयोग कर सकती है।

इसके बाद श्री कृष्णस्वामी भारथी ने अपने विचार व्यक्त किये। उन्होने डॉ० अम्बेडकर का समर्थन किया। उन्होंने इस बात का समर्थन किया कि अनुच्छेद 188 को समाप्त कर दिया जाय। प्रान्तों में अराजकता को रोकने के लिये यह अनुच्छेद आवश्यक है। गवर्नर उस प्रान्त की स्थिति से पूर्णतया वाकिफ रहते है। राष्ट्रपति प्रान्त से दूर रहता है। इसलिये अनुच्छेद 188 का महत्व है।[17]

इसके बाद श्री नाजिरुद्दीन अहमद ने अपने विचार व्यक्त किये । उनका कहना था कि डॉ० अम्बेडकर को जितना अधिकार प्रदान किया गया था, उससे भी आगे जाकर संविधान मे अवाछनीय क्रान्तिकारी परिवर्तन कर रहे है। वे इन क्रान्तिकारी परिवर्तनों के विरोधी है। इन प्रावधानों के द्वारा गवर्नर और प्रान्तीय मंत्रिमंडलो के अधिकार छीने जा रहे हैं। राष्ट्रपति शासन मंत्रियों, और विधायकों को गैर जिम्मेदार बना देगा। मंत्री प्रान्त में शान्ति और व्यवस्था की जिम्मेदारी क्यो उठायेगे। उन्होंने 1921-37 के बीच की अवधि का उदाहरण दिया है। उस समय शक्ति ब्रिटिश सरकार में केंद्रित थी और केवल हस्तान्तरित विषयो की जिम्मेदारी मंत्रियो को सौंपी गयी थी। इससे ये मंत्री गैर जिम्मेदार रवैया अख्तियार करने लगे। उस समय ब्रिटेन में भी यही विचार व्यक्त किया गया था कि जो जिम्मेदार है उन्हें ही शक्ति भी मिलनी चाहिए। उन्होने श्री भारथी और अन्यों की आलोचना करते हुए कहा कि उन्होंने कलकत्ता और अन्य जगहो पर 1942 में जो अराजकता का उल्लेख किया था वह सरासर गलत था। चूँकि प्रान्त में शान्ति व्यवस्था स्थापित करने का कार्य प्रान्तीय गवर्नर और मंत्रियों का है अतएव यह अधिकार राष्ट्रपति को नहीं दिया जा सकता। चूँकि प्रान्त मे शान्ति व्यवस्था स्थापित करने का दायित्व प्रान्तीय मंत्रिमंडल और उसके न रहने पर राज्यपाल का है, इसलिये शक्ति भी प्रान्तीय मंत्रिमंडल और राज्यपाल को मिलना चाहिए। आपत्ति की स्थिति में राष्ट्रपति को अवश्य ही अंतिम अधिकार दिया जाय किन्तु आपात की उद्घोषणा का कार्य और प्रारम्भिक कार्य गवर्नर का ही हो। यदि राज्य का मंत्रिमंडल ठीक से कार्य न करे तो इसको भंग कर नया चुनाव कराना चाहिए । राष्ट्रपति शासन लागू करना कोई उचित कदम नहीं है। उन्होंने कहा कि इन आधारों पर अनुच्छेद 188 को निरस्त नही किया जा सकता। आपात की उद्घोषणा राज्यपाल द्वारा ही की जानी चाहिए। बाद में मंत्रिमंडल के निर्णय का आधार पर राष्ट्रपति भले ही

उस प्रान्त के शासन को अपने हाथ में ले ले। इससे मंत्रियों और विधायकों में उत्तरदायित्व की भावना जागृत होगी। यदि हम राज्यों के आपात काल से निपटने के अधिकार को छीन लें तो इससे प्रान्तीय स्वायत्ता समाप्त हो जायेगी। अब तक प्रान्तों के अधिकारों का बहुत अधिक हनन हुआ है। राज्य सूची में बहुत अधिक कटौती करके संघ सूची में बहुत से विषय जोड़ दिये गये हैं। श्री नाजिरुद्दीन ने यह विचार व्यक्त किया कि जाने अनजाने हम तानाशाही व्यवस्था की ओर बढ़ रहे हैं। लोकतंत्र का तभी विकास हो सकता है, जब इसके लिये लोकतंत्रीय वातावरण और लोकतंत्रीय शर्ते मौजूद हो, लोग यदि गलती करते है तो उनको गलती करने देना चाहिए। वे अपने अनुभवो से सीखेंगे। अनुभव एक महान शिक्षक है। प्रान्तीय स्वराज्य और उसके पूर्व अँग्रेज जब तब प्रान्तीय शासन में दखल देते थे और वही प्रवृत्ति आज भी हावी है। राष्ट्रीय आन्दोलन के दौरान हम कहा करते थे "हमें हमारा शासन चलाने दीजिए, तभी हम अपने कार्यों के लिये उत्तरदायी रहेगे। हमें अवसर दिया जाना चाहिए कि हम अपनी गल्तियों को दूर कर सकेगे।" किन्तु आज संविधान सभा में सदस्य राष्ट्रपति के हस्तक्षेप को सही बताकर अँग्रेजो के तर्को को दुहरा रहे हैं। श्री अहमद ने कहा कि जान बूझकर केन्द्रीय सरकार की तानाशाही का समर्थन कर रहे हैं।

श्री नाजिरुद्दीन ने कहा कि संविधान सभा के सदस्य आपात काल के दौरान केन्द्र को सर्वशक्ति शाली बनाकर गलत संदेश भेज रहे है। इससे थोड़ी सी आलोचना, थोड़ी सी विफलता के कारण लोग प्रान्तीय सरकार को भंग कर आपात काल की उद्घोषणा करवाकर केन्द्र सरकार के हाथों में शासन को बागडोर सौंपना चाहते हैं। यह बेहद चिंतनीय और बुरी प्रवृत्ति है। संविधान सभा के सदस्यों का यह कर्त्तव्य है कि वे ऐसी व्यवस्था करे, जिससे लोकतंत्रीय व्यवस्था का विकास हो, लोकतंत्रीय संस्कृति, राजनैतिक सहभागिता का विकास हो। स्वयं मतदाताओं का यह कर्त्तव्य है कि वे यह माँग करें कि केन्द्र को आपात कालीन अधिकार कम से कम मिले और प्रान्तीय स्वायत्ता, लोकतंत्रीय विकेन्द्रीय व्यवस्था बनी रहे। शक्ति और सत्ता हथियाने की बीमारी वर्तमान नेताओं में बुरी तरह फैल चुकी है, येन केन प्रकारेण वे शक्ति हथियाना चाहते हैं।[18]

इसके बाद ठाकुर दास भार्गव (पूर्वी पंजाब-सामान्य) ने अपने विचार व्यक्त किये। उन्होंने अनुच्छेद 188 को समाप्त किये जाने का समर्थन किया जाना उचित बतलाया। इससे राज्यपाल के स्वविवेकी या मनमाने अधिकार समाप्त हो गये हैं। संविधानिक तंत्र की विफलता के आधार पर आपात व्यवस्था लागू करने का अधिकार अब राज्यपाल का न होकर राष्ट्रपति का अधिकार हो गया है और राष्ट्रपति इस अधिकार का प्रयोग अपने मंत्रिपरिषद के परमामर्श से करेगा। इसमें कोई व्यक्ति निजी तौर पर कोई निर्णय नहीं लेगा वरन मंत्रिपरिषद का सामुहिक निर्णय ही लागू होगा।

दूसरे श्री भार्गव ने इस बात पर प्रसन्नता व्यक्त की कि अनुच्छेद 277-A को लागू किया जा रहा है। प्रान्तीय स्वराज्य अपने में कोई अर्थ नहीं रखता, केन्द्र सरकार के दायरे में ही प्रान्तीय स्वराज्य का कोई अर्थ है। किसी प्रान्त को अपने क्षेत्र में पूर्ण स्वायत्तता नहीं दी जा सकती। सुरक्षा, यातायात, संचार, अन्तर्राज्यीय

व्यापार आदि न केवल केन्द्र के विषय है, वरन ये राज्यों को पूरी तरह प्रभावित करते है, और बिना राज्यों के सहयोग के केन्द्र सरकार इसमें कुछ भी नहीं कर सकता। यदि किसी राज्य का सविधानिक तंत्र विफल हो जाता है तो ऐसी अवस्था में उस राज्य के नागरिकों के मूल अधिकारो की रक्षा कौन करेगा? इसी तरह बिना केन्द्र की अनुमति के किसी राज्य में सेना का उपयोग भी नही किया जा सकता। इसलिये 277-A के अन्तर्गत यह भी प्रावधान होना चाहिए कि आपात काल में केन्द्र समुचित कदम उठा सके। यदि राज्य का संविधानिक तंत्र नहीं टूटा है, किन्तु उसके टूटने की पूरी सम्भावना है, तब भी केन्द्र सरकार को ऐसे अधिकार मिलना चाहिए, जिससे वह इस राज्य में प्रभावी कदम उठा सके। यदि केन्द्र का यह दायित्व कि किसी राज्य में आपात काल की व्यवस्था ठीक से चलती रहे तो फिर केन्द्र को इस दायित्व के अनुरूप समुचित अधिकार भी मिलना चाहिए। राज्यपाल आपात की उद्घोषणा अपने मंत्रिपरिषद् के परामर्श से करेगा। इसलिये राष्ट्रपति द्वारा लिया गया निर्णय हर हालत में अच्छा होगा।

श्री ठाकुर दास ने कहा कि "Otherwise" शब्द उचित है। राष्ट्रपति यदि यह सोचता है कि गवर्नर की रिपोर्ट ठीक नहीं है या वह प्रान्त में समुचित कदम न उठाये, या पक्षपात के आधार पर उसकी रिपोर्ट तैयार की गई है तो फिर राष्ट्रपति को इस रिपोर्ट को अमान्य कर अपने स्वविवेक से निर्णय लेने का अधिकार है। यदि गवर्नर और मंत्रिमंडल के बीच झगड़ा उत्पन्न हो जाय और मंत्रिमंडल और व्यवस्थापिका एक तरफ हों और गवर्नर दूसरी तरफ, तब फिर राष्ट्रपति गवर्नर की रिपोर्ट पर अवश्य ही विश्वास नही कर पायेगा, और फिर राष्ट्रपति को अपने स्रोतों से उस राज्य के बाबत जानकारी प्राप्त करनी होगी। ऐसी स्थितियो के लिये 'Otherwise' शब्द का प्रयोग किया गया है। केन्द्र को उपलब्ध जिन स्रोतों से भी ऐसी विषम स्थितियों के बारे में सूचना मिली हो कि राज्यपाल सही रिपोर्टिंग नही कर रहा है, राष्ट्रपति को उन परिस्थितियों के आधार पर अपने मंत्रिमंडल से गहन परामर्श करके कदम उठाने का अधिकार है। ऐसी स्थितियो में वह राज्यपाल की रिपोर्ट को मानने के लिये बाध्य नही है। राष्ट्रपति और केन्द्रीय मंत्रिमंडल ऐसी परिस्थितियो का स्वयं अध्ययन करेंगे। अतः किसी राज्य में स्थिति हाथ से बाहर न जाने पाये इसको देखने की जिम्मेदारी राष्ट्रपति की है और जब राष्ट्रपति की जिम्मेदारी है तो फिर ऐसी स्थिति से निपटने के लिये अधिकार भी राष्ट्रपति को दिये जाने चाहिए (श्री ठाकुर दास ने यहाँ यह भी स्वीकार किया कि एक निरंकुश प्रवृत्ति वाला राष्ट्रपति या एक गैर जिम्मेदार मंत्रिमंडल इन प्रावधानों का लाभ उठाकर किसी भी राज्य में मनमाने ढंग से राष्ट्रपति शासन लागू कर सकता)।

संविधानिक तंत्र को विफलता का मूल्यांकन करना कठिन है। किन्तु मोटे तौर पर मूल्यांकन तो हो ही सकता है। राष्ट्रपति मनमाने किसी प्रान्त पर अपना शासन नहीं थोप सकता। उसे फिर उस प्रान्त के शासन की भी जिम्मेदारी लेनी पड़ेगी, जो एक बहुत कठिन कार्य है। प्रशासन की बुराईयो, दोषो के लिये अंततः केन्द्रीय सरकार को ही दोषी ठहराया जायेगा। इसलिये केन्द्र सरकार अत्यधिक सोच समझकर कदम उठायेगी।

फिर राष्ट्रपति शासन का यह अर्थ नही होता कि उस प्रान्त की सम्पूर्ण प्रान्तीय मशीनरो को ही ठप्प कर दिया जायेगा। प्रशासन ज्यों का त्यों रहेगा। राज्यपाल रहेगा। राज्य के मंत्रिपरिषद के स्थान पर केन्द्रीय मंत्रिपरिषद् कार्य करेगा, और राज्य की विधान सभा के स्थान पर ससद कार्य करेगी।

आज भारत में कई प्रकार की विच्छेदकारी प्रवृत्तियाँ और अराजक तत्व विद्यमान हैं। अतएव इनका सामना ऐसे ही असाधारण तौर तरीकों से किया जा सकता है। ये देश को जोड़ने वाले प्रसाधन है और इनके द्वारा केन्द्र पर दायित्व रखा गया है कि वह देखे कि प्रान्त व्यावहारिक दृष्टिकोण अपनाये और संविधान के अनुसार शासन करें।[19]

इसके बाद श्री ब्रजेश्वर प्रसाद ने अपने विचार रखे। उन्होने डॉ० अम्वेडकर द्वारा प्रस्तावित अनुच्छेद 278 का समर्थन किया, किन्तु कहा कि वे इसके कई प्रावद्यानो का समर्थन नही कर सकते। राष्ट्रीय सुरक्षा को नागरिक स्वतंत्रता की तुलना में अधिक महत्व देना चाहिए।

फिर हम यह नहीं कह सकते कि आपात काल की अधिकतम अवधि 3 वर्ष की ही हो। अव्यवस्था, अराजकता, अशान्ति तो देश में बढ़ती ही जा रही है। उन्होने कामथ के इस कथन से अपनी सहमति व्यक्त की कि ये उपबंध देश में तानाशाही की स्थापना करेंगे। किसी देश मे केवल अच्छा संविधान बनाकर ही लोकतंत्र की स्थापना नहीं की जा सकती । भले ही उस देश का संविधान कितना ही लोकतंत्रीय क्यों न हो।

उन्होने कहा कि किसी एक देश का संविधान दूसरे देश पर थोपने मे कोई लाभ नहीं है। हर देश का संविधान उसकी परम्पराओं और रीति रिवाजों पर आधारित होना चाहिए। लोकतत्र आज के युग का फैशन है, किन्तु यदि लोकतंत्र राष्ट्र को कमजोर करता है, क्षति पहुँचाता है, तो वे उसे स्वीकार करने के लिये तैयार नही है। वे स्वयं लोकतंत्र में पूर्ण आस्था रखते हैं किन्तु वर्तमान में भारत के लोकतंत्र के विशुद्ध रूप को लागू करना क्षतिकारक होगा। इन लोकतंत्रीय संस्थाओं पर नियंत्रण लगाना जरूरी होगा।[20]

इसके बाद श्री अल्गू राय शास्त्री (यू० पी०-सामान्य) ने अपने विचार व्यक्त किये । उन्होने ब्रजेश्वर प्रसाद के समान बंगाल और मद्रास का उदाहरण देते हुए इन अनुच्छेदो का समर्थन किया और कहा कि यदि इन प्रान्तों मे हालत और बिगड़ती है तो यहाँ राष्ट्रपति शासन लागूकिया जाना चाहिए। उन्होने कहा कि हम अपनी गुलामी की प्रवृत्ति को छोड़ नहीं पा रहे है और अँग्रेजों के शासन काल के 1935 के अधिनियम के धारा 93 को अनुच्छेद 177, 177-A, 278, 278-A मे सम्मिलित कर लिया है। उन्होने आज की परिस्थितियों में इन अनुच्छेदों का समर्थन किया किन्तु कहा कि हमने राज्यपाल को उसके अधिकारों के अनुरूप अधिकार नहीं दिये हैं। हमने गवर्नर को राष्ट्रपति का एजेंट या नौकर या कर्मचारी मात्र बनाकर रख दिया है। इसलिये उसे Governor न कह कर Gobar Nar (गोबर नार) कहना अधिक उपयुक्त होगा। उन्होंने कहा कि केवल अनुच्छेद 188 और 278 के रखने से ही हमारा उद्देश्य पूरा हो जायेगा। अनुच्छेद 277A, 278 -A के रखने

की आवश्यकता नही रह जायेगी। इससे भी कामथ और प्रोफेसर शिबन लाल सक्सेना के संशोधनो को स्वीकार करने की आवश्यकता नहीं रह जायेगी।

उन्होंने अनावश्यक केन्द्रीकरण की आलोचना की। यदि सभी कार्य केन्द्रीय सरकार के द्वारा किया जाय और राज्य सरकारों को कोई पहल न करने दिया जाय तो इससे स्थानीय सहभागिता नष्ट हो जायेगी। यदि केन्द्र राज्य के प्रति अविश्वास रखे तो राज्य भी केन्द्र के प्रति अविश्वास रखेंगे। इससे स्थानीय नेतृत्व या कार्य करने की क्षमता का ह्रास होगा।

डॉ० अम्बेडकर द्वारा समापन

डॉ० अम्बेडकर ने कहा कि हमें सावधान रहना चाहिए कि कब क्या हो जाय - ईस्ट पंजाब के गवर्नर और मंत्रिमंडल पाकिस्तान मे मिल जाने की स्थिति बना सकते है या फिर आसाम बर्मा से मिल सकता है अतएव ऐसी स्थिति से निपटने के लिये ये आपात कालीन उपबंध उचित है किन्तु सब कुछ केन्द्र सरकार के हाथों सौप देना उचित नहीं है। हमें गवर्नरो को भी पर्याप्त अधिकार देना चाहिए। गवर्नर भी केन्द्र सरकार के मजबूत आधार स्तम्भ है। इन गवर्नरों में हमें विश्वास तो रखना ही पड़ेगा।

डॉ० अम्बेडकर ने कहा कि अनुच्छेद 188 को हटाकर शेष अनुच्छेदों को ज्यों का त्यों स्वीकर कर लेना चाहिए। उन्होंने हरिविष्णु कामथ, प्रोफेसर शिबन लाल सक्सेना और अन्य विद्वानों के संशोधनों को अमान्य कर दिया। इसी प्रकार उन्होंने हृदय नाथ कुंजरू के संशोधन को भी अमान्य कर दिया।

इस अवसर पर पंडित हृदय नाथ कुंजरू ने डॉ० अम्बेडकर से जानकारी के बतौर प्रश्न पूछा क्या मेरे मित्र बतायेंगे कि अनुच्छेद 278 और 278-A का यह उद्देश्य नही कि अच्छा प्रशासन का बहाना बनाकर केन्द्रीय सरकार राज्यों के मामलों में तो दखलदांजी तो नही करने जा रही है। इस पर डॉ० अम्बेडकर ने साफ इंकार करते हुए कहा कि केन्द्र सरकार को ऐसी कोई शक्ति नहीं दी गयी है।

पंडित हृदयनाथ कुंजरू ने पूछा कि फिर यदि प्रान्तो में कुशासन के फलस्वरूप लोक शक्ति भंग होने पर केन्द्रीय सरकार हस्तक्षेप करेगी? इस पर डॉ० अम्बेडकर ने कहा कि केन्द्र सरकार तभी हस्तक्षेप करेगी जब राज्य सरकार कोई ऐसा कदम उठाये जो प्रान्तीय सरकारों को चलाने के लिये संविधानिक आदेशों और निर्देशों का उल्लंघन करते है। क्या उस प्रान्त में अच्छा शासन चल रहा है या बुरा शासन चल रहा है, इस बात का निर्णय केन्द्र सरकार ही करेगी।

डॉ० अम्बेडकर ने वाद-विवाद का समापन करते हुए कहा कि सदस्यों ने यह आसंका व्यक्त की है कि इन अनुच्छेदों का केन्द्रीय सरकार दुरूपयोग कर सकती है और वे भी इस आशंका से इंकार नहीं करते। किन्तु यह आशंका तो संविधान के उन सब अनुच्छेदों के सम्बन्ध में व्यक्त की जा सकती है जो केन्द्र को प्रान्तों के

सम्बन्ध में हस्तक्षेप करने का अधिकार देते है। श्री अम्बेडकर ने कहा कि वे अपने मित्र श्री गुप्त से इस बात से सहमत हैं कि अच्छा तो यह होता कि ये अनुच्छेद क्रियान्वित ही नही किये जाते और ये उपयोग में न आने के कारण "मृत हो जाय" (Dead Letter) इन अनुच्छेदों को लागू करने के पूर्व राष्ट्रपति गम्भीरता से विचार करने के बाद ही इनको लागू करेगा। यह उचित होगा कि राष्ट्रपति पहले प्रान्तीय सरकार को सूचित करेगा कि जिस राह पर, प्रान्तीय सरकारें चल रही है, वह संविधान के अनुसार नही है, और वे संविधान का उल्लंघन कर रहे हैं। यदि इस तरह के आगाह किये जाने का भी कोई परिणाम नही निकलता है, तो वह राज्यपाल उस राज्य की सरकार को भंग करके नये निर्वाचन का आदेश देगा। इस निर्वाचन के माध्यम से प्रान्त के लोग जो विधानसभा और सरकार चुनेंगे उससे भी यदि स्थिति में सुधार नही होता है तभी उस प्रान्त पर राष्ट्रपति शासन लागू किया जायेगा। इन्हीं परिस्थितियों में राष्ट्रपति 278 को लागू करेगा। इसलिये यह नहीं कहा जा सकता कि ये अनुच्छेद अनावश्यक है या राष्ट्रपति ने निरंकुश ढंग से कार्य किया।[21]

इस तरह इस वाद विवाद के माध्यम से संविधान के प्रारूप का अनुच्चेद 278 और 278-A पारित हुआ। यह भारतीय संविधान का अनुच्छेद 356 बना ।

भारतीय संविधान में अनुच्छेद 356 [22]

राज्यों में संवैधानिक तंत्र के विफल हो जाने की अवस्था में उपबंध

अनुच्छेद 356 (1)यदि किसी राज्य के राज्यपाल या राजप्रमुख से प्रतिवेदन मिलने पर या अन्यथा राष्ट्रपति का समाधान हो जाय कि ऐसी स्थिति पैदा हो गई है, जिसमे कि उस राज्य का शासन इस संविधान के उपबंधों के अनुसार नहीं चलाया जा सकता तो राष्ट्रपति उद्‌घोषणा द्वारा —

(क) उस राज्य की सरकार के सब या कोई कृत्य, तथा यथास्थिति राज्यपाल या राज्य प्रमुख मे अथवा राज्य के विधान मंडल को छोड़कर राज्य के किसी निकाय या प्राधिकारी मे निहित या एतद द्वारा प्रयोकतव्य सब या कोई शक्तियाँ अपने हाथ में ले सकेगा।

(ख) घोषित कर सकेगा कि राज्य के विधान मंडल की शक्तियाँ संसद के प्राधिकार के द्वारा या अधीन प्रयोकतव्य होंगी।

(ग) राज्य में किसी निकाय या प्राधिकारी से सम्बद्‌ध इस संविधान के किन्ही उपबंधो के प्रवर्तन को पूर्णतः या अंशतः निलम्बित करने के लिये उपबंध सहित ऐसे प्रासंगिक और अनुषंगिक उपबंध बना सकेगा जैसे कि राष्ट्रपति को उद्‌घोषणा के उद्‌देश्य को प्रभावी करने के लिये आवश्यक या वांछनीय दिखाई दे।

भाग-18 आपात उपबंध- अनुच्छेद 356 परन्तु इस खंड की किसी बात से राष्ट्रपति को यह प्राधिकार न होगा कि उच्च न्यायालय में निहित या तद द्वारा प्रयोक्तव्य शक्तियों में से किसी को अपने हाथ मे ले अथवा इस संविधान के उच्च न्यायालय से सम्बद्ध किन्हीं उपबंधों के प्रवर्तन को पूर्णतः या अशत. निलम्बित कर दे।

(2) ऐसी कोई उद्घोषणा किसी उत्तरवर्ती उद्घोषणा द्वारा प्रतिसंहत या परिवर्तित की जा सकेगी।

(3) इस अनुच्छेद के अधीन की गई प्रत्येक उद्घोषणा को प्रतिसंहत करने वाली उद्घोषणा नहीं है वहॉ वह दो महीने की समाप्ति पर, यदि उस कालावधि की समाप्ति से पूर्व संसद के दोनो सदनों के संकल्पों द्वारा वह अनुमोदित नहीं हो जाती तो प्रवर्तन में नहीं रहेगी।

परन्तु यदि ऐसी कोई उदघोषणा (जो पहले की उद्घोषणा को प्रतिसंहत करने वाली नही है) उस समय निकाली गई है जब कि लोकसभा का विघटन इस खंड मे निर्दिष्ट दो मास की कालविधि भीतर हो जाता है, तथा यदि उदघोषणा का अनुमोदन करने वाला संकल्प राज्य परिषद् द्वारा पारित हो चुका है, किन्तु ऐसी उद्घोषणा के विषय में लोकसभा द्वारा उस कालावधि की समाप्ति पहले कोई संकल्प पारित नहीं किया गया है तो उद्घोषणा उस तारिख से, जिसमें कि लोकसभा अपने पुनर्गठन के पश्चात् प्रथम बार बैठती है तीस दिन की समाप्ति पर प्रवर्तन में न रहेगी जब तक कि उक्त तीस तीन की कालवधि की समाप्ति से पूर्व उद्घोषणा का अनुमोदन करने वाला संकल्प लोकसभा द्वारा भी पारित नहीं हो जाता।

4. इस प्रकार अनुमोदित उद्घोषणा, यदि प्रतिसंहत न हो गई हो तो, इस अनुच्छेद के खंड3 के अधीन उद्घोषणा का अनुमोदन करने वाले संकल्पों में से दूसरे के पारित हो जाने की तिथि से छः महीने ही कालावधि की समाप्ति पर वह प्रवर्तन में नहीं रहेगी।

परन्तु ऐसी उद्घोषणा के प्रवृत्त रखने के लिये अनुमोदन करने वाला संकल्प, यदि और जितनी बार, संसद के दोनों सदनों द्वारा पारित हो जाता है तो, और उतनी बार वह उद्घोषणा, जब तक कि प्रतिसंहत न हो जाय, उस तारीख से जिससे कि वह इस खंड के अधीन अन्यथा प्रवर्तन मे नही रहती, छः महीने की और कालावधि तक प्रवृत्त बनी रहेगी किन्तु कोई ऐसी उद्घोषणा किसी अवस्था मे भी तीन वर्ष से अधिक प्रवृत्त नहीं रहेगी।

परन्तु यह और भी कि यदि लोकसभा का विघटन छः मास की किसी ऐसी कालावधि के भीतर हो जाता है, तथा ऐसी उद्घोषणा को प्रवृत्त बनाये रखने का अनुमोदन करने वाला सकल्प राज्य परिषद् द्वारा पारित हो चुका है किन्तु ऐसी उद्घोषणा को प्रवृत्त बनाये रखने के बारे में कोई सकल्प लोकसभा द्वारा भी पारित नही हो जाता।

अनुच्छेद 356 के अधीन निकाली गई उद्घोषणा के अधीन विधायिनी मंडल की शक्तियाँ

अनुच्छेद 357 (1) - जहाँ अनुच्छेद 356 के खंड (1)के अधीन निकाली गई उद्घोषणा द्वारा यह घोषित किया गया है कि राज्य के विधान मंडल की शक्तियॉ संसद के प्राधिकार के द्वारा या अधीन प्रयोक्तत्व होगी वहॉ-

(क) राज्य के विधान मंडल की विधि बनाने की शक्ति राष्ट्रपति को देने के लिये तथा ऐसी दी हुई शक्ति को किसी अन्य प्राधिकारी को जिसे राष्ट्रपति उस लिये उल्लखित करे, ऐसी शर्तों के अधीन जिन्हे आरोपित करना वह उचित समझे, प्रत्यायोजन करने के लिये राष्ट्रपति को प्राधिकृत करने को ससद की,

(ख) संघ अथवा उसके पदाधिकारियों और प्राधिकारियों को शक्ति देने या कर्त्तव्य आरोपित करने के लिये अथवा शक्तियों का दिया जाना या कर्त्तव्यों का आरोपित किया जाना प्राधिकृत करने के लिये, विधि बनाने की संसद की अथवा राष्ट्रपति की ऐसी विधि बनाने की शक्ति जिस अन्य प्राधिकारी मे उपखंड (क) के अधीन निहित है उसकी,

(ग) जब लोकसभा सत्र में न हो तब व्यय के लिये संसद की मंजूरी लम्बित रहने तक राज्य की संचित निधि में से ऐसे व्यय को प्राधिकृत करने की राष्ट्रपति की, क्षमता होगी।

2 राज्य के विधान मंडल की शक्ति के प्रयोग में ससद द्वारा अथवा राष्ट्रपति अथवा खंड (1) के उपखंड (क) में निर्दिष्ट अन्य प्राधिकारी द्वारा निर्मित कोई विधि, से अनुच्छेद 356 के अधीन की गई उद्घोषणा के अभाव में संसद या राष्ट्रपति ऐसा अन्य प्राधिकारी बनाने के लिये सक्षम न होता, उद्घोषणा के प्रवर्तन में रहने के पश्चात् एक वर्ष की कालावधि की समाप्ति पर अक्षमता की मात्रा तक सिवाय उन बातों के प्रभाव में न रहेगी जो उक्त कालावधि की समाप्त के पूर्व की गई या की जाने से छोड़ दी गयी थी जब तक कि वे उपबंध, जो इस प्रकार प्रभावी न रहेंगे, समुचित विधान मंडल के अधिनियम द्वारा इससे पहले ही या तो लिखित और या रूपभेदों के सहित बिना पुन अधिनियमित न कर दिये गये हों।

संविधान सभा में वाद-विवाद के बाद 2 अनुच्छेद बने। मूल अनुच्छेद 356 बना और उसके पूरक अनुच्छेद के रूप में अनुच्छेद 357 बना। अनुच्छेद 356 (1) में कहा गया है कि यदि किसी राज्य के राज्यपाल या राजप्रमुख से प्रतिवेदन मिलने पर या अन्यथा राष्ट्रपति का समाधान हो जाय कि ऐसी स्थिति पैदा हो गई है, जिसमे कि उस राज्य का शासन इस संविधान के उपबंधो के अनुसार नही चलाया जा सकता तो राष्ट्रपति उस राज्य के सम्बन्ध में में निम्न कार्यवाही करेगा —

(क) राज्यपाल और विधानमंडल को छोड़कर अन्य सभी संस्थाओं या अधिकारियो के कार्यों को अपने हाथ में ले सकेगा।

(ख) राष्ट्रपति यह घोषित कर सकेगा कि उस राज्य के विधान मंडल की शक्तियॉ संसद के द्वारा प्रयोगित होगा।

(ग) राज्य के शासन को चलाने के लिये ऐसा नियम या उपबंध बना सकेगा जो इस आपातकाल की उद्घोषणा को लागू करने के लिये आवश्यक प्रतीत हो।

किन्तु राष्ट्रपति को उच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार में हस्तक्षेप करने का कोई अधिकार नही होगा। उच्च न्यायालय राष्ट्रपति के क्षेत्राधिकार के बाहर होगा।

2. राष्ट्रपति अपनी इस उद्‌घोषणा को किसी दूसरी उद्‌घोषणा के द्वारा स्थगित कर सकेगा या रद्द कर सकेगा।

3 राष्ट्रपति की आपात उद्‌घोषणा संसद के प्रत्येक सदन के समझ रखी जायेगी। यदि उस उद्‌घोषणा की अवधि को संसद बढ़ाने की स्वीकृत दे देती है तो वह दो माह के बाद भी लागू रहेगी, अन्यथा वह समाप्त हो जायेगी। यह छः माह तक प्रथम बार बढ़ाई जा सकेगी। इसकी अधिकतम अवधि तीन वर्ष की होगी। तीन वर्ष के बाद आपात काल की उद्‌घोषणा को और आगे नही बढ़ाया जा सकेगा।

अनुच्छेद 357 में कहा गया है कि संसद राष्ट्रपति को उस राज्य के लिये विधि बनाने की शक्ति दे सकेगी। राष्ट्रपति अपने इस अधिकार को अन्य किसी अधिकारी को प्रत्यायोजित कर सकता है।

इसमें राष्ट्रपति को उस राज्य के लिये संघ के अधिकारियो को कार्य करने के लिये शक्ति देने की व्यवस्था है।

यदि लोकसभा का अधिवेशन न हो रहा हो तो राष्ट्रपति को उस राज्य के लिये राज्य की संचित निधि में से धन निकालने का अधिकार दिया गया है।

निष्कर्ष

संविधान सभा में इन अनुच्छेदों पर बहुत अधिक वाद विवाद हुआ। इन प्रावधानो के समर्थन और विरोध में बहुत सी बातें कही गयी । जिन लोगो ने इन प्रावधानों का विरोध किया उनमें हरिविष्णु कामथ, प्रोफेसर शिबन लाल सक्सेना, पी० एस० देशमुख, नाजिरुद्दीन अहमद, पंडित हृदयनाथ कुंजरू आदि प्रमुख थे। इनका कहना था कि इन प्रावधानों से देश में हिटलर जैसे तानाशाहो की उत्पत्ति हो सकती है। इसी प्रकार के प्रावधानों के परिणाम स्वरूप हिटलर ने वेइमर संविधान को समाप्त कर दिया और अपनी तानाशाही स्थापित की। इन प्रावधानों से राज्यों की स्वायत्ता समाप्त की जा रही है। भारत फिर एक सघात्मक राज्य नहीं रह जायेगा। श्री सक्सेना, नाजिरुद्दीन अहमद आदि ने कहा कि इससे 1935 के अधिनियम की धारा 93 अच्छी थी, जिसमें कम से कम गवर्नर, गवर्नर जनरल के बिना हस्तक्षेप के, प्रान्त का शासन चलाते थे। द्वितीय महायुद्ध जैसी अभूतपूर्व स्थित में भी गवर्नर जनरलों ने हस्तक्षेप नहीं किया और गवर्नरो ने स्वविवेक से अपने-अपने प्रान्तों का शासन चलाया । अतएव स्वतंत्र भारत का संविधान, परतंत्र भारत के 1935 के अधिनियम की तुलना में भी अधिक प्रतिगामी है। इन आलोचनाओं के अनुसार इन अनुच्छेदो से प्रान्त के मतदाताओं के राजनैतिक सहभागिता के अधिकार समाप्त हो जायेगे और वे राजनीति के प्रति उदासीन हो जायेंगे। यह एक बहुत बड़ी लोकतंत्रीय क्षति होगी।

सारांश में इन आलोचकों के द्वारा निम्न तर्क दिये गये- (i) केन्द्रीय सरकार की तानाशाही का भय (ii) राज्यों की स्वयत्तता का समाप्त होना और अत्यधिक केन्द्रीयकरण का भारत जैसे विशाल देशमें लागू होना (iii) राज्यपाल को एक मामूली कर्मचारी या राष्ट्रपति का एक एजेंट बना देना-ब्रिटिश काल मे गवर्नर एक अत्यधिक सम्मानित व्यक्ति होते थे (iv) राजनैतिक सहभागिता पर कुठाराघात करना और प्रान्त के नागरिको को राजनीति के प्रति उदासीन बना देना (v) यह कहा गया कि संविधान के प्रारूप के अनुच्छेद 275 और 276 ही पर्याप्त थे। अनुच्छेद 277 और 278 की कोई आवश्यकता नहीं थी।

पक्ष में जो तर्क दिये गये तथा इन अनुच्छेदों के समर्थन करने वालों मे ब्रजेश्वर प्रसाद, अल्गू राय शास्त्री, संथानम, ठाकुर दास भार्गव आदि प्रमुख थे। इनके अनुसार -

(i) आपात काल एक असाधारण स्थिति है, जिसका सामना करने के लिये असाधारण प्रावधानों की आवश्यकता होती है।

(ii) आपात काल में नागरिक स्वतंत्रता के स्थान पर राष्ट्रीय सुरक्षा पर महत्व दिया जाना चाहिए।

(iii) प्रान्तों के प्रतिनिधि केन्द्रीय मंत्रिमंडल और संसद में होते है और जो अपने-अपने प्रान्तों के हितो की रक्षा करते रहते हैं।

(iv) यह अल्पकालीन व्यवस्था है, कुछ महीनों बाद ही निर्वाचन की व्यवस्था है, अतएव राजनैतिक सहभागिता पर कुठाराघात होगा यह कहना गलत है।

(v) जर्मनी में वेइमर संविधानों के कारण हिटलर की उत्पत्ति नही हुई वरन जर्मनी के प्रति वर्साई संधि में जो अन्यायपूर्ण व्यवस्था अपनाई गई उससे हिटलर का उदय हुआ।

(vi) कोई अच्छा संविधान लिख देने से ही उत्तम शासन की व्यवस्था नही हो जाती। उसे चलाने वाले कैसे हैं उसी पर किसी संविधान और शासन व्यवस्था की गुणवत्ता निर्भर करती है। ब्रिटेन में कोई संविधान लिखा ही नहीं गया है पर वह विश्व का एक आदर्श लोकतंत्र है।

डॉ० अम्बेडकर ने इन सब वाद विवादों का समापन करते हुए कहा कि सदस्यो ने यह चिता व्यक्त की है कि इन अनुचछेदों का केन्द्र सरकार दुरूपयोग कर सकती है, और अपनी तानाशाही स्थापित कर सकती है। (श्रीमती इन्दिरा गाँधी ने 1976-77 मे यही किया था)

साथ ही डॉ० अम्बेडकर ने यह भी स्वीकार किया कि इस आलोचना और आशंका में भी सच्चाई है कि इन अनुच्छेदों का राजनैतिक उद्देश्यो से प्रयोग किया जा सकता है। केन्द्र की सरकार अपने विरोधी राज्यों में राज्यपाल का शासन स्थापित कर सकती है (संविधान के लागू होने के बाद इस अधिकार का दर्जनों बार प्रयोग किया गया। 1957 मे केरल की बहुमत वाली सरकार को इसी आधार पर गिरा दिया गया था। उसके

बाद इसका प्रयोग कई बार किया गया। 1977 में जनता सरकार ने एक साथ 9 राज्यो में जहाँ कॉग्रेस का सरकार बहुमत मे थी इस अनुच्छेद का प्रयोग करके इन सरकारों को भंग कर दिया था। इसी प्रकार से और जनता सरकार के इसी अधिकार का अनुकरण करके इंदिरा गाँधी ने कई राज्यो मे बहुमत में चल रही जनता सरकार को भंग करके वहाँ राष्ट्रपति शासन लागू किया था। 1990 में चन्द्रशेखर की सरकार ने तामिलनाडु और दो एक अन्य राज्यों में बहुमत में चल रही विरोधी दलों की सरकारों को विना राज्यपालों की रिपोर्ट पर राजीव गाँधी के दबाव से भंग करवा दिया था। 1992 मे बाबरी मस्जिद कांड के बाद मध्यप्रदेश और राजस्थान में तो भाजपा की सरकारें बहुमत में चल रही थी। इनको नरसिहाराव की सरकार ने भंग करवा दिया था। यद्यपि महाराष्ट्र में बम्बई और उसके आस-पास जो भयानक अराजकता को स्थिति उत्पन्न हुई उसमे भी महाराष्ट्र की कॉग्रेस सरकार को भंग नही किया गया।

डॉ० अम्बेडकर ने उस समय संविधान सभा में यह स्वीकार किया था कि इस प्रकार से केन्द्र सरकार अपने राजनैतिक उद्देश्यो के लिये इन अनुच्छेदों का दुरूपयोग कर सकती है। किन्तु साथ ही डॉ० अम्बेडकर ने कहा कि इस प्रकार का दुरूपयोग तो संविधान के प्रत्येक अनुच्छेद का किया जा सकता है। ऐसी स्थिति से निपटने का तरीका सशक्त जनमत तैयार करना तौर विरोधी दलों की भूमिका है।

डॉ० अम्बेडकर ने यह आशा व्यक्त की कि इन अनुच्छेदों का कभी प्रयोग नही किया जायेगा। केन्द्र सरकार इन अनुच्छेदों का कभी प्रयोग नही करेगी।[23] किन्तु डॉ० अम्बेडकर और इन अनुच्छेदो का समर्थन करने वाले की आशाएँ कभी पूर्ण नहीं हुई। स्वतंत्र भारत में राज्यपाल को केन्द्र सरकार का एक एजेंट या साधन मानकर केन्द्र सरकारों ने कई विरोधी दल के सरकारों के विरुद्ध रिपोर्ट लिखायी और उनको गिराया गया। डॉ० अम्बेडकर का इच्छा के विरुद्ध इन अनुच्छेदों का बहुत अधिक बार उपयोग किया गया। इस संदर्भ में आलोचकों की यह आलोचना सही थी कि भविष्य मे केन्द्र सरकारे आये दिन कोई न कोई बहाना बनाकर राज्यों के क्षेत्र में हस्तक्षेप करती ही रहेंगी और जब जब केन्द्र के विरुद्ध राज्यो मे किसी दल की सरकार स्थापित होगी तब उस राज्य सरकार पर अनुच्छेद 356 की तलवार लटकती रहेगी।

डॉ० अम्बेडकर ने यह आशा व्यक्त की कि इन अधिकारों का प्रयोग करने के पूर्व राष्ट्रपति कई प्रकार की सावधानियाँ बरतेगा- पहली बात राष्ट्रपति उन राज्यों को आगाह करेगा जहाँ सरकारें संविधान का उल्लंघन कर रही है। दूसरे यदि इस तरह आगाह किये जाने के बावजूद भी राज्य सरकारे सविधान के प्रावधानों का उल्लघन करती ही जाय तो राष्ट्रपति ऐसी सरकारों को भंग करके नये निर्वाचन का आदेश देगा। तीसरे, जब यह दोनों साधन विफल हो जाते है, तभी अनुच्छेद 356 का प्रयोग करके राष्ट्रपति शासन लागू किया जाना चाहिए। इस प्रकार डॉ० अम्बेडकर ने कहा कि ये अनुच्छेद संविधान में निरर्थक या अहितकर नहीं है। इनका उद्देश्य राज्यों में संविधानिक तंत्र के विफल हो जाने पर कुछ साधनों को अपना कर ऐसी व्यवस्था करना है कि वह राज्य फिर से उत्तरदायी लोकतंत्र की स्थापता कर सके।

हरिविष्णु कामथ और कतिपय अन्य सदस्यो के द्वारा बारम्बार यह पूछे जाने पर कि वे कौन सी शर्ते हैं, कौन से उपबंध है, जिनका उल्लंघन होने पर राज्यों मे संविधानिक आपात की स्थापना की जा सकेगी। इस पर डॉ० अम्बेडकर ने कोई प्रकाश नही डाला। उन्होने कहा कि 1935 के संविधान मे इनका उल्लेख किया गया है जिससे संविधान सभा के सभी सदस्य परिचित है। यह एक अस्पष्ट उत्तर था। इससे स्थिति पर कोई प्रकाश नहीं पड़ा और भविष्य में केन्द्रीय सरकारो ने अपने एजेंट राज्यपालो के माध्यम से मनमाने रिपोर्ट लिखवाये और राज्यों मे आधार या बिना आधार के राष्ट्रपति शासन लागू किये। यदि इन आधारों को स्पष्ट रूप से लिख दिया जाता तो ये दिशा निर्देश की तरह कार्य करते और भविष्य में केन्द्रीय सरकार की तानाशाही पर अंकुश लगाते।

1951-67 का युग-राज्यपाल रबर स्टम्प

इस अवधि में राष्ट्रपति शासन लगभग 20 बार राज्यो में लागू हो चुका था। 1995 तक यह 90 बार से अधिक राज्यों में लागू किया जा चुका है।

(1) **पंजाब-** 20 जून, 1951 को यह पंजाब में लागू किया गया। डॉ० गोपीचंद भार्गव मंत्रिमंडल के विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव पारित होने के बाद कोई वैकल्पिक मंत्रि परिषद नही बन सकी।[24]

(2) **आंध्रप्रदेश-** 15 नवम्बर, 1954 को आंध्रप्रदेश में राष्ट्रपति शासन लागू किया गया। उस समय शराब बंदी के मुद्दों पर टी० प्रकाशन मंत्रिमंडल के विरुद्ध साम्यवादी दल और प्रजा समाजवादी दल एक हो गये और उन्होंने प्रकाशन मंत्रिमंडल को गिरा दिया।[25]

(3) **केरल-** केरल में 31 जुलाई, 1959 को राष्ट्रपति शासन लागू किया गया। वैसे केरल में ई० एम० एस० नम्बूद्रीपाद की सरकार पूर्ण बहुमत में थी। किन्तु श्रीमती इंदिरा गांधी, श्री ढेबर और कांग्रेस के अन्य नेताओं ने मनमाने ढंग से साम्यवादी सरकार को भंग करवाकर राष्ट्रपति शासन लागू करवाया।[26]

(4) **उड़ीसा-** 25 फरवरी, 1961 को उड़ीसा मे राष्ट्रपति शासन लागू किया गया।[27]

(5) **केरल-** 10 सितम्बर, 1964 को केरल में राष्ट्रपति शासन लागू किया गया।[28]

(6) **केरल-** 1965 में पुन. राष्ट्रपति शासन लागू किया गया।

(7) **पंजाब-** राज्यपाल उज्ज्ल सिह की रिपोर्ट पर मुख्यमंत्री रामकिशन की सरकार को बर्खास्त किया गया।[29]

(8) **राजस्थान-** 12 मार्च, 1967 को राज्यपाल सम्पूर्णानन्द की रिपोर्ट पर राष्ट्रपति शासन लागू किया गया।[30]

तृतीय निर्वाचन

तृतीय निर्वाचन तक कांग्रेस का लगभग सभी राज्यों में बहुमत था। ऐसी स्थिति मे राज्यपालों के लिये कुछ विशेष करने को नहीं रह जाता था। मुख्यमंत्री भी राज्यपालों से परामर्श लेने के इच्छुक नहीं रहते थे। जब कोई निर्णय ले लिया जाता था तभी मुख्यमंत्री उसकी जानकारी राज्यपाल को देते थे। कभी-कभी तो राज्यपाल को मंत्रिमंडल के निर्णयों की जानकारी आकाशवाणी या समाचार पत्रो के माध्यम से ही मिलती थी। तत्कालीन गृहमंत्री पंडित गोविद बल्लभ पंत ने गवर्नरों की असहाय स्थिति पर प्रकाश डालते हुए कहा था- "The Governor May, If he likes, send down a note, but he should not afterwards enquire about it "

उस समय राज्यपाल केन्द्र के एजेंट के रूप में भी कोई विशेष भूमिका नही निभा सकता था। तृतीय निर्वाचन तक राज्यपाल एक रबर स्टाम्प मात्र था।

चतुर्थ निर्वाचन और राज्यपालों की महत्वपूर्ण भूमिका- "आया राम गया राम का युग"

चौथे निर्वाचन ने स्थिति को बदल दिया। अधिकांश राज्यों में विरोधी दलो की सरकारें बनी। राज्यपाल केन्द्र द्वारा नियुक्त किये जाते थे। केंद्र में कांग्रेस सरकार था, इस तरह कांग्रेसी राज्यपालो और गैर कांग्रेसी राज्य सरकारों में विरोध और विवाद का दौर आरम्भ हो गया। चतुर्थ निर्वाचन के बाद से राज्यपालों की भूमिका अत्यधिक विवादास्पद हो गई (Controversial Governors)। इसके साथ ही साथ गवर्नरों का पद भी महत्वपूर्ण हो गया।

मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश, पश्चिम बंगाल, हरियाणा, पंजाब, तामिलनाडु और अन्य राज्यों में कांग्रेस सरकार के स्थान पर अन्य दलों की सरकारें स्थापित हुई।

चतुर्थ निर्वाचन में अस्थिर सरकारों का दौर आरम्भ हो जाता है। बड़े पैमाने पर दल बदल आरम्भ हो गया। विधायकों की खरीद फरोख्त, उखाड़ पछाड़ आरम्भ हो गई। हरियाणा के एक विधायक ने इतनी बार दल बदल किया कि राज्यपाल चक्रवर्ती ने केन्द्र सरकार को अपनी रिपोर्ट पेश करते हुए लिखा था, "आया राम, गया राम" के कारण सरकार में दल-बदलुओं का वर्चस्व स्थापित हो गया। शासन का नैतिकता नाम की कोई चीज नहीं रह गयी है। विधायकों का राजनैतिक संस्कार इतने नीचे गिर गया है कि दलीय आस्था नाम की कोई चीज नहीं रह गयी है। विधानसभा विधायको के अखाड़े बन चुके है। राज्यपाल को विधानसभा में विधायकों के अशोभनीय व्यवहारों का सामना करना पड़ा। जूते चप्पल किताबे फेकना और हाथापाई आदि बातें आम हो गई। राज्यपाल का अभिभाषण सरकार की नीतियो को अभिव्यक्त करता है किन्तु अभिभाषण पूरा पढ़ने नहीं दिया जाता था। इस अभिभाषण के दौरान तरह-तरह के व्यवधान उत्पन्न किये जाते थे।

राज्यपाल धरमवीर को पश्चिम बंगाल की सरकार ने एक ऐसा भाषण पढ़ने के लिये बाध्य किया जिसमे केंद्रीय सरकार की कटु आलोचना की गयी थी। अतएव राज्यपाल धर्मवीर ने इस भाषण को पढ़ने से इंकार किया।

इसके बाद पश्चिम बंगाल, उत्तरप्रदेश, पंजाब, केरल, बिहार, उड़ीसा, मैसूर, गुजरात आदि में राष्ट्रपति शासन लागू किया गया था। स्थिति सुधरने पर इन राज्यों में पुन निर्वाचन कराये गये या नये मंत्रिमंडलों का गठन किया गया।

1972-92 का युग- राज्य सरकारों का भंग किया जाना और थोक में (Whole sale) राष्ट्रपति शासन लागू किया जाना

1972 से 1989 के बीच राज्यपालों के विवादास्पद होने का कोई विशेष समाचार नहीं मिलता। इस बीच 1977-79 और 1989-91 के चार वर्षों की अवधि को छोड़कर शेष अवधि मे कांग्रेस का एकछत्र राज्य चलता रहा। श्रीमती इंदिरा गांधी और श्री राजीव गांधी ने स्वेच्छा से राज्यपाल नियुक्त किये, और उनको जब चाहे तब पद से हटाया या उनका तबादला कर दिया गया। राज्यो में भी कांग्रेस की ही सरकारें थी। अतएव राज्यपालों की कोई विशेष भूमिका नहीं रही। वे संविधानिक प्रधान के रूप मे कार्य करते रहे।

1978 में जनता पार्टी ने सारे राज्यपालों को बदलकर अपने राज्यपाल नियुक्त किये। प्रारम्भ मे राष्ट्रपति नीलम संजीव रेड्डी ने इन राज्यों की सरकारों को भंग करने से इंकार किया था- जनता दल का यह तर्क था कि चूंकि लोकसभा चुनावों में कांग्रेस परास्त हुई है इसलिये जनता ने राज्य सरकारो के विरुद्ध भी मत दिया है। अतएव कांग्रेस राज्य सरकार भले ही बहुमत में हो किन्तु उनको पद पर बने रहने का अधिकार नही है। कुछ उहापोह के बाद, प्रधानमंत्री मोरारजी देसाई के दबाव डाले जाने के बाद ही नीलम संजीव रेड्डी ने राज्य सरकारों को भंग कर इन राज्यों में राष्ट्रपति शासन लागू कर दिया। कांग्रेस के राज्यपाल हटाकर जनता दल ने अपने राज्यपाल नियुक्त किये। मध्यप्रदेश सहित 9 राज्यो में पुन निर्वाचन हुए।

कांग्रेस के बदले अन्य सरकारें पदारुढ़ हुई। मध्यप्रदेश मे भाजपा की सरकार गठित हुई। इसके बाद इस राज्यों में राष्ट्रपति शासन समाप्त कर दिया गया।

इसी प्रकार 1989 में लोकसभा चुनावों में जनता दल को बहुमत मिला और श्री व्ही० पी० सिह प्रधानमंत्री बने। उन्होंने कांग्रेस शासित राज्यों मे सरकारों को भंग कर दिया, और नये निर्वाचन कराये। इन निर्वाचनों में कांग्रेस पराजित हुई और विरोधी दलों की सरकारें बनी। मध्यप्रदेश मे भाजपा सरकार गठित हुई (1990-92)।

6 दिसम्बर 1992 के बाद बाबरी मस्जिद कांड- मध्यप्रदेश सहित तीन अन्य भाजपा शासित राज्यों में राष्ट्रपति शासन

अयोध्या कांड से भाजपा राज्यों सहित कांग्रेसी और गैर काग्रेसी राज्यो के राज्यपालो की भूमिका पर प्रश्न चिन्ह लगने लगा। वे विवादास्पद होने लगे। इन विवादास्पद राज्यो मे उत्तरप्रदेश के सत्यनारायण रेड्डी,

मध्यप्रदेश के कुंअर मेहमूद अली खान, उड़ीसा के यज्ञदत्त शर्मा, तामिलनाडु के भीष्मनारायण सिह प्रमुख हैं। भाजपा सरकारों ने तो राज्यपालों की रिपोर्टों को पक्षपात पूर्ण बताया। इन रिपोर्टों के आधार पर भाजपा सरकारों को भंग कर दिया गया था।

बाबरी मस्जिद टूटने के बाद उत्तरप्रदेश के सत्यनारायण रेड्डी की भूमिका की कड़ी आलोचना की गई, क्योंकि उन्होंने 6 दिसम्बर की रात तक केंद्र को इस बात की जानकारी नही दी थी कि उत्तरप्रदेश की स्थिति विस्फोटक है जो कभी भी बेकाबू हो सकती है। साथ ही राज्यपाल केंद्र को आश्वस्त करते रहे कि स्थिति उत्तरप्रदेश की सरकार के नियंत्रण में है। बाबरी मस्जिद ढहाये जाने के बाद से नरसिहाराव सरकार पर भारी दबाव पड़ा कि अन्य तीन भाजपा सरकारों को भी भंग कर राष्ट्रपति शासन लागू कर दिया जाय, इस दबाव के परिणाम स्वरूप तीनो राज्यों मे - मध्यप्रदेश, हिमाचल प्रदेश, राजस्थान- राष्ट्रपति शासन लागू कर दिया गया। इस बीच सुन्दरलाल पटवा ने जबलपुर हाईकोर्ट में राष्ट्रपति शासन के विरुद्ध याचिका दायर कर दिया और जबलपुर हाईकोर्ट ने राष्ट्रपति शासन लागू किये जाने को अवैध घोषित कर दिया और पटवा सरकार की बहाली के आदेश दे दिये, साथ ही केन्द्र सरकार को सुप्रीम कोर्ट में अपील करने के लिये समय भी दिया। इस बीच केन्द्र ने सुप्रीम कोर्ट में अपील दायर कर दी। सुप्रीम कोर्ट ने हाईकोर्ट के निर्णय को बदलकर केन्द्र सरकार के पक्ष में निर्णय दिया। इस तरह मध्यप्रदेश में 1992-93 तक राष्ट्रपति शासन लागू रहा। 1993 मे मध्यप्रदेश में निर्वाचन हुए और कांग्रेस सत्ता में आई तथा राष्ट्रपति शासन को समाप्त कर दिया गया।

मध्यप्रदेश में राज्यपाल की रिपोर्ट- राष्ट्रपति शासन की संभावना बढ़ी

दिसम्बर माह के अंत तक यह सम्भावना व्यक्त की जाने लगी थी कि मध्यप्रदेश में विशेषकर भोपाल में स्थिति सम्भालने में पुलिस व प्रशासन की असफलता का उल्लेख करते हुए राज्यपाल अपनी रिपोर्ट राष्ट्रपति को भेज दी।[31]

केन्द्रीय मंत्री अर्जुन सिह प्रधानमंत्री के दूत के रूप मे 9 दिसम्बर को प्रदेश की राजधानी भोपाल का दौरा करके गये। अखिल भारतीय कांग्रेस (इ) कमेटी के महामंत्री एवं मध्यप्रदेश के प्रभारी सुशील कुमार शिदे, ऐसे स्पष्ट संकेत दे गये थे, जिनसे प्रदेश में राष्ट्रपति शासन की सम्भावना बढ़ गई। श्री सिह जो राष्ट्रपति डॉ० शंकर दयाल शर्मा के अनुरोध पर यहां आये थे, ने राज्यपाल कुंअर महमूद अली खान से भी भेंट की। राव मंत्रिमंडल में प्रदेश का प्रतिनिधित्व करने वाले समस्त मंत्री एवं सांसदों ने भी राज्य मे पटवा सरकार को तुरंत बर्खास्त कर राष्ट्रपति शासन लागू करने की माग की थी। मानव संसाधन मंत्री अर्जुन सिह ने राष्ट्रपति का संदेश कुंअर मेहमूद अली खान तक पहुंचाया और उसने विस्तार से चर्चा की। राष्ट्रपति डॉ० शंकर दयाल शर्मा ने स्वयं भी राज्यपाल से अयोध्या की घटना के बाद भोपाल और मध्यप्रदेश के अन्य स्थानों की बिगड़ती स्थिति पर विस्तार से चर्चा की।

राज्यपाल केंद्र सरकार की आंख और कान है

राष्ट्रपति संगठनों के विरूद्ध निषेधाज्ञा लागू किये जाने के बाद यह सोचा जा रहा था कि भाजपा शासित राज्यपालों को हटाया जा सकता है क्योंकि इनको हटाये बिना इन संगठनो पर प्रभावपूर्ण ढंग से प्रतिबंध लागू नहीं किया जा सकता। केन्द्र सरकार का यह सोचना था कि इन राज्यपालो ने अपने अपने राज्यो की ठीक रिपोर्ट नहीं दी और केंद्र सरकार को अंधकार में रखा। केंद्र उत्तरप्रदेश के राज्यपाल बी० सत्यनारायण रेड्डी और मध्यप्रदेश के राज्यपाल कुंअर मेहमूद अली खान को हटाने का निर्णय एक प्रकार से ले चुकी थी। ये राज्यपाल जनता दल और समाजवादी जनता दल द्वारा नियुक्त किये गये थे। केद्र का यह मत था कि इन राज्यपालों ने अपने संवैधानिक दायित्वों को पूरा नहीं किया। इनकों केद्र सरकार की आंख और कान के रूप में कार्य करना चाहिए और राज्य की प्रत्येक घटना की जानकारी केद्र सरकार को देना चाहिए। किन्तु मध्यप्रदेश और उत्तरप्रदेश के राज्यपालो ने केन्द्र सरकार को अंधकार में रखा, इसलिए केद्र सरकार उनको हटाने के बारे में सोच रही है।[32]

उत्तरप्रदेश के राज्यपाल सत्यनारायण रेड्डी आंध्रप्रदेश के थे और वे तेलगूदेशम का प्रतिनिधित्व कर रहे थे। मध्यप्रदेश के राज्यपाल कुंअर मेहमूद अली खान उत्तरप्रदेश के थे और जनता दल के सक्रिय सदस्य थे। वे राज्य जहां राष्ट्रीय मोर्चा और समाजवादी जनता पार्टी की सरकारों द्वारा नियुक्त राज्यपाल थे, इस प्रकाश थे- केरल, आंध्रप्रदेश, गुजरात, महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, विहार, उड़ीसा, आसाम, मिजोरम, मेघालय, गोवा।

मध्यप्रदेश के कुंअर मेहमूद अली खान का ढुलमुल रवैया- केंद्र नाखुश

समाचार पत्रों में छपी खबरो के अनुसार दिसम्बर माह (1992) के प्रथम सप्ताह मे मध्यप्रदेश के राज्यपाल कुंअर मेहमूद अली खान ने राष्ट्रपति डॉ० शंकर दयाल शर्मा को जो रिपोर्ट भेजी थी उसमे पटवा सरकार की बर्खास्तगी का स्पष्ट व सीधा सुझाव न देते हुए पुलिस व प्रशासन पर पकड़ न होने का उल्लेख किया था तथा कानून व व्यवस्था में गिरावट की बात पूरे राज्य के संदर्भ में कही गई थी किन्तु इस रिपोर्ट से न तो राष्ट्रपति शर्मा ही प्रसन्न थे और न ही प्रधानमंत्री नरसिह राव को ही उनका रवैया अच्छा लगा।

राज्यपाल पद पर श्री खान की नियुक्ति विश्वनाथ प्रताप सिह सरकार के समय मे हुई थी। 1992 की हलचलों को देखते हुए केंद्र सरकार ने शीघ्र ही पूर्व जनता दल, राष्ट्रीय मोर्चा द्वारा नियुक्त राज्यपालों को बदलने का निर्णय लिया। इस संदर्भ में श्री खान को पदमुक्त किया जाना सुनिश्चित समझा जा रहा था। वैसे भी खान पद पर बने रहने का हर सम्भव प्रयास कर रहे थे और केंद्र से अपने सम्बन्धों को अच्छा वनाने का प्रयास कर रहे थे।[33]

मध्यप्रदेश के अधिकारी इस बात को लेकर पशोपेश में थे कि भाजपा के 11 मत्री तथा 40 से अधिक विधायक जो राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के सदस्य रहे थे, उनके सम्बन्ध में क्या किया जाय? क्या उनको गिरफ्तार किया जाय? उधर केंद्रीय गृह मंत्रालय ने कुंअर मेहमूद अली खान से अनुरोध किया कि केंद्र सरकार द्वारा प्रतिबंधित किये गये साम्प्रदायिक संगठनों से सम्बद्ध मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री सुन्दर लाल पटवा, विधानसभा अध्यक्ष बृजमोहन मिश्र और मंत्रिमंडल के अन्य सदस्यों को तत्काल पद से हटाकर उनके खिलाफ संवैधानिक कार्यवाही की जाय । राज्यपाल को इस बारे मे दिये गये निर्देश मे कहा गया कि साम्प्रदायिक संगठनों से सम्बन्ध रखने वाले और शासकीय पदों पर बैठे इन लोगों का ब्यौरा सभा की परिचय पुस्तिका में दिया गया है और उसी आधार पर उनके खिलाफ कार्रवाई की जानी चाहिए । केन्द्र सरकार ने कहा कि मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री श्री सुन्दर लाल पटवा द्वारा राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ पर लगाये गये प्रतिवंध को सार्वजनिक रूप से अलोकतांत्रिक बताया जाना दुर्भाग्यजनक और असंवैधानिक है । चूँकि श्री पटवा सहित राज्य के मंत्रीगण इस प्रतिबंध की सार्वजनिक रूप से आलोचना कर रहे थे, ऐसी स्थिति में प्रतिबंध का क्रियान्वयन असम्भव प्रतीत होता है।

समस्या का दूसरा पहलू - प्रधानमंत्री नरसिंहा राव द्वारा बहुमत सरकार को भंग करने की अनिच्छा व्यक्त

हिन्दुस्तान टाइम्स 15.12 92 में इसके विपरीत समाचार छपा । प्रधानमंत्री श्री पी. वी. नरसिह राव ने मध्यप्रदेश सहित दो अन्य भाजपा राज्यों पर राष्ट्रपति शासन लागू करने से इंकार कर दिया था । उनका कहना है कि इन राज्यों में संवैधानिक विफलता कानून और व्यवस्था भंग होने की कोई रिपोर्ट राज्यपालों ने नहीं दी है । जब तक राज्यपाल ऐसी रिपोर्ट न दें तब तक मध्यप्रदेश सहित 2 अन्य भाजपा राज्यो में राष्ट्रपति शासन लागू नहीं किया जा सकता । अयोध्या कांड के बाद तो भाजपा, कांग्रेस और अन्य राज्यों में गड़बड़ियॉ हुई । उनके अनुसार जब तककोई राज्य इस क्षेत्र मे विफल नही हो जाता और राज्यपाल इस सम्बन्ध मे रिपोर्ट नहीं दे देते, तब तक इनमें राष्ट्रपति शासन लागू नहीं किया जा सकता । भाजपा राज्यो ने राष्ट्रपति को आश्वस्त किया कि वे प्रतिबंधित संगठनों के विरूद्ध कार्यवाही करेंगे । [34]

मध्यप्रदेश सहित तीनों भाजपा शासित राज्यों की सरकारें बर्खास्त

15 दिसम्बर 1992 की रात राष्ट्रपति डा. शंकरदयाल शर्मा ने मध्यप्रदेश, राजस्थान और हिमाचल प्रदेश की भाजपा सरकारों को रोज्यपालों की रिपोर्ट पर बरखास्त कर दिया, वहॉ विधान सभाऍ भंग कर प्रशासन अपने हाथ लेलिया । तीनों भाजपा सरकारों को बर्खास्त करने के बाद केन्द्र के इस अपेक्षित निर्णय का भाजपा को छोड़कर अन्य सभी राजनीतिक दलों ने स्वागत किया, जब भाजपा ने इसे लोकतंत्र की हत्या निरुपित किया। केन्द्रीय मंत्रिमंडल की 5 घंटे चली 2 बैठको के बाद प्रधानमंत्री पी वी. नरसिहा राव इस सिफारिश

के साथ राष्ट्रपति से मिलने गये । इससे पहले रक्षा मंत्री शरद पवार राष्ट्रपति से भेट करने गये थे । केंद्रीय गृह मंत्री शंकर राव चव्हाण ने मंत्रिमंडल की सुबह हुई बैठक में भाग नही लिया । इस बीच केद्र ने इस फैसले के मद्दे नजर एहतियात के तौर पर सुरक्षा बलों को अधिकतम सुरक्षा के निर्देश दिये । कांग्रेस दल की कार्यसमिति की बैठक में भी सरकार के इस आशय के कदम को सहमति प्रदान कर दी गयी थी । केन्द्र ने यह निर्णय 6 दिसम्बर को बाबरी मस्जिद को गिराये जाने के बाद तेजी से घूमते घटना चक्र के क्रम में लिया था । घटनाचक्र में केंद्र ने गैर कानूनी गतिविधियॉ निवारक कानून के तहत पॉच संगठनो पर प्रतिबंध लगाकर बड़ी संख्या में इनके नेताओं की गिरफ्तारी की थी । इसके पहले भाजपा के कुछ चोटी के नेताओं को गिरफ्तार किया गया था । 35

मानव संसाधन विकास मंत्री अर्जुन सिह के नेतृत्व में सत्तारूढ़ कांग्रेस का एक प्रभावशाली वर्ग इस आधार पर तीनों भाजपा राज्य सरकारों की बर्खास्तगी की मॉग करता रहा कि ये राज्य सरकारे साम्प्रदायिक संगठनों पर लगाये गये प्रतिबंध को ठीक ढंग से लागू नही कर सकती है । इस वर्ग की एक और दलील यह थी कि मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री सुन्दरलाल पटवा, राजस्थान के मुख्यमंत्री भैरोसिह शेखावत तथा हिमाचल प्रदेश के मुख्यमंत्री शान्ता कुमार का प्रतिबंधित राष्ट्रीय स्वंय सेवक संघ के साथ निकट सम्वन्ध था। इन दिनों अर्जुन सिह और अन्य नेता भाजपा सरकारों की बर्खास्तगी की जोरदार मांग करते रहे । अर्जुन सिंह ने एक पत्रकार वार्ता में यह भी कहा था कि तीनों राज्यों के मुख्यमंत्रियों ने यह स्वीकार किया था कि वे प्रतिबंधित आर.एस एस. के सदस्य है और यह प्रतिबंध के आदेश का उल्लंघन है । उन्होने सवाल उठाया कि इन तीनों को किसी सरकार का प्रतिनिधित्व करने कैसे दिया जा सकता है ।

कांग्रेस कार्य समिति ने अयोध्या की घटनाओं के बाद उत्पन्न स्थितियों से निपटने के लिये सरकार द्वारा उठाये गये कदमों को मंजूरी देते हुए सरकार से साम्प्रदायिक संगठनों पर प्रतिवध को और कारगर ढंग से लागू करने के कदम को उठाने कहा था। आर. एस. एस. के कार्यालयों को सील करने और इनके नेताओं की गिरफ्तार करने के लिये कहा गया था।

वामपंथी दलों ने भी भाजपा सरकारों को प्रतिबंधित करने के लिये कहा था । कांग्रेस वामपंथी दलों के साथ धर्मनिरपेक्षता की रक्षा के लिये एक संयुक्त मोर्चा बनाने की कोशिस करती रही है । मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी के महासचिव हरकिशन सिह सुरजीत और पश्चिम बंगाल के मुख्यमंत्री ज्योति बसु ने 14 दिसम्बर, 1992 को प्रधानमंत्री से मुलाकात कर इन सरकारों की बर्खास्तगी की मॉग की और कहा था कि इन तीनों मुख्यमंत्रियों को सत्ता में बने रहने का कोई नैतिक अधिकार नही है क्योकि इन्होने अयोध्या मे कार सेवा कर खुली बगावत की है ।

मध्यप्रदेश और अन्य भाजपा शासित राज्यपालों की रिपोर्ट

हालॉकि मध्यप्रदेश सहित इन सरकारों की बर्खास्तगी का फैसला 15 दिसम्वर को दिन में ही कर लिया गया था किन्तु कानूनी राय थी कि राज्यपालों की रिपोर्ट आने के पहले ऐसा कुछ नही किया जाना चाहिए । इस कारण ही पहले रिपोर्ट प्राप्त करने तथा बाद में कदम उठाने का निर्णय लिया गया ।

मध्यप्रदेश के राज्यपाल कुँअर मेहमूद अली खान ने अयोध्या की घटनाओं के बाद 3 रिपोर्ट भेजी । जब राजस्थान के राज्यपाल चेन्ना रेड्डी और हिमाचल प्रदेश के राज्यपाल वीरेन्द्र वर्मा ने 15 दिसम्वर को अपनी रिपोर्ट राष्ट्रपति को भेजी थी।

मध्यप्रदेश के राज्यपाल ने अयोध्या में मस्जिद गिराये जाने के दो दिन बाद अर्थात् 8 दिसम्बर को प्रेषित अपनी पहली रिपोर्ट में ही भोपाल और राज्य के अन्य भागों में हिसा,लूटपाट की घटनाओं की चर्चा कर कहा था कि राज्य प्रशासन स्थिति से जिस प्रकार निपट रहा है वह संतोषजनक नही है । राज्यपाल की पहली रिपोर्ट में ही विधि के शासन के लिये राष्ट्रपति शासन लागू करने की सिफारिश की थी ।

मध्यप्रदेश का राज्यपाल ने अयोध्या घटनाक्रम के बाद उत्तर प्रदेश सरकार की बर्खास्तगी की मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री द्वारा आलोचना का उल्लेख भी अपनी रिपोर्ट मे किया । राज्यपाल ने 10 दिसम्वर को अपनी रिपोर्ट में हिंसा, आगजनी और लूटपाट की घटनाओं का विवरण देकर कहा था कि राज्य मे जिस ढंग से प्रशासन चल रहा है, उससे पूरी सामाजिक व्यवस्था के लिये खतरा उत्पन्न हो सकता है ।

तेरह दिसबर को भेजी रिपोर्ट में राज्यपाल ने राज्य मे साम्प्रदायिक हिसा के कारण उत्पन्न स्थिति और इससे निपटने के लिये राज्य प्रशासन द्वारा की गई कार्यवाही के सम्बन्ध मे उन्हे प्राप्त स्मरण पत्रो का विस्तार से उल्लेख किया । इनमें से एक स्मरण पत्र राज्य-स्तरीय मानवाधिकार आयोग के अध्यक्ष का भी है। मध्यप्रदेश अकेला राज्य है जहॉ राज्य-स्तरीय मानवाधिकार आयोग कार्यरत है । मध्यप्रदेश के राज्यपाल ने अंतिम रिपोर्ट में लिखा है कि राज्य सरकार मूक दर्शक बनी रही । उन्होने प्रतिबधित संगठनो के कार्यकर्त्ताओं द्वारा राज्य में शरण लिये जाने की आशंका व्यक्त की ।

मध्यप्रदेश की भाजपा सरकार भंग

15 दिसम्बर, 1992 को तीनों राज्यों में राष्ट्रपति शासन लागू कर दिया गया । बी.बी.सी. ने 14 दिसम्बर को 11 बजे रात के समाचार में यह खबर दे दी थी कि मध्यप्रदेश, हिमाचल प्रदेश और राजस्थान की भाजपा सरकारें भंग करने का निर्णय केंद्रीय मंत्रिमंडल ने 14 दिसम्बर की रात को ही ले लिया था । लेकिन मंत्रिमंडल के कुछ सदस्य इस निर्णय से खुश नहीं थे । इसलिये इस निर्णय की घोषणा नही की जा रही थी । 14 दिसम्बर की रात केन्द्रीय मंत्रिमंडल के निर्णय के बाद प्रधानमंत्री नरसिह राव राष्ट्रपति भवन गये और डा.

शंकर दयाल शर्मा को फैसले की जानकारी दी । खबरों में कहा गया कि भाजपा सरकारो को वर्खास्त करने का मॉग अर्जुन सिंह और उनके समर्थक ही कर रहे थे । मन्त्रिमंडल मे उन्ही के दवाव के कारण यह निर्णय लिया गया । इस निर्णय से नाखुश केन्द्रीय कैबिनेट के मंत्रियों की यह राय थी कि इस निर्णय का लाभ अंततः भाजपा को ही मिलेगा ।

मध्यप्रदेश में राज्यपालों के सलाहकार नियुक्त

यह घोषित किया गया कि अजीत सिह, अरुण पंड्या तथा ब्रह्मस्वरूप मध्यप्रदेश के राज्यपाल के सलाहकार नियुक्त होंगे । इसी प्रकार बी. बी. एल. माथुर, लक्ष्मी नारायण गुप्ता तथा ओ पी. टंडन राजस्थान के राज्यपाल के सलाहकार होंगे । पी. वी. श्रीवास्तव को हिमाचल प्रदेश के राज्यपाल का सलाहकार नियुक्त किया गया । उसने बताया कि आगे और सलाहकारों की नियुक्ति की जा सकती है ।

मध्यप्रदेश में तीसरी बार राष्ट्रपति शासन

मध्यप्रदेश में यह तीसरा अवसर था जबकि राष्ट्रपति शासन लागू किया गया । इसके पूर्व 30 अप्रैल, 1977 को तथा 17 फरवरी, 1980 को प्रदेश में राष्ट्रपति शासन लागू किया गया था ।

सन् 1977 में आपातकाल के बाद हुए लोकसभा चुनाव मे कांग्रेस के सफाये के एव केन्द्र में जनता पार्टी की सरकार होने पर अन्य राज्यों के साथ प्रदेश की तत्कालीन श्यामाचरण शुक्ल की सरकार बर्खास्त कर पहली बार प्रदेश में राष्ट्रपति शासन लागू किया गया था। तब राज्य मे राज्यपाल सत्यनारायण सिहा थे और राष्ट्रपति शासन में एक मात्र सलाहकार वी. पी. नरोन्हा बनाये गये थे । यह राष्ट्रपति शासन 23 जून, 1977 तक रहा था और इसकी समाप्ति पर कैलाश जोशी के मुख्यमंत्रित्व मे जनता सरकार सत्तारूढ़ हुई थी । इसके बाद 17 फरवरी, 1980 की बर्खास्तगी के मामले में इतिहास ने अपने को दुहराया और केन्द्र मे फिर से सत्तारुढ़ हुई श्रीमती इंदिरा गाँधी के प्रधानमंत्रित्व में लोकसभा के चुनावो के परिणामो के आधार पर तत्कालीन मुख्यमंत्री सुंदरलाल पटवा की सरकार को बर्खास्त करके राष्ट्रपति शासन लागू किया । श्री पटवा कोई 26 दिन पूर्व ही मुख्यमंत्री बने । इस राष्ट्रपति शासन के समय राज्यपाल श्री सी. एम. पुनाचा थे । लेकिन उनको 2 माह बाद ही 29 अप्रैल को स्थानान्तरित कर उनके स्थान पर भगवत दयाल शर्मा को राज्यपाल पद पर लाया गया था। 17 फरवरी, 1980 से 9 जून, 80 के दौरान रहे इस राष्ट्रपति शासन मे राज्यपाल के सलाहकार रामकृष्ण त्रिवेदी एवं रामनारायण नागू बनाये गये थे । इन दो सलाहकारों में एक तत्कालीन केन्द्रीय खाद्य एवं आपूर्ति मंत्री विद्याचरण शुक्ल एवं केन्द्रीय आवास मंत्री प्रकाश चंद्र सेठी द्वारा अनुशसित थे ।

राज्य के सत्तारूढ़ भाजपा की पौने तीन वर्ष पुरानी सरकार को बर्खास्त कर राष्ट्रपति शासन को लागू किये जाने के बाद, राजनीतिक एवं प्रशासनिक क्षेत्रों मे भावी प्रशासनिक स्वरूप को लेकर अटकलें तेजी से

शुरु हो गई । अगले कुछ दिनों में प्रदेश में नया राज्यपाल कार्यभार ग्रहण करने की सम्भावना व्यक्त की जा रही थी क्योंकि पिछले तीन वर्षों के दौरान राज्य के प्रशासनिक तंत्र में संघ परिवार की हुई घुसपैठ एवं अधिकारियो तथा कर्मचारियों के निष्ठा परिवर्तन की स्थिति को देखते हुए कड़े कदम उठाये जाने की दृष्टि से ऐसे परिवर्तनों को कांग्रेस क्षेत्र मे आवश्यक माना जा रहा था ।

प्रदेश के राज्यपाल कुँअर मेहमूद अली खॉ को केन्द्र में सन् 1989 में जनता दल सरकार के सत्तारूढ़ होने पर नियुक्त किया गया था। उनकी नियुक्त पूर्व प्रधानमंत्री चौधरी चरण सिंह के अनुयायी होने के कारण की गई थी । राष्ट्रपति के सलाहकारों में तीनों अर्जुन सिंह के अंतर्गत कार्य कर चुके थे अतएव राज्य की राजनीति पर अर्जुन सिह का ही वर्चस्व बना रहेगा, ऐसी ही सम्भावना व्यक्त की गई ।

अयोध्या की घटनाओं और राज्यों की राजनीति के संदर्भ में मध्यप्रदेश सहित 6 राज्यों के राज्यपाल बदले गये

1992 के बाबरी मस्जिद कांड के बाद तेजी से घूमते राजनीतिक घटनाक्रम और भावी घटना क्रम के अनिश्चय के धुंधलके में ग्रस्त दिल्ली के राजनीतिक हल्कों में यह सम्भावना बलवती होती जा रही थी कि बहुत जल्द कम से कम 6 राज्यों के राज्यपाल बदले जा सकते है । इनमें मध्यप्रदेश, उत्तर प्रदेश, राजस्थान, तमिलनाडु, गुजरात, महाराष्ट्र और पश्चिम बंगाल जैसे राज्य शामिल रहे थे ।

उस समय मह मानकर चला जा रहा था कि कांग्रेस के प्रति रुझान रखने वाले और सख्त प्रशासक माने जाने वाले पुराने नामवर अफसरों को यह जवाबदारी सौंपी जाने की तैयारी थी । जिन राज्यपालों को हटाया जाना था उनमें मध्यप्रदेश के कुँअर मेहमूद अली खाँ, महाराष्ट्र में सी. सुब्रमण्यम, पश्चिम बंगाल में नरुल हसन और तमिलनाडु में भीष्म नारायण सिह राज्यपाल थे ।

मेहमूद अली खाँ ने कहा कि दंगा पीड़ितों की तुरन्त सहायता करें

मध्यप्रदेश के राज्यपाल कुँअर मेहमूद अली खॉ ने प्रदेश के वरिष्ठ अधिकारियों को निर्देश दिया कि वे शान्ति व्यवस्था बनाये रखने तथा प्रदेश में हुए साम्प्रदायिक दंगो से प्रभावित क्षेत्रों को राहत प्रदान कर उन्हे पुर्नवासित करने के लिये सम्भव प्रयास करे । श्री खान ने अधिकारियों की प्रशंसा करते हुए कहा कि प्रदेश में विकास की अपार सम्भावनाएं है । मुख्य सचिव श्रीमती निर्मला बुच ने भी यही बात कही । उन्होंने कहा कि वे राज्यपाल की पूरी पूरी सहायता करेंगी । राज्यपाल ने कहा की राहत कार्य ठीक से चलाये जायं और दंगा प्रभावित क्षेत्रों में सार्वजनिक वितरण प्रणाली को ठीक से चलाना चाहिए । राज्यपाल प्रमुख सचिव और सचिवों को सम्बोधित कर रहे थे । इस अवसर पर राज्यपाल को सलाहकार अजीत सिह और अरुण कुमार पंड्या भी उपस्थित थे। [36]

मध्यप्रदेश के राज्यपाल को इंका द्वारा राजनैतिक नियुक्तियों के विरुद्ध ज्ञापन - राज्यपाल इन दलीय निर्देशों को मानने के लिये बाध्य

मध्य प्रदेश कॉग्रेस (इ) के वरिष्ठ नेताओं ने मध्यप्रदेश के राज्यपाल कुँअर मेहमूद अली खाँ को एक ज्ञापन देकर साम्प्रदायिक दंगों से पीड़ित व प्रभावित लोगों की, जिनके जानमाल की क्षति हुई है, उनकी शासन समुचित व्यवस्था करने तथा दोषी अधिकारियो, कर्मचारियो के विरुद्ध कार्यवाही करने, शासकीय उपक्रमो, निगमों, मंडलों में राजनीतिक आधार पर अध्यक्ष, उपाध्यक्ष, संचालक आदि को हटाने, विभिन्न स्तरों पर गठित सलाहकार समितियों को भंग करने तथा प्रतिबंधित संगठनों से जुड़े हुए लोगों की भाजपा शासन काल में शासकीय सेवाओं में की गई नियुक्तियों को समाप्त करने की मांग की गई ।

राज्यपाल कुँअर मेहमूद अली खॉ से मिलने वाले प्रतिनिधियों में प्रदेश कांग्रेस (इ) के महामंत्री सर्वश्री हरवंश सिह, महेश जोशी, इंका विधायक श्री अजय सिह, प्रदेश कांग्रेस (इ) उपाध्यक्ष श्री गुफराने आजम, संयुक्त मंत्री श्री मानक अग्रवाल, भूतपूर्व गृहमंत्री श्री हजारीलाल रघुवंशी, भोपाल नगरपालिका निगम के महापौर हुए श्री आर. के. बिसारिया, श्री दीपचंद यादव, प्रेमनारायण मिश्रा आदि अनेक नेता शामिल थे । [37]

राज्यपाल को दिये गये ज्ञापन में कहा गया कि भोपाल तथा मध्यप्रदेश के नगरों में जहाँ साम्प्रदायिक दंगों में जन-धन की हानि हुई है, इसकी शाघ्र ही क्षतिपूर्ति की जाय । जिनकी झुग्गियॉ जली हैं, उन्हें बनाने हेतु सामग्री दी जाय, तथा जो रोजगार विहीन हुए हैं, उन्हें रोजगार मे लगाने की व्यवस्था की जाय । मृतको के प्रत्येक परिवार को कम से कम एक लाख रुपये अनुग्रह राशि दी जाय । उनके परिवार के एक व्यक्ति को शासकीय सेवा में लिया जाय । भोपाल तथा अन्य नगरो में जहॉ लोग रोज कमाकर खाते है और काम पर नहीं जा सके हैं, उनको फिलहाल मुफ्त खाद्य सामग्री दी जाय। अन्य नगरों में चल-अचल सम्पत्ति का जो नुकसान हुआ है, इसका आकलन कर क्षतिपूर्ति की जाये। साडा नगर सुधार न्यास एवं विकास प्राधिकरण में से भी राजनैतिक नियुक्तियों को समाप्त किया जाय। भारतीय जनता पार्टी शासन काल मे शासकीयपदों पर जिनका चयन हुआ है, उनकी नियुक्तियो पर रोक लगाई जाय तथा उनके कार्यकाल में जो नियुक्तियां हुई हैं व जो प्रतिबंधित संगठनों से जुड़े हैं, उन्हें सेवामुक्त किया जाय । जो शासकीय सेवक प्रतिबंधित संगठनों के कार्यक्रमों में खुलकर कार्य करते है, उनको भी पदमुक्त किया जाये । जिन शहरों में दंगे हुए हैं वहाँ के थाना प्रमुखों को हटाया जाय। [38]

इस प्रकार राष्ट्रपति शासन लागू होने पर राज्यपाल को केन्द्र के सत्तारूढ़ दलके निर्देशों पर चलने के लिये बाध्य किया जाता है। इस ज्ञापन में राज्यपाल से आशा की गई है कि वह प्रदेश शासन में "भाजपाईकरण" को रोकें । इसके पूर्व जब केन्द्र में जद सत्ता में आई थी और कांग्रेस विरोध में तो राज्यपाल को प्रशासन से "कांग्रेसीकरण" को रोकने के लिये कहा गया था । इस तरह राज्यपाल कुँअर मेहमूद अली खाँ को अपने

कार्यकाल में दो विरोधी भूमिकायों को निभाने केलिये कहा गया । प्रश्न यह उठता है कि क्या राज्यपाल इस तरह की विरोधी भूमिकाएं निभा सकता है ? इसीलिये उस समय यही सम्भावना व्यक्त की गई कि राज्यपाल को हटा दिया जायेगा और कांग्रेस पार्टी किसी दलीय निष्ठा वाले व्यक्ति को ही इस पद पर नियुक्त करेगा ।

भाजपाईकरण को बदलने के साथ-साथ राष्ट्रपति शासन काल में राज्यपाल के सलाहकारो में कार्य विभाजन के साथ ही गतिविधियाँ तेज हो गई । विभागों द्वारा सम्बन्धित कानूनों एव प्रशासनिक स्थिति का अध्ययन कर अपने-अपने विभागों के अन्तर्गत उठाये जाने वाले कदमों के प्रस्ताव तैयार किये जा रहे थे । इन अशासकीय राजनीतिक नियुक्तियों को समाप्त किये जाने की प्रतीक्षा उन पदाधिकारियों को भी थी, जो कि बर्खास्त की गई भाजपा सरकारों में विभिन्न पदों पर बैठाये गये थे । प्रशासनिक क्षेत्रों मे से ऐसे सकेत मिल रहे थे कि मामले में निर्णय शीघ्र सलाहकारों द्वारा किया जा सकता था । इसबीच राज्यपाल को वैकल्पिक आय स्त्रोतों पर भी विचार करना था । जिन निगम मंडलों में विभागीय सचिवों से वरिष्ठ अधिकारी प्रवंध संचालक थे, उनमे प्रबंध संचालकों को ही अध्यक्ष बनाने की दिशा में भी सोचा जा रहा था । जहॉ तक कृषि उपज, मंडी समितियो, भार साधक समितियों तथा अन्य समितियों का सवाल है, इनको समाप्त करने के लिये राज्यपाल पर दबाव बढ़ रहा था । दलगत आधार पर बनाई गई विभिन्न समितियों को भी समाप्त किये जाने की दिशा मे हलचल आरम्भ हो गई। 39

गैर भाजपाईकरण की प्रक्रिया में राज्यपाल की क्या भूमिका हो ?

केन्द्रीय जल संसाधन मंत्री विद्याचरण शुक्ल ने भोपाल आकर राज्यपालो से चर्चा के दौरान यह जानकारी दी कि अयोध्या की घटनाओं के बाद हुए दंगों की गहराई से जॉच के बाद सरकार उन सबके खिलाफ कड़ी कार्यवाही करेगी जो मध्यप्रदेश में हिंसा भड़काने या उकसाने के दोषी पाये जायेंगे । श्री विद्याचरण शुक्ल ने 18 दिसम्बर, 1992 को राजभवन में राज्यपाल, उसके सलाहकारो एवं मुख्य सचिव से दंगों के बाद दीर्घकालिक चर्चा की । श्री शुक्ल ने कहा कि वे राज्य में राज्यपाल और अन्यो से दंगो के बाबत तथ्य एकत्रित करने आये हैं । यह पूछे जाने पर कि क्या मध्यप्रदेश के राज्यपाल को बदला जायेगा, श्री शुक्ल ने कहा कि उन्हे इसकी कोई जानकारी नहीं है । उन्होंने राज्यपाल का कोई और सलाहकार नियुक्त किये जाने की सम्भावना से इंकार किया तथा तीन सलाहकारो की वर्तमान टीम की पूर्ण और सन्तुलित टीम बतलाया । 40

राज्यपालों को लेवी समाप्ति का ज्ञापन

मध्यप्रदेश केकिसान संघों ने मध्यप्रदेश में धान पर लगाये गये लेवी को समाप्त करने का ज्ञापन राज्यपाल को दिया । धान के भाव तेजी से टूट रहे थे । इसे रोकने के लिये किसानो को लूट से बचाने के लिये धान पर से लेवी समाप्त करना आवश्यक था । पूर्व मुख्य मंत्री श्री श्यामाचरण शुक्ल ने केन्द्र सरकार से मॉग की कि भाजपा शासनद्वारा धान पर लगाई गई लेवी को तत्काल समाप्त कर दिया जाये । राज्यपाल को दिये गये

ज्ञापन में उन्होंने कहा कि प्रदेश केबाहर धान की निकासी को जो बंद रखा गया था उमे भी तत्काल प्रारम्भ किया जाय जिससे कि प्रदेश में समस्त किसान लाभान्वित होगे।41

राज्यपाल की दंगों के बाद बढ़ती भूमिका भोपाल में राष्ट्रपति शासन का असर दिखाने लगा

राष्ट्रपति शासन लागू होने के बाद से प्रदेश के शासन तंत्र की बागडोर राज्यपाल के हाथों में आ गई। बदले हालातों में प्रशासन की पहली प्राथमिकता भोपाल समेत राज्य के दंगाग्रस्त इलाको में सामान्य स्थिति की बहाली, पीड़ितों को राहत तथा प्रतिबंधित संगठनों पर पाबंदी का असरकारी अमल सुनिश्चित करना था। इधर राष्ट्रपति शासन का असर दिखलायी देने लगा था ।

सुन्दर लाल पटवा सरकार की बर्खास्तगी के बाद ही प्रशासन ने कानून व्यवस्था को और अधिक चुस्त दुरुस्त करने की प्रक्रिया शुरु कर दी थी। राज्यपाल कुँअर मेहमूद अली खॉ ने 18 दिसम्बर, 92 को अपने दोनों सलाहकारों अरुण पंड्या और अजीत सिह तथा वरिष्ठ अधिकारियो के साथ स्थिति की समीक्षा की । सभी जिला प्रशासकों को चौकस रहने के निर्देश नये सिरे से दिये गये । भारतीय जनता पार्टी तथा उसमें जुड़े संगठनों पर सरकार की बर्खास्तगी की सम्भावित उग्र प्रतिक्रिया के मद्देनजर तमाम सावधानियॉ बरती जा रही थी । हिंसा को रोकने के लिये हर मोर्चे पर सख्ती बरतने का निश्चय किया गया । यो भी राष्ट्रपति शासन लगाने का फैसला लेने के साथ केन्द्र सरकार ने प्रदेश मे सुरक्षा बलों को सतर्क कर दिया था । प्रतिबंधित संगठनों की गतिविधियों पर अंकुश लगाने के लिये कार्यवाही तेज कर दी गई थी । केन्द्र ने भाजपा सरकार की बर्खास्तगी के लिये मुख्य आधार बनाया था, उसमे इन संगठनो के खिलाफ प्रतिबंध पर प्रभावी रूप से अमल न करना शामिल था । लिहाजा पाबंदी को लागू करना मुख्य मकसद था, तथा इसका असर दिखलायी देने लगा था । प्रदेश भर के राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ, विश्व हिन्दू परिषद और बजरंग दल के कई नामी नेताओं की गिरफ्तारियॉ हुई । आने वाले दिनों में कई और बड़े नेताओं की गिरफ्तारियॉ हो सकने की सम्भावना व्यक्त की गई।

राज्यपाल ने कहा कि वे इस बारे में कुछ नही कह सकते कि राष्ट्रीय स्वय सेवक संघ तथा विश्व हिन्दू परिषद से जुड़ी संस्थाओं का क्या होगा । सरस्वती शिशु मंदिर, विद्या भारती, वर्किग वूमन हास्टल, बनवासी सेवा आश्रम जैसी कई संस्थाएं ऐसी थी, जिन्हें राज्य सरकार से मदद मिलती थी । राज्यपाल का कहना था कि ऐसी संस्थाओं को मदद बंद कर दी जायेगी । प्रतिबंध ने शैक्षणिक व सामाजिक गतिविधियॉ चलाने वाली संस्थाओं के अस्तित्व पर सवालियानिशान लगा दिया था । इन्हें बंद करने में कानूनी अड़चनें आ सकती थीं, नये प्रशासनिक ढॉचे द्वारा कानून व्यवस्था लागू करने के अलावा दंगा पीड़ितो का राहत मुहैया कराने को अहमियत दी जानी थी ।

राज्यपालों ने कहा कि प्रदेश में पहली बार इतने बड़े पैमाने पर दंगे भड़के थे । अकेले राजधानी में जानमाल की अकल्पनीय क्षति हुई । राहत कार्यों को भविष्य में और सघन करने का निर्णय लिया गया । केन्द्र सरकार द्वारा पीड़ितों के लिये और अधिक धनराशि मंजूर किये जाने की सम्भावना व्यक्त की गयी । राज्यपाल ने कहा कि दंगों की न्यायिक जॉच हो सकती है । उन्होंने कहा कि 7 दिसम्बर को पुराने भोपाल में जिस तरह एक साथ उपद्रव हुए, उसमें दंगे के पीछे सुनियोजित साजिश लगती थी । अयोध्या में ढॉचा गिरने के बाद भी स्थानीय प्रशासन (पटवा सरकार) के हाथ पर हाथ धर कर बैठे रहने के कारण भोपाल में स्थिति बेकाबू हुई । यदि प्रशासनिक मशीनरी चौकन्नही होती तो शायद भोपाल को ऐसी स्थिति झेलनी नही पड़ती। इस तरह यह आरोप न केवल पटवा सरकार परलगाया जाय, वरन् परोक्ष रूप से राज्यपाल पर भी लगाया जा रहा था, क्योकि मेहमूद अली खॉ उस समयभोपाल के राज्यपाल थे । पूर्व मुख्यमत्री सुन्दरलाल पटवा खुद स्वीकार करते थे कि खुफिया विभाग दंगों से बेखबर था । इन हालातो मे राज्यपाल भी दंगों की न्यायिक जाँच करवाने से मुकर नहीं सकते थे । राज्यपाल नें कहा कि कानून व्यवस्था और प्रतिबध जैसे जरूरी मामलो से निपटने के बाद प्रशासनिक फेर बदल और परिवर्तन चलते रहेंगे । लेकिन जिला स्तर पर कोई भी रद्दोबदल समूचे प्रदेश में सामान्य स्थिति में बहाली के बाद होना था । पटवा सरकार को सत्तारूढ़ होने के बाद से कांग्रेस नेता प्रशासन तंत्र के राजनैतिककरण का आरोप लगाते रहे थे । कई महत्वपूर्ण पदो पर ऐसे अफसर बैठे थे जिनकी गिनती पूर्व सत्ताधारी दल के खासमखास लोगों मे होती थी । ऐसे अफसरो की छुट्टी तय थी । इसी तरह कांग्रेस के साथ अपनी पहचान जोड़ चुके अधिकारियों का वनवास खत्म हो जाना था।

राज्यपाल मेहमूद अली खॉ ने कहा कि बहरहाल बड़े पैमाने पर प्रशासनिक फेरबदल नही होगा । धीरे-धीरे परिवर्तन होंगे जो नीचे तक जायेंगे । प्रशासनिक फेर पदल के अलावा निगम मंडलो तथा विशेष क्षेत्र प्राधिकरणों में पूर्व भाजपा सरकार द्वारा नियुक्त पदाधिकारी हटाये जायेंगे । दीन दयाल अन्त्योदय समितियो के बदले 20 सूत्रीय समितियों की वापसी का रास्ता खुल चुका था । दरअसल भाजपा सरकार की बर्खास्तगी में रातों रात समूचा परिदृश्य बदल गया था । राज्यपाल को इस परिवर्तित स्थिति में अपनी विशेष भूमिका अदा करनी थी । नये हालातों में संघ और भाजपा के नेता अपनी रणनीति तय करने मे जुट गये, इनका भी मुकाबला राज्यपाल को करना था।

राज्यपाल द्वारा प्रदेश के निगम मण्डलों की बर्खास्तगी

राज्यपाल मेहमूद अली खाँ ने पूर्व भाजपा सरकार के 1 11 92 के बाद के सभी फैसलो की समीक्षा करने का निर्णय लिया । सम्बन्धित सचिवों को इन फैसलों की समीक्षा करना था। इन सचिवों को जिन निर्णयों का परीक्षण जायज समझ में आएगा उन्हें मुख्य सचिव के ध्यान में लाना था।

राज्य शासन ने प्रदेश के सभी उपक्रमों, निगम मडलों, प्राधिकरणो, न्यास आदि मे शासकीय पदाधिकारियो, संचालक मंडल आदि की नियुक्ति कालावधि, अपदस्थ करने का प्रकरण जुटाना शुरु कर दिया था । कई उपक्रमों के बारे में जानकारी आ भी चुकी खी । इन जानकारियों के आधार पर राज्यपाल का उनके सलाहकारों के साथ विचार विमर्श होना था और बर्खास्तगी का सिलसिला शुरु करना था। जिन उपक्रमों या निकायों में दो वर्ष के कार्यकाल की स्पष्ट व्यवस्था नहीं थी, वहॉ के पदाधिकारियों को पहली किश्त मे ही हटा दिया गया। जहॉं प्रावधान की बाधा आई वहॉ कोई नई तजवीज की गई।

राज्यपाल का यह सोच था कि राज्य शासन के कर्मचारियों के मॅंहगाई भत्तो की एक किश्त और बोनस के भुगतान के आदेश जो कि साइक्लोस्टाइल भी हो गये थे, जारी होने से रोक दिये जाने चाहिए । राज्यपाल के सलाहकार श्री ए. के. पंड्या, जिनके पास वित्त विभाग भी था, के अवलोकनार्थ सम्वन्धित नस्ती भेज दी गई।

राज्यपाल से अनुरोध - पटवा व उनके रिश्तेदारों के धन की जॉच हो

मध्यप्रदेश कांग्रेस के संयुक्त सचिव मानक अग्रवाल ने प्रदेश के राज्यपाल कुॅंअर मेहमूद अली खॉ से अनुरोध किया कि पिछले पौने तीन सालो में राज्य के पूर्व मुख्यमंत्री सुन्दर लाल पटवा और उनके रिश्तेदारों द्वारा अर्जित की गई अपार चल अचल सम्पत्ति की जॉच कराई जाय । [42]

सरकार भंग करके राज्यपाल की रिपोर्ट को सार्वजनिक कर तुरन्त चुनाव कराने का ज्ञापन

इस सम्बन्ध में भाजपा का एक प्रतिनिधि मंडल पूर्व मुख्यमंत्री श्री सुन्दर लाल पटवा के नेतृत्व में राज्यपाल कुॅंअर मेहमूद अली खॉं से मिला तथा उन्हें एक ज्ञापन सौंपा । राज्यपाल को दिया गया यह सात सूत्री ज्ञापन राष्ट्रपति को सम्बोधित थी। ज्ञापन में स्पष्ट रूप से कहा गया था कि प्रदेश में भाजपा की दो तिहाई बहुमत से चुनी संविधानिक सरकार जो संविधान द्वारा प्रदत्त अपने दायित्वोका निष्ठापूर्वक पालन कर रही थी, को भंग करके केन्द्र सरकार ने लोकतंत्र की हत्या की है । श्री पटवा ने कहा कि कानून व्यवस्था भंग होने के आधार पर किसी राज्य की सरकार को अवश्य भंग किया जा सकता है किन्तु राज्य सरकार तो इस सम्बन्ध मे अपने आदेशों का पालन कर रही थी । गैर भाजपा राज्यों जैसे महाराष्ट्र की स्थिति तो बहुत ही अधिक बदतर थी किन्तु उसे भंग नही किया गया ।

दूसरी बात, इस आधार पर किसी राज्य सरकार को भंग किया जा सकता था कि वह प्रतिबंधित संगठनो से अपना सम्बन्ध बनाये हुए है । श्री पटवा ने कहा कि, "यदि आर.एस.एस से सम्वद्धता हमारी सरकार के भंग करने का एकमात्र कारण था तो इसकी तार्किक परिणति हमारी गिरफ्तारी मे होनी थी । लेकिन ऐसी कोई कार्यवाही नहीं की गई, उल्टे हम आज तक अपनी गिरफ्तारी की बाट जोह रहे है।" श्री पटवा से पूछा गया

कि क्या, रिपोर्ट के साथ मानवाधिकार की रिपोर्ट भी संलग्न है, श्री पटवा ने कहा कि इसकी उनको कोई जानकारी नहीं है । श्री पटवा से यह भी पूछा गया कि क्या पूर्व में राज्यपाल की ऐसी कोई रिपोर्ट प्रकाशित किये जाने का उदाहरण है, उन्होंने कहा कि उनके पास ऐसा कोई भी उदाहरण नही है । लेकिन यह भी हो सकता है कि पूर्व में किसी राजनैतिक दल ने रिपोर्ट प्रकाशित करने की मॉग नहीं की हो, लेकिन हमने रिपोर्ट को सार्वजनिक करने का मॉग नहीं की है । इस बीच मध्यप्रदेश के राज्यपाल ने राहत कार्यों की व्यापक निगरानी करानी आरम्भ कर दी । वे इस कार्य को प्राथमिकता दे रहे थे।

राज्यपालों में व्यापक फेर बदल

वे राज्यपाल जो प्रतिबंधित संस्थाओं के सदस्य थे, या जिन्होने दगा रोकने मे अपनी विफलता जाहिर की थी, उनको बदला गया और उनके स्थान पर कांग्रेस समर्थक राज्यपालो को नियुक्त किया गया । प्रधानमत्री द्वारा कुछ नये नामों की सूची तैयार की गयी थी जिनको राज्यपाल नियुक्त किया जा सकता था ।

राष्ट्रपति शासन में अधिकारी कैसे कार्य करें इस पर निर्देश दिये गये - राज्यपाल की सक्रिय भूमिका

राज्यपाल के तीनों सलाहकारों ने 22 दिसम्बर को भोपाल मे प्रदेश के सभी सम्भागायुक्तों तथा पुलिस महानिरीक्षकों से पृथक-पृथक तथा एक साथ चर्चा की एवं राष्ट्रपति शासन पर अधिकारियों को किस तरह कार्य करना है, प्रशासन को स्पष्ट छवि बनाना है, तथा निष्पक्ष तरीके से काम कराकर जनता मे विश्वास की भावना पैदा करने पर जोर दिया गया तथा साम्प्रदायिक सद्भावन बनाये रखने के विशेप प्रयास करने के निर्देश दिये गये । यहजानकारी सम्भागायुक्त श्री ए. डी.मोहिले ने देते हुए बताया कि केन्द्र के एजेट के रूप में राज्यपाल यह चाहते थे कि राष्ट्रपति शासन में लोगों को स्वच्छ प्रशासन मिले, भ्रष्टाचार, लाल फीताशाही, धौस समाप्त किया जाय।

इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिये राज्यपाल सलाहकारों, पुलिस महानिरीक्षको, सम्भागायुक्तों से सतत सम्पर्क में रहेंगे। राज्यपाल के सलाहकार थे - श्री ब्रह्म स्वरूप, अजीत सिह तथा अरुण पंड्या । कानून व्यवस्था तथा विकास के कार्यों पर कड़ी नजर रखी गयी।[43]

राजभवन और सचिवालय में टकराव - अपने सलाहकार ब्रह्म स्वरूप से राज्यपाल दो विभाग छीने[44]

कुँअर मेहमूद अली खॉ ने अपने आदेशों की अवहेलना पर नाराजगी व्यक्त करते हुए सलाहकार ब्रह्मस्वरूप से गृह एवं सामान्य प्रशासन विभाग का कार्यभार छीन लिया । 23 दिसम्बर को राज्यपाल ने नये पद स्थापनाओं के आदेश जारी किये । लेकिन ब्रह्म स्वरूप ने उनके क्रियान्वयन से इंकार कर दिया था । इस अभूतपूर्व

घटनाक्रम की शुरुआत उस वक्त हुई जब ब्रह्मस्वरूप ने मुख्य सचिव निर्मला बुच एवं पुलिस महानिदेशक डी. के. आर्य को स्थानान्तरित करने के आदेशों को क्रियान्वित करने से इंकार कर दिया । राज्यपाल ने इन आदेशों को रेडियो एवं टेलीविजन पर भी आग्रह करके प्रसारित करवाया था । इन पद स्थापनाओं तथा तबादलों को लेकर राज्यपाल और ब्रह्म स्वरूप में भारी टकराव उत्पन्न हो चुका था ।

23.12.92 को 4 राज्यों में (मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, हिमाचल प्रदेश, राजस्थान) में लगाये गये राष्ट्रपति शासन को लोक सभा की मंजूरी दे दी गयी । लोकसभा से भाजपा ने वाक आउट किया ।

राज्यपाल से पूछा गया मंत्रियों को हटाने से कितनी बचत

राज्यपाल कुँअर मेहमूद अली खाँ ने दावा किया कि राज्य में अमन चैन तेजी से कायम हो रहा है, और दंगा पीड़ितों को राहत पहुँचाने का काम तेजी से चल रहा है । श्री खाँ से पत्रकारों ने पूछा कि पटवा सरकार के 51 मंत्रियों को हटाये जाने के बाद सरकार को कितनी बचत होगी । उन्होंने तपाक से कहा कि उनका गणित कमजोर है । उन्होंने कहा कि राज्य में अमन चैन तेजी से कायम हो रहा है और दंगा पीड़ितों को राहत पहुँचाने का कार्य तेजी से चल रहा है । राज्यपाल ने पत्रकारों के समक्ष कहा कि हर रोज वह प्रदेश के 60-70 लोगों से मिलते हैं तथा उन्हें राजधानी की हर प्रकार की गतिविधियों की जानकारी है । हर प्रकार की शिकायतों का निराकरण किया जा रहा है । किन्तु राज्यपाल इस प्रश्न को टाल गये कि प्रदेश के विश्वविद्यालयों एवं अन्य संस्थाओं में प्रतिबंधित संगठनों से सम्बन्धित व्यक्तियों पर क्या कार्यवाही की जा रही है।

राज्यपाल खान ने अपने गुरु चरण सिंह को स्मरण किया

राज्यपाल ने पूर्व प्रधानमंत्री स्वर्गीय चरण सिंह के जन्मदिवस पर उनका स्मरण करते हुए उन्हें श्रद्धांजली अर्पित की। इस अवसर पर अपने संदेश में राज्यपाल ने कहा कि स्वर्गीय चौधरी चरण सिंह ने देश के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। उन्होंने कहा कि उन्हें चौधरी चरण सिंह के साथ काम करने का मौका मिला है और उनके व्यक्तित्व से काफी प्रभावित हुए हैं। उन्होंने कहा कि ग्रामिण विकास कार्यों को गतिशील बनाने और विशेषकर किसानों के कल्याण के कार्यों को बढ़ावा देने में उन्होंने जो दिशा दर्शन दिया वह रहेगा। [45]

राज्यपाल ब्रह्म स्वरुप विवाद कांग्रेस गुटबाजी का परिणाम

प्रदेश में राष्ट्रपति शासन लागू होने के पश्चात कुँअर मेहमूद अली खान तथा उनके वरिष्ठम नेता एवं पूर्वमंत्री बाबुलाल गौर, विक्रम वर्मा तथा लक्ष्मी नारायण शर्मा ने कांग्रेस की आपसी गुटबाजी का नतीजा बताया। इन नेताओं ने भोपाल में जारी एक बयान में कांग्रेस के केन्द्रीय नेताओं पर आरोप लगाया कि वे प्रदेश शासन के कार्यकलापों में अवैधानिक हस्तक्षेप कर प्रशासन का माखौल उड़ा रहे हैं। इन नेताओं का कहना था कि प्रदेश के मुख्य सचिव, प्रमुख सचिव, गृह तथा पुलिस महा निदेशक को पद से हटाने के राज्यपाल के आदेशों

का क्रियान्वयन नहीं करना हस्याप्रद है। अधिकारियों के इस प्रशासनिक फेर बदल से उत्पन्न गतिरोध की आलोचना करते हुए भारतीय जनता पार्टी के सांसद कैलाज नारायण सारग व पूर्वमत्री रहे शीतला सहाय तथा कैलाश चावला ने इसे "हास्यप्रद तथा प्रशासन का तमाशा" बताया।

राज्यपाल ने छीने हुए विभाग अपने पास रखे

ब्रह्म स्वरुप से छीने गये विभाग राज्यपाल नें अपने पास रखे। राजभवन से इस आशय की अधिसूचना जारी कर दी गयी है। भोपाल और उज्ञैन के साम्प्रदायिक दंगों की प्रशासनिक जॉच के स्थान पर न्यायिक जॉच कराने के निर्णय में भी राज्यपाल ने ब्रह्म स्वरुप से मशविरा नही किया। कांग्रेस पार्टी ने यह आशंका व्यक्त किया कि प्रमुख सलाहकार के बीच गतिरोध के कारण मध्यप्रदेश की राजनीति और प्रशासन पर गहरा असर पड़ने वाला था।

भाजपा की आलोचना

भाजपा के कैलाश चावला और शीतला सहाय ने कहा कि राज्य मे "संवैधानिक संकट" उत्पन्न हो गया है। एक ओर राज्यपाल, मुख्यसचिव, गृह सचिव तथा पुलिस महा निदेशक जैसे महत्वपूर्ण प्रशासनिक पदो मे हेरफेर कर रहें हैं तो दुसरी ओर सलाहकारों द्वारा उनके आदेशो को अमान्य करके इस प्रकार के परिवर्तन से इंकार किया जा रहा है। ऐसा प्रतीत होता है कि मध्यप्रदेश में राज्यपालो एव सलाहकारो के बीच अधिकारो की लड़ाई आरम्भ हो चुकी है। भाजपा नेताओं ने कहा कि कांग्रेस के नेताओं द्वारा गुटीय आधार पर की गयी सलाहकारों की नियुक्ति का यही दुष्परिणाम होना था। राज्यपाल ने भी राजनैतिक दवाव में आकर भाजपा के खिलाफ रिपोर्ट भेजकर न केवल अपने को वरन अपने पद की गरिमा को सकट मे डाल दिया है। श्री सारंग ने इसे आपसी राजनीति का खींचतान बताया। [46]

ब्रह्म स्वरुप राज्यपाल के विरुद्ध अड़े और कहा कि ये इस्तीफे नहीं देंगे - [47]

राज्यपाल के वरिष्ठ सलाहकार ब्रह्मस्वरुप ने कहा कि उनका अपने पद से त्यागपत्र देने का अभी न तो कोई इरादा है और न इस दिशा में जल्दबाजी में वे कोई कदम उठायेगे। राज्यपाल द्वारा ब्रह्मस्वरुप से दो विभाग सामान्य प्रशासन एवं गृह जैसे संवेदनशील विभाग वापस ले लिये गये थे। श्री ब्रह्मस्वरुप ने प्रेस के प्रश्नों का उत्तर देते हुए कहा कि वे इन संवेदनशील विभागों को उनसे वापस ले लिये जाने का कारण राहत महसूस कर रहें हैं। श्री स्वरुप ने कहा कि मामले मे केन्द्रीय सरकार से सम्वद्ध होने के कारण वह भारतीय प्रशासनिक सेवा के उत्तरदायी पुर्ण अधिकारी होने के नाते ऐसा कोई कदम उठाना उचित नहीं मानते जिससे कि केन्द्र सरकार के लिए कोई समस्याएं उत्पन्न हों।

राज्यपाल ने भोपाल से अपने निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार दिल्ली रवाना होने से पूर्व अपने वरिष्ट सलाहकार ब्रह्मस्वरुप से गृह एवं सामान्य प्रशासन विभाग वापस ले लिया था । यह कदम उच्च प्रशासनिक फेरबदल के क्रियान्वयन नही होने पर उठाया गया था।48

राजभवन एवं वल्लभ भवन के बीच खींचतान- 49

ललित सुरजन, संपादक, देशबन्धु ने लिखा है कि राज्य के नये मुख्य सचिव एवं पुलिस महानिदेशक के मामले से सम्बन्धित विवाद का प्रमुख प्रश्न यह है कि क्या प्रशासक भी राजनीतिक गुटवाजी का शिकार हो गया है? राज्यपाल द्वारा जारी नियुक्ति को उनका सलाहकार रद्द करने का साहस कैसे कर पाया। यह एक अभूतपूर्व "दृष्टान्त " की स्थापना कर सकता है और नौकरशाही के बढ़ते हौसले के प्रमाण भी। यह दृश्य किसी संवैधानिक संकट को तो आमंत्रित नही करेगा परन्तु इसे प्रशासनिक संकट अवश्य कहा जा सकता है।

राज्यपाल ने राष्ट्रपति से मुलाकात अवश्य की और यह मामला उठा भी था जव किसी राज्य में निर्वाचित सरकार न हो तो सरकारी अधिकारियो को राज्यपाल के सलाह पर ही काम करना पड़ता है और यदि सलाहकार और राज्यपाल के बीच किसी नियुक्ति के मामले पर राज्यपाल की बेइज्ज़ती के स्तर तक मतभेद उभर आये तब तो अन्य नीति विषयक निर्णयों की क्या दुर्गती होगी, सहज ही समझा जा सकता है। बेहतर तो यह होता है कि राज्यपाल के सलाहकार को ही बदल दिया जाता। इस प्रशासनिक संकट का सामना करने के लिए भाजपा सामने आ गयी थी। एक अधिकारी या अधिकारियों के एक वर्ग को प्रभावशाली मानते हुए राज्यपाल को बदलना गलत होगा। राज्यपाल की बेइज्ज़ती का प्रश्न इसलिए है कि राज्यपाल द्वारा नियुक्त नाम रेडियो एवं टी०वी० पर भी प्रसारित हो गये थे। यदि मामला बल्लभ भवन की फाइलो तक ही सीमित रहता तो भी यह विवाद सार्जनिक नहीं होता। आज तो यह अप्रिय दृश्य सामने आया है उसके लिए राजनीतिक आधार पर नियुक्तियो की प्रवृति को ही दोष दिया जा सकता है। प्रशासनिक अधिकारियो पर यदि बोरा गुट, अर्जुन सिह गुट या बी. सी.गुट का लेबल लगा रहेगा तब तो यह प्रसंग बार-बार दुहराया जायेगा। इस सम्पुर्ण प्रकरण में राज्यपाल ने "इन्तजार करो और देखो" कहा था । श्री ब्रह्मस्वरुप जो स्वय एक मॅजे हुए प्रशासनिक अधिकारी है, राज्यपाल के आदेश को बिना किसी खास कारण के रोक टोक नही सकते।

विषय पर कई बिन्दुओं के अन्तर्गत विचार हो आवश्यक है, एक तरफा विचार गलत भी हो सकता है।

पहला प्रश्न यह उठता है कि क्या राज्यपाल मेहमूद अली खॉ को स्वविवेक मे कोई निर्णय लेने का अधिकार है ? यह स्पष्ट है कि जब राष्ट्रपति शासन लागू किया गया है तो राज्यपाल को स्वविवेक में निर्णय का कोई अधिकार नहीं है। राज्यपाल को गृह मंत्रालय के निर्देशो और आदेशों का पालन करना चाहिए। नीति सम्बन्धी मामलों में राज्यपाल को गृह मंत्रालय से स्वीकृती प्राप्त कर लेनी चाहिए। क्या मुख्य सचिव और पुलिस

महा निदेशक को पद भार से मुक्त करने का निर्णय राज्यपाल का स्वविवेकी निर्णय था या गृह मंत्रालय के निर्देश से ऐसा किया गया? यदि गृह मंत्रालय के आदेश या निर्देश से ऐसा किया गया तो सलाहकार ब्रह्मस्वरुप को इस आदेश का पालन करना ही था, और यदि राज्यपाल ने ऐसा स्वविवेक से किया तो ब्रह्मस्वरुप द्वारा इसकी अवमानना करना कुछ हद तक सही भी कहा जा सकता है। राज्यपाल ने यदि ऐसा निर्णय स्वविवेक मे लिया तो उनको ब्रह्मस्वरुप से परामर्श कर लेना था। किन्तु यदि ऐसा परामर्श नही लिया गया तो राज्यपाल का कदम अनुचित था, क्योंकि फिर सलाहकार की क्या आवश्यकता है। सलाहकार इसलिये भेजे जाते है कि राज्यपाल उनके परामर्श से शासन चलाये। इस सम्बन्ध में ब्रह्मस्वरुप से परामर्श लिये विना ही राज्य पाल के आदेश दुरदर्शन और आकाशवाणी से प्रसारित कर दिये गये थे।

रायपुर (मध्यप्रदेश) के अमृत संदेश के सम्पादक श्री गोविन्द लाल बोरा ने इस सम्वन्ध में जो संपादकिय लिखा है बह भी उल्लेखनीय है- ''प्रशासन के शीर्ष स्थर पर टकराव'' शीर्षक के अन्तर्गत उन्होने लिखा है- प्रदेश के मुख्य सचिव और पुलिस महानिदेशक के पद पर नियुक्तियो के बारे मे राज्यपाल द्वारा जारी आदेश का क्रियान्वयन न होने की स्थिति मे राज्यपाल और उनके एक सलाहकार श्री ब्रह्मस्वरुप के बीच टकराव की स्थिति उत्पन्न हो गयी। राज्यपाल की सहायता के लिए 3 वरिष्ठ प्रशासनिक अधिकारियो श्री ब्रह्मस्वरुप, श्री अरुण पाण्डया और श्री अजित सिह को नियुक्त किया गया था। उम्मीद की जाती थी कि उनकी सलाह से राज्य में प्रशासन की स्थिति में सुधार आयेगा। पर बजाय सुधार लाने के इस विवाद ने प्रशासन की कामयाबी के आगे प्रश्नचिन्ह लगा दिया। स्वयं टकराव में उलझा प्रशासनिक नेतृत्व प्रदेश के प्रशासन को एक जुटता की प्रेरणा दे पायेगा इसमें सन्देह है। राज्यपाल और उनके सलाहकार के बीच जो टकराव हुआ उसका कानुनी पक्ष चाहे जो हो पर इस विवाद में दोनो पक्षों के अहम के दर्शन के दो अत्यन्त महत्वपुर्ण पदों पर नियुक्तियो के आदेश जारी किये और यह आदेश आकाशवाणी और दूरदर्शन के जरिये प्रसारित भी हो गया। ऐसा राजभवन के कहने पर किया गया, जबकि तब तक सचिवालय से इस आशय के आदेश जारी नहीं हो पाये थे। आदेशों का क्रियान्वयन न होने की स्थिति में श्री ब्रह्मस्वरुप से गृह और सामान्य प्रशासन विभाग, राज्यपाल ने वापस ले लिया। सचिवालय से आदेश जारी होने के पूर्व ही राजभवन द्वारा इस आशय की खबर प्रसारित करवा देने और खबर प्रसारित होने के बावजूद सचिवालय द्वारा ऐसा कोई आदेश जारी होने से संकेत मिलता है कि राज्यपाल नें अपने सलाहकार श्री ब्रह्मस्वरुप को विश्वास में लेकर कार्य नही किया, जो उनकी कानूनी बाध्यता भले ही नहो पर नैतिक जिम्मेदारी तो बनती ही है। क्योंकि प्रदेश मुख्य सचिव और पुलिस महानिदेशक के पद पर नयी नियुक्तियाँ करने का निर्णय कोई छोटा मोटा निर्णय नहीं था । चर्चा यह भी थी कि इससे पहले राज्यपाल नें दंगों की प्रशासनिक जाँच करवाने का निर्णय भी श्री ब्रह्मस्वरुप को विश्वास में लिये बिना कर डाला था। इससे राज्यपाल द्वारा उठाये गये कदमों के बारे में यह उत्सुकता होना स्वभाविक है कि क्या वे अपने सलाहकार को विश्वास में लेकर कार्य नहीं कर रहें है? और यदि वे ऐसा नही कर रहें है तो इसकेपीछे

कौन सी प्रेरणा अथवा बाध्यता काम कर रही है । वही श्री ब्रह्म स्वरूपको भी यह अप्रिय स्थिति उत्पन्नकरने के लिए उनकी जिम्मेदारियों से बरी नहीं किया जा सकता क्योंकि राजभवन द्वारा जारी आदेशो के सम्बन्ध मे सम्पर्क किये जाने पर न सिर्फ उन्होंने अनभिज्ञता प्रकट की, बल्कि ऐसी शासकीय विज्ञप्ति भी जारी करवा दी कि ऐसे कोई आदेश सचिवालय द्वारा जारी नहीं किये गये हैं जबकि उनका कर्तव्य था कि कोई भी बयान जारी करने से पहले राज्यपाल से सम्पर्क कर स्थिति स्पष्ट करने का प्रयास करते । क्योकि अंततः दोनों एक ही व्यवस्था के हिस्से हैं । बहरहाल सतह पर उभर आये इस विवाद से प्रशासन की छवि निश्चित रूप से प्रभावित हुई थी ।

इस सारे विवाद की जड़ में सबसे महत्वपूर्ण बात यह थी कि 1993 में काग्रेस दल सत्तारूढ़ थी । कुँअर मेहमूद अली खाँ की नियुक्ति जनता दल शासन काल में (1989-90) हुई थी । इसलिये टकराहट होना स्वाभाविक था । राज्यपाल ने पहली गलती की उनको ब्रह्मस्वरूप से परामर्श लिये बिना नियुक्तियों का आदेश प्रसारित नहीं करना था । निर्मला बुच अपने को इस फूहड़ तरीके से बदलने पर आहत थी और उनका राज्यपाल पर भारी आक्रोश था । श्री ब्रह्म स्वरूप ने बार-बार दुहराया कि उन्होने केन्द्र शासन की मंशा और मार्ग दर्शन सिद्धान्तों के अनुसार कार्य किया - "मैने अपने दायित्व पूरा किया है । मेरे लिये पद से ज्यादा दायित्व और कर्त्तव्यों का निर्वाह महत्वपूर्ण है।"

राज्यपाल के माध्यम से पर्दे के पीछे से शासन चलाने के तौर तरीकों ने कांग्रेस को खेमों में बाँट दिया था

भाजपा को हराने के लिए कांग्रेस के विभिन्न खेमे चुनाव के समय एक हो चुके थे । किन्तु चुनाव जीतकर भाजपा को हराने के बाद अर्जुन सिह, विद्याचरण, श्यामाचरण, माधवराव सिंधिया, कमलनाथ फिर से अलग-अलग खेमों में बँटने लगे । इनकी अलग-अलग बैठके भी हुई । इनमे कोई नही चाहता था कि ब्रम्ह स्वरूप को साधन मानकर अर्जुन सिह प्रदेश की राजनीति पर अपनी पकड़ बना ले । ब्रह्म स्वरूप और आरुण पंड्या अर्जुन सिंह के आदमी थे। यही कारण था शेष नेता ब्रह्म स्वरूप को हटाना चाहते थे।

मध्यप्रदेश की मजबूत आई.ए.एस. लाबी के कारण निर्मला बुच का तबादला रुका हुआ था । उस समय गृह सचिव राजगोपालन और प्रधानमंत्री के प्रमुख सचिव ए. एन. वर्मा इस बात पर अड़े हुए थे कि निर्मला बुच को न हटाया जाय । निर्मला बुच के समर्थकों की मजबूत आई. ए. एस. लावी के दबाव के कारण केन्द्रीय गृह मंत्री मुख्य सचिव को हटाने का फैसला नही कर पा रहे थे । आई ए एस लाबी ने गृहमंत्री को चेतावनी दी कि यदि बुच को हटाया गया तो नौकरशाही काबू से बाहर हो जायेगी । [50]

राज्यपाल के न्यायायिक जाँच का विरोध - प्रशासनिक हेर-फेर का बुरा असर[51]

राज्यपाल और मुख्य सलाहकार ब्रह्म स्वररूप के बीच विवाद को मध्यप्रदेश कांग्रेस (आई) अध्यक्ष दिग्विजय सिह ने दुर्भाग्यपूर्ण कहा और कहा कि इसका असर कांग्रेस पार्टी पर बुरा पड़ेगा । श्री दिग्विजय

सिंह ने कहा कि भोपाल और उज्जैन के दंगों की न्यायिक जॉच न कराकर इनकी प्रशासनिक जॉच करवानी थी। न्यायिक जाँच में बहुत समय लगता है ।

राज्यपाल के सलाहकार कांग्रेसी एजेंट - पटवा

मध्यप्रदेश के पूर्व मुख्यमंत्री श्री सुन्दर लाल पटवा ने कहा कि मध्यप्रदेश मे राज्यपाल के सलाहकार कांग्रेस के एजेंट के रूप में कार्य कर रहे है ।

राज्यपाल के पद को लेकर राजनीति

दिल्ली में इस समय राज्यपाल के पद को लेकर कांग्रेस को विभिन्न गुटो मे राजनीति की जा रही थी । स्वयं राज्यपाल, गृहमंत्री, प्रधानमंत्री, अन्य मंत्री तथा श्री चन्द्रशेखर आदि से मिल रहे थे । माधव राव सिंधिया, अर्जुन सिह, कमलनाथ, विद्याचरण शुक्ल, श्यामाचरण शुक्ल इस प्रकार की राजनीति मे प्रमुख रूप से भाग ले रहे थे । इनमें से कुछ राज्यपाल को बदलने के पक्ष में थे और कुछ यथावत् स्थिति वनाये रखना चाहते थे । ये सभी गृहमंत्री और प्रधानमंत्री पर दबाव डाल रहे थे ।

इस बीच राज्यपाल दिल्ली में नेताओं से मिलकर भोपाल लौट आये थे । पत्रकारों के समक्ष उन्होंने अपनी दिल्ली यात्रा को फलप्रद बतलाया और कहा कि लोग उनके बारे में धैर्य रखे ।

इस समय तक पुलिस लाबी भी राज्यपाल के निर्णयो के विरुद्ध हो चुकी थी ।

यह विचार व्यक्त किया जा रहा था कि राज्यपाल को प्रशासनिक अनुभव नही था । अवश्य ही वे पुराने समाजवादी और तपेतपाये राजनीतिज्ञ थे किन्तु प्रशासन का अनुभव न होने के कारण वे गुटबाजी मे फंस गये और उनसे चूक हो गयी । वे किसान नेता चौधरी चरण सिह के अनुयायी थे । अपने लंबे सार्वजनिक जीवन में वे सत्ता के गलिययारों से दूर रहे । लिहाजा प्रशासनिक पेंचीदगियो का उन्हें कोई खास अनुभव नहीं है । पटवा सरकार के जमाने मे वे किसी विवाद के चपेट में नही आये । उनकी कार्यशैली पर किसी ने उंगली नहीं उठायी । उनकी उजली चादर पर कोई छीटा नहीं पड़ा ।

इन सबके बावजूद मध्यप्रदेश के प्रशासनिक हल्कों का दावा थी कि राज्यपाल को उच्च स्तरीय प्रशासनिक फेर बदल करते वक्त सम्बन्धित विभाग के सलाहकारो को विश्वास में लेना था । उन्होंने ऐसा नही किया और सभी तबादला आदेश एक ही नोट शीट पर भिजवा दिये । कई अधिकारियो का मत है कि यह प्रक्रियागत उलझाव मानते है । वैसे इस घटनाक्रम के दौरान सचिवालय ने राजभवन को अपने बागी तेवर दिखा दिये । अफसरशाही अपने सेनापति ब्रह्म स्वरूप और मुख्य सचिव निर्मला बुच के पीछे लामबंद हो गई । नौकरशाही में चलने वाली गलाकाट होड़ तथा टॉग खीचने के प्रवृत्ति के बीच ऐसी एकजुटता आश्चर्यजनक है । आई.ए एस. अधिकारियों से आई. सी. एस. अधिकारियों ने प्रेरणा लेकर अपने गुस्से का इजहार किया । इस विवाद से

समूचे प्रदेश की प्रशासनिक स्थिति हास्यास्पद हो गई । मुख्य सचिव, पुलिस महानिदेशक जैसे महत्वपूर्ण पदो पर ऐसी अनिश्चितता और अस्थिरता पहले कभी नहीं देखी गयी थी । प्रशासन का सारा ध्यान अपने जरूरी कामकाज से हटकर राज्यपाल बनाम नौकरशाही के विवाद के नाटक में फॅस गया ।

विवाद और सत्ता संघर्ष की जड़ें दिल्ली तक फैली हुई थी । केन्द्र सरकार ब्रह्म स्वरूप का समर्थन कर रही थी और हर तरह से राज्यपाल का अपमान कर रही थी ।

राज्यपाल द्वारा 3 रिपोर्टों के भेजे जाने के आधार पर पटवा सरकर बर्खास्त की गयी

मध्यप्रदेश के राज्यपाल कुँअर मेहमूद अली खॉ के राष्ट्रपति को लिखे गये जिन तीन पत्रों के आधार पर राज्य की पटवा सरकार को बर्खास्त किया गया उनमें राज्यपाल ने कानून एव व्यवस्था की स्थिति चौपट होने, अल्पसंख्यकों पर अत्याचार होने तथा सुन्दरलाल पटवा के प्रतिबंधित राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ से सम्बद्ध होने के कारण संविधान के अनुच्छेद 356 के तहत कार्यवाही करने की सिफारिश की गई थी ।

अयोध्या की घटनाओं की प्रतिक्रिया स्वरूप 7 दिसम्बर को देश के अन्य राज्यो के साथ-साथ मध्यप्रदेश में भड़के दंगों के दूसरे दिन 8 दिसम्बर को ही राज्यपाल ने राष्ट्रपति डा. शंकर दयाल शर्मा, प्रधानमंत्री पी.वी.नरसिह राव और केन्द्रीय गृहमंत्री एस. बी. चाव्हाण को पत्र लिख कर राज्य सरकार की बर्खास्तगी और राष्ट्रपति शासन लागू करने की सिफारिश कर दी थी ।

13 दिसम्बर को जबकि राज्य के मुख्य सचिव श्रीमती निर्मला बुच एव वरिष्ठ पुलिस अधिकारियों ने प्रदेश में स्थिति सामान्य की ओर लौटने का दावा किया था, उस दिन भी राज्यपाल मध्यप्रदेश सरकार भंग किये जाने की सिफारिश करते हुए राष्ट्रपति को पत्र लिखा था । इसके अलावा पत्रो के साथ उन्होने भारत हैवी इलेक्ट्रिकल्स कारखाने के कार्यकारी निर्देशक एस. के. हांडा तथा मानवाधिकार आयोग के अध्यक्ष खलील उल्लाह के पत्र की प्रतियाँ भी भेजी जिनमें क्रमशः भेल कारखाने के कर्फ्यू के कारण 17000 कर्मचारियो के काम पर न आने से प्रतिदन ढाई करोड़ रुपये के उत्पादन का नुकसान होने तथा असामाजिक तत्वो के पुलिस की वर्दी में तोड़फोड़ करने कि शिकायत की गई थी । इन पत्रो मे राज्यपाल ने मुख्यमत्री सुन्दरलाल पटवा द्वारा दंगे रोकने के स्थान पर कार सेवकों के स्वागत की व्यवस्था मे लगे रहने की शिकायत भी की गई । राज्यपाल ने अपने तीनों पत्रों में भोपाल सहित राज्य के अन्य शहरों मे फैले दगो मे मरने वालो की क्रमवार संख्या का भी उल्लेख किया था । दंगे भड़कने के ठीक दूसरे दिन राष्ट्रपति को भेजे गये पत्र मे राज्यपाल ने पूर्व मुख्यमंत्री सुन्दर लाल पटवा के आर. एस. एस. से सम्बन्ध रखने और इस कारण दंगे रोकने मे उनसे विशेष कार्यवाही की आशा न होने का उल्लेख किया । राज्यपाल द्वारा भेजे गये 8 दिसम्बर के पत्र मे दंगों में 39 लोगों के मरने, 10 दिसम्बर के भेजे गये पत्र में 82 लोगों की मृत्यु तथा 13 दिसम्बर के पत्र में 125 लोगो

की मृत्यु होने का उल्लेख किया गया । पहले पत्र मे मध्यप्रदेश मे 62 पुलिसकर्मियों के घायल होने की तरफ भी राज्यपाल ने राष्ट्रपति का ध्यान आकर्षित किया । [52]

राज्यपाल द्वारा बारम्बार दिल्ली को दौड़ सरकारी खर्च पर [53]

राज्यपाल लगातार दिल्ली की दौड़ लगा रहे थे । वे येन-केन अपने पद पर बने रहना चाह रहे थे। भाजपा के भूतपूर्व मुख्यमंत्री सुन्दर लाल पटवा ने कहा कि राज्यपाल की यह दौड़ केन्द्र सरकार के मंत्रियों के सामने बारम्बार गिड़गिड़ाना- राज्यपाल के इन सारे कार्यों से राज्यपाल के पद की गरिमा मिट्टी में मिल गयी है। भाजपा द्वारा 1991, 1992 में किये गये सभी कार्य मिट्टी में मिल गये है । प्रदेश शासन की खिल्ली उड़ाते हुए पटवा ने कहा कि मध्यप्रदेश में अब तक तीन बार राष्ट्रपति शासन लग चुका है । लेकिन यह पहली दफा है कि जब राज्यपाल राजभवन के बाहर निकलकर वल्लभ भवन मे मुख्यमंत्री की कुर्सी पर विराजमान हो गये मानो उन्हें मुख्यमंत्री बना दिया गया हो । श्री पटवा ने कहा कि राज्यपाल की कार्यशैली ने राज्यपाल की गरिमा को मिट्टी में मिला दिया । ऐसा राज्यपाल उन्होंने पहली बार देखा जिसके निर्देशों की अवहेलना स्वयं उनके सलाहकारों ने की है ।

राज्यपाल सपरिवार विमान में दिल्ली जाते थे और वापस आते थे । एक बार तो उनके परिवार के काफिले के लिये विमान को भोपाल एयरपोर्ट पर घंटों रोका गया । इसलिये अखवारो मे राज्यपालों, मंत्रियो तथा बड़े-बड़े राजनैतिक पदों पर जनता के खजाने से भारी खर्च होने का खबर छापा गया था। ये लोग दूसरे को मितव्ययिता का पाठ पढ़ाते हैं किन्तु स्वयं विलासिता का जीवन जीते है और अपने को गांधीवादी कहते हैं।

अन्त में बारम्बार दिल्ली की दौड़ लगाने और राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री, गृहमंत्री और मध्यप्रदेश के केन्द्रीय मंत्रियों और सांसदों से मिलने के बाद ब्रह्म स्वरूप को हटाकर श्री एम. एन. सेठी को मुख्य सलाहकार के पद पर नियुक्त किया गया और श्री आर. पी. शर्मा को पुलिस महानिदेशक के पद पर नियुक्ति के आदेश जारी किये गये।

एक पत्रकार ने इन सब पर टिप्पणी करते हुए लिखा है कि मध्यप्रदेश के मुख्य सचिव तथा पुलिस महानिदेशक के स्थानान्तरण को लेकर राज्यपाल की प्रतिष्ठा को दॉव पर लगाने की जो प्रशासनिक खेल व रस्साकशी हुई, उससे जो छींटे उड़े, उसने पहली मरतबा राजभवन के चेहरे को भी कुछ दागदार बना दिया । केन्द्र ने भी इस गुत्थी के सुलझाने में तत्परता न दिखाकर एक सप्ताह तक मूक दर्शक की भूमिका अदा की।

राज्यपाल की बिगड़ी हुई छवि को कुछ हद तक नये साल में केन्द्र द्वारा निर्णये लेकर और राज्यपाल के आदेशों का अनुमोदन करके ही सुधारा गया । राज्यपाल पर यह भी सदेह किया जा रहा था कि उन्होने

चरण सिह के पुत्र अजीत सिह तथा एक भाजपा नेता से तीन-तीन बार मुलाकात की थी और हो सकता है कि राज्यपाल ने इनके परामर्शों को भी कुछ दूर तक ग्रहण किया।[54]

केन्द्र द्वारा राज्यपाल को मार्गदर्शिका भेजी गयी थी

केन्द्र ने राष्ट्रपति शासन के साथ ही मार्गदर्शिका भी दी थी जिससे राज्यपाल राज्य के मुख्य सचिव, गृह सचिव तथा पुलिस प्रमुख जैसे संवेदनशील पदों में परिवर्तन के पूर्व केन्द्रीय गृह मंत्रालय से अनुमति ले ले । किन्तु राज्यपाल ने ऐसा नहीं किया और नाहर एक विवाद खड़ा कर दिया । ब्रह्म स्वरूप अनुभवी प्रशासनिक अधिकारी थे। राज्यपाल ने कुछ पदों में फेर बदल के लिये उनसे कोई परामर्श नही लिया । इससे ही सारी अशोभनीय स्थिति उत्पन्न हुई। [55]

मध्यप्रदेश के राज्यपाल कुँअर मेहमूद अली खान को लेकर खींचतान - अजीतसिंह की लाबी का दबाव[56]

मध्यप्रदेश के राज्यपाल के लिए भूतपूर्व केन्द्रीय मंत्री और जनता दल के अध्यक्ष अजीत सिह जमकर लाबी बाजी कर रहे थे। उन्होंने अपने इस भावना से प्रधानमंत्री पी वी नरसिहराव को अवगत करा दिया था। इस वजह से राज्यपाल की स्थिति काफी मजबूत नजर आती थी ।

मध्यप्रदेश कांग्रेस के कई नेता इस कोशिश मे लगे हुए थे कि जनता दल शासन काल मे नियुक्त राज्यपालो को बदल दिया जाय । वैसे अर्जुनसिह और विद्याचरण शुक्ल दोनों कुँअर मेहमूद अली खा के स्थान पर किसी कांग्रेसी नेता को नियुक्त करना चाहते थे । किन्तु नरसिहा राव की सरकार अल्पमत मे थी, वे हर हालत में अजीत सिंह के जनता दल का समर्थन करना चाहते थे । इससे राज्यपाल की स्थिति मजबूत हो गयी थी ।

राज्यपाल द्वारा धान निर्यात पर लेवी खत्म[57]

लेवी के विरुद्ध किसानों के आन्दोलन को देखते हुए राज्य कांग्रेस के दवाव के परिणामस्वरूप राज्यपाल ने 25 जनवरी, 1993 को एक आदेश निकालकर धान लेवी को समाप्त कर दिया ।

राज्यपाल का कांग्रेस की बैठक के लिये विमान भेजना

5 जनवरी को भोपाल मे आयोजित कांग्रेस (आई) की बैठक मे शामिल होने के लिये राज्यपाल ने तीन मंत्रियों को अलग-अलग सरकारी विमान से दिल्ली भेजे - केन्द्रीय मानव ससाधन विकास मंत्री श्री अर्जुन सिह, केन्द्रीय वन एवं पर्यावरम मंत्री श्री कमलनाथ तथा तत्कालीन केन्द्रीय नागरिक विमानन मंत्री श्री माधवराव सिंधिया। इसके विरुद्ध मध्यप्रदेश उच्च न्यायालय में एक याचिका भी दायर की गई थी।[58]

किसानों को विद्युत कठिनाई न हो - राज्यपाल का निर्देश[59]

26 जनवरी को कुँअर मेहमूद अली खॉ ने जबलपुर में सम्भाग के वरिष्ठ अधिकारियों की एक बैठक में कहा कि बिजली की आपूर्ति की ऐसी व्यवस्था की जाय जिससे किसानो को कोई असुविधा न हो और

उद्योगों में उत्पादन निरंतर जारी रहे । अपने सार्वजनिक वितरण प्रणाली के बारे मे कहा कि उसे और दुरुस्त बनाया जाय जिससे हर व्यक्ति को वितरण प्रणाली का लाभ मिले । कालाबाजारी और मुनाफाखोरी की प्रवृत्ति को प्रभावी ढंग से नियंत्रित किया जाये ।

राज्यपाल श्री खॉ ने कहा कि जबलपुर शहर तथा सम्भाग में कानून व्यवस्था बनाये रखने के लिये प्रशासनिक अधिकारियों ने सूझबूझ से काम लिया है । आगे भी ऐसी व्यवस्था बनाये रखने के लिये सतर्क रहना होगा । इस उद्देश्य से एक कार्ययोजना बनाना होगा । उन्होने कहा कि अफवाहो का तत्काल खंडन न हो तथा अफवाह फैलाने वाले के विरुद्ध कड़ी कार्यवाही की जाय । आपने कहा कि जनता शक्ति चाहती है, परन्तु कुछ स्वार्थी तत्वों के कारण ये तत्व शान्ति व्यवस्था के माहौल को भंग करने का प्रयास करते है,ऐसे तत्वो के विरुद्ध प्रशासन को सख्ती से कार्यवाही करना चाहिए ।

राज्यपाल ने सम्भाग की कानून व्यवस्था की स्थिति की समीक्षा के दौरान 6 दिसम्वर, 1992 से 10 जनवरी, 1993 तक की स्थिति की विस्तृत रूप से जानकारी प्राप्त की । बैठक मे राज्यपाल को विजली, पानी, सिंचाई, स्वास्थ्य, उद्योग, नगर निगम आदि के कार्यों की प्रगति से अवगत कराया गया । राज्यपाल ने अधिकारियों को निर्देश दिये कि किसानों को प्राथमिकता के आधार पर बिजली की आपूर्ति की जाय, जिससे उनकी फसल सूखे नही । श्री खान ने कहा कि किसानों की शिकायतो को बराबर सुनकर उनका निराकरण करें।

राज्यपाल ने पेयजल व्यवस्था सम्बन्धी जानकारी ली और निर्देश दिये कि अभी से पाये जाने वाले पेयजल संकट के लिये योजना बनायें ताकि ऐन वक्त पर कोई परेशानी न हो ।

उन्होंने कमजोर वर्ग के लोगों के लिए आवासीय योजनाओं को प्राथमिकता के आधार पर पूरा करने एवं नये कार्य शीघ्र शुरु करने पर जोर दिया । कुँअर मेहमूद अली खॉ ने कहा कि हमारी सांस्कृतिक परम्परा आपसी सद्भाव और भाईचारे की रही है । इंसानों का दिल जुड़ने से भारत मजबूत होगा । अत. प्रशासन की शान्ति और सौहार्द को मजबूत बनाने के लिये अपने कर्त्तव्यों के प्रति लगातार सजग एवं जागरूक रहना चाहिए । आपने कहा कि समाज के कमजोर वर्गों की भलाई एवं उनके कल्याण की योजनाओं को प्राथमिकता के साथ क्रियान्वित किया जाये। प्रशासनिक अधिकारियों की इस समय अधिक जिम्मेदारी है कि वे जनमानस की भावनाओं को समझकर उनके दुःख दर्द को दूर करने में अहम् भूमिक का निर्वाह करे। राज्यपाल द्वारा सम्बोधित इस बैठक में कमिश्नर डी. एम. माथुर, क्षेत्रीय पुलिस महानिदेशक आर.एल.एस. यादव, उप पुलिस महानिरीक्षक सी.पी.जी. उन्नी, कलेक्टर जबलपुर विवेक दांड, कलेक्टर सिवनी जे.एन.शर्मा, मंडला के प्रभारी कलेक्टर डा. सुशील त्रिवेदी, पुलिस अधीक्षक रुस्तम सिह, नगर निगम प्रशासक धर्मवीर सिह और सम्भाग के विभिन्न विभागों के वरिष्ठ अधिकारी उपस्थित थे।[60]

राज्यपाल के सलाहकारों का मत किसी केन्द्रीय मंत्री की सलाह पर कार्य नहीं कर रहे हैं

पत्रकारों से चर्चा करते हुए राज्यपाल के सलाहकार ए. के. पंड्या ने इंदौर मे कहा कि केन्द्रीय सलाहकार अपने विभाग से सम्बन्धित अधिकारियों से चर्चा करता है तो क्या बुराई है । मगर यह कहना गलत है कि प्रदेश के सलाहकार उनके इशारे पर या दबाव में कार्य कर रहे है । प्रदेश मे कानून व्यवस्था के बारे में पूछे गये प्रश्न के जवाब में उन्होंन कहा कि कानून व्यवस्था की स्थिति पहले से ठीक है मगर लोगों में जो दरार पैदा हो गयी है उसे खत्म करना होगा । श्री पंड्या से जब यह पूछा गया कि प्रदेश की वित्तीय स्थिति कैसी है तो उन्होंने कहा कि यह ठीक है और नही भी है । यह कोई समस्या नही है क्योकि ससाधनों मे कमी भी आती है और उसकी अपेक्षाएं भी बढ़ती हैं । यह एक लम्बी प्रक्रिया है ।

भाजपा सरकार की योजनाओं को लागू किये जाने के सम्बन्ध में श्री पंड्या ने कहा कि अभी तो यह देखा जायगा कि ये योजनाएँ किन उद्देश्यो के लिये लागू की गई थी । यदि उनसे फायदा नहीं मिल रहा है तो ऐसी योजनाओं में संशोधन किया जायेगा । उन्होने कहा कि भाजपा सरकार के द्वारा गठित ऐसे सगठन जिनमें प्रतिबंधित संगठनों के लोग शामिल है, उनकी भी जॉच की जायेगी और विधान के अन्तर्गत जो लोग अयोग्य घोषित किये जायेंगे, उन्हें हटा दिया जायेगा ।

प्रदेश मे होने वाले तबादलों के सम्बन्ध में उन्होंने कहा कि तबादले अभी नही किये जायेगे और आवश्यकता होने पर शिक्षण सत्र के बाद कम से कम तबादले किये जायेगे ।[61]

राज्यपाल के सलाहकारों को हटाने की नोटिस

मध्यप्रदेश उच्च न्यायालय के रजिस्ट्रार के समक्ष प्रदेश के पूर्व मंत्री बाबूलाल गौर की ओर से उनके वकीलों - निर्मलचंद्र जैन, राकेश जैन व मदन सिह ने एक याचिका पेश की । इस याचिका मे राज्य शासन के 3 सलाहकारों ब्रह्मस्वरूप, अरूण कुमार पंड्या तथा अजीत सिह की नियुक्तियो को असवैधानिक बताया गया है और उक्त सलाहकारों को उनके पद से हटाने की न्यायालय से प्रार्थना की गई । [62]

पटवा की याचिका पर हाईकोर्ट द्वारा राज्यपाल और अन्य मंत्रियों को नोटिस

मध्यप्रदेश विधानसभा भंग किये जाने और राष्ट्रपति शासन लागू करने के खिलाफ प्रदेश के पूर्व मुख्यमंत्री सुन्दर लाल पटवा की याचिका पर 22 1 93 को मध्यप्रदेश उच्च न्यायालय (जबलपुर) ने केन्द्र सरकार, प्रधानमंत्री पी.वी.नरसिहराव, केन्द्रीय मानव संसाधन विकास मंत्री अर्जुनसिह और मध्यप्रदेश के राज्यपाल को कारण बताओ नोटिस जारी किया गया ।

मुख्य न्यायाधीश न्यायमूर्ति एस. के. झा और न्यायमूर्ति पी.पी नावलकर की खण्डपीठ ने दस फरवरी तक नोटिसों के जवाब मॉगे तथा 11 फरवरी, 1993 अगली सुनवाई की तारीख तय की। श्री पटवा ने

याचिका में संविधान के अनुच्छेद 356 के तहत राष्ट्रपति शासन लागू किये जाने के कदम को भेदभाव पूर्ण बताते हुए इस रद्द करने की अपील की। इसमें गैरकानुनी गतिविधियॉ निरोधक कानून को भी चुनौती दी गई। इन पक्षों को 10 फरवरी तक जवाब देने को कहा गया । इनसे पूछा गया कि क्यो न अधिसूचना पर स्थगन आदेश जारी किया जाय । याचिका पर फरवरी 1993 को सुनवायी निर्धारित की गई ।

याचिकाकर्त्ता पूर्व मुख्यमंत्री पटवा के वकील एन.सी.जैन ने अपनी बहस में कहा कि 6 दिसम्बर, 1992 को अयोध्या में बाबरी मस्जिद गिराने की घटना के मध्यप्रदेश सहित देश के अनेक राज्यो मे साम्प्रदायिक हिसा भड़की लेकिन कुछ केन्द्रीय मंत्रियों ने राजनीतिक कारणों से मध्यप्रदेश की भाजपा सरकार को बर्खास्त करने के लिये प्रधानमंत्री पर दबाव डाला । उन्होंने कहा कि इन केन्द्रीय मत्रियो से पार्टी की अन्दरुनी लड़ाई टालने के लिए प्रधानमंत्री ने मध्यप्रदेश विधानसभा भंग कर राज्य सरकार बर्खास्त कर दी और राष्ट्रपति शासन लागू कर दिया । उन्होंने संविधान के अनुच्छेद 356 के तहत जारी अधिसूचना को राजनीतिक प्रेरणावश बताया तथा उसे समाप्त करने की अपील की । याचिका में निगमों और मंडलो के गैर सरकारी अध्यक्षों को हटाने की कार्यवाही पर भी स्थगन देने का मॉंग की गई । याचिका में आरोप लगाया गया कि राज्यपाल ने केन्द्र को तीन रिपोर्ट भेजी । लेकिन इनमें सभी में भोपाल की कानून और व्यवस्था का जिक्र था जिसका अर्थ राज्य मे कानून और व्यवस्था ठप्प पड़ जाना नहीं है । याचिका में कहा गया कि राज्यपाल ने मध्यप्रदेश सरकार से कुछ जानकारी चाही थी लेकिन उन्होंने यह नहीं कहा कि इन रिपोर्टों के सम्वन्ध मे उन्हे कोई जानकारी प्राप्त हुई । यह एक स्पष्ट सबूत है कि राज्यपाल नें एक तरफा ढंग से रिपोर्ट बनाई ।

याचिका के अनुसार इसे संयोग ही नहीं कहा जा सकता कि सभी रिपोर्टों पर वही तारीखे दी गई थी जिन तारीखों पर कुछ केन्द्रीय मंत्रियों ने भोपाल का दौरा किया । श्री पटवा ने याचिका में आरोप लगाया कि कांग्रेस के कुछ नेताओं के दबाव में आकर प्रधानमंत्री ने राष्ट्रपति को मध्यप्रदेश सरकार बर्खास्त करने और विधानसभा भंग करने की सलाह दे दी ।[63]

पटवा सरकार की बर्खास्तगी असंवैधानिक

मध्यप्रदेश उच्च न्यायालय, जबलपुर ने 2 अप्रैल को दुरगामी महत्व वाले एक फैसले में गत 15 दिसम्बर को राज्य में सुन्दर लाल पटवा के नेतृत्व वाली भाजपा सरकार की बर्खास्तगी और विधानसभा भंग करने सम्बन्धी राष्ट्रपति के आदेश को निरस्त कर दिया । न्यायाधीश ने इस फैसले में राष्ट्रपति के आदेश को अवैध तथा संविधान के अनुच्छेद 356 की परिधी के परे बताते हुए भंग बिधानसभा को पुनः प्रवर्तित करने का आदेश भी दिया । वैसे न्यायालय ने अपने बहुमत के फैसले के क्रियान्वयन पर दो सप्ताह के लिए रोक लगायी थी ताकि केन्द्र सरकार इस दौरान उच्च न्यायालय में अपील दायर कर सके। न्यायमूर्ति सर्वश्री एस.के.झा,

डी.एम. धर्माधिकारी तथा के.एम. अग्रवाल की पीठ ने 2-1 के बहुमत से यह फैसला दिया । न्यायमूर्ति अग्रवाल ने विमत का फैसला दिया।

न्यायालय ने कहा कि राष्ट्रपति शासन की घोषणा गैर कानूनी है और सविधान के अनुच्छेद 356 के बाहर है । न्यायालय ने विधानसभा को भंग किये जाने को भी गैर कानूनी निरुपित किया । 15 दिसम्बर 1992 को राजस्थान, हिमाचल प्रदेश और मध्यप्रदेश की भाजपा सरकारे बर्खास्त कर राष्ट्रपति शासन लागू करते हुए तीनों भाजपा शासित राज्यों की विधान सभाएं भंग कर दी गई थी ।

अतिरिक्त सालिसिटर जनरल के.टी.एस. तुलसी ने जो न्यायालय में उपस्थित थे, विधान के अनुच्छेद 134-ए के प्रावधानों के अन्तर्गत उच्चतम न्यायालय में अपील करने की पात्रता प्रमाण-पत्र के लिये एक माह का समय दिये जाने हेतु मौखिक अनुरोध किया । उनके अनुरोध को स्वीकार करते हुए न्यायालय ने कहा कि यह मामला सार्वजनिक महत्व के प्रश्न से जुड़ा हुआ है, इसलिए इन न्यायाधीशो की राय में पात्रता प्रमाण-पत्र दिया जाना चाहिए । न्यायाधीशों ने कहा कि उनकी राय मे यह मामला उच्चतम न्यायालय द्वारा निपटाया जाना चाहिए । खण्डपीठ की बहुमत ने न केवल एक बिन्दु पर राष्ट्रपति के आदेश को अवैध माना है । राज्यपाल ने जो प्रतिवेदन राष्ट्रपति को भेजा था उसमें ऐसे मजबूत बिन्दु नहीं थे कि राष्ट्रपति सन्तुष्ट हो जाते कि मध्यप्रदेश में राष्ट्रपति शासन लागू कर दिया जाना चाहिए । बहुमत की राय से असहमति रखने वाले न्यायमूर्ति के.एम.अग्रवाल की राय है कि राष्ट्रपति का आदेश न्यायिक समीक्षा के अन्तर्गत नही आता । अत उनकी राय में याचिका खारिज कर दी जानी चाहिए ।

दोनों न्यायाधीशों ने कहा कि अयोध्या की घटनाओं के बाद भोपाल तथा दो अन्य शहरो में बिगड़ती कानून एवं व्यवस्था की स्थिति पर मध्यप्रदेश के राज्यपाल द्वारा केन्द्र को भेजी गई रिपोर्ट में ऐसी बाते नहीं थीं जो राज्य में राष्ट्रपति शासन लागू किये जाने का पर्याप्त आधार बनती हो । राज्यपाल की रिपोर्ट या अन्य किसी स्रोत से भी इस तथ्य की मौजूदगी का संकेत नहीं मिलता जिसमें यह मालूम होता है कि मध्यप्रदेश मे संविधान के अनुसार शासन नहीं चलाया जा सका और राज्य में संवैधानिक व्यवस्था भी विफल हो गई थी।

मुख्य न्यायाधीश एस. के. झा और न्यायमूर्ति डी.एम. धर्माधिकारी ने अपने फैसले मे कहा कि केन्द्र सरकार की यह दलील गले नहीं उतरती कि राज्य में अचानक भड़के दंगों को रोक पाने में राज्य सरकार का असफल रहना तथा लोगों के जानमाल की रक्षा न कर पाना वह पर्याप्त तथा संतोषजनक कारण है जिसके तहत कहा जा सकता है कि सरकार अपने संवैधानिक दायित्वो को पूरा करने मे असफल रही है और यह न्यायालय इस सम्बन्ध में निर्णय नहीं ले सकता ।

न्यायाधीश द्वय ने कहा कि संविधान के अनुच्छेद 356 के तहत प्रदत्त शक्तियो का चूँकि इस मामले मे अवैधानिक इस्तेमाल किया गया है, अतः राज्य में राष्ट्रपति शासन लागू किये जाने की घोषणा रद्द करने योग्य

है । न्यायाधीशों ने कहा कि राष्ट्रपति शासन को संसद के दोनो सदनो की मंजूरी मिल जाने से कोई अवैध घोषणा वैध नहीं कही जा सकती है ।

न्यायाधीश द्वय ने कहा कि केन्द्र सरकार के इस तर्क का कोई अर्थ नही है कि उसने राष्ट्रपति शासन के बारे में संसद का अनुमोदन प्राप्त कर लिया था क्योंकि संविधान के अनुच्छेद 356 (3) के अनुसार संसद चाहे अनुमोदन दे या न दे राष्ट्रपति शासन तो दो माह तक लागू रहेगा ही, संसद तो केवल इस आदेश को 6 माह तक के लिये लागू रखने के लिये अनुमोदन देती है । इससे मंत्रिमंडल की सन्तुष्टि पर 2 माह तक के लिये लागू राष्ट्रपति शासन पर कोई फर्क नहीं पड़ता है । दोनों न्यायाधीशों ने कहा कि किसी भी राज्य में राष्ट्रपति शासन लागू होने और विधानसभा भंग किये जाने सम्बन्धी राष्ट्रपति के फैसले को वदला नही जा सकता । संसद द्वारा इस आदेश का अनुमोदन भी पूर्व स्थिति बहाल नहीं कर सकता । इसलिये राष्ट्रपति शासन को जो प्रारम्भ मे दो माह के लिये लागू होता है संसद का अनुमोदन वैध या अवैध नही ठहरा सकता ।

मुख्य न्यायाधीश एस.के.झा और न्यायमूर्ति डी. एम. धर्माधिकारी ने अपने फैसले में कहा कि राज्यपाल ने केन्द्र को भेजे अपने पत्र में राज्य सरकार की असफलताओं का जिक्र भर किया है, लेकिन कोई विशेष उल्लेख नहीं किया है । उन्होंने कहा कि राज्यपाल ने गैर कानूनी गतिविधियों निरोधक कानून 1967 के तहत राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ पर प्रतिबंध लागू किये जाने के बाद मुख्यमंत्री के सामने पैदा हुए संकट का जिक्र किया है । लेकिन कहीं भी यह नहीं कहा है कि राज्य सरकार प्रतिबंध पर अमल करने में नाकाम रही है । न्यायमूर्ति ने कहा कि कहीं भी ऐसा कुछ नही था, जिससे अनुच्छेद 356 के तहत यह निष्कर्ष निकाला जा सकता कि राज्य में संविधानिक मशीनरी नाकाम हो गई है। क्योंकि राज्य में कानून और व्यवस्था की स्थिति से निपटने में राज्य सरकार ने केन्द्र के किसी दिशा निर्देश का उल्लंघन या निरादर नही किया था।

मुख्य न्यायाधीश एस. के. झा और न्यायमूर्ति डी. एम. धर्माधिकारी ने कहा कि अचनाक हिसा भड़क उठने से ही केवल राष्ट्रपति शासन लागू करने के चरम कदम उठाने का कारण नहीं हो सकती । जब तक कि ऐसे संतोषजनक कारण न हो कि अचानक गड़बड़ियों के कारण राज्य मे उपजी कानून और व्यवस्था की स्थिति के कारण राज्य सरकार का काम करना असम्भव हो गया है या ऐसा हो जाने की सम्भावना है । उन्होंने टिप्पणी की कि ऐसे कठिन हालत में प्रभावित क्षेत्र में सेना तैनात कर राज्य को आरक्षी भेजकर केन्द्र अपने हस्तक्षेप को औचित्य ठहरा सकता है।

फैसले से असहमत न्यायमूर्ति के.एम. अग्रवाल ने अपने फैसले मे कहा कि राष्ट्रपति शासन की घोषणा किये जाने के लिये दिये गये कारण अनुच्छेद 356 में उल्लेखित शक्तियों का उपयोग के लिये तर्क संगत थे और इसलिये उनका मत है कि मौजूदा मामले में राष्ट्रपति के इस नतीजे पर पहुँचने के लिये पर्याप्त कारण थे। न्यायमूर्ति श्री अग्रवाल ने कहा कि यह न्यायालय के निर्णय लेने का मामला नही है । [64]

केन्द्र द्वारा जबलपुर उच्च न्यायालय के निर्णय के खिलाफ अपील

इस निर्णय के खिलाफ केन्द्र सरकार ने 6 अप्रैल को उच्चतम न्यायालय में अपील करने का निर्णय लिया। अपील में केन्द्र के पक्ष में निर्णय हुआ और उच्चतम न्यायालय ने राष्ट्रपति शासन को वैध ठहराया।

राष्ट्रपति द्वारा संविधान की धारा 356 का प्रयोग करते हुए पिछले 43 वर्षों में 92 बार राज्यों के सम्बन्ध में उद्घोषणाएँ की गयीं किन्तु यह पहला अवसर है जब उच्च न्यायालय द्वारा राष्ट्रपति शासन की उद्घोषणा को अवैध ठहराया गया है ।

अनुच्छेद 356 में दो बार राजनैतिक कारणों से संशोधन

अनुच्छेद की धारा 356 का सर्वप्रथम प्रयोग करते हुए राष्ट्रपति द्वारा जून 1951 में पंजाब में उद्घोषणा जारी कर राष्ट्रपति शासन लागू किया गया था । तब तत्कालीन डा. गोपीचन्द्र भार्गव मंत्रिमण्डल के पदत्याग के साथ दूसरे वैकल्पिक मंत्रिमंडल का गठित किया जाना सम्भव नही था । सन् 1976 में 42वें संविधान संशोधन के माध्यम से धारा 356 के अन्तर्गत की गई राष्ट्रपति की उद्घोषणा को न्यायिक पुनरावलोकन (Judicial Review) की परिधि से बाहर कर दिया गया था । किन्तु सन् 1978 में तत्कालीन जनता शासन में 44वें संविधान संशोधन द्वारा इस बंधन को हटा दिया गया था ।

कतिपय संविधानिक मामलों के जानकारों के अनुसार राष्ट्रपति की उद्घोषणा के मामलो में न्यायालय दो आधार पर ही हस्तक्षेप कर सकता है - एक यह कि उद्घोषणा दुर्भावना से की गई हो और दूसरे उद्घोषणा में दिये कारणों का राष्ट्रपति के समाधान से कोई युक्तियुक्त सम्बन्ध हो । [65]

प्रदेश कांग्रेस के प्रवक्ता मानक अग्रवाल ने अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए कहा कि भाजपा सरकार की बर्खास्तगी सम्बन्धी कई महत्वपूर्ण तथ्यों से उच्च न्यायालय को अवगत नहीं कराया गया था । इसी कारण उन्होंने उच्चतम न्यायालय में अपील की सफलता की आशा व्यक्त की थी । उन्होने उस समय यह आशा व्यक्त की कि उच्चतम न्यायालय में मामले के सभी पहलुओं को ठीक ढंग से रखा जायेगा । केन्द्र सरकार ने उच्चतम न्यायालय में वास्तव में बड़े परिश्रम से मामले के सभी पहलुओं के पेश किया और मामले की पैरवी भी जोरदार ढंग से हुई ।

सरकार बर्खास्तगी की पृष्ठभूमि में सुन्दरलाल पटवा ने मध्यावधि चुनाव कराने की माँग की । श्री पटवा ने जबलपुर में संवाददाता सम्मेलन को सम्बोधित करते हुए उच्च न्यायालय के फैसले को देश की न्यायपालिका और राजनीति के इतिहास में अभूतपूर्व बताया । श्री पटवा ने कहा कि उन्होंने सर्वोच्च न्यायालय में याचिका दायर की है। इसमें उन्होंने अनुरोध किया कि सर्वोच्च न्यायालय उच्च न्यायालय के फैसले के विरूद्ध केन्द्र सरकार की याचिका पर कोई फैसला देने से पहले उनके पक्ष की सुनवाई कर ले । श्री पटवा ने कहा कि केन्द्र-राज्य

सम्बन्धों पर न्यायाधीश सरकारिया आयोग की रिपोर्ट की संविधान विशेषज्ञों से समीक्षा करवाकर केन्द्र और राज्यों के बीच स्वस्थ सम्बन्ध बनाये रखने के लिये केन्द्र द्वारा क्रियान्वित करना चाहिए । उन्होंने कहा कि संविधान की धारा 356 का इस समय केन्द्र में सत्तासीन पार्टी द्वारा अतीत मे 88 वार दुरुपयोग किया गया है । 66

राज्यपालों की भूमिका व धारा 356 का पुनरीक्षण - पटवा

श्री पटवा ने कहा कि धारा 356 का 92 बार प्रयोग करके केन्द्र सरकार ने इन संविधानिक प्रावधान का अत्यधिक दुरुपयोग किया है । उन्होंने कहा कि डा. भीमराव अम्बेडकर ने संविधान की उक्त धारा के बारे में कहा था कि उसका उपयोग कभी-कभी किया जाना चाहिए । लेकिन ऐसा नही हुआ । लेकिन संविधान विशेषज्ञों को इसका दुरुपयोग रोकने के लिये रास्ता तलाशना चाहिए । श्री पटवा ने कहा कि उच्च न्यायालय के फैसले के परिप्रेक्ष्य मे राज्यपालो की भूमिका पर भी पुनर्विचार किया जाना चाहिए क्योंकि राज्यपाल एक मुहर के रूप में इस्तेमाल होते है । उन्होने कहा कि राष्ट्रपति की भूमिका की पुनरीक्षण की आवश्यकता इसलिये नहीं है क्योंकि राष्ट्रपति केन्द्रीय मंत्रिमण्डल की सलाह से बॅधा होता है ।

उन्होंने कहा कि उच्च न्यायालय के फैसले को देखते हुए राज्य शासन के नीतिगत निर्णय लेने, अधिकारियो, कर्मचारियों के स्थानान्तरण और नई नियुक्तियां करने से बचना चाहिए । अब उक्त सभी कदम राज्य शासन द्वारा लोकहित के बजाय व्यक्तिगत रुचियों में उठाये जायेंगे । उन्होने कहा कि उच्च न्यायालय का फैसला भाजपा के पक्ष में होगा । उन्होंने कहा कि वकील श्री जैन की सलाह पर ही उन्होने प्रधानमंत्री पी.वी.नरसिहराव, राज्यपाल कुँअर मेहमूद अली खॉ और कुछ केन्द्रीय मंत्रियों के नाम प्रतिवादियो की सूची से हटाने में सहमति व्यक्त की थी ताकि याचिका का फैसला शीघ्र हो सके । उन्होने कहा कि केन्द्र-राज्य सम्बन्धों के बारे मे सरकारिया आयोग का प्रतिवेदन सन् 1988 में प्रस्तुत किया जा चुका है । लेकिन तब से अब तक जो कुछ घटित हुआ है, उसके परीक्षण में प्रतिवेदन की सिफारिशो को तत्काल लागू करना चाहिए । उन्होंने कहा कि उच्च्च न्यायालय के फैसले से न्यायालय के प्रति विश्वास में बढ़ोत्तरी हुई है । वे नही समझते कि इस फैसले से न्यायालय और संसद के बीच तनाव बढ़ेगा। 67

जस्टिस सरकारिया का मत है कि अनुच्छेद 356 के दुरुपयोग को रोकने के लिए सविधान में संशोधन करने से कोई लाभ नहीं मिलेगा वरन् इस सम्बन्ध में स्वस्थ परम्परा विकसित होनी चाहिए। भोपाल में प्रेस को सम्बोधित करते हुए जस्टिस सरकारिया ने कहा कि भारतीय जनता पार्टी की प्रदेश सरकार जिस अनुच्छेद 356 के तहत बर्खास्तगी की गई है, उसका यहाँ कोई आधार नही था । फिर भी जबलपुर उच्च न्यायालय के एक न्यायाधीश द्वारा इस मामले को 1977 के उस मामले के समकक्ष बताया जाना, जिसमें अदालत ने विधायिका के कार्य क्षेत्र में हस्तक्षेप से इंकार कर दिया था, को न्यायमूर्ति सरकारिया ने विचारणीय बतलाया । सरकारिया

ने कहा कि प्रत्येक समस्या संविधान मे संशोधन से नहीं सुलझायी जा सकती । मगर मूल समस्याएं अपरिवर्तनीय हैं। इसलिये उन्होंने परम्पराएँ विकसित करने पर बल दिया।

न्यायमूर्ति सरकारिया ने एक अन्तर्जातीय काउन्सिल बनाने पर बल दिया जो धारा 356 से सम्बन्धित मुद्‌दों पर विचार करें । उन्होंने कहा कि मध्यप्रदेश, हिमाचल प्रदेश और राजस्थान की भाजपा सरकारों को भंग करना अनुच्छेद 356 का दुरुपयोग था । इस बात का कोई आधार नही था कि यहॉ के मुख्यमंत्री श्री पटवा राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ की विचारधारा के थे । उन्होंने कहा कि यह बड़ा तकनीकी तथा विचारशील मामला है कि अदालत की परिधि कहॉ तक हो तथा राजनीति की कहॉ तक । उन्होंने बताया कि केन्द्र तथा राज्यों के सम्बन्ध पर उन्होंने जो रिपोर्ट दी थी उसका देश के नीति निर्देशको ने कोई अध्ययन नही किया है, जबकि विदेशों के सभी विद्वान उनसे उस पर चर्चा कर गये है । जस्टिस सरकारिया ने सविधान के तीनो अंगों न्यायपालिका, कार्यपालिका व विधायिका में आपस में संवाद पर जोर दिया । [68]

शुक्ल का विचार - सुप्रीम कोर्ट सही फैसला करेगा

मध्यप्रदेश के कांग्रेस के पूर्व मुख्यमंत्री एवं कांग्रेस नेता श्यामाचरण शुक्ल ने उच्च न्यायालय के फैसले पर प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए कहा कि उन्हें पूर्ण विश्वास है कि सर्वोच्च न्यायपालिका इस सम्बन्ध में सही फैसला करेगा ।

उन्होंने कहा कि अनुच्छेद 356 की उपधारा मे 5 में स्पष्ट उल्लेखित है कि राष्ट्रपति के अभिमत को किसी अदालत में चुनौती नहीं दी जा सकती । फिर संसद के दोनों सदनों की सहमति ली जा चुकी है । ऐसे में इसे अमान्य करना संसद की अवमानना होगी । यह पूछे जाने पर कि क्या सरकार की बहाली हो सकती है । उन्होंने कहा कि "अभी तो 15 दिन का समय सर्वोच्च न्यायालय जाने के लिये हैं । वैसे पटवा जी को जनता की अदालत में जाने से भागना नहीं चाहिए ।"

अमृत संदेश के सम्पादक गोविन्द लाल बोरा ने अपने सम्पादकीय मे लिखा कि उच्च न्यायालय की खण्डपीठ के इस निर्णय का संवैधानिक महत्व के साथ राजनैतिक महत्व भी है । भारतीय जनता पार्टी इस निर्णय के बाद चुप नहीं बैठेगा । न्यायपालिका के इस निर्णय से उसका आरोप सही होता है कि दुर्भावना से राष्ट्रपति द्वारा सरकार को भंग करने की कार्यवाही की गई । सर्वोच्च न्यायालय का इस पर दिया गया फैसला महत्वपूर्ण होगा । फिर भी राजनैतिक उफान तो इससे उठेगा ही । उसे अन्य किसी फैसले के लिये रुकने की आवश्यकता नहीं है।[69]

देशबन्धु ने अपने सम्पादकीय में लिखा - भारतीय जनता पार्टी में निश्चय ही इस फैसले पर प्रसन्नता व्यक्त की जा रही है तथा केन्द्र सरकार भी असमंजसता की स्थिति मे आ गई है । लेकिन यह फैसला इस दृष्टि से अवश्य महत्वपूर्ण है कि राष्ट्रपति की उद्‌घोषणा पर सुनवाई करने का अधिकार उच्च न्यायालय को है या

नहीं । पिछले तीन माह में प्रदेश में अनेक प्रशासनिक निर्णय लिये गये है । यदि सर्वोच्च न्यायालय ने इसी फैसले को बहाल रखा तो उन प्रशासनिक परिवर्तनो एवं गतिविधियों का क्या हश्र होगा । सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के पूर्व कोई अनुमान लगाना कठिन है। किन्तु इस फैसले से भंग विधानसभाओं के चुनाव तुरन्त किये जाने की स्थिति अवश्य बनती है । यह एक दूरगामी एवं निर्णायक प्रसंग होगा जिससे संविधानिक संशोधन भी जन्म ले सकते हैं । संविधान की धारा 356 इस निर्णय से फिर विवाद का प्रश्न बन गई है।[70]

राव ने कहा भाजपा सरकारें बहाल नहीं होंगी

प्रधानमंत्री श्री राव ने कहा कि केन्द्र सरकार उच्चतम न्यायालय मे अपील करेगी । ऐसा पहले भी हुआ है कि कुछ निर्णय सरकार के विरुद्ध आये और सरकार उनमें ऊँची अदालत मे गयी।[71]

पटवा ने कहा मध्यावधि चुनाव कराये

मध्यप्रदेश के पूर्व मुख्यमंत्री सुन्दरलाल पटवा ने मॉग की कि प्रधानमत्री राव को उनकी सरकार वर्खास्त करने की नैतिक जिम्मेदारी स्वीकार करते हुए इस्तीफा देकर देश में मध्यावधि चुनाव कराना चाहिए।[72]

सरकारिया के अनुसार फैसला बरकरार भी रहा हो पटवा बहाल नहीं हो सकते

न्यायमूर्ति आर.एस. सरकारिया ने भोपाल में कहा कि मध्यप्रदेश मे राष्ट्रपति शासन लागू करने वाली राष्ट्रपति की अधिघोषणा को अवैध करार देने सम्बन्धी उच्च न्यायालय का निर्णय उच्चतम न्यायालय द्वारा बरकरार रखे जाने पर भी न तो भंग राज्य विधानसभा पुनः प्रवर्तित ही की जा सकती है और न ही वर्खास्त मुख्यमंत्री सुन्दर लाल पटवा पुनः पदस्थ हो सकते है । प्रेस से चर्चा करते हुए उन्होने कहा कि वर्तमान स्थिति का एकमात्र हल विधान सभा का पुनः चुनाव कराया जाना है । उन्होने कहा कि राष्ट्रपति शासन के पूर्व वाली यथास्थिति स्थापित नहीं की जा सकती क्योंकि विधान सभा भंग की जा चुकी है । विधानसभा भंग होने पर कुछ शेष ही नहीं रहा खास तौर से तब जबकि संसद राष्ट्रपति शासन की पुष्टि कर चुकी है ।

उन्होंने कहा कि अगर केन्द्र सरकार उच्च न्यायालय के निर्णय के खिलाफ अपील करती है तो उच्चतम न्यायालय को उसे निपटाने में देर नही करनी चाहिए । देर किये जाने से कई समस्याएँ उत्पन्न हो जायेंगी । न्यायमूर्ति ने कहा कि सरकारिया आयोग ने सिफारिश की थी कि किसी विधानसभा को भंग करने के बजाय उसे निलम्बन की अवस्था में रखा जाना चाहिए । कसी सरकार की बर्खास्तगी तथा विधानसभा भंग करने सम्बन्धी राष्ट्रपति की अधिघोषणा एक ऐसी इंटर गवर्नमैंट कौसिल से कराना अनिवार्य रखा जाय जिसका सेक्रेटरी जनरल सरकार के सीधे नियंत्रण में न हों ।

न्यायमूर्ति सरकारिया ने कहा कि संवैधानिक तंत्र के वास्तव में भग होने के पूर्व किसी सरकार को बर्खास्त कर देना अनुचित है । मध्यप्रदेश तथा दो अन्य राज्यों की भाजपा सरकारों को वर्खास्त और वहाँ की

विधानसभा भंग कर वहॉ राष्ट्रपति शासन लागू किये जाने सम्बन्धी अधिघोषणाओं की ससद द्वारा जिस ढंग से पुष्टि की गई उसका उल्लेख करते हुए उन्होंने सुझाव दिया कि इस तरह की पुष्टि ससद के दो तिहाई बहुमत से कराई जानी चाहिए ।

न्यायमूर्ति सरकारिया जो भारतीय प्रेस परिषद के अध्यक्ष भी हैं ने कहा कि प्रेस इस निर्णय के गुणावगुण (Merit) पर टिप्पणी कर सकता है, क्योंकि ऐसा करने से न्यायालय की अवमानना नही होती। प्रेस को न केवल निर्णय की वैधता पर ही विचार करना चाहिए बल्कि इस बात पर भी विचार करना चाहिए कि देश मे क्या घटित हो रहा है।[73]

राज्यपाल का पद, संविधान और लोकतन्त्र में ऐतिहासिक मोड़ आयेगा - पटवा

भोपाल में एक प्रेस कान्फ्रेंस को सम्बोधित करते हुए श्री पटवा ने उक्त विचार व्यक्त किये । उन्होंने कहा कि अब देश संविधान के अनुच्छेद 356, राज्य केन्द्र सम्बन्धो तथा संघीय ढॉचे जैसे जीवन्त मुद्दो पर पुनर्विचार के लिए मजबूर है । उन्होंने आशा व्यक्त की कि इस निर्णय के प्रकाश मे अब राज्यपालो द्वारा "रबर की मोहर" के रूप में काम करना बंद कर दिया जायगा।

श्री पटवा ने कहा कि इस निर्णय के बाद प्रदेश के वर्तमान राज्यपाल को न तो नीतिगत निर्णय लेना चाहिए और न ही पुराने नीतिगत निर्णयों मे परिवर्तन करना चाहिए । वे नियुक्ति स्थानान्तरण जैसे व्यक्तिगत लाभ हानि वाले "उटपटांग कार्य" न करते हुए केवल सार्वजनिक हित वाले कार्य ही करे । श्री पटवा ने कहा कि केन्द्र राज्य सम्बन्धी विषयक सरकारिया आयोग के 7 वर्ष पुराने प्रतिवेदन पर पुनर्विचार कर उसे लागू किया जाना चाहिए।[74]

राज्यपाल - प्रशासन नीतिगत निर्णय न लें - श्यामाचरण शुक्ल

कांग्रेस के पूर्व मुख्यमंत्री श्यामाचरण शुक्ल ने भी कहा कि मध्यप्रदेश मे राष्ट्रपति शासन काल में प्रशासन और राज्यपालों को महत्वपूर्ण नीतिगत निर्णय लेने से दूर रहना चाहिए । श्री शुक्ल ने कहा कि नीतिगत निर्णय लेने का कार्य चुनी हुई सरकार पर छोड़ देना चाहिए ।[75]

उच्चतम न्यायालय ने जबलपुर हाईकोर्ट के निर्णय को बदल दिया

केन्द्र सरकार ने जबलपुर हाइकोर्ट के निर्णय के विरुद्ध मामले की अपील उच्चतम न्यायालय में की। उच्चतम न्यायालय मध्य प्रदेश में राष्ट्रपति शासन को लागू किये जाने को वैध ठहराया।

समापन

भाजपा शासित चारों राज्यों में राष्ट्रपति शासन लागू किये जाने पर राज्यपाल की भूमिका पर विस्तार से वाद-विवाद हुए । राष्ट्रपति शासन के दौरान राज्यपाल ने बहुत से निर्णय स्वविवेक मे लिए, इससे उनकी बहुत अधिक आलोचना भी हुई । इस अवधि में राष्ट्रपति के एजेंट के रूप मे कार्य करते रहे । इसका अर्थ हुआ कि वे गृह मंत्रालय के आदेशों को मानते रहे । किन्तु गृह मंत्रालय चूँकि स्वयं केन्द्रीय क्षेत्र में ही इतना व्यस्त रहता है कि उसे राज्य के मामलों को देखने की फुर्सत नही रहती है । इसलिये राज्यपाल बहुत से मामलों में स्वविवेक से कार्य करता है ।

अवश्य ही राज्यपाल के तीन सलाहकार थे । किन्तु राज्यपाल इन सलाहकारो की परवाह न करते हुए मनमाने ढंग से आचरण किया । वे सचिवालय में जाकर भी बैठने लगे जो उचित नही थी । वे पूरे राज्य मे घूम-घूमकर नीतिगत मामलों पर बोलने लगे - सिचाई, कृषि, पिछड़े वर्गों का उत्थान, शिक्षा, उद्योग आदि क्षेत्रो में वे ऐसे निर्णय लेने लगे जो निर्णय केवल मुख्यमंत्री और अन्य मंत्री ही ले सकते है । इनसे प्रदेश में भारी विवाद उत्पन्न हो गया । वे न केवल भाजपा के विरोध में आ गये वरन् कांग्रेस ने भी उनके इन कार्यों की कटु आलोचना की ।

अवश्य ही राज्यपाल के तीन सलाहकरा थे किन्तु राज्यपाल ने इन सलाहकारो को दर किनार कर इनके परामर्शों को अमान्य कर दिया । राज्यपाल का बिना अपने सलाहकारों से परामर्श लिये राज्य के मुख्य सचिव निर्मला बुच और पुलिस महानिदेशक का तबादला करना एक अत्यधिक विवादास्पद कार्य था और इस कारण उनमें और मुख्य सलाहकार ब्रह्मस्वरूप मे भारी वाक् युद्ध छिड़ गया । आई ए एस लावी और सम्पूर्ण राज्य प्रशासन राज्यपाल का विरोधी बन गया ।

कुँअर मेहमूद अली खॉ जनता दल के थे और अजीत सिह की छत्रछाया मे यह सव कर रहे थे । उनका बार-बार दिल्ली दौड़ना पूरे राज्य प्रशासन को ठप्प करने के लिये काफी था ।

1993 में राज्य में चुनाव हुए जिसमें भाजपा पराजित हुई और पुन· कांग्रेस की सरकार बनी । मुहम्मद शफी कुरैशी जो कांग्रेस के ही थे राज्यपाल बनाये गये।

फुट नोट्स

1. मिनट्स आप दि प्राविशियल कान्स्टीट्यूशन कमेटी, जून 9 और 11, 1947

   शिवराव, बी. - दि फ्रेमिग आप इंडियाज कान्स्टीट्यूशन ; ए स्टडी, भाग v, नई दिल्ली, दि इंडियन इंस्टीट्यूट आप पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, नई दिल्ली, 1968 पृष्ठ 804

2 वही पृ. 798-810

3 संविधान सभा के वाद-विवाद भाग vii, पृ. 34-5

4 शिवराव, बी., पूर्व उद्धृत्.

5 संविधान सभा के वाद विवाद भाग vii, पृ. 34-5

6 वही पृ. 133

7 वही पृ. 234

8 वही पृ. 35

9 वही पृ. 140-42

10 वही पृ. 144-45

11 वही पृ. 146-49

12. वही.

13 वही पृ. 148-49.

14 वही पृ. 150-51

15 वही पृ. 151-52 - I only hope that is will remain a dead leter and no occasion will arise for the exercise at these extra-ordinary powers

16 वही पृ. 154-57.

17. वही पृ. 158-59

18 वही पृ. 159-67.

19 वही पृ. 167-70

20 वही पृ. 170-72

21. वही पृ. 177

22 प्रसाद, डा. राजेन्द्र - भारत का संविधान, दिल्ली, केंद्रीय शासन मुद्रणालय, 1950 (डा. राजेंद्र प्रसाद की अध्यक्षता में हिन्दी में अनुवादित), अनुच्छेद 356

23 डा. अम्बेडकर ने संविधान सभा में श्री गुप्ता को उद्धृत करते हुए कहा - "The proper thing we ought to except is that such articles will never be called in to operation and that they would remain a letter" पृ. 178

24. दि स्टेट्समैन कलकत्ता, जून 17, 1951 पार्लियामेंटरी डिबेट्स, भाग 14, पार्ट 2, 7-29, अगस्त 1951.

25 दि हिन्दू, मद्रास, नवम्बर 7, 1954 लोकसभा के वाद विवाद, पार्ट टू, भाग 8 1954, कालम्स 5-10 और 1710-40

26 संसदीय लाइब्रेरी में राज्यपाल रामकृष्ण राव की रिपोर्ट - 1959, (साइक्लोस्टाइल)

लोकसभा के वाद विवाद, 1959, सेकेंड सीरीज, कालम्स 2814-21

27. लोकसभा के वाद विवाद, 1961, भाग xxiii, कालम 3163

28 लोकसभा के वाद विवाद xxxiii, 7-18 दिसम्बर - 3 अक्टूबर 1964, कालम 3160, 3299, 3316, 3317.

राज्यसभा के वाद विवाद भाग xiix, 21 सितम्बर - 3 अक्टूबर 1964.

29 दि हिन्दू 28 जुन, 1966

30 वही, 13 मार्च 1967

31. दैनिक भास्कर, जबलपुर 11 12 92, पृ. 1

32. हिन्दुस्तान टाइम्स नई दिल्ली 18 12 92, पृ. 1 - "The centre is having a fresh look at them They are supposed to be the eyes and ears of the centre, as they have certain constitutional duties to discharge They should report to the centre about the exact things happening in their respective states but this is being ignored"

33 नवभारत, रायपुर, 12 12 92, पृ. 1.

34 देशबंधु, रायपुर, 11 12 92, पृ. 5

35. वही, 16 12 92, पृ. 1

36 वही, 19 12 92, पृ. 1

37 नवभारत 20 12 92 पृ. 1.

38 वही.

39. वही.

40 वही, 25 12 92, पृ. 1

41 वही.

42 देशबंधु, 24 12 92

43 अमृत संदेश, 25 12 92, पृ. 1

44 वही.

45 वही.

46 अमृत संदेश, 26 12 92, पृ. 1

47 देशबंधु, 26 12 92, पृ. 1

48 नवभारत, सम्पादकीय भी 27 12 92, पृ. 1

49 देशबंधु 27 12 92, पृ. 1 पर "विशेष सम्पादकीय"

50 वही.

51 वही.

52 नवभारत, 30 12 92, पृ. 1

53 वही, 31 12 92, पृ. 1

54 अमृत संदेश, 25 12 93, पृ. 1

55 वही.

56 नवभारत 23 1 93, पृ. 1.

57 नवभारत 24 1 93, पृ. 1

58 देशबंधु, 25 1 93, पृ. 1.

59 वही.

60 वही.

61 अमृत संदेश 23 1.93, पृ. 1.

62. देशबंधु 23 1 93, पृ. 1

63 वही.

64 नवभारत, 3 4 93, पृ. 1

65 देशबंधु, 3 4 93, पृ. 12

66. नवभारत, 4 4 93, पृ. 1

67 वही.

68. अमृतसंदेश, 5 5 93, (सम्पादकीय).

69 वही.

70. देशबंधु, 5.5 93, (संपादकीय).

71 वही.

72 नवभारत, 6 5 93, पृ. 1

73. वही पृ. 1

74 वही 9 4 93, पृ. 1

75 वही 10 4 93, पृ. 1

अध्याय — 8

समापन, निष्कर्ष, सुझाव

स्वतंत्रता के पूर्व ''गवर्नर '' (Governor) शब्द का उपयोग प्रान्तो का शासन चलाने वाले शासन प्रमुखों के लिए किया गया। ईस्ट इंडिया कम्पनी के शासन काल में गवर्नर कम्पनी के व्यापारिक हितो को देखा करते थे। 1858 में कम्पनी का शासन समाप्त कर दिया। इसके बाद प्रान्तीय शासन के प्रमुख के रुप मे गवर्नरो ने कार्य करना आरम्भ किया। देश में राष्ट्रीय आन्दोलन के गति पकड़ने के साथ-साथ गवर्नरों के निरंकुश अधिकारों में कटौती की माँग की जाने लगी। 1919 और 1935 मे अग्रेज सरकार ने गवर्नरों के निरंकुश अधिकारों में कटौती का प्रयास भी किया और उत्तरदायी शासन का आरम्भ हुआ किन्तु मंत्रियों और गवर्नरों के बीच कभी अच्छे सम्बन्ध नहीं रहे। 1937 मे प्रान्तीय स्वराज लागू किया गया था। किन्तु मंत्रियों ने गवर्नरों के निरंकुश अधिकारो को मानने से इंकार कर दिया और सभी प्रान्तो मे मंत्रियों ने इस्तीफा दे दिया।

1946-49 के बीच संविधान सभा ने भारत के संविधान का निर्माण किया। सविधान सभा ने केन्द्र के सदृश्य प्रान्तों मे संसदीय प्रणाली की स्थापना की। प्रत्येक प्रान्त मे राज्यपाल राज्य का प्रधान होता है किन्तु सामान्य स्थितियों में उसे राज्य के मंत्रिमंडल के परामर्श से कार्य करना होता है। इस प्रकार मुख्यमंत्री और उसकी मंत्रिपरिषद ही शासन का प्रमुख होता है और राज्यपाल नाम मात्र की कार्यपालिका । किन्तु प्रदेश का सारा शासन काल राज्यपाल के नाम से चलाया जाता है।

भारत में अमेरिका संघवाद की विकेन्द्रीय प्रणाली को नही अपनाया गया है। भारत मे केन्द्रीकरण और विकेन्द्रीकरण, संघात्मक और एकात्मक प्रणालियों का समन्वय किया गया है। इसलिये भारत मे राज्यपालो का निर्वाचन नही होता, उनको राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किया जाता है। राज्यपाल राष्ट्रपति की प्रसन्नता पर्यन्त अपने पद पर रहते है, इसका अर्थ हुआ कि केन्द्रीय मंत्रिपरिषद (गृह मत्रालय) जव तक चाहे तव तक राज्यपाल अपनें पद पर रहता है। संयुक्त राज्य अमेरिका मे राज्यपाल 4 वर्षों के लिये उस राज्य की जनता द्वारा निर्वाचित होता है और राज्य क्षेत्र में वह सर्वशक्तिमान होता है।

संविधान निर्माताओं ने राज्यपाल को न केवल हस्ताक्षर करने वाली कार्यपालिका के रुप मे कार्य करने का आदेश दिया किन्तु उसे राष्ट्रपति के एजेंट के रुप मे कार्य करने वाली संस्था के रुप मे भी मान्यता दी। राज्यपाल राष्ट्रपति को राज्य प्रशासन और राजनीति के बारे में कम से कम 15 दिन मे एक बार रिपोर्ट देगा। यह राज्यपाल का स्वविवेकी अधिकार है - मंत्रिपरिषद राज्यपाल से यह नही पुछ सकता कि उसनें राष्ट्रपति को कब और किस प्रकार की रिपोर्ट दी।

राष्ट्रपति के एजेन्ट के रुप में राज्यपाल को उस समय कार्य करना होता है जव राष्ट्रपति उस प्रदेश में संविधानिक तंत्र की विफलता की घोषणा करे। ऐसी घोषणा के पश्चात मंत्रिपरिषद और अधिकांश अवसरो पर विधान सभा भी भंग कर दी जाती है। ऐसे अवसर पर राज्यपाल गृह मत्रालय के परामर्श से उस राज्य का शासन अपने स्वविवेक से चलाता है।

गवर्नर शब्द का अनुवाद राज्यपाल किया गया है। स्वतंत्रता के बाद सामान्यतया इसी शब्द का प्रयोग किया जाने लगा है। राज्यपाल की शक्तियो और उसके कार्यों को 2 भागो मे विभक्त किया गया है :- (1) मंत्रिपरिषद के परामर्श से (2) स्वविवेक से।

निम्न मामलों को वह मंत्रिपरिषद के परामर्श से करता है - (I) विधान सभा आमंत्रित, स्थगित और अविधि पूरी हो जाने पर (5 वर्ष) वह विधान सभा भंग कर देता है। (II) विधान सभा को सम्बोधित करना (प्रत्येक सत्र के प्रारम्भ में) (III) विधेयकों पर हस्ताक्षर करना। (IV) मत्रिपरिषद के निर्णयो को लागू करने के पूर्व राज्यपाल का हस्ताक्षर लिया जा सकता है।

निर्वाचन आयोग से विधान सभा चुनाव में विजयी उम्मीदवारो की सूची प्राप्त करने के वाद एक निश्चित तिथि को वह इन सदस्यों को शपथ दिलवाता है। वह मंत्रिपरिषद के सदस्यो को भी शपथ दिलवाता है।

कुछ कार्यों को वह स्वविवेक से करता है - (I) जब किसी दल को विधान सभा मे स्पष्ट बहुमत प्राप्त न हो तो जिस किसी दल को (जिसे वह सोचता है कि वह सरकार चला ले जायेगी) वह सरकार बनाने के लिये आमंत्रित कर सकता है। (II) राष्ट्रपति को प्रति 15 दिन में रिपोर्ट देना। (III) राज्य की संविधानिक मशीनरी के विफल होने पर रिपोर्ट देना। (IV) राष्ट्रपति के विचार के लिए कुछ विधेयको को सुरक्षित रखना।(V) अ.जा., अ.ज.जा. और पिछड़ी जातियों की सूची तैयार करवाना और उसको अधतन रखना। महिलाओं और अन्य अल्पसंख्यक वर्गों के हितों की रक्षा का ध्यान रखना। (VI) विश्वविद्यालयो के चान्सलर या कुलाधिपति के रुप में कार्य करना। यहॉ वह शिक्षा मंत्री के परामर्श को मान भी सकता है, या नही भी।

राज्यपालों द्वारा राज्य के प्रमुख के रुप मे ऐसे कार्य किये जा सकते है वह उन कार्यों और गतिविधियों में योगदान दे सकता है जो सरकार के समर्थन में हैं। इनमें से अधिकांश कार्य सास्कृतिक और सामाजिक महत्व के होते हैं। वोट की राजनीति से सम्बन्धित उद्घाटन, समारोहों में मंत्री ही भाग लेते है। शेष उत्सवों, सम्मेलनो, उद्घाटनों में राज्यपाल भाग ले सकते हैं और लेते है। वह वैज्ञानिकों, समाजशास्त्रियो आदि विशेषज्ञों के सम्मेलनों में भाग ले सकता है।

राज्यपालों के सम्मेलन प्रति वर्ष दिल्ली में आमंत्रित किये जाते है जिनमे राज्यपाल अपनें अपनें राज्यों की समस्याओं की जानकारी देते हैं। राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री, गृहमंत्री और अन्य केन्द्रीय मंत्री भी इस सम्मेलन को सम्बोधित करते हैं।

1956 में नया मध्यप्रदेश बना। उसके पुर्व यह सी. पी. और बरार कहलाता था। पहले राज्यपाल पट्टाभी सीतारमैया थे। उनके बाद हरिविनायक पाटस्कर, के.सी.रेड्डी, सत्यनारायण सिहा राज्यपाल बने। श्री रेड्डी का काल संविद शासन का काल था। मध्यप्रदेश में कई सरकारें बनी और विगड़ी। उस काल में के.सी.रेड्डी की बड़ी अहम भूमिका रही। उनका काल बड़ा विवादास्पद रहा।

सत्यनारायण सिहा का काल शान्त रहा। कांग्रेस का पूर्ण बहुमत था और आपातकाल का शिकंजा कसता जाने के कारण प्रदेश में कोई आन्दोलन और प्रदर्शन भी नही हुए। विधान सभा मे शनैः शनैः ढीली पड़ती गयी। किन्तु सत्यनारायण सिहा पर भ्रष्टाचार के भी आरोप लगे।

1977 में संकटकाल समाप्त हुआ, चुनाव हुए और केन्द्र में कांग्रेस सरकार पराजित हुई और जनता दल की सरकार बनी। मध्यप्रदेश में भी कांग्रेस पराजित हुई और भाजपा ने सरकार बनाई। जनता दल ने कांग्रेस सरकारों द्वारा नियुक्त राज्यपालों को हटा दिया। इस काल में 2 राज्यपाल नियुक्त हुए - निरंजन नाथ वाचूं और सी. एम. पुनाचा। इनमे श्री वाचूं प्रशासनिक सेवाओं से थे।

1980 में केन्द्र में पुनः इंदिरा गाँधी की कांग्रेस सरकार सत्तारुढ़ हुई। उसने गैर कांग्रेस राज्यो मे चुनाव कराये और इस प्रकार मध्यप्रदेश मे पुनः कांग्रेस सत्तारुढ़ हुई। श्री भगवत दयाल शर्मा राज्यपाल नियुक्त हुए। भगवत दयाल शर्मा एक मॅजें हुए राजनीतिज्ञ थे । 1984-89 के बीच मध्यप्रदेश में काग्रेस ही सत्तारुढ़ रही। इस काल में श्री के. एम. चांडी थे। वे एक कुशल प्रशासक थे। 1989 मे केन्द्र मे जनता दल की सरकार बनी - विश्वनाथ प्रताप सिह प्रधानमंत्री बने। राज्यों में कांग्रेस शासित विधान सभाए भंग कर दी गयीं। चुनाव हुए और उसमें मध्यप्रदेश मे भाजपा विजयी हुई। केन्द्र ने मध्यप्रदेश मे श्रीमती सरला ग्रेवाल को राज्यपाल बनाया। वे सख्त प्रशासनिक अधिकारी थी। 1991 में कुँवर मेहमूद अली खान मध्यप्रदेश के राज्यपाल बने। इस समय भाजपा, विश्व हिन्दू परिषद और आर. एस. एस. ने 'राम शिलाओं' को लेकर देश के कोने कोने से विशाल जूलूस निकाला और कार सेवक अयोध्या पहुँचने लगे। मध्यप्रदेश भी इनका गढ़ था। यहाँ से कार सेवक बहुत बड़े पैमाने पर अयोध्या की ओर कूच किये जिसमें कुछ मंत्रियो ने भी भाग लिया था। किन्तु राज्यपाल कुवॅर मेहमूद अली खान ने इन सब बातो की रिपोर्टिंग केन्द्र को नही की और न उन पर अल्पमत वाली नरसिहा राव की केन्द्रीय सरकार (1992) का ही रिपोर्ट भेजने के लिए कोई दबाव था। बाबरी मस्जिद भंग होने के बाद मध्यप्रदेश में बड़ी तेजी से साम्प्रदायिक दंगे होने लगे। नरसिहा राव सरकार पर भारी दबाव पड़ा कि वह मध्यप्रदेश की सरकार को भंग कर दें। अतएव गृह मंत्रालय ने राज्यपाल को रिपोर्ट देने के लिए कहा और इस रिपोर्ट के आधार पर भाजपा सरकार भंग कर दी गयी। 1993 में काग्रेस ने मोहम्मद शफी कुरैशी को मध्यप्रदेश का राज्यपाल बनाकर भेजा, जो कांग्रेस के एक मॅजे हुए राजनीतिज्ञ रह चुके हैं।

इस प्रकार दो राज्यपालों को छोड़कर शेष सभी राज्यपाल राजनैतिक दलों से सम्वन्धित रहे है और सभी राज्यपाल मध्यप्रदेश के बाहर के व्यक्ति रहे है।

जब अयोध्या कांड हुआ तो महसूस किया गया कि दल के व्यक्तियों को ही वह भी बहुत चुने हुए व्यक्तियों को ही इन पदों पर नियुक्त किया जाये जिससे ये प्रदेश के बाबत सही रिपोर्टिंग कर सके।

अब तक जिन जिन राज्यों में विरोधी दलों की सरकारें स्थापित हुई उन उन राज्यों नें इस बात पर बल दिया कि उनके राज्य में राष्ट्रपति जब राज्यपालों की नियुक्ति करे तो वह राज्य सरकार से परामर्श ले। केन्द्र में सत्तारुढ़ कांग्रेस सरकार इसे मानकर चलती भी रही और इसने एक परम्परा का रुप भी धारण किया किन्तु कुछ राज्यों में इस परम्परा की अवहेलना भी हुई जैसे मद्रास मे राज्यपाल चेन्ना रेड्डी की नियुक्ति, पश्चिमी बंगाल में धरमवीर और धवन की नियुक्ति और हरियाणा में श्री बी. एन. चक्रवर्ती की नियुक्ति।

मध्यप्रदेश में 2 बार भाजपा सत्तारुढ़ हुई। इस अवसर पर भी केन्द्र सरकार ने राज्यपालों की नियुक्ति अपनी स्वेच्छा से की। शेष अवसरों पर कांग्रेस ही मध्यप्रदेश में पदारूढ़ रही और केन्द्र में कांग्रेस सरकार ही होने के कारण राज्यपालों की नियुक्ति में कोई परामर्श नहीं लिया गया, केन्द्र सरकार मध्यप्रदेश में राज्यपालों की नियुक्ति अपनी स्वेच्छा से ही करती रही।

इसका अर्थ यही हुआ कि केन्द्र सरकार मध्यप्रदेश को एक कमजोर राज्य समझती रही। यहाँ पश्चिम बंगाल, बिहार, उत्तरप्रदेश, हरियाणा, पंजाब, तामिलनाडु, केरल आदि के सदृश्य कोई केन्द्र विरोधी आन्दोलन नही हुए और बाबरी मस्जिद कांड को छोड़कर अन्य कोई जोरदार आन्दोलन नहीं हुआ जिससे केन्द्र को अपनी नीतियों को पुर्नमूल्यांकन करना पड़े।

वैसे 1977, 1980, 1990 में जो एक मुश्त राज्यों की सरकारों को भंग कर राज्यपालों को नियुक्त किया गया उसका मध्यप्रदेश सहित सर्वत्र विरोध किया गया। मध्यप्रदेश में यह धारणा भी पनपी कि केन्द्र राज्यपालों को अपनी कठपुतली समझता है। मध्यप्रदेश में यह धारणा बलवती होती जा रही है कि अब यह पद एक गरिमामय पद नही रह गया है। केन्द्र जानबूझकर राज्यपालो के पद का अवमूल्यन कर रही है। राज्यपालों के लिये "महामहिम" (His excellency) शब्द का उपयोग करना मात्र अब एक औपचारिकाता रह गयी है। अधिकाँश राज्यपाल अपने पद से चिपके रहना चाहते है। मध्यप्रदेश के भूतपूर्व मुख्यमंत्री मोतीलाल बोरा उत्तर प्रदेस के राज्यपाल थे और श्री शिवशंकर केरल के। दोनो पर हवाला कांड में लिप्त होने का आरोप लग चुका था। उन्हें खुद ही इस्तीफा दे देना था किन्तु वे अपने पद से चिपके रहे और जब राष्ट्रपति ने साफ शब्दों में कह दिया कि वे इस्तिफा दे तभी उन्होंने इस्तीफा दिया।

जो राज्यपाल अपने पद से चिपके रहना चाहते हैं उनको बार-बार दिल्ली की दौड़ लगानी पड़ती है। सबसे बुरी हाल कुँवर मेहमूद अली खान की थी। बाबरी मस्जिद कांड के समय उनका हटना तय था। किन्तु

उन्होनें महीनें में 3-4 बार दिल्ली की दौड़ लगाना आरम्भ की और प्रदेश का काम काज छोड़कर दिल्ली में जमें रहे। वहाँ वे चरणसिह के पुत्र अजीत सिह और अन्यों से मिलकर अपने पक्ष में लार्बिंग करते रहे। उस समय भूतपूर्व मुख्यमंत्री सुन्दर लाल पटवा ने कहा था कि राज्यपाल अपने निर्णय पर अड़े रहें या पद से इस्तिफा दे दें तभी इस पद की गरिमा बनी रहेगी, वरना केन्द्र के पीछे-पीछे दौड़ते रहने से इस पद का भारी अवमूल्यन होता जा रहा है तथा राज्यपाल अपना सम्मान गिरवी रख रहें हैं। उस समय मध्यप्रदेश के कतिपय अखबारों में इस विषय पर टिप्पणी करते हुए लिखा गया कि "राज्यपाल अपना पद गिरवी रख रहें हैं।" इन सबका सार यह है कि राज्यपालों को उस समय इस्तिफा दे देना चाहिए यदि केन्द्र सरकार उन पर नाजायज दबाव न डालें।

इस पद का अवमूल्यन इसलिये भी हो रहा है कि संविधान में ऐसी दोष पूर्ण व्यवस्था की गयी है कि राष्ट्रपति किसी राज्यपाल को अपने पद पर अपनी प्रसन्नता पूर्वक रहने दे सकता है अर्थात् राष्ट्रपति (केन्द्रीय सरकार) किसी राज्यपाल को जितनी अवधि तक रखे या जब चाहे तब उसको पद पर से हटा दे, या उसे एक राज्य से हटाकर दूसरे राज्य में नियुक्त कर दे। एक नौकरशाह यदि उसे मनमाने पदच्युत किया जाये तो वह अदालत में जाकर न्याय प्राप्त कर सकता है, किन्तु राज्यपाल ऐसा नही कर सकता उसे जब राष्ट्रपति हटाना चाहे तब उसे हटना पड़ेगा।

भूतकाल में एक मुश्त राज्यों के राज्यपालों को हटाया गया और दुसरे राज्यपालों की उनके स्थान पर नियुक्त की गयी। यह एक दुषित प्रणाली है। यही कारण है भारत सहयोगी- संघवाद की नींव नहीं डाली जा सकी। अमेरिका में संघ और राज्यों के बीच इस प्रकार का सहयोगी (Cooperative Fedelism) संघवाद विकसित हो सका है। भारत में केन्द्र राज्यों पर हावी होने उनके अन्दरुनी मामलो में हस्तक्षेप करने का प्रयास करता है। राज्यपालों की नियुक्ति और उनके हटाने में केन्द्र को राज्यों को विश्वास में लेना चाहिए। इस नियुक्ति में और राज्यपालों को हटाने में केन्द्र नें प्रायः निरंकुशता का परिचय दिया है। इससे राज्यों में भारी रोष उत्पन्न होता रहा है। आज कांग्रेस युग समाप्त हो चुका है। अतएव इस परंपरा को और अधिक विकसित करने की आवश्यकता है।

राज्यपालों का पद राजनैतिक पद है। राज्यपालों को इसलिये नही नियुक्त किया जाना चाहिए कि वह एक कुशल प्रशासक है, या एक उद्योगपति, डाक्टर या इंजिनियर है। उसे राजनीतिज्ञ होना चाहिए और केन्द्र और राज्य की राजनीति में एक संतुलित भूमिका निभानी चाहिए। उसे केन्द्र और राज्यों के बीच एक कड़ी के रुप में कार्य करना चाहिए। राज्य के उन हितों को केन्द्र के सामने रखने मे राज्यपाल को अधिक सफलता मिल सकती है। जहाँ मंत्री या मुख्यमंत्री विफल हों, वहाँ राज्यपाल की भूमिका महत्वपूर्ण हो सकती है। केन्द्र को भी यह मानकर चलना चाहिए राज्यपाल राजनीति का खिलाड़ी है और उसी रुप में उसकी बात भी सुनी जानी चाहिए। अमेरिका में राज्यपाल के पद का सार्वजनिक चुनाव कराकर इस पद के राजनैतिक स्वरुप को

मान्य किया गया है। किन्तु भारत में राज्यपाल का पद वास्तविक कार्यपालिका का पद नहीं है। वह केन्द्र सरकार का एजेंट है।

इन पचास वर्षों में केन्द्र राज्य सम्बन्धो पर विचार करने के लिए कई आयोग बिठाये गये, कई लोगों ने अपने सुझाव पेश किये, इनमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण जस्टिस सरकारिया की अध्यक्षता में विठाया गया आयोग था। सरकारिया आयोग ने ऐसे राज्यपालों की नियुक्ति पर जोर दिया जो सरकारों के लिये समस्याएँ न खड़ी करे। उन्होंने लिखा कि राज्यपालों की नियुक्ति में निम्न बातों का ध्यान रखा जाना चाहिए -

(1) राज्यपालों को किसी क्षेत्र में विशेषज्ञ होना चाहिए। किन्तु सरकारिया आयोग का यह सुझाव व्यावहारिक नहीं है विशेषकर जब राज्य में भारी उलट फेर हो रहा हो। डाक्टर, इंजीनियर, शिक्षक, समाजसेवी, कला के क्षेत्र में रुचि रखने वाले राज्यपाल राज्य में उठने वाले राजनैतिक झंझावतों का सामना करने में बुरी तरह विफल होंगे। वे अपने क्षेत्र में विशेषज्ञ होने के कारण अपने ही क्षेत्र में रुचि लेंगे किन्तु राजनैतिक उठा पटकों में उनकी रुचि नहीं होने से वे राज्य में, तथा संघ और राज्य के बीच में कड़ी के रुप में कार्य नही कर सकेंगे। उदाहरण के लिए मोती लाल बोरा (मध्यप्रदेश के भूतपूर्व मुख्यमंत्री) 1995 में उत्तर प्रदेश के राज्यपाल थे उन्होनें मुलायम सिंह, मायवती और भाजपा के बीच उठने वाले भीषण राजनैतिक झंझावतों के बीच अपनी भूमिका निभाई और बड़े कौशल से उत्तरप्रदेश की नैया तुफानी समुद्र से खेने मे सफलता हासिल की भले ही बाद में वे हवाला कांड में फँस गये और उन्हें पद सेइस्तीफा देना पड़ा।

(2) सरकारिया आयोग ने कहा कि उसे राज्य के बाहर से होना चाहिए। वैसे संविधान सभा में पहले ही इस विषय पर वाद विवाद हो चुका था और लगभग एकमत होकर सभी ने इस निर्णय पर पहुँचे कि राज्यपाल को राज्य के बाहर का ही व्यक्ति होना चाहिए। यदि वह उसी राज्य का होगा तो वह उस राज्य की राजनीति से अपने को अलग नहीं रख सकेगा और इस प्रकार उसमें और मंत्रीयों में आये दिन विवाद उठते ही रहेंगे। वैसे 1950 से अब तक मध्यप्रदेश के सारे राज्यपाल राज्य के बाहर से ही रहें है, इसलिये उनका प्रादेशिक राजनीति मे लिप्त रहने, उसमें उखाड़ पछाड़ करने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता ।

(3) सरकारिया आयोग ने यह भी सुझाव दिया कि उसे स्थानीय राजनीति से अपने को पृथक रखना चाहिए। उपरोक्त में जो बाते कही गयी हैं, उस संदर्भ में राज्यपाल का स्थानीय राजनीति में पड़ने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता । वास्तव में यदि राज्यपाल को अपने पद की सही भूमिका निभाना ही है तो उसे राज्य की राजनीति से पृथक रहना ही चाहिए।

(4) सरकारिया आयोग ने यह सुझाव दिया कि राज्यपाल को राजनीति का मँजा हुआ खिलाड़ी नहीं होना चाहिए, या राजनीति में उसका बहुत अधिक रुचि नहीं होनी चाहिए। यह सुझाव भी उसी समय तक ठीक है जब तक कि राज्य और केन्द्र सरकार के बीच उचित सम्बन्ध हो और राज्य में राजनैतिक स्थिरता हो। अशान्त राज्यों में केन्द्र को मंजे हुए राजनीतिज्ञों को ही राज्यपाल के रुप में उस राज्य

में भेजना चाहिए। उदाहरण के लिये पंजाब में आतंकवाद से निबटने का काम कोई साधारण बात नहीं थी। राजीव गांधी ने काफी सोच-विचार कर उस समय मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री अर्जुन सिंह को पंजाब का राज्यपाल बनाकर भेजा। अर्जुन सिंह ने अपने राजनैतिक अनुभवों का प्रयोग करके राजीव लोंगोवाल समझौता करवाया। काश्मीर समस्या का हल तो अब तक सम्भव नहीं हो सका है किन्तु इधर कुछ वर्षों में केन्द्र ने सख्त रवैये अपनाने वाले राज्यपालों को ही वहाँ भेजा है। बाबरी मस्जिद कांड के पूर्व जो राज्यपाल उत्तर प्रदेश और अन्य भाजपा शासित राज्यों में शासन कर रहे थे, वे राजनीति के इतने मँजे हुए खिलाड़ी नहीं थे, अतएव वे अपने राज्य के बाबत केन्द्र को सही रिपोर्टिंग नहीं कर सके।

बाबरी मस्जिद कांड भारतीय राजनीति और राजनैतिक व्यवस्था पर एक अमिट दाग है, एक काला धब्बा है। चारों भाजपा राज्यों में कार सेवकों द्वारा अयोध्या की ओर कूच करने को रोकने के लिये कोई प्रभावी कदम इसलिये नहीं उठाया जा सका कि इन राज्यों में राज्यपालों ने सही रिपोर्टिंग नहीं की (या यह भी कह सकते है कि राज्यपालों को नरसिहराव सरकार की भाजपा की तुष्टीकरण की नीति के चलते राज्यपालों को सही रिपोर्ट नहीं करने दी गई)। किन्तु इस घटना के बाद से राज्यपालों की भूमिकाओं पर केन्द्र सरकार ने गम्भीर चिन्तन करना आरम्भ कर दिया था। इस प्रकार केन्द्र को राज्यपालों की नियुक्ति में न केवल राज्य सरकारों से परामर्श करने की सुस्थापित परम्परा का ही पालन करना है, किन्तु प्रत्येक राज्य की स्थिति का अलग से अध्ययन कर उस राज्य के लिए राज्यपाल नियुक्त करना है।

इसके साथ ही साथ राज्यपालों से सही रिपोर्टिंग लेना भी केन्द्र सरकार का एक बड़ा दायित्व है। इस रिपोर्ट को राज्यपाल न तो हल्के ढंग से लिखे और न केन्द्र सरकार प्रति पखवाड़े आने वाले रिपोर्टों को हलके ढंग से ले। इसलिये मेरा यह सुझाव है कि राज्यपाल मँजा हुआ राजनीतिज्ञ ही होना चाहिए जो उस राज्य की राजनैतिक नाड़ी को समझ सके। राजनीति की पकड़ न रखने वाले राज्यपाल किसी राज्य के बारे में सही रिपोर्टिंग कर ही नहीं सकता । राजनैतिक दलों की गतिविधियां, विविध दबाव समूहों के आन्दोलन, प्रमुख घटनायें आदि की सूक्ष्म और सही जानकारी राज्यपालों को केन्द्र को भेजना चाहिए। साथ ही केन्द्र सरकार को भी इन पखवाड़े में मिलने वाले रिपोर्टो को रद्दी की टोकरी में नही फेंकना चाहिए वरन इनका गहराई से अध्ययन करना चाहिए। काश्मीर, पंजाब, पूर्वोत्तर सीमा प्रान्त तामिलनाडु आदि देश के बड़े ही संवेदनशील केन्द्र है। इनकी हालत आज इतनी बदतर नहीं होती यदि यहाँ चतुर राजनीतिज्ञ राज्यपालों की रिपोर्ट का गहन अध्ययन करता और स्थिति हाथ से बाहर निकलने के पूर्व ही कड़े कदम उठाता।

मध्यप्रदेश में इंदौर-उज्जैन क्षेत्रों में काफी हथियार आये तथा वहाँ से अफीम और मादक पदार्थों की तस्करी भी हुई। मामला विधान सभा में उठा भी। दिग्विजय सिह सरकार ने मामले को रफा दफा करवा भी

दिया। किन्तु यदि राज्यपाल सही रिपोर्टिंग केन्द्र को देते और केन्द्र समय पर राज्यपाल की रिपोर्टिंग का गहन अध्ययन करके कदम उठाता तो भविष्य में ऐसी घटनाएं आसानी से रोकी जा सकती थी।

राज्यपाल, केन्द्र सरकार और राज्य सरकार ने बस्तर के मामले को हल्के ढ़ग से लिया था। बस्तर तो अशान्त हो ही गया उसके आस पास के क्षेत्र भी अशान्त हो गये।

इन सब कारणों से यह कहा गया है कि राज्यपाल "केन्द्र सरकार की ऑख और कान है।" केन्द्र सरकार को अन्य साधनों से भी जानकारियाँ मिलती है। जैसे सी.बी.आई., सी.आई.डी., कलेक्टर, कमिश्नर आदि किन्तु ये दीगर राजनीतिक पहलुओं के बारे में अधिक जानकारी देते हैं। पुलिस अधिकारी कानून और व्यवस्था की रिपोर्टिंग कर सकते है, किन्तु राजनीति की सही रिपोर्टिंग राज्यपाल ही कर सकता है। वह राज्य की राजनीति और दलगत राजनीति की सही रिपोर्टिंग कर सकता है क्योकि वह राजनीति का मँजा हुआ खिलाड़ी होता है। भले ही कोई राज्यपाल इंजीनियर, डाक्टर, समाज सेवक, कला और साहित्य में विशेषज्ञ हो, वह राज्यपाल के रुप में पूर्णतया विफल होगा क्योंकि वह राजनीति की नाड़ी नहीं पहचानता। उसे राज्य के दलों, दबाव समूहों, राजनैतिक आन्दोलनों की अच्छी जानकारी रखने वाला होना चाहिए।

क्या मध्य प्रदेश के राज्यपालों ने केन्द्र के एजेन्ट के रुप में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है? मेरा उत्तर होगा कि उसने एक अत्यधिक सीमित क्षेत्र में यह भूमिका निभाई हैं। जब केन्द्र और राज्यों मे एक ही प्रकार की सरकार हो तब तो न राज्यपाल न मुख्यमंत्री कुछ विशेष बोल पाते है। पं० नेहरु और इंदिरा गाँधी के काल में राज्यपाल और मुख्यमंत्री दोनों ही केन्द्र से दबकर रहने में ही अपनी भलाई समझते थे। अब स्थितियाँ अवश्य बदल रही है, क्योंकि संविद सरकारों के चलते अब शायद केन्द्र में भी कोई शक्तिशाली सरकार न बन पाये।

क्या मध्यप्रदेश के राज्यपालों ने भारतीय संघ व्यवस्था में कड़ी के रुप में कार्य किया है? कड़ी के रुप में कार्य करने के लिये राज्यपालों को दो प्रकार की भूमिकाएं अदा करनें में समर्थ होना चाहिए –

(1) राज्य की योजनाओं को केन्द्र सरकार से मंजूरी दिलाने में राज्यपाल अपने प्रभाव का उपयोग करे।

(2) केन्द्र से वित्तीय सहायता दिलानें में मदद दिलाये। मध्यप्रदेश के राज्यपालों नें इन दोनों क्षेत्रों में कोई विशेष भूमिका अदा नहीं की हैं। इसका कारण यह हैं कि केन्द्र नही चाहता है कि उसे राज्यों को कोई भारी वित्तीय सहायता देनी पड़े। केन्द्र स्वयं आय के सारे महत्वपूर्ण साधनों को अपने पास रखता आया है और राजस्व का अंशदान देनें में भी उसने भारी हीला हवाला किया है।

इस प्रकार भारत में संघ व्यवस्था के वित्तीय आधार मजबूत होने के बजाय कमजोर होते गये। मुख्यमंत्री, अन्य मंत्रि तथा स्वयं राज्यपाल बार-बार दिल्ली की दौड़ लगाते रहे। जिस प्रकार मध्यप्रदेश की नगरपालिकाएँ सप्ताह में कम से कम एक बार तो भोपाल की दौड़ लगाती ही है उसी प्रकार से केन्द्र ने राज्यों को नगरपालिका

बना दिया - मंत्री, मुख्यमंत्री, राज्यपाल दिल्ली की दौड़ बराबर लगाते रहते हैं। राज्यों के पास अपनी महत्वाकांक्षी योजनाएं हैं जिन्हें राज्यपालों के प्रयास के बावजूद केन्द्र की मंजूरी नहीं दी जा सकी है।

विरोधी दल के लोगों ने इसीलिए कहा है कि राज्यपाल केन्द्र का है न कि राज्य का। मध्यप्रदेश मे भाजपा ने जब जब विरोध में रही वह यह आक्षेप लगाया कि "राज्यपाल केन्द्र का जासूस है।" उनके अनुसार राज्यपाल केन्द्र के लिये प्रति पखवाड़े रिपोर्ट देता है और केन्द्र की चापलूसी करता है।

केन्द्र यदि कुछ बातों को सही न माने तो वह उनको राज्यपाल के माध्यम से रुकवा सकता है । भाजपा शासन काल में (1990-92) मे मध्यप्रदेश में भारत भारती संस्था, अनत्योदय कार्यक्रम, पंचायती राज, स्कूली पाठ्य पुस्तकों में राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ का प्रभाव आदि बातों को केन्द्र ने ठीक नही माना अतएव मध्यप्रदेश में राष्ट्रपति शासन लागू होने के बाद से राज्यपाल मेहमूद अली खान के माध्यम से इन बातों को हटाया गया या रद्द किया गया। यहाँ तक कि राज्य के कर्मचारियो को अतिरिक्त महँगाई, बोनस भत्ता देने की माँग को जिसे पटवा सरकार ने स्वीकार कर लिया था, उन पर राज्यपाल के माध्यम से रोक लगा दी गयी।

अनुच्छेद 356 का भूतकाल में और अब भी विरोध हो रहा है। वर्तमान में स्वयं देवगौड़ा सरकार ने कहा है कि वह इस अनुच्छेद पर पुनः विचार करेगी। मध्य प्रदेश में अब तक इस को केवल दो ही बार लागू किया गया। अन्य राज्यों में इसे कई बार लागू किया गया। कांग्रेस को छोड़कर प्रायः सभी दल इस अनुच्छेद में अमूल परिवर्तन करने या इसको समाप्त कर देने के पक्ष में हैं।

अनुच्छेद 356 राज्यों में संविधानिक संकट पर अपने विचार व्यक्त करते हुए डा० अम्बेडकर ने कहा था कि इस अनुच्छेद का कम से कम प्रयोग किया जायेगा और प्रयोग न होने पर यह स्वयमेव मृत प्राय (Dead) या समाप्त हो जायेगा। फिर भी इस अनुच्छेद का प्रयोग होता रहा है और अब तक इस अनुच्छेद का सबसे अधिक बार प्रयोग किया जा चुका है। कांग्रेस ने तो इसका सर्वाधिक प्रयोग करके अपनी तानाशाही प्रवृत्ति का परिचय दिया ही है, किन्तु जनता दल और जनता पार्टी ने भी सत्ता में आने के बाद इस अनुच्छेद का प्रयोग करके विरोधी दलों की सरकार को भंग करके, राज्यपालों को बदल कर अपने राज्यपालों की नियुक्ति की। इससे इस संविधानिक पद का बहुत अधिक अवमूल्यन हो चुका है। देवगौड़ा की सरकार इस सम्बन्ध में क्या रुख अपनाती है यह भविष्य ही बतलायेगा। इस सम्बन्ध में निम्न सुझाव दिये गये हैं –

(1) इस अनुच्छेद का जितनी कम बार प्रयोग होगा उतना ही अच्छा होगा।

(2) अब देश एक दलीय शासन से दूर हटता प्रतीत हो रहा है और भविष्य में देश में संविद सरकारों का ही बोलबाला रहेगा। अतएव जिससे इस अनुच्छेद का कम से कम बार प्रयोग हो ऐसा प्रयास किया जाना चाहिए।

(3) इस सम्बन्ध में राष्ट्रपति की भूमिका महत्वपूर्ण है। उसे तटस्थ न रहकर उस समय केन्द्र सरकार को साफ-साफ कह देना चाहिए कि राज्यों की सरकारों को जब तब भंग नहीं किया जा सकता और राज्यपालों की जब तब छट्टी नहीं की जा सकती क्योंकि राज्यपाल का पद एक संविधानिक पद है और एक संविधानिक पद के साथ मनमाने खिलवाड़ नही किया जा सकता।

(4) डा० अम्बेडकर और कांग्रेस दल के अधिकांश नेता देश में संघवादी व्यवस्था के स्थान पर एक केन्द्रीकृत शासन व्यवस्था के पक्ष मे थे। किन्तु वह धारणा अब गलत सिद्ध हो चुकी है। विश्व में निरंकुश केन्द्रीकृत सरकारें टूट रही हैं, सोवियत संघ इसका एक ज्वलंत उदाहरण है। केनाडा में भी फ्रेंच लोग आन्दोलन कर रहें है। भारत बहु सांस्कृतिक भाषाओं (Polyglot) का देश है और संघ ढाँचे को मजबूत बनाकर ही हम देश में एकता कायम कर सकते है। राज्यपाल का पद भारतीय संघ व्यवस्था की एक महत्वपूर्ण कड़ी है। इस कड़ी को कमजोर करना राज्यो की स्वायत्ता को कम करना है। राज्यों की स्वायत्तता को कम करना भारतीय संघ को कमजोर करना है।

(5) जब राज्य में किसी दल का वहुमत न हो तो अनुच्छेद 356 लागू कर तुरन्त (6 माह के भीतर) चुनाव कराये जाने चाहिए। अधिकांश राज्यपालों ने और केन्द्र सरकार ने इस महत्वपूर्ण दिशा निर्देश का अवहेलना की है।

(6) कौन सा दल बहुमत में है और कौन सा दल बहुमत में नहीं है इसका निर्णय राज्यपाल को विधानसभा की बैठक बुलाकर ही करना चाहिए। उसे इस सम्बन्ध में स्वविवेक का प्रयोग नहीं करना चाहिए। इस सम्बन्ध में जब शान्ति स्वरुप धवन पश्चिम बंगाल के राज्यपाल थे तो उन्होंने ज्योतिबसु को कहा था कि वे सरकार बनाने का अपना दावा सिद्ध करने के लिए अपने समर्थकों की सूची पेश करें। इसका श्री बसु ने विरोध करते हुए कहा था —

"In a democracy the parties stand should be proved on the floor of the assembly and not in governor's drawing room "

सारांश में राज्यपालों को संविधानिक परम्पराओं के अनुसार आचरण करना चाहिए।

(7) चुनाव के बाद यदि कोई दल सरकार बनाने के लिए पूर्ण बहुमत नहीं प्राप्त कर सका है तो राज्यपाल को राष्ट्रपति शासन लागू करने की सिफारिश नहीं करनी चाहिए। उसे सभी दलों के दावों का परिक्षण करके बहुमत के आधार पर सरकार बनाने का अवसर देना चाहिए। इससे सभी को विधान सभा में अपना बहुमत सिद्ध करने का अवसर मिलेगा और वास्तविक स्थिति उभरकर सामने आयेगी।

(8) बाबरी मस्जिद जैसी स्थिति नरसिंहाराव सरकार की तुष्टिकरण और ढीली ढाली नीति का परिणाम थी। उसका परिणाम चार भाजपा सरकारो को बहुमत के बावजूद भंग करना था। वास्तव में केन्द्र को इन सरकारों को कठोर चेतावनी देनी थी और कार सेवकों के अयोध्या प्रवेश के पूर्व ही वहाँ सेना भेज देनी थी। इन राज्यों के राज्यपालों ने समय पर सही रिपोर्टिंग न करके अपने संविधानिक दायित्व का पालन नहीं किया। केन्द्र सरकार के दबाव में आकर ही मध्यप्रदेश, राजस्थान, हिमाचल प्रदेश और

उत्तर प्रदेश के राज्यपालों ने राष्ट्रपति शासन लागू करने की सिफारिश की, हालांकि स्थिति इसके बहुत पहले ही बिगड़ चुकी थी ।

(9) राज्यपालों को अपने पद की गरिमा का ध्यान रखना चाहिए और जब तब केन्द्र के दबाव में आकर कोई असंवैधानिक कदम नहीं उठाना चाहिए। यदि केन्द्र गलत आदेश दे रहा है तो राज्यपाल उसे मानने से न केवल इंकार करे वरन अपने पद से इस्तफा दे दे। राज्यपाल राष्ट्रपति का एजेन्ट है, वह कांग्रेस या केन्द्र में सत्तारुढ़ अन्य किसी दल का एजेन्ट नहीं है और यदि केन्द्र राज्यपाल पर गलत आचरण के लिये दबाव डोले तो उसे 'पद का मोह' छोड़कर तत्काल इस्तफा दे देना चाहिए। इसी संदर्भ में भाजपा नेता सुन्दरलाल पटवा का यह कहना सही है कि राज्यपाल कुँवर मेहमूद अली खान ने 1993 में बीसों बार दिल्ली दौड़ लगाकर और सत्ताधीशों के सामने नाक रगड़कर राज्यपाल पद को ठेस पहुँचायी ।

इस शोध प्रबन्ध को समाप्त करने के पूर्व मै दो लेखों को और इंगित करना चाहूँगी जो हाल में एक आंग्ल दैनिक में प्रकाशित हुए -

(i) An ideal Governor (एक आदर्श राज्यपाल - जगमोहन, जम्मू काश्मीर के भूतपूर्व राज्यपाल और संसद सदस्य (28 दिसम्बर 1994) पृ० 13)

(ii) Hegde Wants Channa Recalled (प्रेस संवाददाता, 20 दिसम्बर 1994, पृ० 12)

कर्नाटक के भूतपूर्व मुख्यमंत्री राम कृष्ण हेगड़े ने कहा कि तामिलनाडु के भूत पूर्व मुख्य मंत्री जय ललिता की यह मांग सही है कि राज्यपाल श्री चान्ना रेड्डी को केन्द्र सरकार वापस बुला ले। उन्होनें कहा " In such matter's the Chief Ministers opinion is paramount " उन्होने कहा कि किसी राज्य में जब गवर्नरों की नियुक्ति की बात उठती थी तो जवाहरलाल नेहरु हमेशा उस राज्य के मुख्यमंत्री की राय लिया करते थे । श्री हेगड़े ने कहा कि जब एस. आर. बोम्मई कर्नाटक के मुख्यमंत्री थे तब भी उनका राज्यपाल पी. वेंकट सुबैया से विवाद हो गया था । श्री हेगड़े ने कहा कि आज मुख्यमंत्री और राज्यपालों के बीच इसलिये विवाद उत्पन्न हो रहा है कि आज सेवा निवृत्त राजनीतिज्ञों को राज्यपालों के पद पर नियुक्त किया जा रहा है। केन्द्र सरकार अपने दल के चुनाव हारने वाले राजनीतिज्ञो को कहीं न कही पद देना चाहती है। इसीलिए वह इन राजनीतिज्ञों को राज्यपालों के पद पर नियुक्त कर देती है।

श्री हेगड़े ने कहा कि अनुच्छेद 357 को समाप्त कर देना चाहिए। उनके अनुसार केन्द्र ने अपने दलगत संकुचित हितों (Partisan and narrow political advantage) के चलते इस अनुच्छेद का उपयोग किया है। श्री हेगड़े ने कहा कि एक बार कोई सरकार निर्वाचित होकर आ जाय तो उसे 5 वर्ष की अवधि पूरी करने देना चाहिए, बशर्ते कि इस बीच वह अपना बहुमत न खो दे।

श्री हेगड़े ने राज्यपाल चान्ना रेड्डी को "वापस बुलाने" (Recall) की बात कही क्योंकि वे तामिलनाडू में बड़ी अशोभनीय स्थिति उत्पन्न कर रहे थे। किन्तु श्री हेगड़े भूल जाते हैं कि भारतीय सविधान में राज्यपालों को Recall की व्यवस्था नहीं है। यह व्यवस्था अमेरिका में है। भारत में राष्ट्रपति (केन्द्र सरकार) की इच्छा पर्यन्त राज्यपाल अपने पद पर रहते हैं। उनकी कोई निश्चित अवधि नही होती।

श्री जगमोहन ने अपने लेख में यह विचार व्यक्त किया कि एक आदर्श राज्यपाल बहुत कम बोलें। न तो राज्यपाल को सार्वजनिक रुप से मुख्यमंत्री की निन्दा करने का अधिकार है और न मुख्यमंत्री को राज्यपाल की निन्दा करने का । उन्होंने तामिलनाडू के राज्यपाल चान्ना रेड्डी और मुख्यमंत्री श्रीमती जय ललिता द्वारा एक दूसरे पर कीचड़ उछालने की कार्यवाही की निन्दा की। राज्यपाल को सामान्य स्थितियों में मुख्यमंत्री और मंत्रीपरिषद के कार्यों में हस्तक्षेप का अधिकार नहीं है।

सारांश में अब समय आ गया है जब राज्यपाल के पद, अनुच्छेद 356 और संसदीय व्यवस्था की बातों पर पुनर्विचार किया जाय। देश में संविधान जब लिखा गया था तब और उसके बाद दीर्घ काल तक देश में एक ही दल (कांग्रेस) का बहुमत था । अब 50 वर्षों बाद स्थितियॉ बदल चुकी हैं। अब न केवल राज्यों मे वरन केन्द्र में भी किसी एक दल के बहुमत के स्थान पर संविद (Coalitions) का ही बोलबाला रहेगा। अतएव इन परिस्थितियो में राज्यपाल के पद और उसकी शक्तियों पर विचार किया जाना चाहिए।

परिशिष्ट

परिशिष्ट—1

संदर्भ ग्रंथ और लेखों की सूची

संदर्भ ग्रन्थ :

1 अप्पादराय, ए० - डायार्की इन प्रेक्टिस, नई दिल्ली, लांगमेन्स ग्रीन एंड कम्पनी, 1937.

2 बसु, डी० डी० - कमेंटरी आन दि कान्स्टीट्यूशन आफ इंडिया, भाग 1-5, कलकत्ता, एस० सी० सरकार, 1950.

3 चेटर्जी, सिबरंजन - दि गवर्नर इन दि इंडियन कानस्ट्रीटयूशन, ए न्यू परस्पेक्टिव, कलकत्ता, 1973.

4. जीन वेरा माइकेल्स - न्यू पैटर्न्स आफ डेमोक्रेसी इन इंडिया, न्यूयार्क, हार्वार्ड युनिवर्सिटी प्रेस 1959.

5 दि स्टेट्समैन इयर बुक, कलकत्ता, 1955 आनवाईस

6 दहिया, एम० एस० - आफिस आफ दि गवर्नर इन इंडिया, ए क्रिटिकल कमेंटरी, नई दिल्ली, 1979

7 धवन, राजीव - प्रेसिडेंट्स रूल इन इंडिया, दिल्ली, इंडियन ला इन्स्टीटयूट, 1979

8 इस्माइल, एम० एम० - दि प्रसिडेंट्स एंड दि गवर्नर्स इन दि इंडियन कान्स्टीटयून, नई दिल्ली, 1972

9 इंडिया, कमेटी आफ गवर्नर्स - दि रोल आफ गवर्नर्स, रिपोर्ट, 1971

10 इंडियन इयर बुक एंड हू इज हू, बम्बई, दि टाइम्स आफ इंडिया प्रेस, 1951 के बाद।

11. गवर्नमेंट आफ मध्यप्रदेश - एक्ट न० 13, आफ 1963 रविशंकर युनिवर्सिटी एक्ट 1983, घासीदास युनिवर्सिटी एक्ट।

12 गवर्नमेंट आफ मध्यप्रदेश, रूल्स आफ प्रोसीजर फार कांटक्ट आफ बिजिनेस इन दि एम० पी० विधानसभा।

13 गवर्नमेंट आफ इंडिया एक्ट - 1858, 1919, 1935 दि इंडिया काउन्सिल एक्ट 1861, 1892

14. गवर्नमेंट आफ इंडिया - गवर्नर्स अलाउन्सेल एंड प्रिविलेजेस आर्डर, 1950

15. गवर्नमेंट आफ इंडिया - मिनिस्ट्री आफ होम अफेयर्स रिपोर्ट्स, 1980 के बाद।

16 गवर्नमेंट आफ इंडिया - रिपोर्ट आफ दि एडमिनिस्ट्रेटिव रिफार्म्स कमीशन, 1968

17 गवर्नमेंट आफ इंडिया, मिनिस्ट्री आफ एजुकेशन, इंडियन युनिवर्सिटी एडमिनिस्ट्रेशन ,1958

18 गवर्नमेंट आफ इंडिया - दि रिपोर्ट आफ दि युनिवर्सिटी एजुकेशन कमीशन, भाग-1 1950, 11950, भाग-2, 1950.

19 गवर्नमेंट आफ इंडिया - रिपोर्ट आफ दि स्टडी टीम, 1968

20 गवर्नर्स रिपोर्ट, लाइब्रेरी आफ पार्लियामेंट, 1955 आनवाईस (साइक्लोस्टाइल्ड)।

21. गेडगील, डी० आर० - सम आबजरवेशन्स आन दि ड्रफाटकान्स्टीटयूशन पूना, गोखले इंस्टीट्यूट आफ पालिटिक्स एंड इकानामिक्स, 1948

22 गेहलोत, एन० एस० दि आफिस आफ दि गवर्नर, इट्स कांस्टीटयूशन इमेज एंड रिएलिटीज, नई दिल्ली, 1977

23 ग्रोवर, वीरेन्द्र - (सं) पोलिटिकल सिस्टम इन इंडिया, 10 भाग, दिल्ली दीपएंड दीप पब्लिकेशन्स, 1988.

24 जेनिग्स, आइवर - केबिनेट गवर्नमेंट, लंदन केंब्रिज युनिवर्सिटी प्रेस, 1957.

25 जैन, धर्मचन्द, - राज्यपाल, श्यामा प्रकाशन, जयपुर, 1996

26. केरल पुत्र - दि वर्किंग आफ डायार्की इन इंडिया, बम्बई, 1919-28, 1935

27 कीथ, ए० बी० - ए कान्स्टीटयूशनल हिस्ट्री आफ इंडिया, दिल्ली, मेट्रोपोलिटन बुक, 1958

28 कान्सटीट्यूशन असेम्बली डिबेट्स, भाग-10

29 लोकसभा डिबेट्स दिल्ली, लोकसभा सचिवालय, 1960 के बाद

30 मित्रा, आर० एन० - गवर्नर्स इन दि इंडियन कास्टीट्यूशन, रायपुर रविशंकर विश्वविद्यालय, पी० एच० डी० थीसिस 1972

31. मध्य प्रदेश विश्वविद्यालय अधिनियम, मध्यप्रदेश सरकार का प्रकाशन, 1973

32 मध्यप्रदेश सरकार के बजट अधिवेशन के राज्यपाल के अभिभाषण, भोपाल, विधान सभा सचिवालय प्रकाशन, 1980 के बाद

33. प्रसाद, बी० - दि आरिजिन्स आफ प्राविन्शियल आटोनामी, दिल्ली, आत्मा राम एंड सन्स, दिल्ली, 1960

34 पायली, एम० व्ही - कान्स्टीट्युशनल गवर्नमेण्ट आफ इण्डिया, बम्बई एशिया पब्लिशिग हाऊस , 1960

35. पाराशर, एच० सी० - राज्यपाल का पद एवं उथल-पुथल की राजनीति विवेचनात्मक अध्ययन भाग 1-2 पी० एस० पब्लिकेशन, भोपाल, 1986

36. राव, के० व्ही;-पार्लियामेंटरी डेमोक्रेसी आफ इंडिया, कलकत्ता, दि वर्ल्ड प्रेस प्राइवेट लिमिटेड, 1965

37 राज्य सभा डिबेट्स, दिल्ली, राज्य सभा सचिवालय, 1980 के बाद

38 राजगोपालाचारी, सी० -अवर डेमोक्रेसी, मद्रास बी० जी० पाल एंड कम्पनी, 1957

39. शुक्ला, व्ही० एन० - कमेंटरी आन दि कान्स्टीटयूशन आफ इंडिया, लखनऊ ईस्टर्न बुक कम्पनी, 1960.

40 सरकारिया कमीशन रिपोर्ट, भारत सरकार, प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली, 1981

41. संथानम, के० - दि यूनियन स्टेटस रिलेशन्स इन इंडिया, बम्बई, एशिया पब्लिशिग हाऊस, 1960

42 संथानम के० - दि कान्स्टीटूयूशन आफ इंडिया, नई दिल्ली, हिन्दुस्तान टाइम्स, 1951

43 सीवाच, जे० आर० - राज्यपाल का पद, हरियाणा साहित्य अकादमी चण्डीगढ़ 1991

44 सीवाच, जे० आर० - पालिटिक्स आफ प्रेसिडेंट्स रूल इन इंडिया, नई दिल्ली स्टर्लिंग 1979

45 शर्मा श्री राम - पार्लियामेंटरी गवर्नमिंट इन इंडिया, इलाहाबाद, सेंट्रल बुक डिपो, 1965

46 शाह, के० टी० प्राविशियन आटोनामी, बम्बई, 1940

47 शिवाराराव बी० - दि फ्रेमिग आफ इंडियाज कान्सटीटयूशन, नई दिल्ली, इंडियान इंस्टीयूट आफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, 4 भाग, 1968.

48 सिंग, पुरुषोत्तम - गवर्नर्स आफिस इन इंडिपेडेंट इंडिया, बैजनाथ देवधर, नवयुक साहित्य मंदिर, 1968

49 श्री प्रकाश - स्टेट गवर्नर्स इन इंडिया, दिल्ली, मीनाक्षी प्रकाशन, 1965

50. सीरवई एच० एम० - दि कान्टीटयूशनल ला आफ इंडिया, बम्बई 1970

51 सेन, अशोक के० - रोल आफ गवर्नर्स इन दि इमाजिग पेटर्न आफ सेंटर स्टेट रिलेशन्स इन इंडिया, नई दिल्ली, 1975 (डॉ० राजेन्द्र प्रसाद लेक्चर सीरीज)

52 विधान सभा की कार्यवाहियॉं - मध्यप्रदेश, भोपाल, गवर्नमेंट प्रिटिग प्रेस विधान सभा सचिवालय, 1980 के बाद

53 वर्दाचारी, व्ही० के० - गवर्नर्स इन दि इंडियन कान्सटीटयूशन, नई दिल्ली 1980

54 राजेन्द्र प्रसाद - भारत का संविधान, नई दिल्ली संविधान सभा सचिवालय, 1950 (मूल अँग्रेजी का हिन्दी अनुवाद)

लेख-पत्रिकाएँ

इंडिया काउन्सिल आफ वर्ल्ड अफेयर्स, नई दिल्ली से

1 बर्मन, पी० सी० - सेंटर स्टेट रिलेशन्स, जनता 40 (17) दिसम्बर 17, 85

2 बुश, एम० एन० - डेमोक्रेसी डेवलपमेंट एंड दि एडमिनिस्ट्रेटिव सिस्टम, इंडिया इंटरनेशनल सेंटर क्वाटर्ली, दिसम्बर 85, 345-55

3 बेनर्जी, किशले - पालिटिक्स आफ रीजनलिज्म इन इंडिया, मार्डर्न रिव्यू, जनवरी फरवरी 85 9 14

4 हेगड़े, रामकृष्ण - स्ट्रांग स्टेटस आर इम्परेटिव फार ए पावर फुल सेंटर जनता, 40 (13) अक्टूबर 10, 85, 3-8,15

5. हेगड़े रामकृष्ण – स्ट्रांग स्टेटस फार पावरफुल सेटर मेनस्ट्रीम, 24 (8) · अक्टूबर 26, 85 : 11-16.

6 हेगड़े रामकृष्ण - सेंटर स्टेट टाइज, केपिटल 195 (4 -11) : अगस्त, 85.15,17.

7 हेगड़े वांट्स चेन्ना रीकाल्ड - हिन्दुस्तान टाइम्स, नई दिल्ली, 20 दिसम्बर, 1994, पृ० 12.

8 जगमोहन (वर्तमान में संसद सदस्य और भूतपूर्व राज्यपाल जम्मू एंड काश्मीर)-एन आइडियल गवर्नर हिन्दुस्तान टाइम्स, दिसम्बर 28, 1994

9 क्रासिलनिकाव, व्ही० - सेंट्रल गवर्नमेंट एंड स्टेटस इन इंडिया, इंटर नेशनल अफेयर्स (11) , नवम्बर 85-124-6.

10 कोठारी,रजनी-सेंटर एंड दि चेलेंज, फार ईस्टर्न एकानामिक रिव्यू 127 (4) जनवरी 31, 85:34-35

11. मोर पावर्स टू स्टेस पीपल्स डमोक्रेसी, 9 (27) जुलाई 8, 85:3, 9.

12. दि कांग्रेस एंड दि सरकारिया कमीशन, पीपल्स डेमोक्रेसी, 9 (43) अक्टूबर 27, 85 : 1, 2 सम्पादकीय

13. पिंटों, मारिना आर - इंडिया : कान्सटीटयूशन एंड फेडरलिज्म, रेडिकल हयूमेनिस्ट 49 (8), नवम्बर 85, 17-22.

14 सीवाच, जे० आर० - स्टेट आटोनामी एंड दि प्रेसीडेंट्स रूल, इंडियन जर्नल आफ पोलिटिकल सांइस 46 (2), अप्रैल 85:150-66.

15 भार्गव, पी० के० - नाट क्राइट ए फेयर डील टू दि स्टेटस केपिटल, 194 (4807) . जून 10, 85:20-1.

16 वेंकटरमैया कमीशन, डेमोक्रेटिक वर्ल्ड, 15 (22) जून 1, 86-3-4.

17 वेस्ट बंगाल मोमोरैंडम आन सेंटर स्टेट रिलेशन्स - जर्नल आफ कान्सटीटयूशनल एंड पार्लियामेंटरी स्टडीज, 20 (1-4), जनवरी - दिसम्बर 85 391-7

18 एपाइन्टमेंट आफ कमीशन आन सेंटर स्टेट रिलेशन्स (सरकारिया कमीशन), जर्नल आफ कान्सटीटयूशनल एंड पार्लियामेंटरी स्टडीज, 20 (1-4), जनवरी दिसम्बर 86:418-19 स्पेशल इश्यू आन सेंटर स्टेट रिलेशन्स इन इंडिया।

19 डॉ० हरिहर एंड महापात्र - संयुक्त इंडियन फैडरलिज्म, जर्नल आफ पोलिटिकल स्टडीज, 19(2) सितबर 86:1-14

20. माहेश्वरी, श्री राम - आस्पेकट्स आफ एडमिनि स्ट्रेटिव फेडरलिज्म · इंडियन माडेल, इंडियन जर्नल आफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन 32(2):अप्रैल जून 86 230-40.

21 पण्डया बी० पी० - दि फेडरल आइडिया इन इंडिया, जर्नल आफ कान्स्टीयूशनल एंड पार्लायमेटरी स्टडीज 20 (1-4) जून दिसम्बर 86:1-16.

22 परांजये, एच० के० - ए नोट आन सेटर स्टेट रिलेशन्स, मेन स्ट्रीम, 24 (19) जनवरी 11, 86.5, 8, 32.

23 रीजनल डाइमेंशन, फ्रंटियर 19 (12), नवम्बर 8,86:2-3.

24 रिपोर्ट आफ दि एडमिनिस्ट्रेटिव रिफार्म्स कमीशन, (जून 1969), जर्नल आफ कान्स्टीटयूशनल एंड पार्लियामेंटरी स्टडीज 20 (1-14), जनवरी दिसम्बर 86 : 372 - 7.

25 रिपोर्ट आफ दि सेंटर स्टेट रिलेशन्स इंक्रायरी कमेटी (राजमन्नार कमेटी), 1971, जर्नल आफ कान्सटीटयूशनल एंड पार्लियामेंटरी स्टडीज 20 (1-14), स्पेशल इश्यू: सेमिनार (बेंगलौर), शिवरतन चन्द्र - गवर्नर इन सेंटर स्टेट रिलेशन्स जन० दिसम्बर 86, 378-407

26 थापर रोमेश - स्मालर स्टेटस, एकानामिक एंड पोलिटिकल वीकली, नवम्बर 22, 86, 2023

27 वर्मा एस० एल० - इंस्टालेशन आफ फेडरल अथारिटी इन दि इंडियन पोलिटिकल सिस्टम, इंडियन जर्नल आफ पोलिटिकल साइंस, 47 (2), अप्रैल, जून 86, 247-58.

28 सेंट्रलाइजिग विथ ए वेंजियेंस एकानामिक एंड पोलिटिक्स वीकली 22 (19-21) . मई 87

29 केन दि नेशन एफोर्ड दिस लक्जरी आफ दि पालिटिक्स आफ कन्फ्रंटेशनिज्म ?, कामर्स 155, (39997), दिसम्बर, 26, 87

30 सेंटर स्टेट कन्फ्रन्टेशन - डेमोक्रेटिक वर्ल्ड (52) · सितम्बर, 27, 87:3.

31 डी सेंट्रलाइजेंशन एक्सपेरीमेंट - डेमोक्रेटिक वर्ल्ड (52) सितम्बर, 27, 87:3.

32 नान कॉंग्रेस कानक्लेव - डेमोक्रेटिक वर्ल्ड 16 (2) जनवरी, 11, 87:3-4 (सम्पादकीय)

33 सिग, एम० पी० - इंडियन फेडरलिज्म स्ट्रक्चर एंड इश्यूज, कोचीन युनिवर्सिटी लॉ रिव्यू 11(3-4) सितम्बर-दिसम्बर 87:255-83

34 पेरुमल, सी० ए० - रीजनलिज्म एंड पोलिटिकल डेवलपमेंट, इंडियन जर्नल आफ पोलटिकल साइंस 48 (1), जनवरी-मार्च 87.1-11 (डॉ० आर० सी० प्रसाद मेमोरियल लेक्चर) 1986-87.

35 टेकिंग दि स्टेटस अफेयर ग्रांटेड - एकानामिक एंड पोलिटिकल वीकली 22 (27) जुलाई 4, 87·1049

36. सेंटर स्टेट रिलेशन्स, जनता, 43 (26) अक्टूबर 30, 88 : 10 -12.

37 चक्रवर्ती, सुमित - सरकारिया कमीशन रिपोर्ट ए क्रिटीक, मेनस्ट्रीम 26 (19) फरवरी 20, 88,9-14.

38 गंगाल , एम० सी० - दि सरकारिया कमीशन रिपोर्ट एंड सेंटर स्टेट रिलेशन्स, गाँधी मार्ग 9 (22) मार्च 88,708-12

39 घोष, अरुण - सेट्रिज्म डी सेट्रलाइजेशन एंड डेमाक्रेसी, एकानामिक एंड पोलिटिकल वीकली 23 (5) जनवरी 30, 88:175-6

40 महमूद खालिद - सेंटर स्टेट रिलेशन्स इन इंडिया, रीजनल स्टडीज 6 (2) स्प्रिंग 88 : 23-86.

41 नम्बूद्रीपाद, ई एम० एस० - स्ट्रांग केस अगेन्स्ट ओवर सेंटर्लाइजेशन, पीपल्स डेमोक्रेसी 12 (9) फरवरी 28,88.

42 निर्मलेदू विकास - आर्टिकल, 356 एंड अमरजेंसी, फ्रंटियर 20 (21) : जनवरी 9,88 10-13.

43. रे अमल-दि सरकारिया कमीशन परस्पेकिटव . एन एप्रेसल, एकानामिक एंड पोलिटिकल वीकली 25 (22), मई 28, 88:1131-3

44 सरकार, सुभाष चन्द्र - सरकारिया कमीशन मिसेस दि पाइंट, कामर्स 156 (4004) फरवरी 13,88 7-14

45 सरकारिया आन दि गवर्नर - लिंक 30 (31), मार्च 6, 88, 14-16

46 सम सरकारिया कमीशन कान्क्लूशन्स - लिंक 30 29 फरवरी 21, 88:10-14.

47. वोरा, एम० बी० - सरकारिया कमीशन ए सिनिक्स विव, कामर्स 154 (4027) जुलाई 30, 88·29

समाचार पत्र में लेख

इंडियन काउन्सिल आफ वर्ल्ड अफेयर्स, नई दिल्ली से

1 दि गवर्नर - सेज आर स्पाई, माली जे० सोरावजी, टाइम्स आफ इंडिया, नई दिल्ली, जुलाई 1988

2. गवर्नर्स पोस्ट डीवेल्यूड : एमपीज, हिन्दुस्तान टाइम्स, 15 जुलाई, 1988.

3 एम० पीज फार चेक आन डिस्क्रीशनरी पावर्स कन्सर्न ओवर गवर्नर्स स्टेचर, इंडियन एक्सप्रेस, नई दिल्ली, 15 जुलाई 1988.

4 गवर्नर्स मिसयूसिंग पावर - अपोजीशन, टाइम्स आफ इंडिया, दिल्ली, 13 अगस्त, 1988.

5. डिमांड बाई आसाम - गवर्नर्स शुड बी एक्सपैल्ड, सतीश सी कटारी, स्टेटस मैन, दिल्ली, 1 अक्टूबर 1988.

6 गवर्नर मीट आन मंडे - एम० के० धार - हिदुस्तान टाइम्स, दिल्ली, 15 अक्टूबर, 1988.

7 इम्पार्शियल गवर्नर्स - ए कांट्रेडिक्शन इन टर्म्स, दि हिन्दू, मद्रास, 10 अक्टूबर 1988.

8 गवर्नर्स फार स्टेप्स टु कर्ब कम्यूनिज्म - इंडियन एक्सप्रेस, दिल्ली, 11 अक्टूबर, 1988.

9 गवर्नर्स/कान्फरेंस सेटर टु कन्सल्ट अपोजीशन - स्टेट्समैन, दिल्ली, 11अक्टूबर 1988.

10 स्पीसिफिक गाइट लाइनस नाट पासिबल - भू० पू० राज्यपाल गोविन्द नारायण, पेट्रियाट, दिल्ली 11 अक्टूबर, 1988.

11. एबालिश दि पोस्ट आर अलेक्टावर्नर्स - ई० एम० एस० नम्बद्रीपाद, पेट्रियाट, 11 अक्टूबर 1988

12 पी० एम० हैज टाक्स विथ गवर्नर्स - हिन्दुस्तान टाइम्स, 13 अक्टूबर, 1988.

13 रोल आफ गवर्नस - दि हिन्दू, 13 अक्टूबर, 1988.

14. होमिलीज फार गवर्नर्स - हिन्दुस्तान टाइम्स, 14 अक्टूबर, 1988.

15 दि गवर्नर्स रोल इन ट्राइबल डेवलमेंट - दि हिन्दू, मद्रास, 10 दिसम्बर 1988.

16. गवर्नर्स दे केन बी क्वेशचन्ड, एस० सहाय, हिन्दुस्तान टाइम्स, 30 दिसम्बर1988.

17 नार्म्स फार गवर्नर्स - हिन्दुस्तान टाइम्स, 26 जनवरी, 1989.

18 गवर्नर्स इन दि न्यू कांटेस्ट - दि हिन्दू, मद्रास, 31 जनवरी, 1989

19 गवर्रर्स एंड डिस्क्रीशनरी पावर्स - के० एन० मुदालियर, भूतपूर्व कानून मंत्री, तामिलनाडु, दि हिन्दु, मद्रास, 3 फरवरी, 1989.

20 ए गवर्नर्स पाली - स्टेटसमैन, दिल्ली, 9 फरवरी 1989

21. गवर्नर्स गाइड लाइन्स इम्परेटिव्स - एस० सहाय - हिन्दुस्तान टाइम्स, 10 फरवरी, 1989.

22 सेंटर इन सर्च आफ गवर्नर्स - ए सूर्य प्रकाश, इण्डियन एक्सप्रेस, दिल्ली, 15 फरवरी.

23. अवर पोलिटिकल गवर्नर्स - प्रेम भाटिया, ट्रिव्यून, चंडीगढ़ 17 फरवरी, 1989.

24 राजभवन, पालिटिक्स - स्टेटसमैन, दिल्ली, 21 फरवरी, 1989

25. कर्टेसी डिनाइड - पेट्रियाट, दिल्ली, 21 फरवरी, 1989.

26 राजभवन बिकमिंग कॉग्रेस आइ आफिसेस - ट्रिव्यून, चंडीगढ़ 21 फरवरी 1989.

27 एपाइंटमेंट आफ न्यू गवर्नर्स - दि हिन्दू, मद्रास, 21 फरवरी, 1989.

28 कैन बी रियली एफोर्ड टू हैव गवर्नर्स, सुमित्रा - कुमार जैन - टाइम्स आफ इंडिया, दिल्ली, 16 मार्च 1989.

29 पोस्टिंग्स एंड ट्रान्सफर्स आफ गवर्नर्स - ट्रिब्यून, चंडीगढ़ 21 फरवरी, 1989

30 बिहदर गवर्नर्स - इण्डियन एक्सप्रेस, दिल्ली, 17 मार्च 1989

31. मेसेज टू गवर्नर्स - हिन्दुस्तान टाइम्स, 20 मार्च, 1989.

32. राजीव्स एपाइन्टमेंट - गवर्नर्स एज पार्टी लायलिस्ट्स, कमलेन्द्र कंवर, इंडियन एक्सप्रेस, 24 मार्च, 1989.

33 शार्प डिफरेंसेस आन गवर्नर्स एपाइंटमेंट - पेट्रियाट, 1 अप्रैल 1989

34. दि गवर्नर्स आफिस - अजय के० मेहरा, टाइम्स आफ इंडिया, दिल्ली 6 अप्रैल 1989.

35. प्रेशर्स आफ गवर्नर्स रूल - प्रेम भाटिया - ट्रिब्युनल, चंडीगढ़ 8 अप्रैल 1989.

36 गवर्नर्स डी स्टेबिलाइजिग गवर्नमेंटस - ज्योति बसु, स्टेटस मैन, 19 अप्रैल, 1989.

37. गवर्नर्स लेबल्ड स्ट्रेजेस - टाइम्स आफ इंडिया, दिल्ली, 9 अप्रैल, 1989.

38. ए न्यूज आफ गवर्नर्स आफिस असेल्ड - इंडियन एक्सप्रेस, दिल्ली 9 अप्रैल, 1989.

39 गवर्नर्स रोल इन नान कॉग्रेस आई स्टेटस टर्म्ड पार्टीजन - हिन्दुस्तान टाइम्स, 9 अप्रैल 1989.

40 काल टु प्रोटेक्ट इंस्टीटयूशन आफ गवर्नर्स - नेशनल हेराल्ड, 10 अप्रैल 1989.

41 एपाइंटमेंट आफ गवर्नर्स - ट्रिब्यून, चंडीगढ़ 11 अप्रैल, 1989.

42 हू इज एन आइडियल गवर्नर्स - जगमोहन, इंडियन एक्सप्रेस, 17 अप्रैल, 1989.

43 विथड्रा कॉग्रेस आइ गवर्नर्स - इंडियन एक्सप्रेस, दिल्ली, 20 मई, 1989.

44 न्यू गवर्नर्स - नेशनल हेराल्ड, दिल्ली 3 जुलाई, 1989

45 दि गवर्नर्स रोल एज चसन्सलर्स - अमरीक सिह - टाइम्स आफ इंडिया, 2 दिसम्बर, 1989.

46 पालिसी फार राजभवनस - स्टेटसमैन, 22 दिसम्बर, 1989.

47. मैनी गवर्नर्स में गो - हरीश गुप्ता - ट्रिब्यून, चंडीगढ़ 3 जनवरी, 1990.

48 एमेडमेंट आन गवर्नर्स रोल मूटेड - हिन्दुस्तान टाइम्स, 9 जनवरी, 1990.

49. आफिस आफ गवर्नर बी० जे० पी० फार अर्ली रिव्यू, हिन्दू, गुडगांव, 9 जनवरी 1990.

50 गवर्नर्स रोल - ट्रिव्यून, 10 जनवरी, 1990.

51 डू वी नीड गवर्नर्स - पेट्रियाट, दिल्ली, 10 जनवरी, 1990

52 मेनी गवर्नर्स में गो - बृज भारद्वाज, हिन्दुस्तान टाइम्स, 16 जनवरी, 1990

53 गवर्नर्स आस्कड टु टेंडर रेजिगनेशन्स - टाइम्स आफ इंडिया, 16 जनवरी, 1990

54 गवर्नर्स ओल्ड एण्ड न्यू - पेट्रियाट, 7 जनवरी, 1990.

55 नेशनल फ्रंट एक्यूज्ड आफ पोलिटिसाइजिग इन्सटीटयूशन्स आफ गवर्नर्स - पेट्रियाट, 17 जनवरी, 1990.

56 ओनली सम गवर्नर्स विल बी आस्कड टु गो - हिन्दु, गुडगांव 17 जनवरी, 1990.

57 फोर गवर्नर्स सेंड रेजगनेशन्स - टाइम्स आफ इंडिया, दिल्ली, 17 जनवरी, 1990.

58 रीप्लेसिग गवर्नर्स - टाइम्स आफ इंडिया, 17 जनवरी, 1990.

59 गवर्नर्स शुड क्विट आफटर गवर्नमेंट चेंजेस - मुफ्ती, टाइम्स आफ इंडिया, 18 जनवरी 1990.

60 गवर्नर्स एज शेडोज - स्टेटसमैन, 18 जनवरी, 1990.

61 मोर गवर्नर्स स्टेप डाइन - टाइम्स आफ इंडिया, 18 जनवरी 1990

62 ट्वेल्व मोर गवर्नर्स रिजाइन - पेट्रियाट, 18 जनवरी, 1990.

63 जनता दल काल्स गवर्नर्स राजीव्स हैजेट मैन - हिन्दुस्तान टाइम्स, 19 जनवरी, 1990.

64 गवर्नर्स रिमूवल विल प्रूव काउन्टर प्रोडक्टिव, हिन्दु, गुड़गांव, 23 जनवरी, 1990

65. आर्बिट्री चेंजेस इन राजभवन्स - हिन्दु, गुडगांव, 18 जनवरी , 1990

66 चेंज आफ गवर्नर्स - हिन्दुस्तान टाइम्स, 18 जनवरी 1990

67. एपाइंट मिनिस्टर्स आन रिट - सी० सुब्रमणियम, हिन्दू , गुड़गांव, 23 जनवरी, 1990.

68 रिकाल आफ गवर्नर्स -अन कान्सटीटयूशनल जनता पार्टी - नेशनल हेराल्ड, 23 जनवरी 1990

69 रिमूवल आफ गवर्नर्स ए रांग प्रैसीडेंट एस सहाय, दि हिन्दुस्तान टाइम्स, 24 जनवरी, 1990.

70 कॉंग्रेस मेमो टु प्रेसीडेंट अगेन्स्ट न्यू गवर्नर्स - हिन्दुस्तान टाइम्स, 24 जनवरी, 1990.

71 न्यू डाइमेशन्स नीडेड टू गवर्नर्स डिग्रिटी व्ही० आर० कृष्ण अय्यर, ट्रिब्यून, 28 जनवरी, 1990.

72 व्ही पी० टाक्स विथ - आर. वेकटरामन आन न्यू गवर्नर्स - हिन्दू, 31 जनवरी, 1990.

73. गवर्नर्स आन टेंडर हुक्स - ट्रिब्यूनल, 2 फरवरी, 1990.

74 आर० वेंकटरामन एपाइन्टस न्यू गवर्नर्स - हिन्दुस्तान टाइम्स, 2 फरवरी, 1990.

75 पोलिटिकल एपाइंटमेंट - नेशनल हेराल्ड, 3 फरवरी 1990.

76 गवर्नर्स नेगलेक्टेड नार्म्स - पेट्रियाट, 3 फरवरी, 1990

77 चेंजिग गवर्नर्स - टाइम्स आफ इंडिया, 3 फरवरी, 1990.

78 गवर्नर्स बाई कन्सेसस - ट्रिब्यून, 5 फरवरी, 1990.

79 राजभवन्स रिमेंड डिफाइल्ड - इंद्र मलहोत्रा, टाइम्स आफ इंडिया, 9 फरवरी, 1990

80. कान्सटीट्यूशनल बेंच टु हियर गवर्नर्स केस - इंडियन एक्सप्रेस, 10 फरवरी, 1990.

81 गवर्नर्स केस फार लार्जर बेंच - टाइम्स आफ इंडिया, 10 फरवरी, 1990.

82 गवर्नर्स नाट सेंट्रल एजेंट - हिन्दुस्तान टाइम्स, 10 फरवरी, 1990.

83. दि न्यू गवर्नर्स - हिन्दू, गुड़गांव, 11फरवरी, 1990.

84. व्हाय चेंज गवर्नर्स? ए क्वेश्चन आफ बेसिक प्रागमेटिज्म - डा० एल० एम० सिंघवी, इंडियन एक्सप्रेस 19 फरवरी, 1990.

85 एपाइंटमेंट आफ गवर्नर्स - एम० एन० बुच - इंडियन एक्सप्रेस, 19 फरवरी, 1990

86 आस्किंग फार गवर्नर्स रेजिगनेशन क्रिटिसाइजड - नेशनल हेराल्ड, 23 मार्च, 1990

87 डाइवर्स वियूज आन गवर्नर्स पोस्ट - नेशनल हेराल्ड, 26 फरवरी, 1990.

88 ए फार्मर गवर्नर स्पीक्स - पेट्रियाट, 2 जून, 1990

89 नाट एजेट आफ सेंटर - पेट्रियाट, 30 जुलाई, 1990

90 फोकस आन गवर्नर्स रोल - इंडियन एक्सप्रेस, 31 जुलाई, 1990

91. गवर्नर्स सर्विग हूज राज - राजीव धावन, पेट्रियाट, 2 अगस्त 1990.

92 एक्स आन गवर्नर्स - हिन्दुस्तान टाइम्स, 15 फरवरी, 1991.

93 गवर्नर्स एज पान्स - ट्रिब्यून, 15 फरवरी, 1991.

94 टू गवर्नर्स टु गो - टाइम्स आफ इंडिया, 15 फरवरी, 1991.

95. वेटिग फार ए गवर्नर - ट्रिब्यून, 24 जुलाई, 1991.

96 मोर गवर्नर्स लाइकली टु क्रिट - इंडियन एक्सप्रेस, 10 अगस्त, 1991.

97 रिलाइंग आन गवर्नर्स - टाइम्स आफ इंडिया, 17 अगस्त, 1991

98 गवर्नर्स टु स्टे इन आफिस - स्ट्रेट्समैन, 20 अक्टूबर, 1991.

99 दि कन्फेशन आफ ए गवर्नर - इंडियन एक्सप्रेस, 5 दिसम्बर, 1991

100. गवर्नर्स अथारिटी - पेट्रियाट, 10 दिसम्बर, 1991.

1992 की घटनाओं से सम्बन्धित राज्यपालों की भूमिका पर निम्न स्थानिय अखबारों से सामग्री एकत्रित की गयी है। जिनका उल्लेख पिछले अध्यायो में किया जा चुका है विशेषकार म० प्र० की राज्यपाल की भूमिका पर

1 नवभारत, रायपुर

2 देशबंधु, रायपुर

3 अमृत संदेश, रायपुर

परिशिष्ट—2

उत्तर प्रदेश और गुजरात में राष्ट्रपति शासन

मेरा शोध प्रबंध समाप्त हो चुका था, उसे टाईप के लिये देना था। इसी समय इन दो राज्यों में राष्ट्रपति शासन लागू किया गया। साथ ही शोध प्रंबध में केवल मध्यप्रदेश के विशेष अध्ययन पर स्वीकृति मिलने के कारण इन पर नहीं लिखा जा सका।

मायावती की सरकार भाजपा के सहयोग से 4 महीने चली। पूरे राज्य का प्रशासन का बसपाईकरण किया गया (इसके पूर्व मुलायम सिह की सरकार ने यादवीकरण और भाजपा की सरकार ने भाजपाईकरण किया था)। राज्यपाल मोतीलाल वोरा ने मायावती की सरकार को विधानसभा में अपना बहुमत सिद्ध करने के लिये कहा जो वह नहीं कर सकी। इस प्रकार मायावती की सरकार को भंग कर राष्ट्रपति शासन लागू किया गया। इसके कुछ महीनों बाद चुनाव हुए चुनाव में कोई दल स्पष्ट बहुमत में नहीं आया यद्यपि भाजपा को सर्वाधिक सीट्स मिले है। अभी हाल में ही राज्यपाल रोमेश भंडारी ने भाजपा एवं बसपा दोनों राजनैतिक दल को गठबंधन सरकार बनाने के लिए आमंत्रित किया। दोनों ही दल ने आपस में समझौता किया है कि दोनों ही दल 6-6 महीने के लिये अपने-अपने पार्टी की ओर से मुख्यमंत्री बनायेंगे। इसमें पहला 6 महीना बसपा की ओर से सुश्री मायावती अभी मुख्यमंत्री बनी है। इस तरह राज्यपाल रोमेश भंडारी जी ने उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री पद के लिए सुश्री मायावती को शपथ दिलवाई।

गुजरात में बाघेला के विद्रोह से केशूभाई की सरकार का पतन हो गया। वहाँ कुछ समय तक राष्ट्रपति शासन चला,अब वाघेला ने काँग्रेस समर्थन से अपनी सरकार बनाई है।